धर्म्म और विज्ञान

अर्थात्

CONFLICT between RELIGION and SCIENCE

नामक

एक अङ्गरेजी पुस्तक का

लक्ष्मी संपादक लाला भगवानदीन कृत

भावानुवाद

और

एक हिन्दी प्रेमी नरेश की अनुमति और सहायता से

बाबू माधव प्रसाद, प्रोप्राइटर भारत प्रेस द्वारा प्रकाशित।

—:o:—

PRINTED BY MADHO PRASAD BHARAT PRESS

Price Rs. 2 } BENARES { मूल्य २)

रहा, तब वे प्रश्न करने लगे कि दैवी भविष्यवादक क्यों चुप हो रहे, और अब संसार में वे आश्चर्य्यप्रद बातें क्यों नही होतीं ? ।

मौखिक कथाओं ने, जो बहुत प्राचीन काल से प्रचलित थीं, और जिनको प्राचीन धार्मिक जनों ने निःसन्देह सत्य माना था, भूमध्य सागर के द्वीपों और उसके निकटस्थ देशों को दैवी आश्चर्य्यों, अर्थात् जादूगरनियों, जादूगरों, भूतों, राक्षसों, पंखदार राक्षसों, भयंकर रूप धारियों, पंखदार नृसिंहों और क्रूरकर्मा दैत्यों से भर दिया था । नील आकाश स्वर्गलोक की भूमि थी, जहां "जीअस" देवताओं से घिरा हुआ, मनुष्यों के से कामों में लगा हुआ, और मानुषी विषयों और दोषों सहित अपनी सभा किया करता था ।

बहुत स्थानों से भंगुरित समुद्रतट तथा एक ऐसे द्वीप समूह ने जिसमें संसार के अत्यन्त सुन्दर द्वीप हैं, यूनानी लोगों को समुद्रीय जीवन, भौगोलिक नवान्वेषण, और नवीन बस्तियां बसाने के चाव से भर दिया था । उनके जहाज कृष्णसागर और भूमध्यसागर में सब जगह घूमा करते थे । ज्ञात हुआ कि समय समुद्रित आश्चर्य जिनका वर्णन "आडिसी" नामक ग्रंथ में बड़ी धूमधाम से किया गया है, और जिनको सर्व साधारण जन अति पवित्र समझते थे कुछ थे ही नहीं । जब प्रकृति का और अधिक ज्ञान लाभ हुआ तब स्पष्ट प्रमाणित कर दिया गया कि आकाश एक धोखा है । ऐसा जाना गया कि आलिम्पस कोई वस्तु नहीं है । रहने का स्थान अन्तरधान होते ही "होमर" के यूनानी देवता और 'हीसिअड' के डोरिक देवता सब गायब हो गए ।

परन्तु यह बात विना विरोध हुए नहीं हुई । पहिले तो जन साधारण ने और विशेष कर उसके धार्मिक भाग ने इन संदेहों को नास्तिकता कहके उनकी निन्दा की । उन्होंने अपने देवताओं को अप्रसन्न करने वालों में से कुछ का तो धन अपहरण कर लिया, कुछ को देश से निकाल दिया और कुछ को उन्होंने मार डाला । वे ज़ोर के साथ कहते थे कि प्राचीन काल में जिस पर पवित्रात्मा मनुष्यों का विश्वास रहा है, और जो बहुत काल की जांच में सदैव सत्य निकला है, वह अवश्य सत्य होगा ॥ तदनन्तर जब विरोधी प्रमाण अकाट्य होने लगे

तब उन्होंने मान लिया कि ये आश्चर्य्य प्रद बातें रूपक थीं जिनकी आड़ में प्राचीन मनुष्यों की बुद्धि ने बहुत सी पवित्र और भेदपूर्ण बातें छिपा रक्खी हैं। तदनन्तर अपने संदेह के कारण वे बहुतसी बातों को कूटार्थपूर्ण कथाएं समझने लगे थे, और ऐसा समझने को अपनी बुद्धि की बढ़ती हुई दशा बतलाने का उद्योग करते थे। परन्तु उनके उद्योग विफलही थे। क्योंकि कुछ पहिले से नियत दशाएं ऐसी हैं जिनमें होकर साधारण जन सम्मति को ऐसे मौकों पर अवश्यही गमन करना पड़ता है। साधारण जन सम्मति ने पहिले जिस वस्तु को बड़े आदर से स्वीकार किया था कुछ दिनों के अनन्तर उस पर संदेह होने लगता है। तदनन्तर उसके नवीन नवीन अर्थ लगाए जाते हैं। तद-नन्तर उस के विषय में मतभेद होता है, और अन्त में वह सर्वथा अमूलक कथा कहकर त्याज्य हो जाती है।

इस स्वधर्म त्याग में तत्त्वज्ञानियों और इतिहासवेत्ताओं का अनुकरण कवियों ने भी किया। 'यूरीपाईडीज़' ने नास्तिक होने की बदनामी उठाई। ईसचिलस ईश्वर निन्दा के दोष में पत्थरों से कुचनकर मार डाले जाने से बहुत ही बच गया। परन्तु उन लोगों के मदोन्मत्त उद्योग जो असत्य बात के समर्थन में ही चाव रखते हैं, अन्त में सदैव ही विफल होते हैं। साहित्य की सब ही शाखाओं में बेरोकटोक आचार भ्रष्टता बढ़ गई, यहां तक कि अन्त में वह जन साधारण तक पहुंच गई।

इस जातीय धर्मनाश में, यूनानी तत्त्वावधान को, यूनानी तत्त्वज्ञों की गुणदोषविवेचना ने बहुत सहायता दी थी। इस गुण दोष विवे-चना ने बहुत से प्रमाण देकर फैलते हुए अविश्वास का समर्थन किया। उसने अनेक पंथानुगामियों के सिद्धान्तों का परस्पर मिलान किया, और उन के विरोध से स्पष्ट दिखला दिया कि मनुष्य के पास सत्यता का कोई ठीक लक्षण नहीं है, और चूंकि मनुष्य के भलाई बुराई के विचार, रहने वाले देश के अनुसार अनेक भांति के होते हैं, इस लिये उन विचारों का मूल प्रकृति पर नहीं होता, किन्तु वे सर्वथा शिक्षा के फल होते हैं। और सत्य और असत्य केवल कल्पनाएं हैं जिन्हें समाज

ने अपने मतलब के लिये बना लिया है। एथेंस में कतिपय उन्नत श्रेणी के लोग ऐसी अवस्था तक पहुंच चुके थे कि वे अदृश्य और दैवी शक्तियों के अस्तित्व को केवल अमान्य ही नहीं करते थे, बरन् वे यह भी कहते थे कि संसार एक स्वप्न और कल्पना मात्र है और वास्तव में कोई वस्तु है नहीं।

यूनान के स्थानिक नक़शे ने उस की राजनैतिक दशा में विशेषता दे रक्खी थी। वहां के निवासी भिन्न भिन्न जातियों में विभाजित थे, और परस्पर विरोधी स्वार्थ रखते थे। इसी करण वे सब एक नहीं हो सकते थे। विरोधी राज्यों के सदैवकालीन घरेलू लड़ाइयों के कारण उस की उन्नति में बाधा पड़ती थी। वह देश गरीब था और उस के मुखिया लोग रिशवतखोर हो गए थे। परदेशियों के रुपए के बदले वे स्वदेश भक्ति त्यागने को सदा प्रस्तुत रहा करते थे। और फारिस वालों की रिशवतों पर अपने को बेंच डालने को सदैव तैयार थे। वे लोग सुन्दर रूप के इतने बड़े उपासक थे, (जैसा कि मूर्तियों और इमारतों से प्रगट है), जितने कहीं के लोग किसी समय में नहीं हुए; इसी कारण यूनान निवासी जन भलाई और सत्य की क़द्रदानी करना भूल गए थे। जिस समय यूरुपीय यूनान ने, स्वच्छन्दता और स्वतन्त्रता के विचारों से पूर्ण होकर फारिस की अधीनता मानने से इंकार कर दिया था, एशियाई यूनान उसे खुशी से मानता था। उस समय फारिस राज्य का भौगोलिक प्रस्तार हाल के आधे यूरुप के बराबर था। वह राज्य भूमध्यसागर, ईजियनसागर, कृष्णसागर, कैस्पियनसागर, इन्डियनसागर, फारिससागर, और लालसागर के किनारों तक था। उसके राज्य में दुनियां के छः बड़े नद बहते थे अर्थात, फ्रात नदी, टिगरिस नदी, सिंध नदी, जगज़ारटीज़, आक्सस और नील नदी, जिन में से प्रत्येक नदी लम्बाई में एक हज़ार मील से अधिक है। उस के राज्य की भूमि की सतह, समुद्र की सतह से, तेरह सौ फीट नीची से लेकर बीस हज़ार फीट तक ऊंची थी। इस कारण उस राज्य में कृषी की प्रत्येक वस्तु पैदा होती थी। उस का खानिक धन भी अतुल था। वहां के राजा को मीडियनराज्य, असीरियनराज्य और

कैलडियनराज्य के विशेष अधिकार विरासत में मिले थे, जिन के इतिहास दो हज़ार वर्ष पीछे तक का ठीक पता देते थे।

फारिस राज्य यूरुपीय यूनान को सदैव तुच्छ देश समझता था। क्योंकि उस का भूमि विस्तार कठिता से उस के एक प्रान्त के आधे के बराबर था। परन्तु ज़बरदस्ती अपनी आज्ञापालन कराने के हेतु की गई चढ़ाइयों ने, फारिस राज्य के यूनान निवासियों के युद्धसंबंधी गुण स्पष्ट दिखा दिए थे। फारिस ने अपनी सेना में तनखाहदार यूनानी सैनिकों को सम्मिलित कर लिया था। वे सर्वोत्तम सिपाही समझे जाते थे। कभी कभी यूनानी जनरलों को सेना का कमान (अध्यक्षता) देने में भी आगा पीछा नहीं किया जाता था। यूनानी कप्तानों को नाविक बेड़ों की अध्यक्षता देने में भी सोच विचार न था। उस राजनैतिक विक्षोभ में भी जो फारिस में हुआ था, यूनानी सिपाही झगड़ने वाले सरदारों की ओर से काम में लाए गए थे। इन युद्ध संबंधी कामों का एक बहुत बड़ा फल हुआ। इन युद्धप्रिय यूनानी सिपाहियों को इन कामों से राज्य की निर्बलता ज्ञात हो गई और उस के केन्द्रस्थल तक पहुंचना उन्हें संभव जान पड़ा। **'कुनक्सा'** के रणक्षेत्र में **'साइरस'** के मारेजाने के अनन्तर **'ज़ेनोफ़न'** की अधीनता में दश हज़ार सैनिकों के सदास्मरणीय पराजय से, यह बात प्रमाणित हो गई कि यूनानी सेना फारिस के मध्यस्थल तक प्रवेश कर सकती है, और वहां से निकल भी आ सकती है।

एशियाई सेनानायकों की युद्धकुशलता का वह रोब जो "हेलेस्पांट" का पुल बांध लेने और "माउंट अथास" के स्थलडमरूमध्य के काटने से, यूनानीयों के चित्त में भली भांति अंकित होगया था, तैलानिस प्लैटी और माइकेल की लड़ाइयों से निकल चुका था। इस हेतु यूनानी लोग फारिस के धनपूर्ण प्रन्तों को लूट लेने के लिये अति उत्सुक हो उठे थे। स्पार्टा नरेश "अजीसिलास" की चढ़ाई इसी प्रकार की थी। परन्तु उसकी अच्छी सफलताओं को फारिस सरकार ने बहुत प्राचीन रिशवत-कूटनीति से रोक दिया, अर्थात उसने स्पार्टा के पड़ोसी राज्यों को रिशवत दी कि वे स्पर्टा पर आक्रमण करदें।

'अजीसिलाम" जब अपनी राज्य रक्षा के लिये लौटने लगा था तब उसने बड़े दुःख से यह बात कही थी कि "मैं तीस हज़ार फारसी धनुषधारियों से पराजित हो गया" जिसका संकेत 'डैरिक, नामक फारसी रुपयों से था जिन पर धनुषधारी पुरुष की मूर्ति छपी रहती थी।

अन्ततः मैसीडोन नरेश फिलिप ने भयंकर प्रबंध और भारी तात्पर्य के साथ इन उद्योगों को फिर से नवीन करने की इच्छा की।

उसने ऐसा प्रबन्ध किया जिस से वह यूनान का कप्तान जनरल मुकर्रर किया गया, जिसका मतलब केवल इतनाही नहीं था कि वह एशिया के प्रन्तों पर लूट मार करे, वरन यह भी था कि स्वयं फारिस में प्रवेश करके वहां के राज्यवंश को विध्वंस करदे। परन्तु उसका प्रबंध पूरा न हो पाया था कि वह मार डाला गया और उसका अल्प वयस्क पुत्र सिकन्दर उसका उत्तराधिकारी हुआ। कारिंथ स्थान पर यूनानियों की एक बड़ी सभा ने एक बचन होकर उसे उसके पिता के स्थान पर स्थापित किया। उस समय इलीरिया प्रान्त में गड़बड़ी थी, उसको शान्त करने के लिये उत्तर की ओर डेन्यूब नदी तक सिकन्दर को जाना था। उसकी अनुपस्थिति में थीब्स निवासियों ने कुछ और लोगों से मिलकर उस के विरुद्ध षडयंत्र रचा। लौटते समय उस ने आक्रमण करके थीब्स को ले लिया। उस ने वहां के निवासियों में से ६ हजार को मरवा डाला, तीस हज़ार को गुलामों की भांति बेंच डाला और पूर्ण रीति से नगर को नष्ट भ्रष्ट करडाला। एशियाई चढाइयों में इस निर्दयता की सैनिक युक्ति का फल प्रत्यक्ष दिखाई दिया अर्थात् पीछे वाली सेना की बगावत से उसे कष्ट नहीं उठाना पड़ा।

सन् ईस्वी के ३३४ वर्ष पूर्व, वसंतऋतु में, सिकन्दर ने हेलेस्पांट को पार कर के एशिया में प्रवेश किया। उस की सेना में ३४ हज़ार पैदल और ४ हजार स्वार थे। उस के पास केवल ७० रुपए थे। उस ने सीधे फारिस की सेना पर धावा किया जो उस की सेना से बहुत अधिक थीं और ग्रैनिकस की सीमा पर दखल किए हुए पड़ी थी। उस ने ज़बरदस्ती नदी पार की, शत्रु को पराजित किया और इस विजय का फल यह हुआ कि एशिया–माइनर पर उस का अधिकार

हो गया और वहां का खजाना भी हाथ लगा। उस वर्ष का शेष भाग उस ने उन प्रान्तों के सैनिक प्रबंध में बिताया। इसी बीच में फारिस नरेश दारा ने ६ लाख फौज आगे भेज दी, जिस से सिकन्दर की सेना सीरिया प्रदेश में न घुसने पावे। 'आइसस' स्थान पर, तंग पहाड़ी घाटियों में जो लड़ाई हुई उस में फारिस वाले फिर हारे। इस युद्ध में इतने मनुष्य मारे गए थे कि सिकन्दर और उसके एक जनरल "टालेमी" ने एक नाला पार करते समय देखा कि वह नाला मृतकों से ठसाठस भरा हुआ था। ऐसा अंदाज किया गया था कि फारिस वालों की हानि ९० हज़ार पैदल और १० हज़ार सवारों से कम नहीं हुई थी। शाही खेमा विजेता के हाथ पड़ा। और उसी के साथ दारा की बीबी और कई एक संतानें भी। इस भांति सीरिया प्रान्त यूनान के जीते हुए प्रान्तों में मिला लिया गया। दमस्क नगर में दारा की बहुत सी रक्षिता स्त्रियां, उस के उच्च पदाधिकारी अफसर और बहुत सा खजाना मिला।

अंतिम लड़ाई करने के लिये मेसोपोटेमिया के मैदानों में प्रवेश करने से पहिले, सेना के पिछले भाग को सुरक्षित रखने और समुद्र से अपना संबंध बनाए रखने के हेतु सिकन्दर भूमध्यसागर के तट की ओर चला और रास्ते में पड़ते हुए नगरों को विजय करता गया। आइसस के युद्ध के बाद युद्ध सभा के सामने अपने एक भाषण में उस ने अपने जनरलों से कहा कि उन्हें 'टायर' को बिना जीते और मिश्र तथा साइप्रस पर फारिस राज्य का अधिकार रहते हुए दारा का पीछा नहीं करना चाहिए, क्योंकि यदि फारिस राज्य अपने बंदरगाह फिर से पालेगा, तो यहां से बदल कर युद्धस्थ यूनान में स्थापित होगा; और यह भी कहा कि मेरे लिये बहुत ही आवश्यक है कि मैं समुद्र पर अपना अधिकार रक्खूं। साइप्रस और मिश्र यदि मेरे हाथ आ जांय तो मुझे यूनान की कुछ चिंता न करना पड़ेगी। टायर के घेरे में उसे आधे बर्ष से अधिक समय लग गया। इस विलम्ब के बदले में, कहा जाता है कि उसने दो हज़ार कैदियों को फांसी दे दी। जेरूसलेम अपनी खुशी से उस के शरण आ गया, इस हेतु उस के साथ नर्म

बरताव किया गया। परन्तु गाज़ा में, मिश्रदेश प्रवेश करती हुई सिकन्दर की सेना रोकी गई थी, जहां के बेटिस नामक फारसी गवर्नर ने कठिन मुकाबिला किया था, इस हेतु वह स्थान, दो मास के घेरे के अनन्तर, हल्ला करके ले लिया गया और वहां के दश हज़ार मनुष्य मरवा डाले गए और शेष बीबी बच्चों सहित गुलामी में बेंच दिए गए। स्वयं बेटिस विजेता के रथ के पहियों में बांधकर तमाम शहर में खींचा गया। अब कोई रोक न रही। मिश्रदेश निवासियों ने, जो फारिसी राज्य से घृणा करते थे, अपने ऊपर आक्रमण कारियों का खुले दिल से स्वागत किया। उस ने अपने स्वार्थ के अनुकूल देश का प्रबंध किया; सैनिक प्रबन्ध मैसिडोनिया के अफसरों के हाथ में दिया, और देश की भीतरी शासनप्रथा मिश्रदेश निवासियों के ही हाथ में रक्खी॥

जब अंतिम चढ़ाई की तैयारियां हो रही थीं, उस समय सिकन्दर 'जूपिटर एमन' के दर्शनों को उस के मन्दिर तक गया था जो 'लीबिया' के बलुए मैदान के एक सुरम्य स्थान में था और वहां से २०० मील दूर था। उस मन्दिर की आकाशवाणी ने उसे उस देवता का पुत्र बतलाया जिस ने सर्प के भेष में उस की माता ओलम्पियस को धोखा दिया था। निर्दोष गर्भाधारण प्रथा और दैवी अवतारों की प्रथा उन दिनों ऐसी प्रचलित थी कि जो कोई मानुषी विषयों के बड़े बड़े काम करता था वह अवतारी समझा जाता था। यहां तक कि रोम में, कई शताब्दी पीछे भी, कोई यह नहीं कह सकता था कि उस नगर के स्थापक, 'रोम्यूलस' की पैदायश मंगलदेव और 'रीसिल्विया' नामक कन्या के अचानक संयोग से, (जब वह घड़ा लिये झरने से पानी भरने जाती थी) नहीं हुई। प्लेटो के मिश्र देश निवासी चेले उन मनुष्यों पर रुष्ट होते थे जो इस कथा को नहीं मानते थे कि उस बड़े तत्ववेत्ता की माता ने कन्यावस्था ही में "अपालो" देव से निर्दोष गर्भधारण किया था और उस देवता ने उस के भावी पति "अरिस्टन" से यह बात कह दी थी। जब सिकन्दर अपने पत्रों, आज्ञाओं और न्यायाज्ञाओं पर अपने को 'सिकन्दर वल्द जूपिटर एमन' लिख कर उन्हें प्रकाशित करता तब मिश्र और सीरिया देश निवा-

सियों पर उन का इतना प्रभाव पड़ता जितना अब आज कल लोगों की समझ ही में नहीं आ सकता ॥ परन्तु स्वतंत्र विचार वाले यूनानियों ने ऐसे देवजातक की ठीक २ क़द्र की । ओलिम्पियस (सिकन्दर की माता) जो इस हाल को अन्य सब ही जनों से अधिक जानती थी, हँसी में बहुधा कहा करती थी कि "मैं चाहती हूं कि सिकन्दर मुझे जूपिटर की जोरू न बनाया करै तो अच्छा है'। मैसिडोनिया की चढ़ाई का इतिहासकार, 'एरियन' कहता है कि मैं उसे इसलिये कुछ दोष नहीं दे सकता कि उसने अपनी प्रजा को यह विश्वास दिलाया था कि वह देववंशी है ; और न मैं इस को कोई बड़ा दोष ही मान सकता हूं, क्योंकि यह बात भली भांति समझ में आ सकती है कि ऐसा करने से उस का कुछ अन्य तात्पर्य्य न था वरन् केवल इतना ही कि सैनिकों पर खूब अधिकार जमा रहै" ॥

सेना के पिछले भाग में इस प्रकार सब पक्का प्रबंध करके, सीरिया प्रदेश में लौटकर, सिकन्दर ने पचास हज़ार अनुभवप्राप्त योद्धाओं से बनी हुई अपनी सेना को पूर्व की ओर बढ़ने की आज्ञा दी। फ्रात नदी पार करके वह मैसियन पहाड़ियों के निकट ही निकट रवाना हुआ जिस से दक्षिणी मेसोपोटेमिया के मैदानों की कठिन गर्मी से बचाव हो जाय । और रिसाले के लिये यहां चारा भी अधिकता से मिल सकता था । टिगरिस नदी के बायें तट पर, सरबेला के निकट, उस से ११ लाख सैनिकों वाली बड़ी सेना से जिसे 'दारा' बैबीलान से लाया था, लड़ाई हुई । फारिस नरेश दारा के पराजित होने और तदनन्तर शीघ्र ही उस की मृत्यु होने से, मैसीडोनिया का जनरल डैन्यूब से लेकर गंगा तक फैले हुए देशों का मालिक हो गया । अन्ततः उस ने गंगा तक अपनी विजय पताका फहराई । इस विजय में उसे इतना धन मिला कि सुनकर विश्वास करने को जी नहीं चाहता । एरियन कहता है कि केवल 'सुसा' स्थान में ही उसे पचास हज़ार 'टैलेण्ट*' नगद मिले ॥

---

* टैलेण्ट = फारिस देश का एक सिक्का ।

हाल समय के युद्धविशारद जन इन आश्चर्य्यप्रद चढ़ाइयों को अप्रशंसक दृष्टि से नहीं देख सकते ॥ हेलेस्पांट को पार करना, ग्रेनीकस को जबरदस्ती ले लेना, विजित एशियामाइनर का राजनैतिक प्रबंध करते हुए हिम ऋतु बिताना, दक्षिण और केन्द्रस्थ भाग की सेना का भूमध्य-सागर के किनारे २ सफ़र करना, टायर के घेरे में बहुत सी शिल्पसंबंधी कठिनाइयों का निवारण करना, गाज़ा नगर को तोपों से उड़ा देना, फारिस का यूनान से प्रथक हो जाना, भूमध्य-सागर से फारिसकी जलसेना का बिल्कुल निकाल दिया जाना, फारिस के उन उद्योगों का रोक दिया जाना जिन से वह एथेंस निवासियों और स्पार्टा निवासियों से मिलकर षड्यंत्र रचता था, वा रिशवत देता था, और जिस में वह इस समयतक बहुधा सफल होता रहा था, मिश्र देश का अधीन हो जाना, उस आदरणीय देश के राजनैतिक प्रबंध में एक हिमऋतु और बिताना, अगले बसंत ऋतु में कृष्ण-सागर और लाल-सागर की सब सेनाओं का मेसेपोटेमिया के क्षारपूर्ण मैदानों की ओर एकाभिमुख होना, थैप्सेकस के टूटे हुए पुल पर से लम्बे बेंतों से पूर्ण-तट फ्रात नदी का पार किया जाना, टिगरिस नदी को पार करना, अरबेला के बड़े और स्मरणीय युद्ध के पहिले रात के समय युद्धक्षेत्र की देख भाल करना, रणक्षेत्र में तिरछी चाल चलना, इस भांति शत्रु सेना के मध्य भाग को छेदन कर देना, (यह एक ऐसा युद्ध कौशल था कि मानो कई शताब्दी बाद आस्टरलिट्ज़ के युद्ध में दुहराए जाने के लिए ही किया गया था) चतुरता से फारिस नरेश (दारा) का पीछा करना, ये सब ऐसे बड़े काम हैं कि हाल समय के किसी सैनिक ने इन से बढ़कर कोई काम नहीं किया ॥

इस भांति यूनान की मानसिक चुस्ती को बहुत बड़ा उत्साह मिला। यूनान में ऐसे आदमी थे जिन्हों ने मैसिडोनिया की सेना के साथ २ डैन्यूब नदी से गंगा तक का सफर किया था। उन्हों ने कृष्ण-सागर के उस पार वाले देशों की उत्तरीय वायु के झोंके खाए थे; मिश्र देश की 'सिमूम' नामक वायू के झोंके और बालुकामय तूफानों के थपेड़े सहन किये थे; उन्होंने मिश्र देश के वे मीनार देखे थे जो

२००० वर्ष से खड़े हैं; लक्सर के गूढ़ाक्षर-वलित स्तंभ देखे थे; चुपचाप और भेद पूर्ण स्त्रीमुख-सिंहशरीर दानवों की कुंजें देखी थीं, और उन महाराजों की विशालाकार मूर्तियां देखी थीं जिन्हों ने संसार के आदि भाग में राज्य किया था। इसारहैडन के बड़े दालानों में वे लोग पक्षयुत बैलों से सुरक्षित भयंकर और प्राचीन असीरिया नरेशों के सिंहासनों के सामने खड़े रह चुके थे। बैबीलान में अबतक उसका नगर-रक्षक कोट शेष था जो किसी समय घेरे में साठ मील से भी अधिक था, श्रोर तीन शताब्दियों तक विजेताश्रों के उपद्रव सहकर भी अभीतक ८० फ़ीट से अधिक ऊंचा था। गगनस्पर्शी 'बेल' के मन्दिर के भग्नभाग अब भी मैाजूद थे, जिसकी चोटी पर वह वेधशाला थी जहां से इन्द्रजाली कैलडियन ज्यौतिषी रात को नक्षत्रों से बात चीत करते थे। अब तक दो महलों के चिन्ह वहां मैाजूद थे, जिनमें लटकते हुए बाग थे, जिन बागों के वृक्ष आकाश में अधर लटके हुए बढ़ते थे, और उस जलदायक कल का टूटा फूटा भाग भी था जो नदी से उन वृक्षों तक पानी पहुंचाती थी। एक जलप्रवाही जलकल-युक्त श्रोर जलफाटक सहित बनावटी झील में आरमिनिया के पहाड़ों का बर्फ पिघल २ कर आता था श्रोर फ्रात नदी के बंधान से रुक कर सारे शहर में बहता फिरता था। इन सब वस्तुश्रों से अधिक आश्चर्य्य प्रद बस्तु शायद नदीतल के नीचे चलने वाला नल था।

मैंने इन आश्चर्य्य प्रद चढ़ाइयों की कथा वर्णन करने में कुछ पत्रे लगा दिये, इसका कारण यह है कि उनमें जो युद्धचतुरता कीगई थी वही अलेग्जैंड्रिया नगर में गणित श्रोर व्यावहारिक विद्या की पाठशालाश्रों की स्थापना की मूल कारण हुई थी, श्रोर येही शालायें विज्ञान की सच्ची जड़ हैं। इन सिकन्दर की चढ़ाइयों ही से हम अपने सर्व ज्ञान का संबंध मिलाते हैं। 'हम्बोल्ट' ने बहुत अच्छा कहा है कि प्रकृति की नवीन श्रोर बड़ी वस्तुओं से परिचय होने से मनुष्य की मस्तिष्क शक्ति बढ़ती है। सिकन्दर के सिपाही श्रोर उनके साथ वाले अन्य जन कूच दर कूच नवीन श्रोर सुन्दर दृश्य देखते थे। सब मनुष्यों में से यूनान निवासी बहुत सूक्ष्मदर्शी थे श्रोर उन

वस्तुओं का प्रभाव उनके चित्त पर बहुत शीघ्र और बहुत गहरा होता था। कहीं सीमा रहित बलुये मैदान थे, कहीं गगनभेदी पहाड़ थे। कहीं जंगलों में दलदल थे, कहीं पहाड़ों के इधर उधर जंगलों पर मँडराते हुये बादलों की क्षणभंगुर छाया थी। वे लोग ऐसे देशों में भी होआए थे जहां पीले छुहारे के और सरो के वृक्ष थे, झाऊ, हरित मेहदी और चिकनाई प्रद वृक्ष थे। आरबेला में वे भारतवर्षीय हाथियों की सेना से लड़े थे। कैस्पियन-सागर के निकटस्थ घने जंगलों में उन्हों ने अपनी मांद में छुपे हुये बड़े२ शेरों को जगा दिया था। उन्हों ने ऐसे२ जन्तु देखे थे जो यूरुपीय जन्तुओं की अपेक्षा केवल अद्भुत ही नहीं थे, वरन् अधिक विशालाकार भी थे; अर्थात् गैंडे, दरियाई घोड़े, ऊंट और नील नदी और गंगा के मगर भी देखे थे। जिन्हों ने अनेक रंग और अनेक पोशाक के लोगों से लड़ाई की थी, अर्थात् कृष्णवर्ण सीरिया निवासियों से, गोरे फारसियों से और अफरीका के काले कलूटे हबशियों से। यहां तक कि स्वयं सिकन्दर के विषय में यह बात कही जाती है कि मरते समय उसने अपने जनरल 'नियरचस, को अपने पलंग के पास बैठाया और उस जहाज़ी के कठिन कामों का वर्णन सुन २ कर, (अर्थात सिंधु नदी से फारिस की खाड़ी तक के सफर की कथा) उसे शांन्ति मिली थी। इस विजेता ने ज्वारभाटे का चढ़ाव उतार बड़े आश्चर्य से देखा था। उसने कैस्पियन-सागर की ढूंढ़ खोज करने के लिये जहाज़ बनवाये थे। उसका ऐसा अनुमान था कि कैस्पियन-सागर और कृष्ण-सागर शायद किसी बड़े समुद्र की खाड़ियां हों, जैसे 'नियरचस, ने फारिस की खाड़ी और लाल-सागर को पाया था। उसने पक्का इरादा करलिया था कि मेरे जहाजी बेड़े को अफरीका की परिक्रमा करने का उद्योग करना चाहिये और "पिलर्स आफ हरक्यूलीज़" होकर भूमध्य-सागर में आना चाहिये। यह एक ऐसा काम था, जिसके विषय में लोग कहते हैं, कि किसी समय एक बार यह काम 'फिरऊन' ने किया था॥

यूनान के केवल बड़े सैनिकों ने ही नहीं वरन् बड़े २ तत्ववेत्ताओं

ने भी इस विजय किये हुए राज्य में बहुत सी ऐसी चीजें पाईं जो उनके लिये बड़ी आश्चर्य्य प्रद वस्तुएं थीं। 'कैलिस्थेनीज़, ने बैबीलान नगर में बहुत से ऐसे कैलडियन ज्यौतिष संबंधी लेख पाये जिनमें १९०३ वर्ष पहले तक का हाल दिया था। ये लेख उसने अरस्तू के पास भेज दिये। चूंकि वे लेख पक्की ईंटों पर थे इसलिये संभव है कि यदि असीरिया नरेशों की मृन्मूर्ति पुस्तक शाला में हाल के खोज करने वाले खोज करैं तो उनकी द्वितीय प्रति भी मिलजावै। मिश्रदेश के ज्यौतिषी 'टालेमी' के पास एक बैबीलान देश की ग्रहण संबंधी पुस्तक थी जिस में सन ईसवी से ७४७ वर्ष पहले तक का हाल दिया हुआ था। ज्यौतिष संबंधी जो जो प्राचीन बातें इस समय तक पाई जाती हैं उनको निश्चय करने के लिये निःसन्देह बहुत काल तक बड़े ध्यान पूर्वक देख भाल करने की आवश्यकता पड़ी होगी। बैबीलान निवासियों ने भूमध्य भागों के लिये वर्ष की लंबाई ऐसी निश्चित की थी जिसमें केवल २५ सेकिंडों से कम की ग़लती है। उनके नाक्षत्रिक वर्ष के अन्दाज़ में मुशकिल से दो मिनट की अधिकता थी। उन्हों ने क्रान्तपातगति को भी जान लियाथा। वे ग्रहण होने के कारणों को भी जानते थे। और अपने कालचक्र की सहायता से जिसे वे 'सैरस' कहते थे वे ग्रहणकाल पहले से बतला सकते थे। उनके कालचक्र के मान के अटकल में, जो ६५८५ दिन से अधिक है, केवल साढ़े उन्नीस (१९½) मिनटों से कमही की ग़लती है॥

ऐसी २ बातें उस धैर्य और चतुराई का अविरोधनीय प्रमाण हैं जिनसे मेसोपोटेमिया में ज्यौतिष विद्या का प्रचार हुआ और इसका भी अच्छा प्रमाण हैं कि उचित यांत्रिक सहायता के बिनाही वह विद्या बहुत कुछ पूर्णता को पहुंच गई थी। इन प्राचीन दर्शकों ने सितारों की एक सूची बनाई थी और राशिचक्र को बारह राशियों में बिभाजित कियाथा। उन्होंने दिन तथा रात को बारह घंटों में विभाजित कियाथा। अरस्तू के कथनानुसार उन्होंने चन्द्रमा द्वारा नक्षत्र-ग्रास की बहुत काल तक जांच पड़ताल की थी। उनको सूर्य सम्प्रदाय की बनावट का शुद्ध ज्ञान था, और वे ग्रहों की स्थिति के

ठीक ठीक स्थान जानते थे। उन्होंने धूपघड़ी, जलघड़ी, नक्षत्रयंत्र और धूपघड़ी का कांटा इत्यादि वस्तुएं बनाई थीं। उनके छपाई के ढंग के नमूनों को देखकर हमें अबतक भी आनन्द प्राप्त होता है। एक घूमने वाले बेलन पर कोणदार अक्षरों में वे अपने लेखपत्र खोद लेतेथे। और इसको मुलायम मिट्टी के ढोकों पर फेर कर अमिट शोधनखर्रे बना लेतेथे। उनके खपरैले पुस्तकालयों से हम अब भी साहित्य संबंधी और ऐतिहासिक लाभ उठाते हैं। वे दृष्टि विद्या से भी अपरिचित न थे। नमरूद स्थान में पाए हुए मध्योन्नत कांच से प्रगट होता है कि वे सूक्ष्मदर्शक यंत्रों से भी अपरिचित न थे। अंकगणित में उन्होंने अंकों का स्थानिक मूल्य जान लिया था यद्यपि वे शून्य संबंधी भारी हिन्दुस्तानी आविष्कार को नहीं जानते थे॥

विजयी यूनानियों के लिये, जिन्होंने अबतक अनुभव और जांच नहीं की थी, यह कैसा (बड़ा) दृश्य था। वे ध्यान मग्न रहने और व्यर्थ सोचा विचारी से ही संतुष्ट होरहे थे।

परन्तु यूनानियों की बुद्धिवृद्धि को, जो इस भांति प्रकृति के वृद्धिंगत दृश्यों से कुछ २ बढ़ गई थी, उस ज्ञान से बहुत अधिक सहायता मिली, जो उस समय उन्हों ने विजित देश के धर्मज्ञान से प्राप्त की थी। यूनानियों की मूर्ति पूजन प्रथा फारिस निवासियों के लिये सदैवही एक आश्चर्य प्रद वस्तु रही थी। वे लोग अपने आक्रमणों में मन्दिरों को विनष्ट करने तथा जड़वत् देवताओं के देवालयों का निरादर करने में कभी नहीं चूकते थे। जिस पापमय बासना से यह धृष्टता की जाती थी उसका बहुत प्रभाव पड़ाथा और उसने नारकीय धर्म की जड़ खोदने में बहुत कुछ कार्य किया था। परन्तु अब नीचअश्लील-चरित्र आलिम्पियन देवताओं के पूजकों की एक बड़ी पवित्र और नियमबद्ध धर्मप्रथा से भेंट हुई जिसकी बुनियाद तत्त्वज्ञान के मूलाधार पर थी। फारिस देश में अनेक प्राचीन राज्यों की भांति, बहुत से धर्मपरिवर्तन हो चुके थे। पहले वहां ज़रदुस्त का चलाया हुआ अद्वैतवाद रहा। तदनन्तर द्वैतवादी हुये और उसके अनन्तर मैजियन धर्म चला। सिकन्दर के आक्रमण के समय फारिस देश यह मानता था कि सर्वव्यापी एक ज्ञानमय ईश्वर है,

वही सृष्टिकरता है, वही पालन पोषण करता है, वही सबको नियमानुसार चलाता है, वही सत्य का सार है, वही सर्व कल्याणप्रद है। कोई मूर्ति वा आकार उसका प्रतिनिधि नहीं हो सकता। और इस हेतु से कि इस लोक की प्रत्येक वस्तु में हम दो प्रकार की विरोधी शक्तियां देखते हैं, तो उस ईश्वर की आज्ञानुसार कार्य करने वाले दो समयोग्य और समअनादि मूलसिद्धान्त भी अवश्य हैं जिनको **प्रकाश** और **अन्धकार** मानते हैं। इन मूलसिद्धान्तों का झगड़ा सदैव काल से चला आता है। यह लोक उनका रणक्षेत्र है और मनुष्य उनका शिकार है॥

द्वैतवाद की प्राचीन गाथाओं में कहा गया है कि दुष्टात्मा ने सर्प को भेजा कि वह जाकर उस स्वर्ग को विनष्ट करदे जिसे पुण्यात्मा ने बनाया था। इन गाथाओं को यहूदियों ने उस समय जाना जब वे बाबिल देश निवासियों के यहां क़ैद थे॥

जैसे प्रकाश की मौजूदगी के लिये अंधकार की आवश्यकता है, वैसेही भलाई के अस्तित्त्व के हेतु कारणरूप बुराई का होना आवश्यक ही है। जगत में बुराई के होने का कारण इसी भांति भला बतलाया जा सकता है, क्योंकि उसका बनानेवाला और प्रबंध करने वाला बहुतही भला है। प्रकाश और अंधेरे के सगुणरूपधारी देवता "उर्मुज्" और 'अहरमन' अपने अधीनस्थ फिरिश्ते, सलाहकार और सेनायें रखते हैं। भले मनुष्यों का धर्म यही है कि वे सत्य, शौच और परिश्रम को बढ़ावें। इस जीवन के अनन्तर उन्हें एक दूसरे लोक की आशा रखनी चाहिये और विश्वास करना चाहिए कि इस शरीर का पुनरुत्थान होगा। आत्मा अमर है, और भविष्य में सज्ञान जीवन मिलैगा॥

राज्य के अन्तिम भाग में धीरे २ मैजियन धर्म के सिद्धान्तों ने ज़रदुस्ती धर्म के सिद्धान्तों को दबा दिया था। मैजियन धर्म वास्तव में तत्त्वों का पूजनही था। इसमें से 'अग्नि' ईश्वर का सर्वोत्तम प्रतिनिधि समझी गई। मन्दिरों में नहीं वरन् नीले आकाश के नीचे, ऊंचे हवनकुंडों में सदैव जलती हुई आग रक्खी जाती थी और उदय होता

हुआ सूर्य मनुष्यों के पूजन के हेतु सर्वोत्तम व्यक्ति मानागया था। एशिया निवासी जातियों में सम्राट से बढ़कर किसी का मान नहीं है। और आकाश में सूर्य निकलते ही अन्य सब वस्तुएं विलीन होजाती हैं॥

बहुत से बड़े बड़े संकल्पों को अपूर्ण छोड़, तेंतीसवां वर्ष पूरा होने के पहलेही बैबीलान नगर में सिकन्दर असमय मर गया। लोग ऐसा भी सन्देह करते हैं कि उसे विष दियागया। उसकी प्रकृति ऐसी उद्दंड होगई थी, और उसका क्रोध ऐसा भयंकर हो उठा था कि उसके जनरल और उसके गाढ़े मित्र भी सदैव सभीत रहा करते थे। क्लाइटस नामक अपने एक मित्र को उसने क्रोध में आकर कटार भोंक दी "कैलिस-थिनीज़" को जो उसके और अरस्तू के बीच का मध्यस्थ था, फांसी दिला दी। अथवा एक सत्य घटना जानने वाले के कथनानुसार उसने उसे पहले शिकंजे में खींचा तदनन्तर सूली दिला दी। अपनी रक्षा के हेतुही ऐसा हुआ होगा कि षड्चक्रियों ने उसके बध का संकल्प कर लिया हो। परन्तु इस कार्य के संबध में अरस्तू का भी नाम लेना निःसन्देह बड़ी बदनामी की घटना है। वह ऐसा मनुष्य था कि सिकन्दर का किया हुआ बुरे से बुरा अपकार सह लेता पर ऐसे बड़े पाप कर्म में कदापि सम्मिलित न होता।

(सिकन्दर के मरने के अनन्तर) बहुत वर्षों तक बड़ी गड़बड़ी और खून खराबी रही। मकदूनिया के जनरलों के राज्य बांट लेने पर भी वह गड़बड़ न मिटी। इन परिवर्तनों में से एक घटना की ओर हमारा विशेष ध्यान आकर्षित होता है। वह यह है कि 'टालेमी' जो सुन्दरी "आरसिनो" नामक रक्षिता स्त्री के गर्भ से पैदा हुआ फिलिफ राजा का पुत्र था, और जो लड़कपन ही में सिकन्दर के साथ साथ जिलावतन किया गया था। जब उनपर उनके पिता ने क्रोध किया था, और जो बहुत सी लड़ाइयों और चढ़ाइयों में सिकन्दर का साथी रहा था, मिस्रदेश का गवर्नर होगया और अन्त में वहां का राजा बनगया।

रोड के घेरे में 'टालेमी' ने उस नगर के निवासियों की ऐसी उत्तम सेवा की थी कि उसकी कृतज्ञता में उन्होंने उसको दैवी आदर से

सम्मानित किया और उसे अपना रक्षक कहने लगे। उसी उपाधि (टालेमी रक्षक) से मकदूनिया वंशी अन्य मिस्रनरेशों से वह अब भी पहचाना जाता है।

उसने अपनी राजधानी, देश के पुराने राज्यनगरों में से किसी में न जमाकर केवल अलेग्ज़ैंड्रिया में स्थापित की, 'जूपिटर एमन' के मन्दिर पर चढ़ाई करने के समय सिकन्दर ने उस नगर की नींव इस विचार से डलवाई थी कि वह नगर एशिया और यूरप के मध्य का एक व्यापारी स्थान हो सकैगा। यह बात विशेष कहने के योग्य है कि केवल सिकन्दरही इस नगर में बसाने के लिये पैलस्टाइन से यहूदियों को नहीं लाया था; और केवल टालेमी रक्षक ही जरुसलिम के घेरे के बाद एक लाख अधिक यहूदी नहीं लाया था, वरन् उसके उत्तराधिकारी फिलैडेल्फस ने मिस्र निवासी मालिकों को बदले में उचित रुपया देकर एक लाख अठ्ठानवे हज़ार यहूदियों को गुलामी से छोड़ाकर वहां बसाया था। इन यहूदियों को वेही अधिकार प्राप्त थे जो मकदूनिया निवासियों को थे। इस आदरयुक्त वर्ताव के प्रभाव से उनके बहुतसे देश निवासी और बहुत भाषा बोलने से सीरिया प्रदेशवासी स्वयं मिस्र देश में आए। इन लोगों को 'यूनानी वाले यहूदियों" का उपनाम दिया गया। इसी भांति 'रक्षक' की दयालु गवर्नमेंट से लालच पाकर बहुत से यूनान निवासी भी उस देश में आ बसे, और 'परडीकास' और 'ऐंटीगोनस' के आक्रमणों ने दिखा दिया कि यूनानी सिपाही अन्य मकदूनी जनरल की सेवा छोड़कर उसकी सेना में नौकरी करने की इच्छा करते थे।

इस कारण सिकन्दरिया नगर में तीन प्रथक प्रथक जाति के लोग निवास करते थे। (१) स्वदेशी मिस्र निवासी, (२) यूनानी और (३) यहूदी। यह ऐसी बात है जिसका बहुत कुछ प्रभाव अब भी यूरुप के वर्तमान धार्मिक विश्वास में पाया जाता है॥

यूनानी कारीगरों और यूनानी इंजिनियरों ने सिकन्दरिया नगर को प्राचीन जगत में अधिक सुन्दर नगर बना दिया था। उन्हों ने उसको बड़े बड़े महलों, देवालयों, और नाट्यशालाओं से भर

दिया था। उसके केन्द्र में, जहां दो बड़ी बड़ी सड़कें एक दूसरे को समकोण पर काटती थीं, वाटिकाओं, फौवारों, और सूच्याकार-स्तंभों से घिराहुआ वह समाधिस्थान खड़ा हुआ था जिसमें मिश्रियों की भांति मसाले लगाकर सिकन्दर की लाश रक्खी गई थी। दो वर्षों का शोकसूचक सफर करके वह लाश बड़े धूम धाम के साथ बैबीलान नगर से लाई गई थी। पहले उसका शवाधार (Coffin) स्वच्छ सुवर्ण का था, पर जब इसके कारण समाधि का मान भंग होने लगा, तब बदल कर कोमल संगमरमर का बना दिया गया; परन्तु न तो ये सब वस्तुएं, और न 'फ़ैरास' नामक बडा दीपदर्शकस्तंभ ही जो सफेद संगमरमर का और इतना ऊंचा बना हुआ था कि उसकी चोटी पर जलती हुई रोशनी समुद्र में कोसों तक दिखाई पड़ती थी ('फ़ैरास, दुनिया के सप्ताश्चर्य्यों में गिना जाता था), हमारे ध्यान को आकर्षित करते हैं; वरन् मकदूनियावंशी मिश्रनरेशों का बनाया हुआ सच्चा और अति उत्तम स्मारकस्थल वहां का अजायबखाना है। उसका प्रभाव मिश्रदेशीय स्मारकस्तंभों (Pyramids) के मिट जाने के बाद तक भी स्थित रहैगा॥

सिकन्दरिया के अजायबखाने का आरंभ 'टालेमी रक्षक' ने किया और उसके पुत्र "टालेमी फिलैडेलफस" ने उसे पूरा किया। वह कुलीन वंशियों के ब्रूशियम नामक मुहल्ले में राजा के महल के निकटही स्थित था। वह संगमरमर का बना हुआ था और उसके इर्द गिर्द एक सायबान था जिसमें नगर निवासी टहलते और बातचीत कर सकते थे। उसके नकासदार पत्थरों से बने हुए कमरों में फिलैडेलफस का पुस्तकालय था और उत्तमोत्तम मूर्तियों और चित्रों से वे कमरे भरे हुए थे। इस पुस्तकालय में वास्तव में ४ लाख पुस्तकें थीं। समय के प्रवाहानुसार और स्रात इतनी पुस्तकों के लिये स्थानाभाव के कारण, निकट वाले 'रैकोटिस' नामक मुहल्ले के 'सिरैपिस' नामक देवता के मंदिर में एक और पुस्तकालय स्थापित किया गया। यह पुस्तकालय प्रथम पुस्तकालय की पुत्री कहलाता था; और इसमें ३ लाख पुस्तकें थीं। इस भांति इन राजकीय पुस्तक-समूहों में ७ लाख पुस्तकें थीं।

सिकन्दरिया केवल मिश्र देश की राजधानीही न था, वरन् दुनिया भर का विद्या बुद्धि संबंधी मुख्य नगर था। यह बात सत्य थी कि इस नगर में पूर्वीय बुद्धि और पश्चिमीय बुद्धि से भेंट हो गई थी, और यह "प्राचीन काल का पेरिस" लोक व्यवहारानुसारी भ्रष्टता और सर्वत्र व्यापी अविश्वास का केन्द्र होगया था। वहां की मन हरण समाज के लालचों में पड़कर यहूदियों तक ने अपनी स्वदेश भक्ति भुला दी थी। उन्होंने अपने पूर्व पुरुषों की भाषा छोड़ दी, और यूनानी भाषा अंगीकार करली थी॥

अजायबखाना स्थापित करने में 'टालेमी रक्षक' और उसके पुत्र 'फिलैडेलफस' ने तीन मतलब सोच रक्खे थे। (१) उस समय जितनी विद्या संसार में थी उसकी स्थिरता, (२) उसको बढ़ाना, और (३) उसका प्रचार॥

(१) विद्या की स्थिरता के विषय में--मुख्य पुस्तकालयाध्यक्ष को आज्ञा दी गई थी कि जो जो पुस्तकें उसे मिल सकें उन्हें वह सरकारी रुपये से खरीद ले। अजायब घर में लेखकों का एक समूह नौकर था, जिनका काम यह था कि वे ऐसे ग्रंथों की शुद्ध नकल करलें जिनके मालिक वे ग्रंथ नहीं बेंचना चाहते थे। कोई ग्रंथ जो कोई विदेशी, मिश्र में लाता था वह तुरंत अजायबघर में लाया जाता था और जब उसकी शुद्ध नक़ल होजाती तब वह नक़ल तो असल मालिक को देदीजाती और असल ग्रंथ पुस्तकालय में रख लिया जाता। बहुधा ग्रंथों के लिये भारी भारी मूल्य दिया जाता। 'टालेमी यूरजिटीस' के विषय में कहागया है कि एथेंस से 'यूरीपाईडीज़' 'सोफोक्लीज़ और "ईसचिलस" के ग्रंथ मँगवा कर, उनके मालिकों के पास नकलें भेजवा दीं और लगभग पंद्रह हज़ार डालर क्षतिपूर्ण की भांति भेजवाये। सीरिया की चढ़ाई से लौटते समय वह बड़ी धूमधाम से वे सब मिश्री स्मारक 'एकबटाना, और 'सूसा, से लेता आया जिन्हें कैमबिसीज़ और अन्य आक्रमण कारियों ने मिश्रदेश से हटवा दिया था। इनको उसने अपने अपने स्थानों पर स्थापित कराया या शोभा प्रद वस्तुओं की भांति अपने अजायबघर में रखवा लिया। जब

ग्रंथों का अनुवाद होता अथवा नक़ल होती तब इतना अधिक धन दिया जाता था जो विश्वास से बाहर है, जैसा कि 'टालेमीफिलैडेल-फस की आज्ञानुसार बाईबिल के सत्तर मनुष्य कृत अनुवाद में हुआ ॥

(२) विद्या के बढ़ाने के विषय में--अजायबघर के मुख्य तात्पर्यों में से एक यह भी था कि वह स्थान ऐसे लोगों का घर हो जावै जो विद्याध्ययन करना चाहते थे। और उनके रहने और जीवन निर्वाह का प्रबन्ध सरकारी रुपये से होता था। कभी कभी राजा स्वयं उनके साथ भोजन करता। ऐसे आनन्दप्रद सुअवसरों की कथायें अबतक प्रचलित हैं। अजायबघर के असली प्रबंध में वहां के निवासी जन चार विभागों में विभाजित थे; अर्थात साहित्य, गणित, ज्योतिष और वैद्यक। छोटी छोटी शाखाओं के ठीक ठीक विभाग इन्हीं चार बड़े विभागों के अन्तरगत होते थे। इस भांति प्राकृतिक इतिहास, वैद्यक की शाखा मानी जाता था। एक बहुत बड़ा विख्यात पुरुष इस कारखाने का मुखिया था और उसकी भलाई करना उसका साधारण धर्म था। 'डेमीट्रियस फैलेरियस' जो ख्यात उस समय का सर्वाधिक विद्वान पुरुष था और जो बहुत दिनों तक एथेंस का गव-र्नर रहा था इस पदवी पर नियत किया हुआ पहला पुरुष था। इसके अधीनस्थ पुस्तकालयाध्यक्ष का पद था। कभी इस पद पर वे मनुष्य थे जिनके नाम आजतक प्रसिद्ध चले आते हैं, अर्थात 'एरैटास-थेनीज़' और 'अपालोनियस रोडियस' ॥

इस अजायबघर से संबन्ध रखने वाले एक बनस्पतिशास्त्र सम्ब-न्धी और एक पशुशास्त्र सम्बन्धी उद्यान थे। ये उद्यान, जैसा कि उनके नाम से ही प्रगट है, बनस्पति और पशुओं संबंधी विद्या को सरल करने के तात्पर्य्य से थे। एक ज्योतिष संबंधी बेधशाला भी थी जिसमें कंकणाकार गोले, भूगोले, अयन संबंधी और भूमध्य-रेखा संबंधी चक्र, उन्नतांशमापकयंत्र, स्थानभेद विषयक नियत्र, और उस समय के प्रचलित यंत्र थे। विभागसूचक यंत्रों के विभागचिन्ह अंशो और षष्ठमांशों में थे। इस बेधशाला की भूमि पर एक मध्यान सूचक रेखा खिची थी। ठीक समय और ठीक सर्दी गर्मी मापने के यंत्रों की बड़ी

कमी थी। ठीक समय जानने के लिये 'टेसीवियस' की जलघड़ी ठीक काम नहीं देती थी, पानी के प्याले में उतराता हुआ जलमापकयंत्र सर्दी गर्मी मापने में ठीक काम नहीं देता था। वह सर्दी गर्मी के परिवर्तनों को (पानी के) हलकेपन वा भारीपन के अनुसार नापता था। फिलैडेलफस जो बुढ़ापे में मृत्यु से बहुत ही अधिक डरने लगा था, एक रासायनिक औषधि निकालने में अपना बहुत समय लगाता था। इस काम के लिये उस अजायबघर में एक रासायनिक प्रयोगशाला भी थी। सामयिक दुराग्रहों के होते हुए भी, और विशेष कर मिश्र निवासियों के दुराग्रहों के होते हुए, वैद्यक विभाग में चीरफाड़ करने के हेतु एक शरीरविच्छेद-भवन भी था। इसमें केवल मुर्दे ही नहीं चीरे फाड़े जाते थे वरन वास्तव में वे जीवित मनुष्य भी चीरे फाड़े जाते थे जिन्हें किसी अपराध में मृत्यु दंड हुआ हो॥

(३) विद्या के प्रचार के विषय में-इसी अजायबघर में व्याख्यानों, संभाषणों और अन्य उचित ढंगों से मनुष्योपयोगी विद्या के विविध विभाग सिखलाये जाते थे। इस बड़े मानसिक शक्ति संबंधी केन्द्र-स्थल में सब देशों से बहुत से विद्यार्थी आते थे। ऐसा कहा जाता है कि एक समय में १४००० से कम विद्यार्थी न थे। तदन्तर क्रिस्तान धर्म ने भी यहीं से कुछ बहुत प्रख्यात पादरी पाये, जैसे "क्लीमेंस अलेगजैंड्री" "ओरीजेन", और "अथनेसियस"॥

इस अजायबघर का पुस्तकालय उस समय जल गया जब ज्यूलियस सीज़र ने सिकन्दरिया नगर को घेर लिया था। इस बड़ी हानि की पूर्ति करने के लिये परगैमस नरेश यूमिनीज़ की जमा की हुई पुस्तकें मार्क ऐण्टोनी ने क्लियोपैट्रा रानी को प्रदान करदीं। असल में यह पुस्तकालय टालेमी नामक राजाओं के पुस्तकालय के मुकाबले के लिये बनाया गया था। यह पुस्तकालय सिरैपिस के मन्दिरवाले पुस्तकालय में शामिल कर दिया गया।

अब संक्षेपत: यह वर्णन करने को शेष रहा कि इस अजायबघर का तत्वात्मकधार क्या था और उससे मनुष्योपयोगी विद्या के भंडार में कौन २ सी बातें अधिक हुईं।

इस अत्युत्तम विद्यालय के सुविख्यात संस्थापक के स्मारक में (यह एक ऐसा विद्यालय था जिसको प्राचीन लोग "सिकन्दरिया का दैवी विद्यालय" कहने में खुश होते थे) हम को उसकी अव्वल दरजे का 'सिकन्दर की चढ़ाइयों का इतिहास" का अवश्य नाम लेना चाहिये। बड़ा सिपाही और बड़ा राजा होने के कारण 'टालिमी रक्षक' ने उसका कर्ता होकर सिकन्दर का और भी सम्मान बढ़ा दिया। परन्तु समय ने उसकी पुस्तक के साथ बड़ा अन्याय किया, उसके काम के लिए हम पर जो ऋण है उसे वह नहीं मिटा सका, पर वह किताब अब नहीं पाई जाती॥

उस मित्रता से जो सिकन्दर, टालेमी, और अरस्तू में थी जैसी कुछ आशा की जासकती है, अरस्तू का तत्वज्ञान ही वह मानसिक कोणपत्थर था जिस पर यह अजायबघर स्थित था। राजा फिलिप ने सिकन्दर के विद्याध्ययन का भार अरस्तू को सौंपा था और फारस देश की चढाइयों के समय में जगत विजयी सिकन्दर ने केवल धन ही से नहीं वरन् अन्य ढंग से भी उस समय बनते हुए प्राकृतिक इतिहास में वास्तविक सहायता की थी॥

अरस्तू के तत्वज्ञान का अत्यन्त आवश्यक सिद्धान्त यह था कि छोटी २ वस्तुओं के ज्ञान से सर्वत्रव्यापी सिद्धान्तों के ज्ञान तक अनुमान के बल से बढ़ते हुये चढ़ना चाहिये। अनुमान उतनाही अधिक ठीक होता है जितनेही अधिक वे काम होंगे जो उसके मूल हैं। उसका ठीक होना स्थिर होजाता है यदि वह हमें इस योग्य बनादे कि हम दूसरे कामों के लिये वे भविष्यवाणियां कह सकें जिनका अभी तक किसी को कुछ ज्ञान नहीं। इस प्रथा में दोनों प्रकार अर्थात अनुमानिक और दृष्टिगोचर घटनाओं के इकट्ठा करने में असीम परिश्रम करना पड़ता है और उन पर गंभीर ध्यान भी देना पड़ता है। इसलिये यह प्रथा अवश्यही परिश्रम और बुद्धि की है, कल्पित प्रथा नहीं है। बहुत सी बातों में जो अरस्तू ने स्वयं भूल की है वे इस बात का प्रमाण नही हैं कि यह प्रथा विश्वास योग्य नहीं है, वरन् उस प्रथा के विश्वस्त होने का प्रमाण हैं। वे भूलें इस कारण हुई हैं कि उसे काफी घटनायें न मिली थीं।

उन सर्वव्यापी प्रतिफलों में से, जिन तक अरस्तू पहुंचा था, कई एक बहुत बड़े हैं। इस भांति उसने यह फल निकाला था कि प्रत्येक वस्तु जीव धारण करने के लिये तैयार है, और यह फल भी निकाला था कि बिबिध प्रकार के जीवधारी जो हम प्रकृति में देखते हैं वेही हैं जो समयानुसार जीव धारण कर सकते हैं। अगर दशायें बदल जांय तो रूप भी बदल जांयगे। इसलिये इस प्रकृति में निरे तत्व से बनस्पति और जीव जन्तुओं द्वारा मनुष्य तक एक अटूट शृंखला है। अनेक जीव समूह अज्ञात विधि से एक दूसरे में समा जाते हैं।

अनुमानिक तत्वज्ञान जिसको अरस्तू ने इस भांति स्थापित किया था एक बड़ी शक्तिवान प्रथा है। वर्तमान समय की सबही वैज्ञानिक उन्नतियां इसी प्रथा के कारण हुई हैं। यह प्रथा अपने अति उन्नत रूप से अनुमान की सहायता से प्राकृतिक घटनाओं से लेकर उनके कारणों तक उठती जाती है, और तदनन्तर विद्वानों की प्रथा का अनकरण करती हुई प्रतिफलों द्वारा उन कारणों से प्राकृतिक घटनाओं की छोटी छोटी बातों तक उतरती है॥

जब इस तरह पर सिकन्दरिया का वैज्ञानिक विद्यालय एक बड़े एथेन्स निवासी तत्वज्ञानी के सिद्धान्तों पर स्थापित कियागया था, तब नैतिक विद्यालय एक दूसरे तत्वज्ञानी के सिद्धान्तों पर स्थापित किया गया था; क्योंकि 'जेनो' नामक तत्वज्ञानी (यद्यपि वह साईप्रस द्वीप का निवासी था अथवा फिनीशियन जाति का था) बहुत वर्षों से एथेन्स में बस गया था। उसके चेले 'स्टोइक' (उदासी) कहलाते थे। उसके सिद्धान्त उसके मरजाने के बहुत दिनों बाद तक प्रचलित रहे, और जिन अवसरों पर मनुष्य को मन समझाने के लिये कोई आधार न मिलता, विपति के उन अवसरों पर वे सिद्धान्त सहारा देते, और जीवन के परिवर्तनों में अचल पथदर्शक होते थे। यह बात केवल सुप्रख्यात यूनानियोंही के लिये नहीं थी, वरन् बहुत से बड़े बड़े तत्वज्ञानियों, राजनीति विशारदों, सैनापतियों, और रोम के सम्राटों के लिये भी थी।

"जेनो" का तात्पर्य यह था कि मनुष्यों को अच्छा बनाने के हेतु जीवन के दैनिक कामों के लिये एक पथदर्शक दिया जाय। वह ज़ोर

के साथ कहता था कि शिक्षा ही नेकी की सच्ची नीव है, क्योंकि अगर हम जान जांय कि भलाई क्या वस्तु है तो हम उसके करने की ओर भी झुकेंगे। ज्ञान के स्वीकृत तत्वों के देने के लिये हमें अपने इन्द्रियजन्य ज्ञान पर विश्वास करना चाहिये, और तदनन्तर बुद्धि भी उचित रीति से उनसे मिल जायगी। इस सिद्धान्त में जेनो और अरस्तू की समानता प्रत्यक्ष देख पड़ती है। प्रत्येक अभिलाषा, कामेच्छा, और मनोरथ अपूर्ण ज्ञान से पैदा होता है। हमारा स्वभाव भाग्य से हमारे माथे मढ़ा गया है। परन्तु हमें अपने मनोविकारों को अपने बश में रखना सीखना चाहिये; और बुद्धि के अनुसार सबही बातों में स्वच्छन्द, समझदार, और नेक होकर जीवन व्यतीत करना चाहिये। हमारा जीवन बुद्धि सम्बंधी होना चाहिये, हमको सब सुखों और दु:खों को समान दृष्टि से देखना चाहिये। हमको यह बात कभी न भूलनी चाहिये कि हम स्वच्छन्द मनुष्य हैं न कि जनसमूह के गुलाम। 'स्टोइक, कहा करता था कि "मेरे पास एक ऐसा ख़जाना है जिसे सब दुनिया भी मुझसे नहीं छीन सकती-- अर्थात मेरी मौत मुझसे कोई नहीं छीन सकता"। हमको याद रखना चाहिये कि प्रकृति अपने कामों में सर्वव्यापकता का लिहाज़ रखती है और किसी एक व्यक्ति के साथ कुछ रियायत नहीं करती, वरन् उन व्यक्तियों को अपने कार्य्यसाधन का द्वारा बनाती है। इसलिये हमको तवभव्यता को मानना चाहिये और नेकी के लिये आवश्यक समझ कर विद्या, संयम, सहन-शीलता, और न्याय को बढ़ाना चाहिये। हमको स्मरण रखना चाहिये कि प्रत्येक वस्तु चंचल अवस्था में है। विगड़ने के बाद फिर बनती है। और बनने के बाद बिगड़ती है। और यह भी याद रखना चाहिये कि एक ऐसी दुनिया में जहां प्रत्येक वस्तु मरती है, मृत्यु के लिये शोक करना व्यर्थ है। जैसे एक जलप्रपात साल दरसाल अपना एकही सा रूप रखता है यद्यपि उसका पानी सदैव बदला करता है, वैसेही प्रकृति का चेहरा पदार्थों के बहाव के सिवाय कुछ नहीं है जिस से अस्थिरताही देख पड़ती है। यह सब विश्वास समष्टि रूप से बदलने वाला नहीं है। सिवाय अन्त-

रिक्त, परमाणुओं, और शक्ति के कोई वस्तु सनातन नहीं है। प्राकृतिक वस्तुओं के रूप जब हम देखते हैं वे क्षणिक हैं। वे सब अवश्य मिट जाने वाले हैं।

हमको अवश्य स्मरण रखना चाहिये कि मनुष्यों में से अधिक जन, पूर्णतः शिक्षित नहीं हैं, इसलिये हमको अपने समय के धार्मिक विचारों का व्यर्थ खंडन न करना चाहिये। हमको स्वयं इतना जान लेना काफी है कि संसार में एक सर्वमान्यशक्ति तो है पर कोई सर्वोच्च व्यक्ति नहीं है। संसार में एक अदृष्ट सिद्धान्त है, पर कोई साकार ईश्वर नहीं है। उस सिद्धान्त के लिये ऐसा कहना कि उसका रूप, विचार, और मनोभाव आदमियों केसे हैं, इतनी बड़ी बदनामी नहीं होसकती, जितनी कि असंभवता सिद्ध होती है। सब प्रकार की ईश्वरवाणी निश्चय ही केवल कल्पना मात्र है। जिसको मनुष्य दैवयोग कहते हैं वह केवल अज्ञात कारण का प्रतिफल है। दैवयोगों के लिये भी नियम है। परमेश्वर कोई वस्तु नहीं है, क्योंकि प्रकृति अरोक नियमों के साथ आगे बढ़ती है और इस लिहाज़ से यह विश्व केवल एक बड़ा स्वयं चलनेवाला यंत्र है। इस जीवन शक्ति को जो तमाम संसार में फैली हुई है अपढ़ मनुष्य ईश्वर कहते हैं। वे सुधार जिनमें होकर सब बस्तुओं को गुजरना पड़ता है, बेरोक ढंग से हुआ करते हैं, इस कारण यह कहा जा सकता है कि होनी के अनुसार इस संसार की उन्नति एक बीज के समान है, वह एक अग्रनिर्धारित ढंग से बढ़ सकता है।

मनुष्य की जीवात्मा एक सजीव ज्वाला की चिनगारी है अर्थात् उसी सर्वव्यापी जीवन सिद्धान्त की। गर्मी के समान वह एक से दूसरे में जाती है और अन्त में उसी सर्वव्यापी वस्तु में मिल जाती है जिस से वह निकली थी। इसलिये हमें बिनाश की आशा नहीं करना चाहिये, वरन् फिर मिल जाने की आशा ठीक है, और जैसे एक थका हुआ मनुष्य निद्रा की अचैतन्यता से सुखानुभव की आशा रखता है ऐसेही दुनिया से उदासीन तत्वज्ञानी को प्रलय सुख की आशा करनी चाहिये। परन्तु इन बातों पर हमें सन्देह सहित विचार करना

चाहिये, क्योंकि मन केवल आन्तरिक शक्तियों द्वारा कोई निश्चित ज्ञान नहीं देसकता। प्रत्येक वस्तु के प्रथम कारण को खोजना महा मूर्खता है। हमें केवल घटनाओं से काम रखना चाहिये। सर्वोपरि बात यह है कि हमें यह बात कभी न भूलनी चाहिये कि मनुष्य 'परम सत्यता' को निश्चित नहीं कर सकता, और यह भी न भूलना चाहिये कि मनुष्यकृत पदार्थों की खोज का अन्तिम फल यह है कि हम पूर्ण ज्ञान के अयोग्य हैं, और यह भी स्मरण रखना चाहिये कि यदि हम सत्यता को पा भी जांय तो हमें उसका पूर्ण विश्वास नहीं हो सकता॥

तब, अब हमें क्या करना शेष रहा? क्या यही बात ठीक नहीं है कि हम ज्ञान प्राप्त करें, नेकी और मित्रता को बढ़ाएं, विश्वास और सत्यता को मानें; जो कुछ अपने ऊपर आपड़े उसे चुपके सहलें यही बुद्धि के अनुसार जीवन व्यतीत करना है।

परन्तु, यद्यपि सिकन्दरिया के अजायबघर में विशेषकर अरस्तू की ही फिलासफी सिखलाये जाने का तात्पर्य्य था, तथापि ऐसा न मान लेना चाहिये कि तत्त्व ज्ञान की अन्य प्रथायें सर्वत: निकाल दी गई थीं। अफलातूनी सिद्धान्त भी केवल अपनी पूर्णोन्नति ही पर नहीं था वरन अन्त में उसने पैरीपैटिटीं के सिद्धान्तों की जगह लेलीथी; और "नवीन विद्यालय" के द्वारा क्रिश्चियन धर्म पर वह अपना सदैव कालीन प्रभाव छोड़ गया॥ अफलातून की तत्वानुसांधानिक प्रथा अरस्तू की प्रथा से बिलकुल उल्टी थी। वह सर्वत्रव्यापी वस्तुओं से प्रारंभ होती है इन सर्वत्रव्यापी वस्तुओं का अस्तित्व एक विश्वास की बात है। इन से उतर कर वह प्रथा विशेष २ और छोटी २ वस्तुओं तक आती है। इसके विरुद्ध अरस्तू अनुमान की सहायता से बढ़ता हुआ छोटी वस्तुओं से सर्वत्रव्यापी वस्तुओं तक चढ़ता है। इसलिये अफलातून कल्पनाशक्ति का भरोसा करता है, और अरस्तू बुद्धि का भरोसा करता है॥ अफलातून प्राथमिक विचार के विच्छेदन से उतरता हुआ विशेष वस्तुओं तक आता है, और अरस्तू विशेष वस्तुओं का समूह जमा करके सर्वव्यापी विचार बनाता है। इस

भांति अफलातून की प्रथा उस वस्तु को शीघ्र पेश करने के योग्य है जो बहुत बड़ी जान पड़ती है यद्यपि वास्तव में उसके फल अस्थिर हैं, और अरस्तू की प्रथा काम करने में बहुत मंदगामिनी है परन्तु बहु दृढ़मूलक है। घटनाओं के इकट्ठा करने में अनन्त परिश्रम दिखाई देता है, देखने भालने, अनुभव करने और प्रमाण के लगाने में बड़ी थकावट जान पड़ती है। अफलातून का तत्वज्ञान एक सुन्दर चमकीला मनमोदक है; और अरस्तू का तत्वज्ञान बहुत सी अपूर्णताओं के साथ भी एक दृढ़ इमारत है जो बड़ी मिहनत से एक सुदृढ़ चट्टान पर बनाई गई है।

कल्पना शक्ति की सहायता, विचारशक्ति के काम में लाने की अपेक्षा, बहुत अधिक मनोमुग्धकारी है। सिकन्दरिया की मानसिक शक्ति की घटती के समय परिश्रमी देख भाल और कठिन मानसिक उद्योग की अपेक्षा आलसी प्रथाओं को लोग अधिक पसंद करते थे। उन विद्यालयों में जहां 'नियो' और अफलातून के सिद्धान्त पढ़ाये जाते थे अमोनियससैकस और प्लोटिनस सरीखे बहुत से काल्पनिक पौराणिक लोग भर गये थे। इन लोगों ने पुराने अजायबघर के कठिन क्षेत्रविद्याविशारद लोगों का स्थान लेलिया था।

सिकन्दरिया का विद्यालय उस प्रथा का पहिला उदाहरण देता है, जिसने वर्तमान समय के पदार्थविज्ञों के हाथों पड़ कर ऐसे आश्चर्य्यप्रद फल दिखलाये हैं। उसने कल्पना को नहीं माना, और अपने सिद्धान्तों को ऐसी घटनाओं का सूचक बना दिया है, जो अनुभव और देख भाल और गणित सम्बंधी विवादों से हस्तगत हो सकती हैं॥ उसने इस सिद्धांत पर अधिक ज़ोर दिया है कि प्रकृति-ज्ञान प्राप्त करने का सच्चा ढंग अनुभव सम्बंधी पूछ पाछ ही हैं। 'आरकैमेडीज' कृत गुरुत्व सम्बंधी खोज और टालैमी कृत दृष्टि विद्या के ग्रंथ वैसेही हैं जैसे हमारे हाल के परीक्षात्मक तत्वज्ञान की खोज हैं। और पुराने लेखकों के काल्पनिक प्रलापों से बहुत विरुद्ध हैं। लैपलेस कहता है एक मात्र निरीक्षण जो हमैं ज्योतिष के इतिहास से मिलता है और जिसे सिकन्दरिया के विद्यालय से पहिले यूना-

नियों ने किया था वह सन् ईस्वी से ४३२ वर्ष पहिले वाले साल के उत्तरायण सम्बंध रखता है, जिसे 'मिटन' और 'यूकटेमन' ने किया था। पहिले पहिल हमको उसी विद्यालय में उन निरीक्षणों की सम्मिलित प्रथा मिलती है जो कोणमापक यंत्रों द्वारा की जाती थी, और त्रिकोणमितिविद्या के नियमों से गणना की जाती थी। उस समय ज्योतिष विद्या ने ऐसा रूप धारण कर लिया था, जिसको आगे आने वाले समयों ने केवल ठीक ही किया है॥

न तो इस पुस्तक में अटही सकता है और न इस पुस्तक का तात्पर्य्य ही है कि मनुष्योपयोगी विद्या के भंडार को जो लाभ सिकन्दरिया के अजायबघर से हुआ है उसका सविस्तर विवरण दिया जाय बस इतनाही अलम है कि पाठक जान लें कि वे लाभ किस प्रकार के थे। सविस्तर हाल जानने के लिये मैं अपनी बनाई हुई "हिस्ट्री आफ् दी इन्टेलेक्चुअल डिवलप्मेंट आफ यूरोप" Histrory of the intellectual development of Europe) का छठां अध्याय पढ़ने की सिफ़ारिस करता हूं॥

यह बात अभी कही जा चुकी है कि स्टोइक का तत्वज्ञान इस बात में सन्देह करता है कि मनुष्य की मानसिक शक्ति ठीक सचाई की खोज नहीं कर सकती। जब ज़ेनों ऐसे सन्देहों में पड़ा हुआ था, यूकलिड अपनी वह बड़ी पुस्तक लिख रहा था जिसके भाग्य में यह बदा था कि सब मनुष्यजाति भर के लोगों में से कोई भी उसे काट नहीं सकेगा। बाईस शताब्दियों से अधिक समय बीतने पर भी वह पुस्तक अबतक यथार्थता, स्पष्टता और ठीक प्रमाणों का नमूना बनी हुई है। इस बड़े रेखागणितज्ञ ने केवल अन्य गणित सम्बंधी विषयों पर ही ग्रंथ नहीं लिखे (जैसे शंकुच्छिन्न विद्या और पोरिज़म) वरन् कहा जाता है कि उसने स्वरशास्त्र, और दृष्टिविद्या पर भी पुस्तकें लिखी हैं। दृष्टिविद्या वाली पुस्तकों में उन किरणों सम्बंधी प्रतिज्ञाओं पर वादविवाद किया गया है जो आंख से निकल कर वस्तु तक जाती हैं॥

सिकन्दरिया के गणितज्ञों और पदार्थज्ञों ही में 'आरकैमेडीज़' को भी सम्मिलित करना चाहिये यद्यपि वह वास्तव में सिसिली में

रहता था। उसके बनाये हुये गणित ग्रंथों में से दो ग्रंथ गोला और बेलन सम्बंधी विषयों पर थे, जिन में उसने प्रमाण दिये थे कि गोले का घनात्मक मान उसके गिर्द घूमने वाले बेलन के मान से दो तिहाई होता है। वह इस विद्या का इतना आदर करता था कि उसने आज्ञा दे दी थी कि इसकी शकल मेरे कबर के पत्थर पर खोद दी जाय। उसने वृत्त के चतुर्थांश और अनुवृत्त पर भी कुछ लिखा है। उसने सूच्याकार धरातलों और अंड-गोलाकार धरातलों पर भी पुस्तकें लिखी हैं। और सर्पाकार धरातलों पर भी पुस्तक लिखी है जो अबतक उसके नाम से प्रसिद्ध है और जिसके बनाए जाने के लिए सिकन्दरिया निवासी 'कोनन' नामक उसके एक मित्र ने सम्मति दी थी। गणितविद्याविशारद की हैसियत से यूरोप ने लगभग दो हजार बरस तक उसकी बराबरी का आदमी नहीं पैदा किया। पदार्थविद्या में उदकस्थितिविद्या की नीव उसीने डाली थी; वस्तुओं के गुरुत्व जान लेने के लिए एक ढंग निकाला था; उतराते हुए पदार्थों के समान-गुरुत्व पर भी विवेचना की थी; तराजू की डंडी का ठीक सिद्धान्त दरयाफ़्त कर लिया था और नील नदी का पानी उठाने के लिये एक व्यावर्त्तन कील ईजाद की थी जो अब तक उसके नाम से चलती है। अनन्त व्यावर्त्तन कील का बनाने वाला भी वही कहा जा सकता है, और एक विशेष रूप का आग्नेय शीशा भी उसी का बनाया कहा जाता है जिस से, लोग कहते हैं कि, सिरैक्यूज के घेरे के समय उसने रोम वालों के जहाज़ी बेड़ों में आग लगा दी थी।

इरैटास्थेनीज़, जो किसी समय पुस्तकालय का अध्यक्ष था बहुत सी आवश्यक पुस्तकों का कर्ता था। उनमें से अयनरेखाओं के बीच का फासिला निश्चित करना, और पृथ्वी का परिमाण निश्चित करने का उद्योग वर्णनीय बातें हैं। उस ने महाद्वीपों के जोड़ और फैलाव, पर्वत श्रेणियों की स्थिति, बादलों का काम, पृथ्वी-खण्डों का धस जाना, पुराने समुद्रतलों का ऊपर उठना, डारडैनेलीज़ और जिब-राल्टर स्थलडमरूमध्य का काटना और यूगज़ाईन समुद्र का सम्बन्ध-

इन सब बातों पर भी विचार किया था। उसने पृथ्वी सम्बन्धी सब ही बातों का पूरा विवरण तीन पुस्तकों में लिखा था, अर्थात् पदार्थ सम्बन्धी, गणित सम्बन्धी और इतिहास सम्बन्धी सब बातें; उन्हीं के साथ एक नक्शा भी लगाया था जिस में उस समय तक ज्ञात हुए पृथ्वी के सबही भाग दिखाए गए थे। यह बात अभी हाल ही में हुई है कि उसके बनाए हुए "थीबन नरेशों का इतिहास" के बचेबचाए टुकड़ों की ठीक क़द्रदानी हुई। क्योंकि बहुत शताब्दियों तक हमारे वर्तमान बुद्धि-विरुद्ध पुराणों के सामने उनका कुछ आदर न था।

पृथ्वी को गोलाकार साबित करने के लिये सिकन्दरिया निवासी विद्वान जिन युक्तियों पर विश्वास करते थे उनका प्रमाणित करना अनावश्यक है। वे लोग गोला सम्बंधी सिद्धान्त, उसके ध्रुवों, धुरी, भूमध्यरेखा, उत्तरीय और दक्षिणीय ध्रुवीय वृत्तों, समान अयनकारी स्थानों, अयनों, और जलवायु के विभाग इत्यादिक विषयों का ठीक ठीक ज्ञान रखते थे। मैं इसके सिवाय और कुछ नहीं कह सकता कि केवल अपालोनीयस की बनाई हुई शङ्कुच्छिन्नविद्या सम्बंधी और महत्तम और लघुत्तम सम्बन्धी पुस्तकों की ओर इशारा कर दूं। कहा जाता है कि अपालोनियस ही पहिला विद्वान था जिसने **दीर्घवृत्त** और **अतिपरवलय** शब्द प्रचलित किए थे। इसी भांति मुझे अरिस्टाईलस और टाईमोकेरिस के ज्योतिष सम्बन्धी कथनों को छोड़ देना चाहिए। टालोकेरिस ने चित्रा नक्षत्र के सम्बन्ध में जो विचार लिखे हैं उन्हीं के बल हिपारकस ने अयनांशभाग सम्बन्धी अपनी बड़ी खोज की थी। हिपारकस ने चन्द्रमा की प्रथम विषमता और केन्द्र सम्बन्धी समीकरण भी निश्चित किए थे। चक्राकार संचालन के क़ायदे पर आकाशस्थित ग्रहों की प्रत्यक्ष चालों के निश्चित करने के लिए रेखागणित सम्बन्धी विचार से उसने अपचक्री और उत्केन्द्री सिद्धान्तों को स्वीकार किया था। उसने सितारों की एक सूची बनाने का काम भी अपने हाथ में लिया था, अर्थात् उन सितारों को दिखलाते हुए जो देखने में एक सीधी रेखा में हैं। इस भांति सूची में लिखे हुए सितारों की गणना एक हजार अस्सी (१०८०) थी,

यदि उसने इस तरह आकाश की शकल दिखलाने की कोशिश की थी तो उसने अक्षांशों और देशान्तरों की रेखाओं द्वारा शहरों और अन्य स्थानों की स्थिति दिखा कर पृथ्वी के धरातल के लिए भी यही बात करने का उद्योग किया था। वह पहिला मनुष्य था जिसने सूर्य्य और चन्द्रमा की सारणियां बनाईं थीं।

इन रेखागणितज्ञों, ज्योतिषियों, पदार्थविज्ञानियों के ऐसे चमकीले समूह के मध्य में टालेमी "सिण्टैक्सिस" नामक (गणितानुसार आकाश की बनावट पर एक ग्रन्थ) बड़े ग्रन्थ का कर्त्ता बहुत प्रत्यक्ष रूप से चमकता है। उस ग्रन्थ ने लगभग १५०० वर्ष तक अपनी प्रख्याति स्थित रक्खी, और वास्तव मे न्यूटन कृत "प्रिंसिपिया" नामक अमर ग्रन्थ ने ही उसे उसकी जगह से हटाया॥ वह ग्रन्थ इस सिद्धान्त से प्रारंभ होता है कि पृथ्वी गोल है, और आकाश में स्थित है; वह चांपकर्णों की सारणी बनाने और अयनांशों के देखने के यंत्र बनाने का ढंग वर्णन करता है; वह क्रान्तिवृत्त की टेढ़ाई का अनुमान करता है; वह पृथ्वी के अक्षांशों को धूपघड़ी की कील से निकालता है, देशों की जल वायु का वर्णन करता है, दिखलाता है कि साधारण समय किस तरह नाक्षत्रिक समय में परिवर्तन किया जा सकता है, नाक्षत्रिक वर्ष की अपेक्षा सायन वर्ष के अच्छे होने के कारण देता है सौर सिद्धान्त का वर्णन करते हुए मानता है कि सूर्य्य की कक्षा निरी उत्केन्द्री है; समय की समानता को सविस्तर वर्णन करता है, चन्द्रमा की चालों के विवाद तक बढ़ता है, चन्द्रग्रहण की पहिली विषमता और उसके पातों की चाल का वर्णन करता है। तदनन्तर स्वयं टालेमी की उस बड़ी खोज का वर्णन करता है जिसने उसके नाम को अमर कर दिया है, अर्थात् 'चन्द्रमा की दूसरी विषमता की खोज' और उसको नीचोच्चवृत्तिक सिद्धान्त को मानता है। वह पृथ्वी से सूर्य्य और चन्द्रमा की दूरियों को निश्चित करने का उद्योग करता है परन्तु इस में उसे थोड़ी ही सफलता प्राप्त हुई है। उसने हिपारकस की खोज अर्थात् 'अयनांश भाग' पर भी विचार किया है जिसका पूर्ण समय २५००० वर्ष है॥ वह १०२२ सितारों की एक सूची भी देता है,

आकाशगङ्गा की प्रकृति भी वर्णन करता है, और बड़ी विद्वता के साथ ग्रहों की चालों पर विवाद करता है। इस बात से वैज्ञानिक प्रख्याति में टालेमी का एक दावा और अधिक हो जाता है। अपने निरीक्षणों को प्राचीन ज्योतिषियों के निरीक्षणों से मिला कर उसका ग्रहकक्षाओं सम्बन्धी निश्चय पूर्ण हो गया था, उन निरीक्षणों में टाईमोकेरिस कृत शुक्र ग्रह के निरीक्षण सम्मिलित थे।

सिकन्दरिया के अजायबघर में टिसीवियस ने अग्नि-कल ईजाद की थी। उसके शिष्य 'हीरो' ने उसमें दो बेलन लगा कर उसकी और उन्नति की। वहां पहिली धूमकल भी काम करती थी। यह भी हीरो की ईजाद थी, और यह धौंकनी के सिद्धान्त पर एक प्रतिक्रिया सम्बन्धी कल थी। सिरैपिस के बड़े दालान की निस्तब्धता टिसी-वियस और अपालोनियस की जलघड़ियों से भङ्ग होती थी जो बूंद बूंद पानी गिरा कर समय की माप करती थीं। जब रोमनपत्रा इतना गड़बड़ हो गया था कि उसके सुधारने की बहुत ही आवश्यकता थी तब ज्यूलियस सीज़र सिकन्दरिया से सिजिनीज़ नामक ज्योतिषी को लाया था। उसकी सलाह से चान्द्रवर्ष उठा दिया गया, सर्कारी साल पूर्ण रीति से सूर्य्य के अनुसार बनाया गया, और ज्यूलियन पत्रा प्रचलित किया गया।

मिसर देश के मकदूनिया वंशी राजाओं पर उस ढंग के कारण जिस ढंग से वे अपने समय के धार्मिक विचारों प्रति विचार करते थे दोष लगाया गया है। उन धार्मिक विचारों को नीच श्रेणी के लोगों पर हुकूमत करने का द्वार पाकर उन्हों ने उनको राजकीय छलों के साधन करने के हेतु बिगाड़ डाला था। समझदार लोगों को वे तत्त्वज्ञान सिखाते थे॥

परन्तु निःसन्देह उन्हों ने इस नीति की रक्षा उन अनुभवों से की जो उन्हें उन बड़ी चढाइयों में हुए थे जिन्होंने यूनानियों को संसार की अग्रगण्य जाति बना दिया था। उन्हों ने देख लिया था कि उनके पुरुषाओं के देश के देवताओं सम्बन्धी विचार केवल काल्पनिक कथाएं हो चुकी थीं, और वे आश्चर्य्यप्रद बातें जिनसे प्राचीन कवियों ने भूमध्यसागर को शृंगारित किया था अमूलक छल छद्म होना

प्रमाणित हो गई थीं। आलिम्पस पहाड़ पर से उसके देवता गायब हो चुके थे, और वास्तव में स्वयं आलिम्पस ही का एक काल्पनिक वस्तु होना प्रमाणित हो चुका था। नर्क का रोब जाता रहा था, और उसके लिये कोई जगह नहीं थी।

एशियाई रूम के जंगलों और गुफाओं और नदियों से वहां के स्थानिक देवता और देवी रवाना हो चुके थे- यहां तक कि उनके भक्त लोग सन्देह करने लगे थे कि आया वे वहां थे या नहीं। यदि अब तक सीरिया निवासी कुमारियां अपने प्रेम गीतों में अडोनिस के भाग्य के लिये रोती थीं तो यह बात केवल स्मारक रूप थी, न कि सत्य बात ' फारिस देश ने बार बार अपना जातीय विश्वास बदला था ज़रदुस्त के श्रुतियों के बदले उसने द्वैतबाद अंगीकार किया था, तदनन्तर नवीन राजनैतिक प्रभावों से उसने मेंजियन धर्म स्वीकार किया था। उसने अग्नि का पूजन किया था, और पहाड़ों की चोटियों पर अपने हवन कुण्ड जला रखे थे। उसने सूर्य्य की पूजा की थी। अब सिकन्दर वहां आया तब वह शीघ्रता के साथ विराट धर्म की ओर गिर रहा था।

एक ऐसे देश में जहां के देशी देवता राजनैतिक कठिनाइयों के समय प्रजा की रक्षा करने में असमर्थ पाये जाते हैं धर्म परिवर्तन अवश्यम्भावी है। मिसर देश के महामान्य देवतागण जिनके आदर के हेतु सूच्याकारस्तंभ और मंदिर बनवाये गये थे एक परदेशी विजयी पुरुष की तलवार के सामने बार बार नतमस्तक हुये थे। मिश्र देश में भारी भारी मूरतें और नृसिंह रूपधारी देवताओं का मान जाता रहा था; उन पर से लोगों का विश्वास हट गया था। अब नवीन दूसरे देवताओं की आवश्यकता थी, और सिरैपिस नामक देवता उसीरिस नामक देवता से अधिक सम्मान पाने लगा था। सिकन्दरिया नगर की दूकानों और गलियों में हज़ारों यहूदी ऐसे थे जो उस ईश्वर को भूल गए थे जो मंदिर के भीतर रहा करता था।

मौखिक पुरानी कथा, ईश्वर वाक्य, और समय इन सबों ने अपना प्रभाप खोदिया था। यूरोपियन देवताओं सम्बन्धी मौखिक

कथायें, एशिया के ईश्वर वाक्य और मिस्र के प्राचीनता-कृत पवित्र मत ये सब वस्तुएं गत हो चुकी थीं, या होती जाती थीं। और टालेमी नामक राजाओं ने जान लिया था कि धर्म के रूप कैसे क्षणभंगुर होते हैं।

परन्तु टालेमी नामक राजाओं ने यह भी जान लिया था कि कोई वस्तु ऐसी भी है जो धर्म के रूपों की अपेक्षा अधिक दिनों तक ठहरती है। धर्म के रूप तो भूतत्वविषयक-समयों के जीवधारियों के रूपों के समान एक बार मिट जाने से सदैव के लिये मिट जाते हैं। न वे फिर लौटाये जाते हैं और न स्वयं लौटते हैं। वे मानते थे कि इस क्षणिक छलों और अनित्य वस्तुओं के संसार के भीतर एक अनादि सत्यता का संसार है।

वह संसार उन व्यर्थ मौखिक कथाओं द्वारा नहीं खोजा जा सकता जिनके द्वारा हम तक उन आदमियों की सम्मतियां पहुंची हैं जो सभ्यता के प्रारंभ काल में जीवित थे, न उन पौराणिकों के झूठे विचारों में ही आ सकता है जो यह समझते थे कि हमारे लिये श्रुतियां उतरती हैं। वह संसार रेखागणित सम्बंधी खोजों से खोजा जा सकता है और प्रकृति के व्यावहारिक ढूंढ़ खोज से भी पाया जा सकता है। मनुष्य जाति को इनसे सुदृढ़ और अगणित और अमूल्य मंगल प्राप्त होते हैं।

वह समय कभी नहीं आवेगा जब यूकलिड का कोई एक सिद्धान्त भी अमान्य ठहराया जा सकैगा; अब से कोई भी इरैटास्थेनिज से माने गए पृथ्वी के गोल आकार पर सन्देह नहीं करैगा, जगत निवासीगण सिकन्दरिया और सिरैक्यूज़ में की गईं बड़ी बड़ी पदार्थविद्या विषयक ईजादों और खोजों को भूल जाने की कभी अनुमति न देंगे। हिपारकस, अपालोनियस, टालेमी, और आरकैमेडीज़ के नाम हरएक धर्म के लोग, जब तक मनुष्यों में बोलने की शक्ति है, बड़े आदर से लेंगे।

इस भांति सिकन्दरिया का अजायबघर वर्त्तमान विज्ञान का जन्मस्थान था। यह सत्य है कि उसके स्थापित होने से बहुत पहिले

चीन और मिसोपुटेमियां में ज्योतिष सम्बंधी निरीक्षण किये गये थे, हिन्दुस्तान में कुछ कुछ सफलता के साथ गणित विद्या का भी प्रचार था। परन्तु इन में से किसी देश में भी इस खोज ने श्रृंखला-बद्ध और अविरुद्ध रूप नहीं धारण किया था। किसी देश में पदार्थों सम्बन्धी परिक्षायें नहीं की गईं थीं। वर्त्तमान विज्ञान की भांति सिकन्दरिया के विज्ञान की विशेषता यह है कि वह केवल निरीक्षण तक ही नहीं रह जाता, वरन् प्रकृति के व्यावहारिक ढूंढ खोज पर विश्वास करता है॥
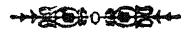
अध्याय दूसरा॥

(क्रिस्चियन धर्म का मूल। राज्यबल पाकर उसका रूपान्तर। विज्ञान से उसका संबंध)

(रोमन रिपबलिक की धार्मिक दशा; अधिराजत्व अद्वैत का कारण होता है; रोमन राज्य में क्रिश्चियन धर्म का फैलना; जिन स्थितियों से उसे राज्यबल प्राप्त हुआ उन्होंने उसके विधर्मी संबंध को राज्यनैतिक आवश्यकता बनादिया; उसके सिद्धान्तों और कर्तव्यों का टरटूलियन कृत वर्णन; कान्सटैंटाइन की कूट नीति का उस पर बुरा प्रभाव; प्रजाशक्ति से उसका मेल; विज्ञान से उसका अनमेल; अलेग्ज़ैंड्रिया के पुस्तकालय का सत्यानाश और तत्वज्ञान की ममानियत, आगस्ताइन के सिद्धान्तानुसार तत्वज्ञान का और पीटर के सिद्धान्तानुसार विज्ञान का सर्वसाधारण में प्रकाश होना; धर्मपुस्तकों का सर्वमान्य वैज्ञानिक पुस्तक ठहराया जाना।)

राजनैतिक विचार से क्रिश्चियन धर्म इस दुनिया के लिये रोमन राज्य की दी हुई संम्पत्ति है। जिस समय रोम राज्य प्रजासत्वात्मक राज्य से एकाधिपत्यक राज्य हो रहा था, भूमध्यसागर के इर्द गिर्द की सब स्वतंत्र जातियां उस केन्द्रस्थल राज्य के अधीन हो चुकी

थीं। वह पराजय जो उन्होंने लगातार उठाई किसी भांति उनके लिये विपत्ति नहीं हुई॥ आपस के सदैवकालीन युद्धों का अन्त होगया और वे विपत्तियां जो उनके झगड़ों से पैदा हुई थीं सर्वत्र व्यापक शान्ति में परिवर्तित हो गईं॥

केवल अपने विजय के चिन्हों ही की भांति नहीं, वरन् अपने गर्व के संतोष की भांति भी रोम का प्रजासत्वात्मक राज्य विजित जातियों के देवताओं को रोम में लाया। घृणासूचक सहनशीलता के साथ उसने उन सब देवताओं का पूजन होना भी प्रचलित रहने दिया। वह सर्व शक्तिमत्ता जो अपने अपने स्थान में सब देवता काम में लाते थे, सब देवी और देवताओं के एकट्ठे होने से एक दम विलीन हो गई। जैसा कि हमने देखा है, भौगोलिक अन्वेषणों और वैज्ञानिक कटाक्षों से प्राचीन धर्म का विश्वास पूर्ण रूप से हिग गया था। अब रोम की इस कूटनीति से उसका सर्वथा अन्त होगया॥

सब विजित प्रान्तों के राजा विलीन हो गये थे और उनके स्थान में एक सम्राट होगया था। देवता भी विलीन होगये थे। उस संबंध का ख्याल करके, जो सदाही राजनैतिक और धार्मिक विचारों में रहा है, उस समय यह कुछ आश्चर्य्य की बात न थी कि अनेक-देव-वाद अद्वैत वाद में परिवर्तन होने की ओर झुकाव प्रगट करे। तदनुसार पहिले तो मृतकों का देव समान आदर होने लगा और अंततः वर्तमान सम्राट का भी वैसाही आदर होने लगा।

जिस सरलता से ये सब देवता पैदा करलिये गये वह सरलता एक दृढ़ सभ्य प्रभाव रखती थी। एक नवीन देवता का बनजाना, पुराने देवता की असलियत पर हँसी उड़ाना है। पूर्वीय जगत के अवतार और पश्चिमीय जगत के देव-मानव आलिम्पस (स्वर्ग भूमि) को शीघ्रता सहित देवताओं से भर रहे थे। पूर्वीय जगत में देवता स्वर्ग से उतरते थे और मानव शरीर धरते थे, पश्चिमीय जगत में मनुष्य पृथ्वी से ऊपर चढ़ते थे और देवताओं में जा मिलते थे। यह यूनान का संदेहात्मक सिद्धान्त नहीं था जिसने रोम को संदेहमय

बनादिया, वरन् धर्म की अनुचित बातों ने ही विश्वास के मूल का रस चूस लिया॥

देश वासियों के सबही समूहों ने अद्वैतबादी मत को एकही प्रकार की शीघ्रता से नहीं ग्रहण किया। व्यापारियों पर, कानूनदाओं पर और सिपाहियों पर जो अपने अपने पेशे की प्रकृति के अनुसार जीवन के परिवर्तनों को अधिक जानते मानते हैं और जिनके बुद्धि विचार अधिक बड़े होते हैं, सबसे पहले प्रभाव पड़ा, और मजदूरों और किसानों पर सबसे अन्त में।

जब सैनिक और राजनैतिक बिचार से राज्य प्रबंध अपनी पराकाष्टता तक पहुंच चुका था उस समय धार्मिक और सामाजिक रूप से वह अपने दुराचार की चोटी तक पहुंच गया था। वह पूर्ण रीति से विषयाशक्त हो गया था। उसका सिद्धान्त यह था कि जीवन को खूब मज़ेदार बनाना चाहिये, और भलाई केवल विषयों को सुस्वाद बनाना ही है और संयम उन विषयों को बढ़ाने का द्वार है। सोने से चमकते हुये और रत्नों से जड़े हुये भोजनागार, अति सुन्दर वस्त्र धारी सेवक, स्त्री समाज की मनोहारी बातें जहां सबही स्त्रियां स्वच्छन्दाचारिणी थीं, बड़े बड़े स्नानागार, नाटक शालायें, बड़े बड़े महल, बस ऐसीही वस्तुएं रोमन लोग चाहते थे। संसार के विजेताओं ने जान लिया था कि शक्तिही एक पूजने योग्य वस्तु है। उसीसे वे सब वस्तुएं जो कठिन परिश्रम और व्यापार से मिली थीं प्राप्त हो सकती हैं। माल असबाब और भूमि ज़ब्त कर लेना, प्रान्तों पर कर लगा देना सफलता से किए हुए युद्ध का इनाम है, और सम्राट महोदय शक्ति का प्रतिरूप हैं। वहां एक सामाजिक विभव भी था, परन्तु वह पुराने मध्यस्थ संसार का चमकीला कलुष था।

सीरिया नामक एक पूर्वीय प्रान्त में कतिपय दीन हीन मनुष्यों ने नेक और धार्मिक कामों के लिये एका कर लिया था। जिन सिद्धान्तों को वे मानते थे वे सर्वलोकव्यापी भाइचारे के उन विचारों से मिलते जुलते थे जो विजित राज्यों के एकीभूतत्व से पैदा हुए थे। वे यहूदियों के सिखए हुए सिद्धान्त थे।

पुरानी मौखिक कथाओं के मूलाधार पर यहूदी जाति का उस समय ऐसा विश्वास था कि उन्हीं की जाति में एक बचाने वाला पैदा होगा जो उनको उनका पुराना वैभव फिर से प्राप्त करायेगा। हज़रत ईसा के शिष्य उसी को वह मसीहा समझते थे जिसकी बहुत दिन से आशा लगी हुई थी। परन्तु उस जाति के पुरोहितों ने इस विश्वास से कि उसके सिखाए हुए सिद्धान्त उनके स्वार्थों को हानिकारी हैं रोमन गवर्नर से उसकी बदनामी की, जिसने उनकी शिकायत शान्त करने लिये इच्छा न होने पर भी उसे मृत्यु के हवाले कर दिया।

परन्तु उसके नेकी और मानवी भ्रातृभाव के सिद्धान्त उसके मारे जाने के बहुत दिन बाद तक भी बने रहे। उसके अनुयायी लोगों ने तितर बितर हो जाने के बदले मिलकर एक नियमित समूह बना लिया। वे एक जाति की भांति मिल गए और हर एक ने अपनी सम्पत्ति और अपनी आमदनी एक में मिला कर एक सार्वजनिक भाण्डार बनाया। इस भांति उस समाज की विधवा स्त्रियां और रक्षकहीन बालकों का पालन पोषण होने लगा और निर्धनों और बीमारों की सँभाल होने लगी। इस बीज से अंकुरित होकर एक नवीन और सर्वशक्तिमान 'चर्च' नामक एक समूह बन गया। "नवीन" इस हेतु से कि इससे पहिले ऐसा कोई समाज न था और "शक्तिमान" इस सेतु से कि स्थानिक चर्च (संप्रदाय) जो पहिले अलग अलग थे शीघ्र ही अपने सार्वजनिक स्वार्थ के लिये मिल कर एक होने लगे। इसी समाज स्थापन द्वारा ईसाई धर्म ने अपनी सब राजनैतिक सफलताएं प्राप्त की हैं।

जैसा कि हम ऊपर कह आए हैं, रोम के सर्वोपरि सैनिक प्रभाव ने सर्वत्रव्यापी शान्ति पैदा कर दी थी, और विजित जातियों के बीच भ्रातृभाव का विचार पैदा कर दिया था। इसलिये सर्वराज्य में नवीन स्थापित सिद्धान्तों अर्थात् क्रिश्चियन धर्म के शीघ्र फैल जाने के हेतु सब ही बातें अनुकूल थीं। वह सीरिया से लेकर सब एशियाई रूम में फैल गया, और धीरे धीरे साईप्रस, यूनान, और इटली तक

पहुँच गया; और अन्त में पश्चिम की ओर फैलता हुआ फ्रान्स और इंगलैण्ड तक पहुंच गया।

उसके प्रचार को पादरियों ने चारों ओर जा जा कर और बता बता कर और अधिक कर दिया। प्राचीन और श्रेष्ट तत्त्वज्ञानों में से किसीने कभी इस के द्वारा लाभ नहीं उठाया।

इस नवीन धर्म की सीमाओं को राजनैतिक दशाओं ने निश्चित कर दिया अर्थात् उसकी सीमाएं अन्त में वही सीमाएं थीं जो रोम राज्य की थीं। रोम नगर जो सन्देह सहित पीटर का मृत्युस्थान कहा जाता है इस धर्म की राजधानी ठहराया गया, जिरोसलिम नगर जो निश्चय ही हमारे रक्षक प्रभु ईसा का मृत्युस्थान है इस धर्म का राज्य नगर न बनाया गया। अपने पवित्र स्मारक चिन्हों सहित जेसीमेन और कालवरी नगर की अपेक्षा राजकीय सप्तपर्वतीय (रोम) नगर पर अधिकार कर लेना अच्छी ही बात हुई।

बहुत वर्षों तक ईसाई धर्म अपने को तीन बातें उपदेश करने वाली प्रथा प्रगट करता रहा अर्थात् ईश्वर प्रति सादर भक्ति, और व्यक्तिगत पवित्र जीवन, और जातीय जीवन में नेकी। अपनी निर्बलता के प्रारम्भिक समय में, यह धर्म केवल सत्य प्रबोध द्वारा विधर्मियों को अपना अनुयायी बनाता था, परन्तु ज्यों ज्यों उसकी गणना और प्रभाव बढ़ता गया राजनैतिक झुकाव दिखलाने लगा, अर्थात् राजशासन के भीतर अपना शासन जमाना और राज्य के भीतर अपना राज्य स्थापित करना। उस समय से उसके ऐसे स्वभाव कभी न छूटे। वास्तव में वे स्वभाव उसकी उन्नति के आवश्यक फल हैं। रोमन सम्राटों ने, यह देख कर कि यह धर्म राज्यप्रथा का सर्वथा विरोधी है, उसे शक्ति से दबा देने का उद्योग किया। यह काम उन के सैनिक सिद्धान्तों के उस तत्त्व के अनुसार था जो मेलमिलाप स्थापित करने के लिये सिवाय शक्ति के कोई अन्य उपाय न रखता था।

सन् ३०२ वा ३०३ के जाड़े में कतिपय सेनाओं के ईसाई सिपाहियों ने देवताओं के प्रसन्न करने के लिये प्राचीन काल से प्रचलित

धार्मिक उत्सवों में सम्मिलित होने से इंकार किया। यह सैन्यद्रोह इस शीघ्रता से फैला, ऐसी कठिन आवश्यकता आपड़ी कि डायोक्लीटियन नामक सम्राट को यह विचार करने के लिये कि अब क्या करना चाहिए विवश एक सभा करनी पड़ी। कदाचित इस दशा की कठिनाई का तब ठीक अन्दाज हो सकेगा जब यह जान लिया जाय कि स्वयं डायोक्लीटियन की स्त्री और पुत्री भी ईसाई धर्मावलम्बिनी थीं। वह एक बड़ी योग्यता और बड़े राजनैतिक विचारों वाला मनुष्य था। उसने यह बात तो मान ली कि नवीन ईसाई समूह का सामना करना राजनैतिक आवश्यकता है, पर तब भी उसने विशेष रूप से आज्ञा दी कि रक्तपात न होना चाहिए॥ परन्तु प्रजा के क्रोधजनित हलचल को कौन रोक सकता है। निकोमोडिया का गिरजाघर भूमि में मिला दिया गया। इसके बदले में राज्य महल में आग लगा दी गई, और एक राजाज्ञा का खुल्लमखुल्ला निरादर किया गया और अज्ञा-पत्र फाड़ डाला गया। सेना में जो ईसाई अफसर थे वे पदच्युत किए गए; और चारों ओर मार काट होने लगी। इन घटनाओं का होना ऐसा अनिवार्य्य था कि स्वयं सम्राट इस मारकाट को नहीं रोक सके।

अब यह बात प्रगट होगई थी कि राज्य में ईसाइयों का एक शक्तिमान समूह है जो उन पर किए गए अत्याचारों को सहते सहते क्रोध से उत्तेजित हो उठा हैं और उसने निश्चय कर लिया है कि अब और अधिक दिनों तक अत्याचार न सहेंगे। डायोक्लीटियन के सन् ३०५ में स्वयं राज्य त्याग देने के बाद, कान्सटेंन्टाइन नामक व्यक्ति जो राज्यपताका के दावेदारों में से एक था यह देखकर कि ऐसी कूटनीति से मुझे क्या लाभ होंगे ईसाई समूह के सरदार होने के लिये अग्रसर हुआ। इस बात से उसे राज्य के प्रत्येक भाग में ऐसे मनुष्य और स्त्रियां मिलीं जो उसके हेतु अग्नि और तलवार का सामना करने के लिये प्रस्तुत थे। इसी बात से उसे सेना के प्रत्येक विभाग से अटल अनुचर मिले। मिलवीयन नामक पुल के निकट एक जय पराजय सूचक युद्ध में उसे विजय प्राप्त हुई। मैक्सीमीन की मृत्यु और तद्-नन्तर लिसीनियस की मृत्यु ने सब रोकों को हटा दिया। वह सीज़र

नामक राजाओं के राज्यसिंहासन पर आसीन हुआ। यही पहिला ईसाई सम्राट था।

पद्वी, लाभ, और शक्ति वेही वे वस्तुएं थीं जिनके लोभ से लोग इस विजयी जाति में सम्मिलित होते थे। दुनियादार लोगों के झुंड के झुंड जिनको उस जाति के धार्मिक विचारों की कुछ भी परवाह न थी उस जाति के सरगर्म सहायक हो गये; परन्तु मन से मूर्ति पूजक थे, इसलिये उनका प्रभाव शीघ्र प्रगट हुआ और ईसाई मत में मूर्ति पूजन सम्मिलित होने लगा। सम्राट महोदय ने उन लोगों के अधिक धार्मिक न होने के कारण उनके कामों के रोकने के लिये कुछ भी नहीं किया। परन्तु सन ३३७ ई० में अपने जीवन के अन्त समय तक वह स्वयं गिरजाघर के उत्सव सम्बन्धी आवश्यक कार्य्यों में संमिलित नहीं हुआ।

ताकि हम ईसाई धर्म में इस समय किए गए उन सुधारों का साफ साफ अन्दाज़ कर सकें जिन सुधारों के कारण अन्त में वह धर्म विज्ञान का विरोधी हो गया, मिलान करने के लिये हमारे पास ऐसा वर्णन होना चाहिए जिससे ज्ञात हो कि वह धर्म अपने पवित्र समय में कैसा था। सौभाग्य वश ऐसा वर्णन हमें उस पुस्तक में मिलता है जिसका नाम डिफेन्स आफ दी क्रिश्चियन्स अगेंस्ट दी अक्यूज़ेशन्स आफ दी जेंटाईल्स" है, और जो सिवरस के अभियोग के समय रोम नगर में टरट्यूलियन ने लिखी थी। उसने यह किताब सम्राट को नहीं वरन् न्यायाधीशों को सम्बोधन करके लिखी है जो उस अभियुक्त का न्याय करने बैठे थे। यह पुस्तक एक गंभीर और सर्वोत्तम सत्यनिष्ट तर्क है, उसमें वे सब बातें वर्णन की गई हैं जो उस विषय के विधिवार वर्णन में कही जासकती हैं। वह ईसाई धर्म के विश्वास और पक्ष का निरूपण है जो दुनिया भर के विरुद्ध, राज्य नगर में किया जासकता था। वह धर्म सम्बन्धी बिलापात्मक और क्रोधपूर्ण निवेदन नहीं है वरन् एक गौरवपूर्ण ऐतहासिक प्रमाणपत्र है। वह ईसाइयों के बनाए हुए प्रारम्भिक ग्रंथों में से सर्वोत्तम ग्रंथ माना जाता रहा है। वह सन् २०० ई० के लगभग बना था।

टरत्यूलियन बड़ी बुद्धिमानी के साथ अपना तर्क आरम्भ करता है। वह उन न्यायाधीशों से कहता है कि ईसाई धर्म इस पृथ्वी पर एक नवागत परदेशी है। और ऐसे देश में जो स्वयं उसका स्वदेश नहीं है बहुत से शत्रुओं से सामना करने की आशा रखता है। वह केवल इतना चाहता है कि बिना जवाब देही सुने हुये उस पर दोष न मढ़ दिये जांय, और यह भी चाहता है कि रोम के न्यायाधीशगण उसे जवाब देही करने की आज्ञा देंगे। यदि उसकी ठीक जांच करने के बाद उस पर हुक्म दिया जायगा तो राज्य के राज्यनियमों को बड़ी इज़्ज़त मिलेगी, न कि इस तरह से कि बिना उसका पक्ष सुने हुए उसको दण्डाज्ञा सुना दी जाय। वह यह भी कहता है कि जिस वस्तु को हम नहीं जानते उससे घृणा करना अन्याय है चाहै वह घृणायोग्य वस्तु ही क्यों न हो। वह यह भी कहता है कि रोम के कानून किये हुये कार्य्यों से सम्बन्ध रखते हैं न कि कामों से, परन्तु ऐसा होने पर भी ईसाई कहलाये जाने के हेतु ही लोगों को दण्ड दिया गया है और वह भी बिना कोई दोष लगाये हुये।

तदनन्तर वह, यह वर्णन करते हुए कि ईसाई धर्म का मूल इबरानी धर्म पुस्तकों पर है जो सबही पुस्तकों से अधिक आदरणीय हैं, उसकी असलियत, स्वभाव और उसके फल दिखलाता हुआ आगे बढ़ता है। वह न्यायाधीशों से कहता है कि "मूसा की पुस्तकें जिनमें ईश्वर ने कोश की भांति यहूदियों का सब धर्म तथा ईसाइयों का समस्त धर्म भर दिया है, तुम्हारी प्राचीनतम पुस्तकों से भी बहुत अधिक प्राचीन हैं; यहां तक कि तुम्हारे सबही सार्वजनिक स्मारकों से, तुम्हारी राज्य स्थापना से, बहुत से बड़े शहरों की नीव पड़ने से, और उन सब वस्तुओं से, जिनको तुम ऐतिहासिक और प्राचीन समय की उत्तम वस्तुयें समझते हो, उनसे भी वे पुस्तकें पुरानी हैं। वे उन अक्षरों की ईजाद से भी पुरानी हैं जिनको तुम विज्ञान का अनुवादक और सबही उत्तम वस्तुओं का रक्षक समझते हो। मैं अपने विचार से यह भी कह सकता हूं कि तुम्हारे देवताओं, तुम्हारे मंदिरों, तुम्हारे भविष्यवादक देवताओं, और तुम्हारे यज्ञों

से भी वे पुरानी हैं। उन पुस्तकों का कर्ता 'ट्राय' के घेरे से १५०० वर्ष पहिले जीवित था। समय सत्यता का मित्र है और बुद्धिमान पुरुष सिवाय निश्चित और समय से सत्य ठहराई गई वस्तु के और किसी बात पर विश्वास नहीं करते। इन धर्मपुस्तकों का मुख्य प्रमाण आदरणीय प्राचीनतम समय से निकाला गया है। टालिमी बंश वालों में से सर्वोत्तम विद्वान ने जिसका नाम फिलैडेलफस था और जो सर्वगुण सम्पन्न राजा था डिमीट्रियस फेलेरियस की सलाह से इन पुस्तकों की एक प्रति मंगवाई थी। वह अब भी उसके पुस्तकालय में पाई जाती है। इन धर्म पुस्तकों की दैविकता इस बात से प्रमाणित होती है कि अब हमारे समय में जो कुछ किया जाता है उसका भविष्यवाद उन पुस्तकों में पाया जाता है। उन में वे सब बातें पाई जाती हैं जो उस समय से आज तक मनुष्यों ने देखी हैं।

क्या किसी भविष्यवाणी का पूरा होना उसकी सत्यता का प्रमाण नहीं है? यह देख कर कि गत घटनाओं ने इन भविष्य वाणियों को सत्य प्रमाणित कर दिया है क्या हम उनके भविष्य घटनाओं के कथन पर विश्वास करने के हेतु दोषी ठहराये जा सकते हैं? जैसे हम उन बातों पर विश्वास करते हैं जिनके विषय में भविष्य वाणी हुई थी और वे घटित हुईं, वैसे ही हम उन बातों पर भी विश्वास करते हैं जिनके विषय में भविष्य वाणी हुई है पर वे अभी तक घटित नहीं हुईं, क्योंकि वे सब बातें एक ही धर्मपुस्तक में कही गई हैं, अर्थात् वे बातें जो नित्य प्रति सत्य प्रमाणित होती जाती हैं और वे भी जो अबतक घटित होने को शेष हैं।

ये पवित्र धर्म पुस्तकें हमको शिक्षा देती हैं कि केवल एकही ईश्वर है जिसने संसार को नास्ति से अस्ति किया है, और जो नित्य प्रति देखे जाने पर भी अदृष्ट है; उसकी अनन्तता केवल उसी को ज्ञात है, उसका महत्व उसे छिपाता है और प्रगट भी करता है। उसने मनुष्यों के लिये उनके जीवन विधान के अनुसार पुरस्कार और दंड की आज्ञायें प्रचलित की हैं; वह सब मृतकों को जो किसी समय जीवित रहे हैं संसार की वस्तुओं से प्रगट करेगा और उन्हें फिर से

अपनी देह धारण करने की आज्ञा देगा, और तदन्तर उनको अनन्त मोक्ष वा अनन्त ज्वाला देगा। नर्क की अग्नि वेही छिपी हुई ज्वालायें हैं, जिन्हें पृथ्वी अपने पेट में बंद किये हुये है। गत समयों में उसने संसार में उपदेशक वा पैग़म्बर भेजे हैं। उन पुराने समयों के पैग़म्बर यहूदी थे; उन्होंने अपने अपने भविष्य वाद (क्योंकि वे भविष्य वाद् ही थे) यहूदियों से कहे, जिन्होंने उन भविष्यवादों को इन धर्मपुस्तकों में इकट्ठा कर रक्खा है। उन्हीं भविष्यवादों पर, जैसा कि कहा गया है, ईशाई धर्म की बुनियाद है, यद्यपि ईसाई लोग रीति भांति में यहूदियों से विरुद्धाचरण करते हैं। हम पर दोष लगाया जाता है कि हम यहूदियों के ईश्वर की नहीं वरन् एक मनुष्य की पूजा करते हैं; पर बात ऐसी नहीं है। जो सम्मान हम लोग ईसा का करते हैं वह ईश्वर के सम्मान को अपमानित नहीं करता।

इन्हीं पुराने उपदेशकों की योग्यता की बदौलत केवल यहूदी ही ईश्वर के प्यारे भक्त थे। वह स्वयं निज मुख से उनसे बातें करने में हर्षित होता था। उसी ने उन लोगों को प्रशंसनीय गौरव तक पहुंचाया था। परन्तु कुटिलता वश उन्हों ने उस से प्रीति करना छोड़ दिया उन्होंने उसके पवित्र नियमों को अपवित्र पूजन में परिवर्तित कर दिया। उसने उन्हें जता दिया कि वह उनसे अधिक ईमानदार सेवकों को अपने साथ लेगा और उनके दोषों के कारण उन्हें यह दंड देगा कि उन्हें उनके देश से निकाल देगा। अब वे लोग सारे संसार में फैल गए हैं, दुनिया के सब भागों में घूमते फिरते हैं, वे अपने जन्मस्थान की वायु का आनन्द नहीं ले सकते, और वे न मनुष्यही को न ईश्वरही को अपना राजा मानते हैं। उसने जैसी उन्हें धमकी दी थी, वैसाही किया भी। उसने दुनिया की सब जातियों और सब देशों में उन्हीं लोगों को अपनी सेवकाई में लिया है जो उनसे अधिक तर दृढ़ विश्वासी हैं। अपने पैगम्बरों द्वारा उसने सर्वसाधारण को जता दिया है कि येही लोग अधिक कृपाभाजन होंगे और उनके मध्य में नवीन नियम प्रचलित करने के हेतु एक मसीहा अवतार लेगा। यही मसीहा हज़रत ईसा थे जो ईश्वर भी है। क्योंकि ईश्वर से

ईश्वर निकल सकता है, जैसे एक दीपक से दूसरा दीपक जला लिया जाता है। ईश्वर और उसका पुत्र एकही ईश्वर हैं–कोई प्रकाश वही प्रकाश है जिससे वह लिया गया है।

धर्मपुस्तकें ईश्वर के पुत्र का इस संसार में दोबार आना बताती हैं। प्रथम बार दीनता के सहित, और दूसरी बार, प्रलय के दिन, बड़े अधिकारों सहित। यहूदियों ने इस बात को पैगम्बरों द्वारा सुना ही होगा, पर उनके पापों ने उन्हें ऐसा अन्धा कर दिया था कि उन्हों ने उसे पहिले आगमन में नहीं पहिचाना और अब तक व्यर्थ उसके आगमन की आशा कर रहे हैं। वे विश्वास करते थे कि उसके किए हुए अप्राकृतिक सब कार्य्य जादू के काम थे। कानून विशारद लोग और मुख्य मुख्य पुरोहितगण उस से डाह रखते थे, उन्हों ने पाइलेट के सामने उसपर दोष लगाये। उसको सूली दी गई, वह मर गया, और गाड़ दिया गया; और तीन दिन बाद फिर जी उठा। चालीस दिन तक वह अपने शिष्यों के संग रहा। तदनन्तर वह बादल में लपेट लिया गया और आकाश की ओर चला गया। यह बात उन बातों से कहीं बढ़कर सत्य है जो राम्यूलस या अन्य रोमन राजाओं के अकाश तक चढ़ जाने के विषय में सप्रमाण वर्णन की जाती हैं।

तदनन्तर टरस्यूलियन उन भूतों की असलियत और प्रकृति वर्णन करता है जो अपने राजा शैतान की अधीनता में रह कर रोग, वायु के अनियम संचालन, महामारी, और पृथ्वी के फूलों की सत्यानाशी पैदा करते हैं, और जो आदमियों को बहका कर बलिदान करवाते हैं जिससे वे उन बलि के जन्तुओं का रक्त जो कि उनका भोजन है, पासकें। वे ऐसे फुरतीले होते हैं जैसी चिड़ियां; और इस कारण वे उन सब बातों को जान लेते हैं जो पृथ्वी तल पर हुआ करती हैं। वे वायु में रहते हैं और इस कारण वे जो कुछ आकश में होता है देख लेते हैं, इसी कारण वे मनुष्य विषयक भविष्य बाणियां कह सकते हैं। इसी तरह उन्होंने रोमनगर में प्रख्यात कर दिया था कि परसियस राजा पर विजय प्राप्त होगी, जब कि वास्तव में वे जानते थे कि युद्ध में जीत हो चुकी है। वे झूठ ही मूठ रोगी को अच्छा

करते हैं; क्योंकि मनुष्य के शरीर पर अपना अधिकार जमाकर वे उसके शरीर में कुछ रोग पैदा कर देते हैं, और तदनन्तर व्यवहार करने के लिये कुछ औषधि बतला कर वे उसे सताना छोड़ देते हैं, और इस तरह पर मनुष्य मानते हैं कि उनकी कृपा से रोगी अच्छा हो जाता है।

यद्यपि क्रिस्तान लोग सम्राट को ईश्वर मानने से इंकार करते हैं, तथापि वे लोग उसके सुख सम्पति के लिये ईश्वर से विनय करते हैं, क्योंकि संसार का जो विनाश होने वाला है अर्थात् दुनिया का भस्मीभूत होना वह उतने दिनों तक रोक दिया जायगा जितने दिनों तक विजयी रोम सम्राट की शान शौकत बनी रहेगी। वे इस सब प्रकृति के उलट पलट के समय मौजूद रहना नहीं चाहते। वे केवल एक प्रजातंत्र राज्य मानते हैं परन्तु वह सार्वभौमिक हो। वे एक ही समूह हैं एक ही ईश्वर को पूजते है, और सब ही अनादि अनन्त मुक्ति की आशा रखते हैं। वे केवल सम्राट और न्यायाधीशों ही के लिये विनय नहीं करते, वरन् शांति के लिये भी विनय करते हैं। वे अपने विश्वास को पुष्ट करने के लिये, अपनी आशाओं को बढ़ाने के लिये और अपने ईश्वर प्रति विश्वास को दृढ़ करने के लिये धर्म पुस्तकों को पढ़ते हैं। वे एक दूसरे को उत्साहित करने के लिये इकट्ठा होते हैं; वे पापियों को अपने समाजों से निकाल देते हैं; उनके धर्माध्यक्ष होते हैं जो उन पर अधिष्ठाता होते हैं। वे उन्ही लोगों की सम्मतियों से नियत किये जाते हैं जिनका उन्हें अगुवा होना है। प्रत्येक मास के अन्त में प्रत्येक मनुष्य को यदि उसकी इच्छा हो कुछ चन्दा देना पड़ता है परन्तु देने के लिये कोई मजबूर नहीं किया जाता इस तरह पर इकट्ठा किये हुए धन को पवित्र कार्य्यों में ही लगाने की शर्त होती है। वह धन भोजों में नहीं उठाया जाता, वरन् गरीबों को भोजन देने में, उनको दफनाने में, और ऐसे लड़को को आराम पहुंचाने में जो माता पिता और सामान रहित हों, और उन बूढ़ों को सहायता देने में जिन्हों ने अपने भले दिन धर्म सेवा में बिताए हैं, और उन लोगों की सहायता में जिनका सब माल जहाज

टूट जाने के कारण विनाश होगया है, और जो अंधेरी गुफाओं में कैद कर दिए गए हैं, वा द्वीपान्तरों में जिलावतन कर दिये गये हैं, वा सच्चे ईश्वर के धर्म को ग्रहण करने के हेतु कारागारों में बंद कर दिए गए हैं खर्च किया जाता है। केवल एक ही वस्तु ऐसी है जिसमें ईसाइयों का साझा नहीं निभता और वह वस्तु उनकी पत्नियां हैं॥ वे ऐसा समझ कर कि मानो कल्ह ही मर जाना है अधिक नहीं खाते, और न ऐसा विचार कर कि हम कभी न मरेंगे बड़ी बड़ी इमारतें बनवाते हैं। उनके जीवन की निर्दिष्ट बातें, किसी को हानि न पहुंचना, न्याय, धैर्य्य, संयम, और पवित्रता हैं।

अपने समय के ईसाइयों के विश्वास और जीवन के इस उत्तम विवरण में टरट्यूलियन सम्बोधित न्यायाधीशों प्रति एक शुभ सूचना देने में भी नहीं चूका। 'शुभ' इस हेतु से कहा कि वह एक शीघ्र ही होने वाली एक बड़ी घटना का भविष्यवाद था। उसने कहा है, 'हमारा' जन्म अभी केवल थोड़े ही दिनों से हुआ है तब भी हम लोग उन सब स्थानों में भर गए हैं जिनको तुम मानते हो अर्थात बड़े बड़े नगर, किले, द्वीप, प्रान्त, सभाएं, रोम के रक्षक, महल, प्रबन्धक सभा, सरकारी उहदे, और विशेष कर सेनाएं। सिवाय मन्दिरों के हमने तुम्हारे लिये कुछ नहीं छोड़ा। सोचकर देखो कि हम कैसी कैसी लड़ाइयां लेने के योग्य हैं। यदि हम अपने उस धर्म से न रोके जांय जो हमें यह बात सिखलाता है कि मारने से मारा जाना अधिक अच्छा है, तो हम लड़ने के लिये बड़ी फुर्ती के साथ हथियार उठा सकते हैं।

अपना प्रतिवाद पूरा करने के पहले ही टरट्यूलियन उस बात को दुबारा कहता है जिसने कार्य्य में परिणत होने पर जैसा कि बाद को हुआ, तमाम यूरोप की मानसिक उन्नति में बड़ा भारी प्रभाव डाला। वह कहता है कि पवित्र पुस्तकें एक ऐसा कोश हैं जिनसे दुनियां की सब ही सच्ची बुद्धिमानी ली गई है, और प्रत्येक तत्ववेता और प्रत्येक कवि उनका ऋणी है॥ वह बड़े परिश्रम से यह दिखालाता है

कि वे धर्मपुस्तकें सब सत्य का प्रमाण और माननिरूपक यंत्र हैं, और जो वस्तु उनके प्रतिकूल है वह अवश्य असत्य है।

टरट्यूलियन के इस उत्तम ग्रंथ से हम देखते हैं कि ईसाई धर्म उस समय कैसा था जिस समय वह पीड़ित हो रहा था और अपने जीवन के लिये लड़ झगड़ रहा था। अब हमें यह देखना है कि वही धर्म उस समय कैसा हो गया जब उसे राज्याधिकार मिलगया। "सिवरस" के समय वाले ईसाई धर्म में बड़ा भारी अन्तर है। बहुत से सिद्धान्त जो पिछले समय में मुख्य माने जाते थे पहिले समय में अज्ञात थे।

दो कारणों से क्रिश्चियन धर्म में मूर्ति पूजन मिल गया। (१) नवीन राजवंश की राजनैतिक आवश्यकताओं से, और (२) नवीन धर्म को निश्चित रूप से फैलाने की कूटनीति से।

(१) यद्यपि ईसाई समूह ने राज्य को राजा देने में अपने को काफी शक्तिमान प्रमाणित कर दिया था, तथापि वह अपने विरोधी मूर्तिपूजन को विनष्ट करने के हेतु अलम् शक्तिमान न था। इन दोनों के झगड़े का यह फल हुआ कि दोनों के सिद्धान्त एक दूसरे में मिल गये। इस बात में क्रिश्चियन धर्म और मुसलमान धर्म से अन्तर पड़ा है। मुसल्मान धर्म ने अपने विरोधी को सर्वथा विनष्ट कर दिया और स्वयं अपने सिद्धान्तों को बिना मिलावट के फैलाया।

कान्सटेंटाइन अपवे कामों से सदैव यह दिखलाता रहा कि वह जानता है कि उसे अपनी सब प्रजा का अपक्षपाती राजा होना चाहिये न कि केवल एक सफलता प्राप्त विरोध का प्रतिनिधि। इसलिये यदि वह ईसाइयों के गिरजे बनवाता था तो वह मूर्ति पूजकों के देवमन्दिर भी फिर से स्थापित कराता था। यदि वह पादरियों की बात सुनता था तो वह आगमियों से भी सलाह लेता था। यदि उसने नीसिया की सभा इकट्ठी की तो उसने भाग्यदेवी की मूर्ति का भी आदर किया; उसने बपतिस्मा की रीति स्वीकार की तो उसने अपनी ईश्वर पदवी वाला तमगा भी ढलवाया। उसकी मूर्ति जो कुस्तुन्तुनिया नगर में संगसमाक के बड़े स्तंभ की चोटी पर थी अपालो देवता की प्राचीन मूर्ति की थी, जिसके चिहरे पर राजा का चिहरा लगा दिया गया था

और जिसका सिर उन कीलों से घिरा हुआ था जो झूठ मूठ ही मानी जाती थीं कि ईसा की सूली के समय काम में लाई गई थीं। कीलें ऐसी लगी हुई थीं कि उनसे एक शोभा प्रद मुकुट सा बनता था।

ऐसा विचार कर कि पराजित किये हुये मूर्तिपूजक समूह के साथ कुछ रिआयतें भी होनी चाहिए, वह उसी समूह के विचारों के अनुसार, अपने दरबारियों के मूर्तिपूजन सम्बन्धी कार्य्यों को कृपा दृष्टि से देखता था। वास्तव में इन कार्य्यों के मुखिया स्वयं उसके वंश के लोग होते थे।

सम्राट को, जो केवल एक दुनियादार आदमी था, जिसका कोई भी धार्मिक विश्वास न था, निःसन्देह यह बात अपने लिये, राज्य के लिये, और विरोधी समूहों अर्थात ईसाई और मूर्तिपूजकों के लिये, अच्छी जान पड़ी कि उनकी ऐक्यता वा उनका मेल मिलाप यथा संभव बढ़ाया जाय यहां तक कि पक्के ईसाई लोग भी इस बात के विरोधी नहीं जान पड़ते थे। कदाचित उनका ऐसा विश्वास था कि ये नवीन सिद्धान्त अधिक पूर्ण रीति से फैल सकेंगे यदि उनमें प्राचीन धर्म के सिद्धान्त मिला दिए जाएं, और यह भी विश्वास था कि अन्त में सत्यता स्वयं अपना अधिकार जमा लेगी और मैल छट जायगा। इस सम्मेलन के पूरा करने में राज्यमाता 'हेलीना' दरबार की सभ्य कुलांगनाओं की सहायता से मुखिया बनी। उसके मनोरथ सिद्ध के लिये जिरोसैलिम की एक गुफा में से तीन शताब्दी से अधिक की गड़ी पड़ी हुई हज़रत ईसा और दो चोरों की सूली, और एक लेख और काम में लाई गई कीलें खोज निकाली गईं। वे दैवी शक्ति से पहिचानी गईं; बस एक सच्ची स्मारक पूजा आरंभ होगई। प्राचीन यूनानी समयों का मिथ्या विश्वास फिर प्रचलित हो पड़ा; अर्थात् उन समयों का मिथ्या विश्वास जब सिटैपान्टस में वे हथियार दिखाये जाते थे जिनसे ट्रोजन का घोड़ा बनाया गया था। चरोनिया में पिलाप्स का राज्यदंड देखा जा सकता था। फेसिलिस में एचिलीज़ का भाला, निकोमीडिया में मैकनान की तलवार देखी जा सकती थी; और उन समयों के विश्वास जब टैगिटीज़ कैलीडोनिया के सुअर

का चमड़ा दिखला सकता था। और बहुत से नगर टापू के 'पालस' देव की सच्ची मूर्ति रखने का दावा करते थे; और उन समयों के विश्वास जब यूनान में माईनरवा की ऐसी मूर्तियां थीं जो भाले घुमा सकती थीं; और ऐसे चित्र थे जो लज्जा और संकोच का भाव दर्शा सकते थे, ऐसी मूर्तियां थीं जो पसीज सकती थीं, और अगणित ऐसे यात्रास्थान और पवित्र स्थान थे जहां दैवशक्ति से रोग आराम किये जा सकते थे।

ज्यों २ वर्ष बीतते गये टरट्यूलियन का वर्णन किया हुआ धर्म रूप बदल कर एक अधिक व्यवहारी और अधिक नीच धर्म हो गया। वह प्राचीन यूनानी पौराणिक धर्म से मिल गया। आलिम्पस फिर स्थापित हुआ, परन्तु देवताओं के दूसरे दूसरे नाम पड़े। अधिक शक्तिवान प्रान्तों ने अपने प्राचीन विचारों के स्वीकार करने के लिये हठ किया। मिस्रिर देश की मौखिक कथाओं के अनुसार त्रिदैविक विचार स्थापित हुए। नबीन नाम से ऐसिस नामक देवी की केवल पूजाही पुन: प्रचलित नहीं की गई वरन् उसकी मूर्ति भी अर्धचन्द्र पर खड़ी हुई फिरसे दर्शन देने लगी। उस देवी की प्रख्यात मूर्ति अपने बच्चे होरस को गोदमें लिये हुये हमारे समय में सुन्दर शिल्पीय चतुरताओं सहित "मैडोना और बच्चा" नामक चित्र के नाम से प्रचलित है। नये रूपों से प्राचीन विचारों का ऐसा पुनरागमन सब ही जगह बड़े आनन्द से स्वीकृत किया गया। जब एफीशियन लोगों से यह कहा गया कि उस प्रान्त की राज्यसभा ने साईरिल की अध्यक्षता में ऐसी आज्ञा दी है कि कुमारी मरियम् को "ईश्वर की माता" कह कर सम्बोधन किया जाय तब आनन्द के आंसू बहाते हुये वहां के निवासियों ने अपने धर्माध्यक्ष के चरण चूम लिये। इस बात से उनकी सहज बुद्धि झलकती थी, उनके पुरुषाओं ने 'डायना' देवी के लिये ऐसा ही किया होता।

सांसारिक परधर्मग्राही लोगों को, उनके विचार और रीति भांति ग्रहण करके खुश करने का यह उद्योग उन लोगों से विना तर्क किए हुए न बचसका जिनकी बुद्धिने असल तात्पर्य्य समझ लिया था।

फास्टस अगस्टाइन से कहता है कि तुमने मूर्तिपूजकों के यज्ञों के स्थान में अपना प्रीतिभोज प्रचलित किया है। उनके मूर्तियों के स्थान में धर्म हेतु तनत्यागी लोगों को उसी भांति पूजते हो जैसे वे मूर्तियों को। तुम मृतकों की आत्माओं को मद्य और भोज से शान्त करते हो, मूर्तिपूजकों के धार्मिक त्योहारों, उनकी प्रतिपदाओं, और उनकी संक्रान्तों को उत्सव मनाते हो; और उनके आचारों को तुमने विना किसी प्रकार का परिवर्तन किए ही ज्यों का त्यों रहने दिया है। सिवाय इसके कि तुम अपनी सभायें अलग करते हो तुममें और मूर्ति-पूजकों में कोई भेद नहीं है। मूर्ति पूजकों की रीतियां हर जगह प्रचलित की गई थीं। विवाहों में शुक्र के सम्मान हेतु गीत गाने की रीति थी।

अच्छा अब हम थोड़ी देर के लिये ठहरते हैं और आशा सहित देखते हैं कि यह मूर्तिपूजक बनाने की कूटनीति वास्तव में मानसिक अवनति की किस गहराई तक गई है। मूर्तिपूजकों की रीतियां स्वीकार की गई थीं, बड़ी धूमधाम वाली और भड़कीली रीतियां, तड़क भड़क पोशाकें, मुकुट, लम्बी टोपियां, मोमबत्तियां, यात्रासंबधी प्रार्थनायें, शुद्धिकरण, और सोने चांदी के बरतन प्रचलित किए गए थे। रोमन लोगों का वक्रदंड, जो शगुन लेने का विशेष चिन्ह था पाद-रियों के हाथ का धार्मिक दंड होगया था। धर्म हेतु तनत्यागी मनुष्यों की कबरों पर गिरजाघर बनवाये जाते थे। और रोम के पोप के पुराने नियमों से उधार ली हुई रीतियों से वे स्थान पवित्र ठहाराए जाते थे। त्योहार और धर्म हेतु तनत्यागी मनुष्यों के स्मारक बढ़ते ही गए, ज्यों ज्यों उनकी बची खुची वस्तुओं की अगणित झूठी खोजें होती रहीं। व्रत करना शैतान को भगाने के लिये और ईश्वर को प्रसन्न करने के लिये एक भारी उपाय समझा गया, अविवाहित रहना सब से बढ़ कर नेकी समझी गई। पैलिस्टाइन और धर्म हेतु तनत्यागी मनुष्यों की क़बरों तक यात्रायें होने लगीं। बहुत सी धूल और मिट्टी पवित्र देश (Holyland) से लाई जाती थी। पवित्र पानी

के गुण माने जाते थे। मूर्तियां और अवशिष्ट वस्तुयें गिरजा घरों में प्रचलित की गईं। और मूर्तिपूजकों के देवताओं की भांति उनकी पूजा होने लगी। यह प्रख्यात किया गया कि कतिपय स्थानों में अद्भुत और अमानुषिक शक्तियां देखी जाती हैं जैसे कि मूर्तिपूजकों के समय में थीं। मृत ईसाइयों की मुक्त आत्मायें मंत्र बल से बुलाई जाती थीं। ऐसा विश्वास किया जाता था कि वे संसार में इधर उधर घूमा करती हैं और अपनी क़बरों पर बहुधा आया करती हैं। मन्दिरों, यज्ञशालाओं, और प्रायश्चित्त कारक कांटेदार पोशाकों की बहुत बढ़ती होगई। काफिर परधर्मग्राहियों की वह बेचैनी मिटाने के हेतु जो उन्हें 'ल्यूपर केलिया' वा बनवासी देवता के त्यौहार उठ-जाने के कारण होती थीं, कुमारी मरियम के शुद्धिकरण का त्यौहार प्रचलित किया गया। मूर्तियों की पूजा सूली के टुकड़ों, हड्डियों, लोहकीलों और अन्य अवशिष्ट वस्तुओं की पूजा अर्थात् एक सच्ची पदार्थ पूजा फैल गई। इन वस्तुओं की सत्यता के हेतु दो बातों पर विश्वास किया जाता था; एक गिरजाघर का प्रमाण, दूसरे उन वस्तुओं द्वारा अमानुषिक कार्य्यों का होना। यहां तक कि साधुओं के फटे पुराने कपड़े और उन की कबरों की मिट्टी तक पुजने लगी। पैलिस्टाइन से वे ठठरियां लाई गईं जिनको लोग महात्मा 'मार्क' और 'जेम्स' और अन्य प्राचीन महात्माओं की ठठरियां कहते थे। पुराने रोम की देव-करण प्रथा उठा कर उसके स्थान में सिद्ध-करण प्रथा चलाई गई, पौराणिक देवताओं के स्थान के उत्तराधिकारी रक्षक संत महात्मा हुये। तदन्तर ट्रैनसब्सटैनशिएशन का भेद प्रचलित हुआ, अर्थात् "रोटी और शराब का पादरी की करामात से हजरत ईसा के रक्त और मांस में बदल जाना"। ज्यों ज्यों शताब्दियां गुज़रती गईं त्यों त्यों मूर्तिपूजक बनना अधिक अधिक पूर्ण होता गया। उस भाले के स्मारक में जिससे ईसा की बगल चीरी गई थी, उन लोहकीलों के स्मारक में जिनसे वे सलीब में जड़ दिए गए थे, और उस कांटों के मुकुट के स्मारक में त्यौहार प्रचलित किए गए। यद्यपि बहुत से मठ ऐसे थे जिनमें यह अन्तिम अनूपम अवशिष्ट वस्तु (अर्थात कांटेदार

मुकुट) रखा हुआ था, तथापि कोई यह न कह सकता था कि इन सब मुकुटों का सत्य होना असंभव है।

क्रिश्चियन धर्म के इस प्रकार मूर्तिपूजक धर्म बनने के विषय में विशप न्यूटन का विवरण पढ़ना हमारे लिये लाभकारी हो सकता है। वह पूछता है कि "क्या महात्माओं और फरिश्तों की पूजा अब सब भांति से वैसी ही नहीं है जैसी कि अगले समय में भूतों की पूजा होती थी ? । केवल नाम का भेद है बात तो ठीक एक सी है,...... मूर्तिपूजकों के देवताओं के स्थान में ईसाइयों के देवता होगये हैं। इस पूजन के प्रचारक जानते थे कि बात वही है, और एकने दूसरे का स्थान लेलिया है; और जैसा वह पूजन एक ही है वैसे ही उस प्रकार की रीतियों से किया भी जाता है। अर्थात एक ही समय में बहुत सी धूप वा सुगंधित पदार्थों का जलाना, सार्वजनिक पूजन स्थानों के भीतर जाते समय और बाहर आते समय साधारण जल और नमक मिला हुआ पवित्रोदक का छिड़कना; दिन में इन देवताओं की मूर्तियों और यज्ञकुंडों के सामने बहुत से दीपक वा मोम-बत्तियों का जलाना, बहुत से रोगों से अच्छे कर देने और बहुत से भयों को निवारण कर देने के प्रमाण स्वरूप बहुमूल्य चढ़ौनियों और मानी हुई चढौनियों को लटका रखना; मृत महात्माओं को सिद्ध पुरुष वा देवता मानना, मृत धर्मवीरों वा महात्माओं के लिए अलग अलग प्रान्त वा जिले नियत कर देना; मृतकों को उनके समाधिस्थानों में, और तीर्थों का, और अवशिष्ट पदार्थोंका पूजन और आदर करना; मूर्तियों को पवित्र मानना और उन्हें नमस्कार करना, मूर्तियों में अद्भुत गुण और शक्तियां मानना, छोटी छोटी मढ़ियां, और मूर्तियाँ, गलियों, सड़कों, और पहाड़ोंकी चोटियों पर स्थापित करना; मूर्तियाँ और अवशिष्ट पदार्थों को बहुत से दीपकों और गाने बजाने के साथ धूम धाम से सवारी निकालना, प्रायश्चित के विचार से धार्मिक अव-सरों पर कोड़े लगवाना, पुरोहितों का मूड़ मुड़ाना, धार्मिक स्त्री पुरुषों के लिए पवित्रता और ब्रह्मचर्य से जीवन व्यतीत करने की शर्तें लगा देना, ये उपरोक्त और अन्य बहुत सी रीतियां मूर्तिपूजकों

और पोपों के मिथ्या विश्वास के विभाग ही तो हैं। इतना ही नहीं वरन् वही मन्दिर वही मूर्तियां जो किसी समय ज्यूपिटर और अन्यान्य दानवों की मानी जाती थीं अब कुमारी मरियम और अन्यान्य महात्माओं की मानी जाती हैं। वही रीतियां और वही लेख दोनों के लिए कहे जाते हैं। उसी प्रकार के अद्भुत चमत्कार और अमानुषिक कार्य्य जो उनके लिए कहे जाते थे इनके लिए भी वर्णन किए जाते हैं। संक्षेप से लगभग सब मूर्तिपूजक धर्म बदल कर पोप का धर्म हो गया है। पोप धर्म प्रत्यक्षत: उन्हीं युक्तियों और सिद्धान्तों पर बना हुआ है जिन पर कि मूर्तिपूजक धर्म बना है। इस भांति मूर्तिपूजकों और रोम निवासी ईसाइयों की प्राचीन और हाल की पूजा में केवल समता ही नहीं है वरन ऐक्यता है"।

यहां तक तो विशप न्यूटन का वर्णन है, पर अब हम कान्सटैन्टाइन के समय की ओर फिरते हैं। यद्यपि प्राचीन और सार्वजनिक विचारों के साथ ये रिआयतें की गई थीं और यहां तक कि उन्हें उत्साहित किया गया था, तब भी शक्तिमान धार्मिक समूह ने राज्यशक्ति की सहायता से अपने निश्चित सिद्धान्तों को प्रचलित करने में कभी भी आगा पीछा नहीं किया। यह सहायता उदारता से दी जाती थी। कान्सटैन्टाइन ने इस प्रकार नीसिया की सभा के बनाये कानूनों को जारी कराया। एरियस के मामले में उसने आज्ञा दी थी कि जो कोई इस नास्तिक की पुस्तक पावे और उसे जला न देगा वह मार डाला जायगा। इसी भांति छोटे थियोडोसियस ने निस्टोरियस को मिसिर देश के एक मरुस्थलमध्यस्थ रम्यस्थान में जिलावतन कर दिया था।

इस मूर्तिपूजक समूह में राज्य के बहुत से पुराने उच्चवंश सम्मिलित थे। उसके अनुचरों में प्राचीन तत्वज्ञानियों के सबही शिष्य परिगणित थे। वह अपने विरोधी को घृणा दृष्टि से देखता था। वह कहता था कि केवल मानवी निरीक्षण और मानवी बुद्धि के कठिन अभ्यास से ही ज्ञान प्राप्ति हो सकता है। ईसाई समूह कहता था कि सर्व ज्ञान धर्मपुस्तकों में और धर्म की मौखिक

कथाओं में पाया जा सकता है। और यह भी कहता था कि लिखित श्रुतियों में ईश्वर ने सत्यता का केवल लक्षण ही मात्र नहीं दिया है वरन् उसने सबही कुछ उस में भर दिया है जो उसने हमारे जानने के लिये उचित समझा है। इस लिये धर्मपुस्तकों में ज्ञान का सर्वस्व भरा हुआ है और उन्ही में सर्व ज्ञान का अन्त है। पादरी लोग राजा को अपना सहायक पाकर किसी का बुद्धि संबंधी मुकाबला सहन नहीं करते थे।

इस प्रकार वह ज्ञान जिसे पवित्र और अपवित्र कहते थे प्रख्यात हो गया। इस प्रकार दो विरोधी समूह एक दूसरे के सामने आये। एक मानवी बुद्धि को पथदर्शक मानता था, दूसरा ईश्वर वाक्य (श्रुतियों) को। मूर्ति पूजक धर्म सहारे के लिये अपने तत्व ज्ञानियों के तत्वबोध की ओर झुकता था, और ईसाई धर्म अपने पादरियों के दैवज्ञान की ओर।

इस भांति ईसाई पादरी लोग अपने को ज्ञान का भांडार और न्यायाधीश प्रगट करने लगे। वे लोग अपने निश्चित सिद्धान्त को मनवाने के हेतु दबाव डालने के लिये राज्यशक्ति का आश्रय लेने के लिये सदैव तत्पर रहते थे। इस तरह पर उन्हों ने एक ऐसा मार्ग ग्रहण किया जिस से उनका सब भविष्य चलन निश्चत हो गया। वे लोग एक हजार वर्ष से अधिक तक यूरोप की बुद्धि सम्बन्धी उन्नति में बाधक हो गये।

कान्सटैंटाइन का राज्यसमय ठीक वह समय है जब ईसाई धर्म धर्म का रूप त्याग कर एक राजनैतिक धर्म हो गया था, और यद्यपि एक भांति से वह प्रथा मूर्ति पूजन तक अवनति कर गई थी, तथापि दूसरी भांति से प्राचीन यूनानी पौराणिक मत तक उन्नति भी कर गई थी। जब दो वस्तुएं टकरा जाती हैं तब दोनों के रूप बदल जाते हैं। यह सिद्धान्त जैसे यंत्रविद्या सम्बन्धी संसार के लिये सत्य है वैसे ही सामाजिक संसार के लिये भी सत्य है। मूर्ति पूजक धर्म ईसाई धर्म से मिल कर बदल गया, और ईसाई धर्म मूर्ति पूजक धर्म से मिल कर बदल गया।

इस त्रिदेव संबन्धी वादविवाद में, जो पहिले पहल मिसिर देश में हुआ (वही मिसिर देश जो त्रिदेवों का देश था) विशेष झगड़े की बात यह थी कि निश्चित किया जाय कि "पुत्र" का स्थान क्या है। सिकन्दरिया में एक धर्माचार्य्य रहता था जिसका नाम एरियस था। वह विशप का पद पाने का हताश पदाभिलाषी था। उसने यह मूल तर्क निकाली कि पुत्रपन के प्रकृति से यह बात सिद्धि होती है कि कोई समय ऐसा था कि जब वह पुत्र था ही नहीं, और कोई समय ऐसा था कि जब उसका अस्तित्व प्रारंभ हुआ। यह बात ऐसा कह कर प्रमाणित की कि पिता पुत्र के सम्बन्ध में यह बात आवश्यक है कि पिता पुत्र से जेठा हो। परन्तु इस कथन से तीनों देवताओं का एक साथ अस्तित्व प्रत्यक्ष ही कट जाता है। इससे यह भी झलकता है कि एक दूसरे पर निर्भर है, वा इनमें समानता नही है। और वास्तव में यह बात निकलती है कि कोई समय ऐसा था जब तीन देवताओं का अस्तित्व न था। इस पर उस विशप ने जिसने सफलता के साथ एरियस का मुकाबला किया था इसी प्रश्न के वादविवाद में सर्वसाधारण के सामने अपनी वक्तृता शक्ति प्रगट की, और झगड़ा बढ़ता गया, और यहूदी और मूर्तिपूजक लोग जो सिकन्दरिया में बहुतायत से बसते थे नाट्यशालाओं में इसी झगड़े का नाटक करके अपना मनोरंजन करने लगे। उनके प्रहसन की मुख्य बात यह होती थी कि बाप और बेटे की अवस्था समान दिखाई जाती थी।

इस वादविवाद ने अन्त में ऐसा उपद्रव मचाया कि मामला सम्राट तक पहुंचाना पड़ा। पहिले तो उसने इस झगड़े को व्यर्थ ही समझा और कदाचित सचमुच एरियस के कथन की ओर झुका, कि वास्तव में पिता को पुत्र से जेठा होना ही चाहिए, परन्तु उस पर ऐसा दबाव डाला गया कि अन्त में उसे विवश होकर 'नीशिया' की सभा करना पड़ी जिसने झगड़ा मिटाने के लिये एक नियम पुस्तक बनाई और उसमें यह निम्न लिखित निष्कासन नियम रक्खा कि "पवित्र कैथलिक और ईसाई धर्म परिचालक धर्मसमाज उन व्यक्तों

को धर्म समाज से निकालता है जो कहते हैं कि किसी समय ईश्वर का पुत्र था ही नहीं, और जन्म लेने से पहिले वह था ही नहीं, और वह नास्ति से अस्ति किया गया है, अथवा किसी अन्य पदार्थ वा तत्व से निकाला गया है, और अथवा परिवर्तनशील है, वा उसमें कमी बढ़ी हो सकती है। कान्सटेन्टाइन ने सभा का यह निश्चित सिद्धान्त राजशक्ति द्वारा तुरन्त प्रचलित कर दिया।

थोड़े वर्षों के अनन्तर थीयोडोसियस राजा ने बलिदान करने की मनाही कर दी। चौपायों की आंतों का देखना वध करने का दोष ठहराया गया, और मन्दिर में जाने की मुमानियत कर दी। उसने धर्म परीक्षक नियत किए और आज्ञा निकाली कि वे सब लोग जो रोम के विशप डैमेसस और सिकन्दरिया के विशप पीटर के विश्वास का अनुकरण नहीं करते देश से निकाल दिए जावें, और उनके नागरिक स्वत्व छीन लिये जावें। उन लोगों को वध कर देने की आज्ञा दी जो ईस्टर का त्योहार उसी दिन मनाने की धृष्टता करते थे जिस दिन यहूदी लोग मनाते हैं। इस समय पश्चिमीय देशों में यूनानी भाषा का ज्ञान बन्द हो चला था, और सत्य विद्या विनष्ट होने लगी थी।

इस समय थियोफिलस सिकन्दरिया का बिशप था। ओसिरिस का प्राचीन मन्दिर नगर निवासी ईसाइयों को गिरजा बनाने के लिये दिये जाने पर ऐसी घटना हुई कि इस नवीन धाम बनाये जाने के हेतु नीव खोदते समय दैव योग से प्राचीन काल के पूजन की कुछ गर्हित मूर्तियां मिलीं। इनको लज्जा की अपेक्षा अधिक उत्साह से थियोफिलस ने बाज़ार में दिखलाया, जिस से सर्व साधारण लोग उनकी हँसी उड़ावें। इस बात से मूर्ति पूजक लोगों ने ईसाइयों की उस सहनशीलता से कम सहनशीलता दिखलाई जो उन्हों ने उस सयम दिखलाई थी जब त्रिदेव विषयक झगड़े के समय नाट्यशालाओं में उनकी हतक हुई थी। मूर्ति पूजकों ने अत्याचार करना प्रारम्भ किया और बगावत हो गई। उन्हों ने सिरैपियन को अपना सदर मुकाम बनाया। ऐसा हंगामा और इतना रक्तपात हुआ कि सम्राट को हस्तक्षेप करना पड़ा। उसने

सिकन्दरिया को एक राज्याज्ञा भेजी जिस में बिशप थियोफिलस को आज्ञा दी थी कि वह सिरैपियन को नष्ट भ्रष्ट करदे। और उस बड़े पुस्तकालय को जो टालेमी नामक राजाओं का इकट्ठा किया हुआ था, और जो ज्यूलियस सीज़र की लगाई हुई आग से बच गया था, उस धर्मोन्मत्त राजा ने तितर बितर करा दिया।

जिस बिशप पदवी पर थियोफिलस था उस पर उसका भतीजा सैन्ट साइरिल नियत किया गया जिसको सिकन्दरिया निवासी लोग अच्छा उपदेशक समझ कर पसन्द करते थे। उसी ने कुमारी मरियम का पूजन प्रचलित करने में बहुत कुछ उद्योग किया। परन्तु उस बड़े नगर के श्रोताओं पर जो उसका प्रभाव था उसे गणित विद्या-विशारद 'थियन' की 'हिपैशिया' नामक पुत्री ने, जिसने अफलातून और अरस्तू के सिद्धान्तों पर विवेचना करके ही नहीं अपने को प्रख्यात किया था वरन् अपालोनियस और अन्य रेखागणित-विद्या विशारदों की पुस्तकों पर टीकाएं लिख कर भी बहुत कुछ प्रख्याति पाई थी, बहुत कुछ घटा दिया था। उसके विद्यालय के सामने नित्य प्रति बहुत सी गाड़ियां खड़ी ही रहती थीं। उसका व्याख्यान-भवन सिकन्दरिया के धनी मानी और लोकाचार-चतुर लोगों से भरा ही रहता था। वे लोग उन प्रश्नों पर उसके व्याख्यान सुनने के लिये आया करते थे जो मनुष्य के चित में सब समयों में उठे हैं परन्तु जिनका उत्तर अब तक कभी नहीं दिया जा सका, जैसे, "मैं क्याहूं,?" "मैं कहां हूं?" और "मैं क्या जान सकता हूं?"।

हिपैशिया और साईरिल! तत्व ज्ञान और धार्मिक आग्रह! ये दोनों वस्तुएं एक साथ नहीं रह सकतीं। साईरिल ने ऐसा ही निश्चित किया और उस निश्चित मत के अनुसार काम भी किया। ज्योंही हिपैशिया अपने विद्यालय में पहुंची, त्योंही साईरिल के अनुगामी समूह ने अर्थात् बहुत से मठवासियों के समूह ने उस पर आक्रमण किया। उसे सड़क पर नंगी करके वे लोग उसे एक गिरजा घर में घसीट ले गये, और वहां 'पीटर दी रीडर' के लट्ठ

से वह मारी गई। उसकी लाश के टुकड़े २ कर दिए गए और उसका मांस सीपों द्वारा हड्डियों से खरोंच लिया गया और शेष भाग आग में डाल दिया गया। इस भयंकर पाप के लिए साईरिल से कुछ जवाब तक न तलब हुआ। ऐसा ज्ञात होता है कि यह बात मानली गई थी कि जिन उपायों से यह सफलता प्राप्त हुई वे पवित्र समझे गए।

इस भांति सिकन्दरिया में यूनानी तत्वज्ञान का अन्त हो गया। इस भांति जिस विद्या के प्रचार के हेतु 'टालमी' राजाओं ने बहुत कुछ किया था उसका असमय अन्त हो गया। सिरैपियन स्थान वाला छोटा पुस्तकालय तितर बितर हो चुका था। हिपैशिया की अन्तिम गति उन सब लोगों के लिए एक सूचना थी जो अपवित्र विद्या को बढ़ाना चाहते थे। इस समय से मनुष्यों के विचार में स्वतंत्रता न होने पाई। प्रत्येक मनुष्य को वैसे ही विचार करना चाहिए जैसे विचारों की धर्माध्यक्ष लोगों ने उसे सन् ४१४ में आज्ञा दी थी। स्वयं एथिन्स में तत्वज्ञान अपनी अन्तिम गति का मार्ग जोह रहा था। अन्त में जस्टीनियन ने उसके सिखाए जाने की मुमानियत ही करदी और उस नगर के उस विषय के सब विद्यालय बंद करवा दिए गए।

जिस समय रोम राज्य के पूर्वीय प्रान्तों में ये घटनायें हो रही थीं, उसी समय उसके पश्चिमीय प्रान्तों में वह उत्तेजना प्रगट हो रही थी जिसने ये घटनायें घटित कराई थीं। एक अँगरेज़ सन्यासी जिसका नाम पिलैजियस था पश्चिमीय यूरोप और उत्तरीय आफ्रीका में घूम रहा था। वह यह बात सिखाता था कि आदम के पाप के कारण ही इस संसार में मृत्यु का प्रचार नही हुआ वरन् इसके विरुद्ध मनुष्य की मृत्यु अवश्यम्भावी और प्राकृतिक है, और यदि कोई पाप भी न करै तो भी उसे मरना ही पड़ेगा। वह यह भी सिखलाता था कि मनुष्य के पापों का फल उसी तक सीमाबद्ध है, उसकी सन्तान पर उनका कुछ अधिकार नहीं। इन प्रतिज्ञाओं से पिलैजियस ने ईश्वर-विद्या सम्बन्धी कई एक बड़े बड़े फल निकाले थे।

रोम नगर में पिलैजियस का आदर सत्कार हुआ, परन्तु कार-थेज में सेन्ट आगस्टाइन के बहकाने से उस पर अभिशाप लगाया गया। डियासपेलिस की सभाने उसको नास्तिकता के दोष से मुक्त किया, परन्तु जब यह मामला रोम के विशप प्रथम इनोसेन्ट को सुनाया गया तब उसने उस सभा के विचार के विरुद्ध उसे दोषी ठहराया। दैव योग से ऐसा हुआ कि इसी समय इनोसेन्ट मर गया और उसके उत्तराधिकारी जोजीमस ने उसके निर्णय को रद् कर दिया और पिलैजियस की सम्मतियों को शास्त्रोक्त ठहराया। इन परस्पर विरोधी निर्णयों का अब तक बहुधा विरोधी लोग पोप लोगों की अनिश्चितता कह कर परिचय देते हैं। बातें ऐसी ही गड़ बड़ थीं कि आफ्रिका निवासी छली धर्माध्यक्षों ने काउन्ट वैलेरियस के प्रभाव द्वारा सम्राट से एक राज्याज्ञा प्राप्त की जिसमें पिलैजियस को नास्तिकता का दोष लगाया गया था। वह और उसके साथी देश से निकाल दिये गए और उसका माल असबाब जप्त कर लिया गया। यह कहना कि आदम के पतन के पहिले भी संसार में मृत्यु थी राज्य दोष ठहराया गया।

जिन सिद्धान्तों पर यह अद्भुत निर्णय किया गया था उन पर विचार करना बहुत शिक्षाप्रद है। निरा तत्वज्ञान का विषय होने के कारण प्रत्येक मनुष्य अनुमान कर सकता है कि यह विषय प्राकृतिक सिद्धान्तों पर निश्चित किया गया होगा, परन्तु इसके विरुद्ध इस विषय में केवल धर्मशास्त्रों के ही विचार प्रगट किये गए हैं। ईसाई धर्म के सिद्धान्तों का जो विवरण टरत्यूलियन ने किया है उसमें मननशील पाठक ने देखा होगा कि उसमें प्रथम पाप के सिद्धान्तों का नाम तक नहीं है, अन्तर दूष्टता की पूर्णता, भवतव्य अधीनता, कृपा और प्रायश्चित्त का वर्णन है। दो शताब्दी बाद जो मुक्ति की युक्ति मानी जाती थी उससे टरत्यूलियन के वर्णन किए हुए ईसाई धर्म का कुछ प्रयोजन नहीं जान पड़ता। आवश्यक विषयों पर निश्चित विचारों के लिये हम कारथेज निवासी सेन्ट आगस्टाइन के ऋणी हैं।

मृत्यु इस संसार में आदम के पतन के पहिले से थी, अथवा उसके पाप के हेतु संसार में दंडस्वरूप प्रचलित की गई इस बात के निर्णय करने में जो मार्ग ग्रहण किया गया है वह यह था कि पिलैजियस के विचारों की जांच की जाय कि वे प्रकृति से मिलते हैं वा सेंट आगस्टाइन के शास्त्रिक सिद्धान्तों से । और फल वैसाही हुआ जैसे फल की आशा थी । वह सिद्धान्त जिसको धर्माध्यक्ष लोगों ने शास्त्रानुकूल बतलाया था वर्तमान विज्ञान की सन्देह रहित खोजों से पलट दिया गया । पृथ्वी पर मनुष्य के पैदा होने से बहुत पहिले लाखों जीवधारी, नहीं वरन हजारों प्रकार और हजारों वर्ग के भी मर चुके थे। वे जीव धारी जो अब हमारे साथ वर्त्तमान हैं, उनकी अपेक्षा जो मर चुके हैं, बहुत ही थोड़े हैं ॥

इस पिलैजियस के वादविवाद का निर्णय करने से एक बहुत बड़ा आवश्यकीय फल निकल आया । वह यह कि इञ्जील पुस्तक ईसाई धर्म का मूलाधार बनाई गई । अगर शास्त्रिक मत से, उसके अदन बागीचे के पाप के वर्णन, और अवज्ञा, और आदम के दंड के वर्णन पर, इतना अधिक विश्वास किया गया है, तो तत्व ज्ञानी मत से भी वह प्राचीन विज्ञान का बड़ा भारी प्रमाण हो गया है । ज्योतिष, भूगर्भविद्या, भूगोलविद्या, शारीरिकविद्या, समयचक्रविद्या और वास्तव में सब ही विविध प्रकार के मनुष्योपयोगी ज्ञान उसके अनुसार ही ठहराए गए ।

चूंकि सेंट आगस्टाइन के सिद्धान्तों ने इस भांति धर्म और विज्ञान में विरोध करा दिया था, इस हेतु उस बड़े विद्वान के अधिक स्वच्छतत्वज्ञानी विचारों में से कुछ को संक्षेपत: जांचना मनोरंजक हो सकता है । इसी तात्पर्य्य से हम इञ्जील के पहिले अध्याय पर उसके विचारों के कुछ भाग चुने लेते हैं जो उसके "कन्फेशन्स" नामक पुस्तक के ग्यारहवें बारहवें, और तेरहवें अध्याय में लिखे हैं ।

इनमें तत्व ज्ञानिक वादविवाद हैं और बीच बीच में बहुत से गीत संग्रह हैं । वह विनय करता है कि ईश्वर उसे शास्त्र समझने की शक्ति

देगा और उसका अर्थ उस पर खोल देगा। वह कहता है कि शास्त्रों में कोई बात व्यर्थ नही है वरन् उनके शब्दों के बहुत से अर्थ हैं।

सृष्टि का ऊपरी भाग ही प्रमाण देता है कि कोई उसका सृष्टि कर्ता रहा है, परन्तु तुरन्त ही यह प्रश्न उठता है कि "स्वर्ग और पृथ्वी को उसने कैसे और कब बनाया ? । वे स्वर्ग और पृथ्वी में तो बनाए ही न गए होंगे, क्योंकि संसार संसार ही में बनाया नहीं जा सकता और न वे उस समय बनाये गए होंगे जब उनके बनने के लिये कुछ था ही नहीं"। सेंट आगस्टाइन इस मूलाधार प्रश्न की व्याख्या यों कह कर देता है कि "तूनेआज्ञा दी और वे बना दिए गए"।

लेकिन कठिनता का यहीं अन्त नहीं होता। सैन्ट आगस्टाइन आगे कहता है कि वे शब्दखंड तो ईश्वर के मुख से इस भांति निकले थे वे एक दूसरे के बाद निकले थे और इन शब्दों को प्रकाशित करने के लिए कोई बनाई हुई वस्तु अवश्य रही होगी। इस लिए यह बनाई हुई वस्तु स्वर्ग और पृथ्वी के पहिले अवश्य रही होगी, और तब भी संभव है कि स्वर्ग और पृथ्वी के पहिले कोई देह धारी वस्तु न हो। परन्तु यह वस्तु बनाई हुई ही होगी क्योंकि शब्द निकले और समाप्त होगए। परन्तु हम जानते हैं कि "ईश्वर के शब्द सदैव रहते हैं"।

इसके सिवाय यह प्रगट ही है कि इस प्रकार बोले हुये शब्द एक दूसरे के अनन्तर न बोले जासके होंगे वरन सब एक साथ ही निकले होंगे, नहीं तो उसके लिए समय और परिवर्तन रहा होगा, क्योंकि 'अनुक्रम' प्रकृति ही से समय लक्षित करता है। और कहा ऐसा गया है कि सिवाय नित्यता और अमरत्व के वहां कुछ था ही नही। ईश्वर उन बातों को अनादि काल से जानता और कहता है जो समय में घटित होती है।

इसके अनन्तर बड़ी गूढ़ता सहित सेन्ट आगस्टाइन उस तात्पर्य्य को निर्धारित करता है जो इञ्जील के प्रारम्भिक शब्दों में भरा है अर्थात् "प्रारम्भ में"। वह अपना नतीजा निकालने के लिए एक दूसरे शास्त्रीय वाक्य से सहायता लेता है "हे ईश्वर तेरे काम कैसे

आश्चर्य्य प्रद हैं, अपनी बुद्धि ही में तूने उन सब को बनाया है"। यह "बुद्धि" ही "प्रारम्भ" है। और उसी प्रारम्भ में ईश्वर ने स्वर्ग और पृथ्वी को उत्पन्न किया।

वह कहता है कि "कोई मनुष्य यह भी पूछ सकता है कि स्वर्ग और पृथ्वी बनाने से पहिले ईश्वर क्या करता रहा? क्योंकि यदि किसी विशेष समय से उसने काम करना प्रारम्भ किया तो इसका अर्थ तो समय का होना है न कि नित्यता। नित्यता में कोई वस्तु बिनाश नहीं होती सब ही ज्यों की त्यों स्थित रहती हैं। इस प्रश्न के उत्तर देने में वह उन वचन चातुर्य्यों को नहीं छोड़ सका जिनके हेतु वह इतना प्रख्यात था। वह कहता है कि "मैं इस प्रश्न का उत्तर ऐसा कह कर नही दूंगा कि वह उन लोगों के लिए नर्क बना रहा था जो उसका भेद जानने का उद्योग करते हैं। वरन् मैं यह कहता हूं कि स्वर्ग और पृथ्वी बनाने से पहिले उसने कुछ नही बनाया, क्योंकि एक वस्तु के बनाने से पहिले कोई वस्तु नही बनाई जासकती। समय स्वयं एक ईश्वर कृत वस्तु है और इसलिए यह असंभव है कि वह संसार की सृष्टि से पहिले रहा हो।

तब विचार करना चाहिए कि समय क्या वस्तु है?। विगत समय है ही नहीं, भविष्य समय है ही नहीं, वर्तमान समय को कौन कह सकता है कि वह क्या है जब तक कि ऐसा न मान लिया जाय कि वह ऐसा समय है जो दो अभावों के बीच में हैं। "बहुत समय" वा "थोड़ा समय" यह कोई वस्तु नही है, क्योंकि विगत और भविष्य यह कोई पदार्थ ही नहीं हैं। सिवाय आत्मा में रहने के उनका कोई अस्तित्व नहीं है"।

सेंट आगस्टाइन ने जिस लेखशैली में अपने विचार प्रगट किये हैं वह ईश्वर के साथ गीतों में बात चीत करने की शैली है। उसके ग्रंथ असंगत स्वप्न हैं। जिस से पाठक इस विवरण का ठीक अनुमान कर सकें इस हेतु मैं उसके बहुत से वाक्यखंडों को जहां तहां से लगभग ज्यों के त्यों उद्धृत करता हूं। निम्न लिखित वाक्यखंड उसके बारहवें अध्याय के हैं।

"हे मेरे ईश्वर जब मैं शास्त्रों को कहते हुये सुनता हूं कि प्रारम्भ में ईश्वर ने स्वर्ग और पृथ्वी को बनाया। और पृथ्वी अदृष्ट और रूप रहित थी और समुद्र पर अंधेरा छाया था और यह नहीं बताते कि तूने किस दिन उनको बनाया, तब जो विचार मेरे चित्त में पैदा होता है वह यह है कि यह कथन उस स्वर्गों के स्वर्ग के लिये है, उस बुद्धि सम्बन्धी स्वर्ग के लिए है जिसकी मानसिक शक्तियां सब बातों को एक साथ जानती हैं, टुकड़े टुकड़े करके नहीं, सन्दिग्ध रूप से नहीं, दूरबीन द्वारा नहीं, बस एकत्र रूप से प्रत्यक्ष में, सामने सामने, कभी यह वस्तु कभी वह वस्तु ऐसा नहीं वरन् (जैसा कि मैं ने कहा है) सब वस्तुओं को एक ही साथ बिना समय अनुक्रम के, और उस पृथ्वी के विषय में, उस अदृष्ट और रूप रहित पृथ्वी के विषय में यह समझता हूं कि वह भी विना समय के अनुक्रम के बनाई गई है, क्योंकि अनुक्रम से कभी यह वस्तु, कभी वह वस्तु ऐसा प्रगट होता है; क्योंकि जहां रूप नहीं है वहां वस्तुओं का भेद नहीं है। इसलिये तब इन्हीं दोनों के लिये अर्थात् रूप सहित आदि वस्तु और रूप रहित आदि वस्तु अर्थात् स्वर्ग, स्वर्गों का स्वर्ग, और पृथ्वी, चर और रूपरहित पृथ्वी। मैं समझता हूं कि इन्हीं दोनों के विषय में विना समय बताए हुए शास्त्र ने कहा है कि आदि में ईश्वर ने स्वर्ग और पृथ्वी बनाए। क्योंकि तदनन्तर वह उस कथित पृथ्वी का नाम देता है और उसमें भी उस आकाश के विषय में लिखा है कि दूसरे दिन बनाया गया और उसका नाम स्वर्ग पड़ा। इससे हम समझ सकते हैं कि बिना समय बताये हुए उसने किस स्वर्ग के विषय में कहा है"।

"तेरे शब्दों में विचित्र गहराई है। उनका ऊपरी भाग हमारे सामने है और छोटी बातों की ओर आकर्षित करता है, तथापि वे बहुत गहरे हैं, हे ईश्वर वे बहुत ही गहरे हैं। उनके आन्तरिक भाव को देखना भयप्रद है, जो आदर और प्रेम का भय है। उसके शत्रुओं को मैं बड़ी घृणा से देखता हूं। कैसी अच्छी बात हो यदि तू उनको अपनी दोधारी तलवार से मार डाले जिससे वे फिर उससे

शत्रुता न करें, क्योंकि मैं उनका मारा जाना इसलिये पसंद करता हूं जिससे वे तुझ से मिल कर जीते रहें"।

"धर्मग्रन्थों के अन्तर्गत भावों को सेंट आगस्टाइन ने जिस विशद् रीति से वर्णन किया है उसके उदाहरण स्वरूप में यह निम्न लिखित बार्ता "कन्फेशन्स" नामक पुस्तक के तेरहवें अध्याय से लिखता हूं। इससे उसका तात्पर्य्य यह दिखलाने का है कि त्रिदेव वाला सिद्धान्त मूसाकृत प्रकृति वर्णन में पाया जाता है। वह लिखता है कि "देखो अब मुझे त्रिदेव सिद्धान्त धुँधले रूप से एक शीशे में देख पड़ता है, जो हे मेरे ईश्वर तू ही है। हे पिता तू ही इस कारण से है कि वह वस्तु तू ही है जिसमें हमारी बुद्धि की आदि है और वह तेरी बुद्धि है जो तुझी से पैदा हुई है, तेरे ही बराबर की है, और तेरे ही समान अनादि है, अर्थात् तूने अपने पुत्र स्वरूप स्वर्ग और पृथ्वी को बनाया हम उस स्वर्गों के स्वर्ग के विषय में बहुत कुछ कह चुके और अदृष्ट और रूपरहित पृथ्वी के विषय में और काले समुद्र के विषय में भी बहुत कुछ कह चुके हैं। उस आकाश की अध्यात्मिक विरूपता के विषय में भी कहा गया है, यहां तक कि वह उसी में परिवर्तन हो जाता है जहां से उसने अपनी चैतन्यता पाई है, और उसी के प्रकाश से एक मनोहर वस्तु हो गया है, और उस आकाश के विषय में भी बहुत कुछ कहा गया है जो कुछ दिन बाद सांसारिक और आकाशी जलों के बीच में स्थापित हुआ। और ईश्वर के नाम से मैं उसी बाप को मानता हूं जिसने ये सब वस्तुएं बनाई हैं। और प्रारम्भ के नाम से मैं उस पुत्र को मानता हूं, जिसमें उसने ये सब चीजें बनाईं। और मैं अपने ईश्वर ही को त्रिदेव मानता हूं। मैंने उसके पवित्र शब्दों में और अधिक खोज की, और, देखो! तेरी आत्मा पानी के ऊपर चलती हुई पाई। अब त्रिवेद को देखो! मेरा ईश्वर पिता, पुत्र और पवित्र आत्मा के रूप से सब सृष्टि का कर्ता है"।

इस हेतु से कि मैं सेंट आगस्टाइन के तत्वज्ञान सम्बन्धी लेखों का ठीक तात्पर्य्य अपने पाठकों को समझा सकूं, मैंने यहां पर दिये हुये दो अवतरणों में, अपने अनुवाद के स्थान में रेवरेन्ड डाक्टर

'पुसी' का अनुवाद दिया है जैसा कि "लाईब्रेरी आफ फादर्स आफ दी होली कैथलिक चर्च" नामक पुस्तक की पहिली जिल्द में, जो १८४० ईस्वी में आक्सफोर्ड में छपी थी, पाया जाता है।

लगभग १५०० वर्ष तक धार्मिक लोगों ने सेंट आगस्टाइन के लेखों को जैसा प्रमाणिक माना है उसका विचार करके यह बात उचित जान पड़ती है कि उनके विषय में आदर सहित बात चीत की जाय। और वास्तव में आवश्यक भी नहीं है कि इसके विरुद्ध किया जाय। जो वाक्यखंड यहां उद्धृत किये गये हैं वे स्वयं अपना खंडन करते हैं। विज्ञान और धर्म का विरोध करा देने में जितना अधिक उद्योग सेंट आगस्टाइन ने किया है उतना किसी दूसरे ने नहीं किया। उसीने बाइबिल को अपने सच्चे धर्म (पवित्र जीवन का पथदर्शक) से दूसरीओर फेरदिया और उसको मानवी ज्ञान का स्वच्छन्द न्याया-धीश होने के भयंकर स्थान में बैठाल दिया। यह काम मनुष्य के मन के ऊपर बड़े भारी अत्याचार का है। एक बार उदाहरण पाने पर फिर अनुगामियों को काहे की कमी थी। बड़े बड़े यूनानी तत्वज्ञानियों के ग्रंथों पर नास्तिक होने का दोष लगाया गया। सिकन्दरिया के अजायबघर की बड़ी बड़ी सफलतायें अज्ञान, धर्मोन्मत्तता, और अस्पष्ट कथनों के बादल से छिप गईं। इस बादल से बहुधा पादरियों के क्रोध की विनाशक बिजली चमका करती थी।

वैज्ञानिक ईश्वरवाक्य के अनुसार दुरुस्ती, परिवर्तन, और उन्नति नही हो सकती। वह अनावश्यक और धृष्टता समझ कर सब प्रकार की नवीन खोज का साहस करने को मना करता है। इस बात को वह यों मानता है कि ऐसा करना मानो उन बातों के अन्दर पैठना है जिनको ईश्वर हमसे छिपाये रखना चाहता था।

तब वह पवित्र और ईश्वर कथित विज्ञान कौनसा है जिसको पादरियों ने सर्वज्ञान का समूह माना है। वह विज्ञान सब प्राकृतिक और आत्मिक घटनाओं को मानवी कार्य्यों से उपमा देता है। वह सर्वशक्तिमान और अनादि ईश्वर को केवल एक विराट मनुष्य मानता है।

पृथ्वी के विषय में वह कहता है कि यह एक सम धरातल है जिस पर आकाश छत्र की भांति फैला है। अथवा जैसा सेंट आगस्टाइन कहता है कि शरीर के चमड़े की भांति फैला हुआ है। इसी में सूर्य्य, चन्द्रमा और नक्षत्रादि घूमते हैं जिससे कि वे मनुष्य को दिन और रात प्रकाश देवें। पृथ्वी उस वस्तु से बनाई गई जिसको ईश्वर ने नास्ति से निकाला था, और सबे अपने जीव जन्तुओं और वृक्ष तलाओं के छः दिन में बन कर पूर्ण हो गई। आकाश के ऊपर स्वर्ग है और पृथ्वी के नीचे अंधेरे और अग्निपूर्ण स्थान में नर्क है। पृथ्वी इस ब्रह्मांड के बीच में है और सब से अधिक आवश्यक व्यक्ति है और अन्य वस्तुएं उसके साथ और सेवा के लिये हैं।

मनुष्य के विषय में कहा गया है कि वह पृथ्वी की मिट्टी से बनाया गया है। पहिले वह अकेला था परन्तु कुछ दिन बाद उसकी एक पसुली से स्त्री बनाई गई। ईश्वर की बनाई हुई वस्तुओं में से मनुष्य सब से बड़ी और सब से अच्छी वस्तु है। वह फरात नदी के किनारों के निकट वैकुण्ठ में रखा गया, और बहुत बुद्धिमान और बहुत पवित्र था, परन्तु मना किये हुये फल को खाकर और इस प्रकार दी हुई आज्ञा को भंग करके उसने परिश्रम और मृत्यु का दंड पाया।

उस प्रथम मनुष्य के बंशज उसके दंड से न डर कर ऐसे पापा-चरण करते रहे कि उनको बिनाश कर देना आवश्यक समझा गया। इसलिए पृथ्वी पर एक जल की बाढ आई और पहाड़ों की चोटियों तक उठी। अपना कार्य्य पूरा करके वह पानी पवन से सूख गया।

इस आपत्ति से केवल नूह और उसके तीन लड़के अपनी स्त्रियों सहित एक नाव में चढ़कर बच गये। इन्हीं लड़कों में से 'श्याम' एशिया में रहा और उसे फिर से बासाया। 'हेम' ने आफ्रिका बसाया और जेफिट ने यूरोप बसाया। चूंकि प्राचीन काल के मनुष्य अमेरिका को नहीं जानते थे इस हेतु वहां के निवासियों के लिये कोई पूर्व पुरुष नहीं दिया।

अच्छा अब हमें वे प्रमाण ध्यान से सुनना चाहिये जो इन

कथनों की पुष्टि में दिये जाते हैं। इस प्रकार लैकटेन्टियस पृथ्वी के गोलाकार होने के नास्तीकता-पूर्ण सिद्धान्त की ओर इशारा करके कहता है कि "क्या यह सम्भव है कि मनुष्य ऐसा न्याय रहित हो जावे कि वह विश्वास करने लगे कि पृथ्वी की दूसरी ओर के अनाज के पौधे और पेड़ नीचे को लटका करते हैं, और मनुष्यों के पैर उनके सिरों से ऊंचे की ओर होते हैं? अगर तुम उनसे पूछो कि तुम इन अद्भुत बातों को कैसे प्रमाणित कर सकते हो, पृथ्वी के उस ओर की वस्तुएं क्यों नहीं गिर पड़ती, तो वे उत्तर देते हैं कि वस्तुओं की प्रकृति ही ऐसी है कि भारी २ वस्तुएं पहियों के आरों की भांति अपने केन्द्र की ओर खिचतीं हैं और हलकी वस्तुएं जैसे बादल, धुआं ओर आग केन्द्र से आकाश की ओर खिचती हैं। अब मैं वास्तव में हैरान हूं कि मैं उन मनुष्यों के विषय में क्या कहूं जो एक बार भूल करने पर सदैव अपनी मूर्खता ही पर चले जाते हैं और एक मिथ्या सम्मति की दूसरी मिथ्या सम्मति से पुष्टि करते हैं"। पृथ्वी के उस ओर के निवासियों के विषय में सेन्ट आगस्टाइन कहता है कि "यह बात असम्भव है कि पृथ्वी की दूसरी ओर मनुष्य बसते हों, क्योंकि आदम के वंशजों में से किसी का उधर रहना शास्त्र में नहीं लिखा है"। परन्तु कदाचित पृथ्वी की गोलाई के विरुद्ध सब से अधिक अकाट्य तर्क यह थी कि "ईश्वरीय न्याय के दिन पृथ्वी की दूसरी ओर के मनुष्य ईश्वर को आकाश से उतरते हुए नहीं देख सकते"।

यह बात मेरे लिये अनावश्यक है कि मैं संसार में मृत्यु के प्रचार के विषय में, सांसारिक घटनाओं में प्रेतात्माओं के लगातार हस्ताक्षेप के विषय में, देवतों और भूतों के कामों के विषय में और पृथ्वी के भविष्य विनाश के विषय में बाबिल नगर के गरगज के विषय में, भाषाओं की गड़बड़ के विषय में, मनुष्य जाति के तितर बितर होने के विषय में, ग्रहण और इन्द्रधनुष की सी प्राकृतिक घटनाओं के विवरण के विषय में कुछ कहूं। और सर्वोपर मैं प्राचीन मनुष्यों के ईश्वर विषयक विचारों पर टीका टिप्पणी करने से

अरुचि रखता हूं। वे बहुत ही आकार उपासक हैं और उनमें महानुभावता नहीं है।

परन्तु कदाचित मुझको 'कास्मम इन्डीका पलियसटीज' के उन विचारों का अवतरण देना पड़े जो छठवीं शताब्दी में प्रचलित थे। उसने एक पुस्तक लिखी है जिसका नाम 'क्रिश्चियन टोपाग्रेफी' है, जिसका मुख्य तात्पर्य्य पृथ्वी के गोलाकार होने की नास्तीक सम्मतियों को काटना, और मूर्ति पूजकों के उस कथन को काटना था कि उष्ण कटिबन्ध के दक्षिण ओर भी एक समशीतोष्ण कटिबन्ध है। वह कहता है कि सच्ची शास्त्रोक्त भूगोलविद्या के अनुसार पृथ्वी एक चौकोर धरातल है, जो पूर्व और पश्चिम को चार सौ मंजिल तक फैली हुई है, और उत्तर दक्षिण को ठीक उसकी आधी है, और ऐसे पहाड़ों से घिरी हुई है जिन पर आकाश रखा हुआ है; और उनमें से एक जो उत्तर दिशा में है दूसरों से अधिक ऊँचा है जो सूरज की किरणों को रोक कर रात्रि करता है; और पृथ्वी का धरातल समदिगन्त नहीं है, वरन् उत्तर की ओर से दक्षिण की ओर को कुछ ढलुआ है, इसी कारण फ्रात, टिगरिस और अन्य नदियां जो दक्षिण को बहती हैं शीघ्रगामिनी हैं, परन्तु नील नदी जिसको ऊँचाई की ओर चलना पड़ता है आवश्यकता बश बहुत मंद धारा वाली है।

माननीय 'बीड' सातवीं शताब्दी में लिखता हुआ कहता है कि सृष्टि रचना छः दिन में पूर्ण हो गई थी और पृथ्वी उसके बीचों बीच में है और उसकी पहिली वस्तु है। आकाश आग्नेय और सूक्ष्म प्रकृति का है, गोला है और छत्रवत् पृथ्वी के केन्द्र से उसका प्रत्येक भाग सम दूरस्थ है। वह प्रति दिन बड़ी शीघ्रता से घूमता है, उसकी गति सात ग्रहों से टकराने से कुछ कम हो जाती है, जिनमें से तीन अर्थात् शनिश्चर, बृहस्पति और मंगल सूर्य से ऊपर हैं, तब सूर्य है और तीन ग्रह अर्थात् शुक्र, बुध और चन्द्रमा सूर्य से नीचे हैं। सितारे अपने नियत मार्गों पर घूमा करते हैं। उतरीय सित्तारे सब से छोटा बृत्त बनाते हैं। सब से उच्च आकाश की भी उचित सीमा

हैं। उसमें वे देवदूतों की सी नेक आत्मायें रहती हैं जो पृथ्वी पर उतर आती हैं, सूक्ष्म शरीर धारण करती हैं, मनुष्यों के से काम करती हैं और लौट जाती हैं। आकाश हिमवत् पानी से समशीतोष्ण रखा जाता है, नहीं तो उसमें आग लग जाय। सब से नीचे वाला आकाश आकाश कहलाता है क्योंकि वह बहुत ऊंचे के जलों और नीचे के जलों को अलग २ करता है। ये आकाश के जल आत्मिक आकाश से नीचे हैं, और सब देहधारी व्यक्तियों से ऊंचे हैं जिस के विषय में कोई २ यों कहते हैं कि दूसरी जलवाढ़ के लिये हैं, और कोई २ अधिक सत्यता सहित यों कहते हैं कि स्थिर नक्षत्रों की आग को कम करने के लिये हैं।

क्या यह बात इसी अयुक्ति व्यवस्था के लिये, इसी अज्ञान और धृष्टता के फल के लिये की गई थी कि यूनानी तत्वज्ञानियों की पुस्तकें छुड़वा दी गईं? । यह बात उचित समय ही पर हुई कि उन बड़े विवेचकों ने, जो रिफारमेशन के समय में प्रगट हुए, उन ग्रंथ कर्ताओं के ग्रंथों का परस्पर मुकाबिला करके उनको उनके ठीक स्थान तक लाये, और लोगों को उनसे घृणा करना सिखलाया।

इस धृष्ट प्रथा का सब से अधिक आश्चर्य्यप्रद भाग उसका न्याय और उसके प्रमाणों की रीति थी। यह प्रथा अमानुषिक कर्मों की साक्षी पर भरोसा करती थी। किसी अन्य वस्तु के आश्चर्य्य प्रद उदाहरण से कोई अन्य घटना सिद्धभूत मान ली जाती थी। एक अरब देश का लेखक इस प्रथा की ओर इशारा करके कहता है कि यदि कोई इन्द्रजाली मुझसे यह कहै कि दस से तीन अधिक होते हैं और इसके प्रमाण में मैं इस छडी को सर्प बना दूंगा" तो मैं उसके इस हाथ की सफाई पर आश्चर्य्य कर सकता हूं परन्तु मुझे उसके कथन को मानना नहीं चाहिए"। तब भी एक हजार वर्ष से अधिक तक यही तर्कशास्त्र माना गया था और सब यूरोप भर में इसी प्रकार की असंगत प्रतिज्ञायें इसी प्रकार के प्रहसन योग्य प्रमाणों से मानली जाती थीं।

इस कारण से कि वह समूह जो राज्य में अधिक प्रभावशाली

हो गया था बड़े बड़े मूर्तिपूजक लेखकों के ग्रंथों के बराबरी के मानसिक ग्रंथ नहीं लिख सकते थे, और इस कारण से कि उस राज्य के लिये यह असम्भव था कि वह किसी से नीचा स्थान स्वीकार करले, उस राज्य में अपवित्र विद्या के दबाने और मारने की राजनैतिक आवश्यकता पैदा हुई। वैलेन्टीनियन के आधिपत्य में रहने वाले अफलातून के अनुगामियों का मारा जाना इसी आवश्यकता के कारण था। उन पर जादू करने का दोष लगाया गया और उनमें से बहुत से मरवा डाले गये। तत्वज्ञानी होना भयप्रद हो उठा अर्थात् यह काम राजदोष माना गया। इसके स्थान में आश्चर्य्यप्रद बातों की गाढाभिलाष पैदा हो गई, अर्थात मिथ्या विश्वास की लालसा उभड़ उठी। मिसिर देश उन बड़े आदमियों के बदले जिन्होंने वहां के अजायबघर को अमिर बना दिया था एकाकी रहने वाले जोगियों के समूहों और एकान्तवासिनी कुमारियों के समूहों से भर गया।

तीसरा अध्याय।

ईश्वर की एकता के सिद्धान्त के विषय का झगड़ा--अर्थात् पहिला वा दक्षिणीय सुधार।

(कुमारी मरियम का पूजन प्रचलित करने के लिये मिसिर निवासियों ने हठ किया। कुस्तुन्तुनियां के पादरी नेस्टर ने उनका विरोध किया, परन्तु अन्त में राजा पर उनका प्रभाव होने के कारण नेस्टर देश से निकाल दिया गया और उसके अनुगामी तितर बितर हो गये। दक्षिणीय सुधार की प्रस्तावना--फारिस निवासियों का आक्रमण, उसके सदाचार सम्बन्धी प्रभाव।

अरब देश का सुधार--महम्मद का नेस्टर के सिद्धान्त के अनुगामियों से सामना हो गया। कुमारी मरियम की पूजा, त्रिदेव विषयक सिद्धान्त, और ईश्वर की अद्वैतता की विरोधी बातों को छोड़ कर उसने उनके सिद्धान्तों को स्वीकार किया और फैलाया।

उसने अरब देश में मूर्ति पूजन जबरदस्ती बन्द करा दिया। और रोम राज्य से लड़ने की तय्यारी की—उसके उत्तराधिकारियों ने सीरिया, मिसिर, एशियामाईनर, और उत्तरीय आफ्रिका विजय कर लिया और फ्रान्स पर चढ़ाई की।

इस झगड़े के प्रतिफल रूप रोम राज्य के बड़े भारी भाग में ईश्वर की अद्वैतता का सिद्धान्त स्थिर हो गया। विज्ञान को लोग फिर पढ़ने लगे और ईसाई धर्म ने अपने बहुत से मुख्य नगर जैसे सिकन्दरिया, कारथेज, और जैरोशैलम खोदिये)

——:o:——

रोम के दरबार की गूढ़नीति ने प्राथमिक ईसाई धर्म को मूर्ति-पूजक धर्म का रूप दिया था, और उसको उसने राज्य में बसने वाले मूर्तिपूजकों में सर्वत्र फैलाया था। इस प्रकार दोनों समूहों का सम्मेलन हो चुका था। अर्थात ईसाई धर्म मूर्तिपूजक धर्म में मिल गया था और मूर्तिपूजक धर्म ईसाई धर्म में। इस प्रकार सम्मिलित धर्म की सीमायें रोम राज्य की सीमाएं ही थीं।

इस बड़े फैलाव के साथ ही साथ ईसाई समूह में राज्य नैतिक प्रभाव और धन भी आ गया था। सरकारी आमदनी में से एक बड़ा भाग धार्मिक कोशों में जाता था। जैसा कि ऐसी दशाओं में बहुधा हुआ करता है, लूट की वस्तुओं के बहुत से लोग दावादार हो गये। वे मनुष्य बहुत बढ़ गये जो बढ़ते हुये धर्म के उत्साह के बहाने से केवल उसके लाभों से आनन्द उठाना चाहते थे।

प्राचीन सम्राटों की अधीनता में विजय प्राप्ति की पराकाष्ठा हो चुकी थी। राज्य पूरा हो चुका था, अब सैनिक जीवन के योग्य वस्तुएं शेष न रही थीं, युद्ध सम्बन्धी अपहरण और प्रान्तों के लूट लेने के दिनों का अन्त हो चुका था। परन्तु उत्साही मनुष्यों के लिये दूसरी वस्तुएं प्रगट हो गई थीं। सफलता सहित धार्मिक जीवन व्यतीत करने से भी ऐसे फल मिलते थे जो प्राचीन समय के सैनिक जीवन से प्राप्त फलों से कम न थे।

उस समय का धार्मिक इतिहास, और जिसे वास्तव में राजनैतिक इतिहास कह सकते हैं तीन बड़े राज्य नगरों के पादरियों के झगड़ों से भरा हुआ है अर्थात कुस्तुनतुनिया, सिकन्दरिया और रोम के विशप अपने अपने बड़प्पन के लिए झगड़ते थे। कुस्तुनतुनिया ने अपना दावा इस बात पर स्थापित किया था कि वह उस समय राज्य नगर था। सिकन्दरिया अपने व्योपारिक होने और विद्वानों की ओर इंगित करता था और रोम अपने आवेदन पत्रों की ओर, परन्तु कुस्तुनतुनिया के पादरी के लिए यह कठिनाई थी कि उसे बहुत अधिक अपनी हानि सह कर भी, सम्राट के अधीन और निरीक्षण में रहना पड़ता था। दूर होने के कारण सिकन्दरिया और रोम के धर्माध्यक्ष सुरक्षित थे।

पूर्वीय देशों में धार्मिक झगड़े बहुधा ऐसे ही हुआ करते थे जिनमें ईश्वर के गुणों और स्वभाव के विषय में लोगों की भिन्न भिन्न संमतियां हुआ करती थीं। और पश्चिमीय देशों में इन बातों पर धार्मिक झगड़े हुये कि मनुष्य का ईश्वर से क्या सम्बन्ध है और जीवन क्या पदार्थ है। एशिया और यूरोप में ईसाई धर्म में जो जो परिवर्तन हुये उनमें यह विशेषता मुख्य रूप से प्रगट होती रही है; अतएव जिस समय की वार्ता हम कर रहे हैं उस समय रोम राज्य के सब ही पूर्वीय प्रान्त मानसिक अराजकता प्रगट करते थे। त्रिवेद सम्बन्धी सिद्धान्त, सारभूत ईश्वर, ईश्वर पुत्र की स्थिति, पवित्रात्मा का स्वभाव, और कुमारी मरियम के प्रभाव इन विषयों पर बड़े बड़े झगड़े हो रहे थे। कभी कोई समूह चमत्कारिक कार्य्यों का प्रमाण दे कर विजय का डंका बजाता, कभी कोई समूह रक्त पात से अपनी विजय स्थिर करता। परन्तु कभी किसी समूह ने इस बात का उद्योग न किया कि अपनी २ सम्मतियों की न्याययुक्त जांच होने दे। परन्तु सब समूह इस बात को मानते थे कि जिस सरलता से वे पराजित कर दिये गए वह सरलता ही इस बात को प्रमाणित करती है कि धर्म की पुरानी मूर्तिपूजकता नास्तिकता थी। विजयी धार्मिक

लोग कहते थे कि जब जांच का समय आया तब देवताओं की मूर्तियां अपनी रक्षा करने में सफल न हुईं।

दक्षिणीय यूरोप की जातियां सदैव बहुदेव सम्बन्धी विचारों को मानती रही हैं। और आफ्रिका निवासी पुरानी जातियां ईश्वर को एक मानती रही हैं। कदाचित यह बात इस कारण से हो, जैसा कि एक हाल के ग्रंथकर्ता ने अनुमान किया है, कि पहाड़ों और घाटियों के विविध भांति के दृश्य, अनेक द्वीप, नदियां और खाड़ियां मनुष्य के चित्त में बहुत से देवताओं का विश्वास पहिले ही से जमा देती हैं। एक भारी बालुकामय मरुस्थल, और सीमारहित समुद्र मनुष्य के चित्त में ईश्वर की अद्वैतता का विचार अंकित कर देते हैं

राज्यनैतिक कारणों से सम्राट लोग ईसाई और मूर्तिपूजन से मिले हुये धर्म पर कृपा दृष्टि रखते थे। और निःसन्देह इस द्वारा से विरोधी समूहों के विरोध की कठिनता कुछ कुछ घट जाती थी। सर्वप्रिय और लोकाचारचतुर ईसाई धर्म का स्वर्ग प्राचीन आलिम्पस पहाड़ था, जहां से आदरणीय यूनानी देवता हटा दिये गये थे। वहां एक बड़े श्वेत सिंहासन पर पिता रूप ईश्वर बैठता था, उसकी दाहिनी ओर उसका पुत्र और उसके अनन्तर स्वर्णवस्त्र धारण किये हुये और विविध प्रकार के स्त्रियोचित आभूषणों से लदी हुई पवित्र कुमारी मरियम बैठती थी। बांई ओर पवित्र आत्मा विराजती थी। इन सिंहासनों के चारों ओर बहुत से फिरिश्ते अपने अपने बीणा लिए हुये बैठते थे। और सामने का बड़ा मैदान मेज़ों से भर जाता था, जिन पर सच्चे पुरुषों की प्रसन्न आत्मायें बैठ कर सदैवकालीन भोज उड़ाया करती थीं।

यदि इस आनन्द के चित्र से संतुष्ट होकर अपढ़ मनुष्यों ने कभी यह न पूछा था कि ऐसे स्वर्ग की विद्रीवार सब बातें कैसे होती हैं, अथवा ऐसे अपरिवर्तनीय दृश्य की अरुचि में कितना आनन्द मिल सकता है, तो बुद्धिमान मनुष्यों की ऐसी स्थित न थी। जैसा कि हम शीघ्र ही देखेंगे, ऊंचे धार्मिक मनुष्यों में कुछ ऐसे भी मनुष्य थे जो भयभीत भावों सहित इन कायिक और भौतिक विचारों को नहीं

मानते थे और सर्वत्र व्यापी सर्वशक्तिमान ईश्वर के गुणों के प्रतिपादन करने में बहुत कुछ कहते थे।

धर्म को मूर्तिपूजक बनाने में जैसा कि इस समय हर ओर हो रहा था प्रत्येक पादरी ने अपने अधीनस्थ समूह में प्रचलित बहुत प्राचीन विचारों को स्वीकार करने में बहुत स्वार्थ लिया। इस भांति मिसिर निवासियों ने अपने विचित्र त्रिदेव सम्बन्धी विचारों को जबरदस्ती धर्माध्यक्षों के मत्थे मढ़ा और अब उन्होंने निश्चय कर लिया था कि कुमारी मरियम के पूजन के बहाने आईसिस देवी का पूजन फिर से प्रचलित किया जाय।

ऐसा संयोग हुआ कि नेस्टर नामक ऐंटीआक नगर के बिशप को जो मापसूसटिया निवासी थियाडोर के से तत्वज्ञानी विचार रखता था, छोटे थियोडोसियस सम्राट ने कुस्तुनतुनिया के धर्माध्यक्ष के पद पर सन् ४२७ ई० में बुलाया था। नेस्टर ने निन्दा के ही बराबर समझ कर सर्वसाधारण में प्रचलित ईश्वर के मनुष्याकार होने का तुच्छ सिद्धान्त नहीं माना, और अपने मन में एक भव्य, अनादि अनन्त, देव का चित्र खींच लिया, जो सर्व ब्रह्मांड में व्याप्त था और जिसमें मनुष्य के से आकार और गुण कोई न थे। नेस्टर के चित्त में अरस्तू के सिद्धान्त भरे हुये थे और वह उन्हें शास्त्रिक ईसाई सिद्धान्तों से मिलाने का उद्योग करता था। इस हेतु सिकन्दरिया के बिशप साईरिल से उसका झगड़ा हो गया। साईरिल मूर्तिपूजक समाज का प्रतिनिधि बना, और नेस्टर तत्वज्ञानी समाज का। यह वही साईरिल था जिसने हिपैशिया को मार डाला था। साईरिल की बड़ी इच्छा थी कि कुमारी मरियम ईश्वर माता की भांति मान ली जाय, और नेस्टर यह चाहता था कि ऐसा न होना चाहिए। कुस्तुनतुनिया में नगर के बड़े गिरजाघर में एक धार्मिक व्याख्या देते समय उसने सर्व शक्तिमान और अनादि ईश्वर के गुणों का प्रतिपादन किया, तदनन्तर उसने ज़ोर से कहा "क्या ऐसे ईश्वर की भी माता हो सकही है" ? दूसरे व्याख्यानों और लेखों में उसने बड़े स्वच्छ विचारों के साथ यह बात प्रतिपादन की है कि कुमारी मरियम को ईश्वर की

माता नहीं वरन् ईसा के मानवी भाग की माता समझना चाहिए, क्योंकि वह मानवी भाग दैवी भाग से अवश्य प्रथक है, जैसे मन्दिर उसमें स्थापित देवता से प्रथक पदार्थ है।

सिकन्दरिया के सन्यासियों से बहकाये जाने पर कुस्तुनतुनिया के सन्यासियों ने ईश्वर की माता (कुमारी मरियम) की ओर से हथियार उठाये। यह झगड़ा इतना बढ़ा कि सम्राट को विवश होकर एफीसस में एक सभा करनी पड़ी। इसी समय में साईरिल ने राज्य-दरबार के विशेष कंचुकी को बहुत सी स्वर्ण मुद्रा घूस में दी थीं और इस द्वारा सम्राट की बहिन पर अपना प्रभाव डाला था। स्वर्गीय दरबार की पवित्र कुमारी ने इस भांति राज्यदरबार की पवित्र कुमारी में अपनी ही जाति की एक सहायका पा ली थी। साईरिल नीच जाति के पुरुष और स्त्रियों का एक समूह लिये हुए शीघ्रता से सभा में पहुंचा। वह तत्कालही सभापति बना और तुमुल कोलाहल के बीच में सीरिया के धर्माध्यक्षों के पहुंचने से पहिले ही राजाज्ञा पढ़ सुनाई। एकही दिन में उसने विजय प्राप्त की। नेस्टर की ओर से मेल कर लेने की सबही बातें कुछ भी न मानी गईं, उसके विवरण पढ़े ही न गये और बिना उसका उत्तर सुनेही उसे दंड दे दिया गया। सीरिया के पादरियों के पहुंचने पर एक विरोध-सभा हुई। सेंट जान के गिरजा में एक दंगा होगया जिस में बहुत रक्तपात हुआ। नेस्टर दरबार से निकाल दिया गया और अन्त में एक मिसिर देश के शाद्वल-स्थान को निकाल दिया गया। उस पर दोष लगाने वालों ने उसे यथा शक्ति हर एक प्रकार से जीवन भर कष्ट दिया, और मरने पर ऐसा मशहूर कर दिया कि उसकी ईश्वर निन्दक जीभ को कीड़ों ने खालिया था और मिसिर देश के मरुस्थल की गर्मी से वह नर्क के अधिक तप्त कष्टों में चला गया।

परन्तु नेस्टर के पराजय और दंड ने उसके विचारों को किसी प्रकार नहीं मिटाया। वह और उसके अनुगामी लोगों ने सेंट मत्ती के पहिले अध्याय के अन्तिम पद्य, और उसी इञ्जील के तेरहवें अध्याय के पचपनवें और छप्पनवें पद्यों पर हठ करते हुये, नवीन स्वर्गीय

रानी (कुमारी मरियम) के सदैवकालीन कुमारीपन को कभी नहीं माना। उनके तत्वज्ञानिक विचार शीघ्रही उनके कार्य्यों से प्रगट हो गये। जिस समय उनका अगुवा आफ्रिका के एक शाद्वल-स्थान में कष्ट पा रहा था, उन में से बहुत से फ्रात देश को चले गये और कैलडियन धर्म स्थापित किया। उन्ही की रक्षा में एडीसा के बड़े विद्यालय की नीव पड़ी। निसीविस के बड़े विद्यालय से वे बिद्वान लोग निकले जिन्होंने नेस्टर के सिद्धान्तों को शाम, अरब, हिन्दुस्तान, तातार, चीन, और मिसिर में फैला दिया। नि:सन्देह नेस्टर के मतावलंबियों ने अरस्तू के तत्वज्ञान को स्वीकार किया था, और उस बड़े लेखक के ग्रंथों का शामी और पारसी भाषा में अनुवाद किया था। उन्होंने हाल के बने ग्रंथों के भी ऐसे ही अनुवाद किये थे अर्थात प्लाईनी कृत ग्रंथों का। यहूदियों से मिलकर उन्होंने जानदेसावोर के वैद्यक विद्यालय की नीव डाली। उनके धर्मोपदेशकों ने नेस्टर–निरूपित ईसाई धर्म को एशिया में इस सीमा तक फैलाया कि उसके मानने वाले अन्त में यूनानी और रोम में प्रचलित ईसाई धर्म के सम्मिलित अनुगामियों से गणना में अधिक हो गये। विशेष कर यह बात कहने योग्य है कि अरब देश में भी उनका एक धर्माध्यक्ष रहता था।

कुस्तुनतुनिया और सिकन्दरिया के विरोधों ने इस भांति पश्चिमीय एशिया को उन भिन्न पंथानुगामियों से भर दिया, जो क्रोध युक्त एक दूसरे से लड़ा करते थे। और उनको जो दंड दिये गये थे उनके हेतु राज्य शक्ति से अत्यन्त घृणा करते थे। इसका फल यह हुआ कि एक ऐसा धर्म-परिवर्तन हुआ जिसके प्रभाव अब तक अनुभव में आते हैं। उसका प्रभाव सारी दुनिया में पड़ा।

यदि हम अलग अलग उन दो कामों पर विचार करें जिनमें कि यह घटना विभाजित हो सकती है, तो हम इस बड़ी घटना का चित्र स्पष्ट देख सकते हैं। (१) एशिया में प्रचलित ऐसाई धर्म की फारिस देश निवासियों के हाथ से अल्पकालिक पराजय और (२) अरब लोगों की अधीनता में निश्चयात्मक और अन्तिम सुधार।

(१) सन् ५९० ई० में ऐसा हुआ कि उस भांति के परिवर्तनों में से जैसे कि पूर्वीय राज्यों में बहुधा हुआ करते हैं, एक परिवर्तन के कारण, खुसरो को जो कि फारिस राज्य का धर्मानुसार उत्तराधिकारी था, विवश होकर रोम राज्य की शरण जाना पड़ा और सम्राट मौरिस से सहायता मांगनी पड़ी। यह सहायता प्रसन्नता से दी गई। एक छोटी और अव्यर्थ चढ़ाई ने खुसरो को उसके पूर्व पुरुषाओं का राज्य सिंहासन फिर से दिला दिया।

परन्तु इस उदार युद्ध की विजयों ने स्वयं मौरिस को भी न छोड़ा। रोम सेना में राजविद्रोह फैल गया जिसका मुखिया एक सौ वर्ष का बुड्ढा फोकास नामक मनुष्य था। सम्राट की मूर्त्तियां तोड़ फोड़ दी गईं। कुस्तुनतुनिया के मुख्य पादरी ने, यह कह कर कि मैं ने फोकास की धर्मशीलता जांच ली है उसे राजा बना दिया। अभागा मौरिस एक पवित्र भवन से जहां उसने शरण ली थी बाहर खींच लाया गया। उसके पांचो पुत्रों के शीश उसके सामने काटे गये और तदनन्तर वह भी मार डाला गया। उसकी रानी सेंट सोफिया दे गिरजाघर से धोखे से लिवा लाई गई, उसे बहुत कष्ट दिया गया और अपनी तीन छोटी कन्याओं सहित मार डाली गई। इस बध किए गए बंश के सम्बंधियों का बड़े भयंकर क्रोध के साथ पीछा किया गया। कुछ तो अन्धे कर दिये गये, कुछ की जबान खिचवा ली गई, या हाथ पैर कटवा लिए गए, कुछ कोड़े मार मार कर मार डाले गए और कुछ जला दिए गये।

जब इसकी खबर रोम में पहुंची तब पोप ग्रेगरी जी बड़े आनन्दित हुए और ईश्वर से प्रार्थना की कि फोकास का हाथ उसके शत्रुओं के विरुद्ध सदा शक्तिमान बना रहे। इस उपकार के पुरस्कार में उसको 'विश्वविशप' की पदवी दी गई। उसके इस काम का और कुस्तुनतुनिया के मुख्य पादरी के काम का कारण यह था कि मौरिस पर मैगी धर्मावलम्बी होने का सन्देह किया जाता था जो कि उसने फारिस निवासियों से सीखा था। कुस्तुनतुनिया के सर्वसाधारण जन उसे मारसियनाईट कह कर गलियों गलियों उसके पीछे पीछे चिढ़ाते

थे। मारशियनाइट उस सम्प्रदाय को कहते हैं जो मैगी धर्म के दो विरोधी तत्वों के मत को मानते थे।

परन्तु खुसरो ने इस से बहुत विरुद्ध अर्थात् दुःख भाव से अपने मित्र की मृत्यु को सुना। फोकास ने मैारिस और उसके लड़कों के सिर खुसरो के पास भेज दिए थे। फारिस नरेश खुसरो ने भयभीत होकर इस भयप्रद दृश्य की ओर से अपना मुख फेर लिया, और तुरन्तही अपने हितैषी पर किए गए अत्याचारों का युद्ध से बदला लेने के लिये तय्यारी कर दी।

हिरैक्लियस नामक आफ्रिका के राज्य प्रतिनिधि ने भी, जो कि राज्य का एक मुख्य कर्मचारी था, इस खबर को सुन कर क्रोध प्रकाश किया। उसने निश्चय कर लिया था कि राज्यछत्र जबरदस्ती एक अप्रख्यात सौ बर्ष के बूढ़े कुरूप मनुष्य के पास न जाना चहिए। इस फोकास का शरीर बहुत ठिगना और कुरूप था। उसकी घनी भौंहों का मिला होना, उसके लाल बाल, उसकी केश रहित ठोड़ी उसके कपोल के अनुकूल ही थे जो एक बड़े भारी दाग के कारण कुरूप और बदरंग था। वह लिखना पढ़ना और कानून और शस्त्रविद्या से बिलकुल कोरा था, और बड़ा विषयी तथा मद्य सेवी था। पहिले हिरैक्लियस ने उसको राज्य-कर देने और उसकी आज्ञा मानने से इनकार किया,तदनन्तर बूढ़े और बलहीन होने पर भी अपने निज-नामी पुत्र को उससे युद्ध करने का भयंकर काम सिपुर्द किया। कारथेज से चल कर शुभ समुद्रीय यात्रा को तै करके हिरैक्लियस का पुत्र शीघ्र ही कुस्तुनतुनिया के सामने पहुँचा। चंचल चित्त पादरी, राज्य सभा के लोग, और नगर निवासी जन उससे मिल गये, और जबरदस्ती राज्य लेने वाला (फोकास) अपने महलों में पकड़ा गया और उसका सिर उड़ा दिया गया।

परन्तु वह विप्लव जो कुस्तुनतुनिया में हुआ था फारिस नरेश की चालों को न रोक सका। उसके मैगी पुरोहितों ने उसे यूनान वालों से स्वच्छन्द रह कर काम करने के लिए जता दिया था, और कहा था कि उनका धर्म सत्यता और न्याय से रहित है। इस हेतु

खुसरो फ्रात नदी को पार कर गया। सीरिया निवासी भिन्नमतावलम्बियों ने उसकी सेना का आनन्द से स्वागत किया और उसकी सहायता में ठौर ठौर दंगा होने लगे। एँटिआक, सीज़रिया, और दमिश्क विजय कर लिये गये। स्वयं जरोसलिम आक्रमण करके ले लिया गया। हज़रत ईसा का समाधिस्थान, कुस्तुनतुनिया और हेलीना के गिरजाघर जला दिए गए। ईसा की सूली, विजय चिन्ह की भांति, फारिस देश को भेज दी गई। गिरजाघरों का धन लूट लिया गया। पवित्र स्मारक वस्तुएं जो मिथ्या विश्वास के कारण एकत्र की गई थीं तितर बितर कर दी गईं। मिसिर देश पर चढ़ाई की गई, और विजय करके पारिस राज्य में मिला लिया गया। सिकन्दरिया का मुख्य धर्म्माध्यक्ष साईप्रस द्वीप को भाग गया। त्रिपोली देशस्थ आफ्रिका का समुद्रतट भी छीन लिया गया। उत्तर में एशिया माईनर जीत लिया गया था और दशवर्ष तक फारिस की सेना कुस्तुनतुनिया के सामने बासफोरस के तट पर छावनी डाले पड़ी रही।

अपनी अत्यन्त कष्टावस्थामें, हिरैक्लियस ने शान्ति के लिये विनय की। घमंडी फारिस नरेश ने उत्तर दिया कि मैं रोम सम्राट को शान्ति से न रहने दूंगा जब तक कि वह अपने फांसी पर चढ़ाये गए ईश्वर को मानना शपथ खाकर न छोड़ देगा और सूर्य्य की पूजा न स्वीकार करेगा। परन्तु बहुत दिनों के अनन्तर शर्तें तै हो गईं और एक हजार स्वर्ण मुद्रा, और एक हजार रजतमुद्रा और एक हजार रेशमी पोशाकें, और एक हजार घोड़े, और एक हज़ार कुमारी कन्याएं लेकर रोम राज्य छोड़ दिया गया।

परन्तु हिरैक्लियस केवल थोड़े ही दिनों के लिए अधीन रहा। उसने केवल अपने सब प्रबन्ध फिर ज्यों के त्यों कर लेने ही का उपाय नहीं निकाल लिया, वरन् फारिस राज्य से बदला लेने का भी उपाय निकाल लिया। वे कर्तव्य जिनसे उसने यह फल प्राप्त किया रोम राज्य के अत्यन्त भले समय के योग्य ही थे।

यद्यपि उसकी सैनिक सुख्याति इस भांति फिर प्राप्त हुई, और यद्यपि उसकी भूमि फिर मिल गई, तथापि रोम राज्य की एक ऐसी

अस्तु खो गई जो कभी न मिल सकी अर्थात् धार्मिक विश्वास फिर कभी न मिल सका। संसार को दिखला कर बिथलेहेम, गेत्सेमेन और काल्वरी सरीखे अत्यंत पवित्र स्थानों को अपवित्र करके, ईसा का समाधिस्थल जला करके, गिरजाघरों को लूट और विनष्ट करके, अमूल्य स्मारक अवशिष्ट पदार्थों को तितर बितर करके और ईसा की सूली को उच्चस्वर से हँसते हुए निज देश को लेजा करके, मैगी धर्म ने क्रिश्चियन धर्म की हतक की थी।

किसी समय सीरिया में, मिसिर में, और एशिया माईनर में अद्भुत दैविककर्म बहुतायत से होते थे। कोई ऐसा गिरजाघर न था जो ऐसे कर्मों की एक बड़ी सूची न रखता हो। बहुधा वे अनावश्यक समयों पर और छोटी छोटी बातों में प्रगट होते थे। परन्तु इस कठिन समय में जब ऐसी सहायता की अत्यन्त आवश्यकता थी एक भी दैविक चमत्कार न हुआ।

फारिस निवासियों को अदंडित भाव से ये देवदोष करते हुए देखकर पूर्व देश निवासी ईसाइयों को बड़ा आश्चर्य्य हुआ। उनके मत से तो आकाशों को फट जाना चाहिए था, पृथ्वी को अपने गम्भीर गर्त खोल देने चाहिए थे, सर्वशक्तिमान ईश्वर की तलवार को आकाश में चमकना चाहिए था और जैसा परिणाम सैनाचिरब का हुआ था वैसा ही इन फारिस निवासियों का होना चाहिये था। परन्तु सो न हुआ। दैविक चमत्कारों की भूमि में पहिले आश्चर्य्य फैला, तदनन्तर व्याकुलता फैली, व्याकुलता के अन्त होने पर अविश्वास फैल गया।

(२) परन्तु यद्यपि यह भयंकर बात थी तथापि यह फारिस विजय उस बड़ी घटना की केवल प्रस्तावना मात्र थी जिसकी कथा अभी हमें वर्णन करना है, अर्थात ईसाई धर्म के विरुद्ध दक्षिणी उत्पात। उसका फल यह हुआ कि अपनी भौगोलिक राज्य में से ५/८ भाग खो देना पड़ा, अर्थात सब एशिया, सब अफ्रिका और यूरोप का कुछ भाग।

सन ५८१ ईस्वी के ग्रीष्म ऋतु में बसरा में जो कि दामिश्क के

दक्षिण और सीरिया के सीमा पर एक नगर है ऊंटों पर सवार एक पथिक समूह आया। वह मक्का से आया था और सुखी अरब देश के दक्षिण में पैदा हुई मूल्यवान वस्तुओं से लदा हुआ था। उस पथिक समूह के मुखिया अबू तालिब और उसके द्वादश वर्षीय भतीजे का उस नगरस्थ नेस्टर मतावलम्बी मठ की ओर से आतिथ्य किया गया।

इस मठ के सन्यासियों ने शीघ्रही यह बात जान ली कि उनका बालक अतिथि हलीबी वा मुहम्मद अरब के पवित्र देव मन्दिर काबा के रक्षक का भतीजा है। उनमें से एक ने जिसका नाम बाहिरा था उसे उस मूर्ति पूजक धर्म से अन्य मतावलम्बी करने में कुछ कसर उठा न रक्खी जिसमें कि वह पला था। उसे ज्ञात हुआ कि वह बालक केवल असमय पक्व बुद्धि ही नहीं रखता, वरन् अन्य वस्तुओं के ज्ञान का भी बड़ा उत्सुक है, और विशेष कर धर्म सम्बन्धी बातों का।

मुहम्मद के निज देश में मक्कीय पूजन की विशेष वस्तु एक उल्कोद्भव काला पत्थर था जो कि काबा में रखा हुआ था और उसके साथ ३६० अन्य मूर्तियां थीं जो एक वर्ष के दिनों की सूचक थीं, क्योंकि उस समय साल के दिन योंही गिने जाते थे।

इस समय, जैसा कि हमने देखा है, ईसाई धार्मिक समूह अपने पादरियों की दुष्टता और एश्वर्य्य तृष्णा के कारण अराजकता की दशा तक पहुँच चुका था। अनेक मिसों से सभायें की जाती थीं और उनके वास्तविक तात्पर्य छिपाये जाते थे। बहुधा वे सभायें अत्याचार, घूस और कलुष का दृश्य हो जाती थीं। पश्चिमीय देशों में धर्माध्यक्ष लोग, धन, विलास, और शक्ति के ऐसे ऐसे प्रलोभन देते थे कि विशप लोगों का चुनाव बहुधा भयंकर बधों से घृणित हो जाता था। पूर्वीय देशों में कुस्तुनतुनिया के दरबार की कूट—नीति के कारण, धार्मिक समूह झगड़ों और मतभेदों से छिन्न भिन्न हो गया था। झगड़ा करने वाले अगणित समूहों में एरियन, बैसीलीडियन, कारपाक्रेटियन, कालीरिडियन, यूटीचियन, नास्टिक, जैकोबाइट

मार्शियनाइट, मैरियोनाईट, सबीलियन, नेस्टोरिन, और बैलेनटीनियनों का नाम लिया जा सकता है। इनमें से मैरियोनाइट लोग ईश्वर पिता, ईश्वर पुत्र, और ईश्वर कुमारी मरियम को त्रिदेव मानते थे। कालीरीडियन लोग कुमारी मरियम को एक देवी मान कर पूजते थे और उस पर चपातियां चढ़ाते थे। नेस्टोरियन लोग जैसा कि हम ने देखा है यह बात नही मानते थे कि ईश्वर की भी माता होती है। उनको अपने नास्तिक होने और प्राचीन यूनानी विज्ञान के स्वामी होने के हेतु गर्व था।

परन्तु यद्यपि वे लोग धार्मिक बातों में एक दूसरे से अनमेल थे, तथापि एक ऐसी बात थी जिसको ये सब ही मानते थे, अर्थात् परस्पर अति उग्र घृणा रखना और एक दूसरे को पीड़ा देना। अरब देश जो कि स्वतंत्रता की अपराजित भूमि थी, और जो भारत सागर से लेकर शाम देश के मरुस्थल तक फैला हुआ था, उन सबों के लिये ज्यों ज्यों भाग्य की धारा में क्रमशः उलट फेर होता गया, एक आश्रय-स्थान हो गया। ऐसाही वह प्रचीन काल से होता आया है। जब रोम के लोगों ने पैलेस्टाइन को जीत लिया था तब बहुत से यहूदी इसी अरब देश को भाग गये थे। सेन्ट पाल गलेटियन लोगों से कहता है कि मैं भी अन्य धर्मावलम्बी होने पर तुरन्त ही वहां चला गया था। उस देश के मरुस्थल ईसाई सन्यासियों से भर गए थे और अरब निवासियों की विशेष विशेष जातियों में से बहुत से लोग भिन्न धर्म ग्राही बना लिये गये थे। जहां तहां गिरजाघर बना लिये गये थे। हबश देश के ईसाई राजे जो नेस्टर मतावलम्बी थे अरब देश के दक्षिणी प्रान्त यमन पर अधिकार रखते थे।

बसरा नगर के मठ में बहीरा सन्यासी ने मुहम्मद को नेस्टर मत के सिद्धान्त सिखाये। उन्हीं से इस बालक अरब निवासी ने उनके कष्टों की कथा जानी। इन्हीं सतसंगों से ऐसा हुआ कि उसके चित्त में पूर्वीय धार्मिक लोगों की मूर्तिपूजक रीतियों से और वास्तव में सब ही प्रकार की मूर्ति पूजा से घृणा उत्पन्न हो गई। इन्हीं सतसंगों ने उसे यह बात सिखाई कि वह अपने अद्भुत

जीवन में ईसा को कभी ईश्वर का पुत्र न कहता था, वरन् सदैव मरियम का पुत्र कहता रहा। उसका अशिक्षित परन्तु उत्साही मन केवल अपने शिक्षकों के धार्मिक विचारों से ही अंकित न हुआ, वरन् तत्वज्ञानिक विचार भी धारण करने में गम्भीरता सहित अचूक रहा। उसके शिक्षक इस बात का गर्व रखते थे कि वे अरस्तू के विज्ञान के जीवित प्रतिनिधि हैं। उसके जीवन के पर भाग से प्रगट होता है कि किस पूर्णता से उनके धार्मिक विचार उसके मन में बैठ गये थे और उसके पुनः पुनः किये हुए कामों से प्रगट होता है कि कैसे प्रेम से वह उनका आदर करता है। स्वयं अपने जीवन को उसने उनके ईश्वर सम्बन्धी सिद्धान्त के बढ़ाने और फैलाने में लगाया और यह कार्य जब एक वार प्रभाव सहित हो गया तब उसके उत्तराधिकारियों ने उनकी वैज्ञानिक सम्मतियों और उनके द्वारा प्राप्त अरस्तू की सम्मतियों को बड़े उत्साह से स्वीकार किया और उन्हें फैलाया।

जब मुहम्मद युवा अवस्था को पहुंचा तब उसने सीरिया पर और चढ़ाइयां कीं। कदाचित, हम अनुमान कर सकते हैं कि इन घटनाओं के समय वह मठ और उसके अतिथ सेवी निवासी गण मुहम्मद को नहीं भूले। उस देश के लिये उसके चित्त में गूढ़ आदर था। मक्का की एक धनी विधवा खैदीजा ने उसको अपने शाम देश सम्बन्धी व्योपार का भार दे रखा था। वह उसकी योग्यता और स्वामि भक्ति पर मोहित थी और उसके रूप पर भी मोहित थी, क्योंकि ऐसा कहा जाता है कि वह मर्दाना सुन्दरता में अति उत्तम और व्यवहार में अति विनीत था। सब ही युगों में और सब ही देशों में स्त्री चित्त एक ही सा होता है। उसने एक सेवक से अपने मन की सब बात मुहम्मद के पास कहला भेजी, और मुहम्मद उसके जीवन के शेष २४ वर्ष तक उसका अनुरागी पति बना रहा। ऐसे देश में जहां बहुत से विवाह हो सकते हैं, उसने सवति रख कर उसकी कभी हतक न की। बहुत वर्षों के अनन्तर जब मुहम्मद की शक्ति पराकाष्ठा को पहुंच चुकी थी, आयशा (जो कि अरब देश में

सर्वाधिक सुन्दर स्त्री थी) ने उस से पूछा था कि "क्या वह (खैडीज़ा) बुड्ढी न थी? क्या ईश्वर ने मेरे रूप से उसके स्थान में तुम्हें एक अधिक अच्छी बीबी नहीं दी?"। मुहम्मद ने सच्ची कृतज्ञता प्रगट करते हुये उत्तर दिया "नहीं, ईश्वर की शपथ करके कहता हूं कि उस से अधिक अच्छी बीबी कोई हो नहीं सकती। वह उस समय मेरा विश्वास करती थी जब सब लोग मुझ से घृणा करते थे, उसने मुझे उस समय सहायता दी जिस समय मैं धनहीन था और सर्व संसार मुझे पीड़ा दे रहा था।"

खैडीज़ा के साथ उसका विवाह होने से उसकी आर्थिक दशा अच्छी हो गई जिस से उसे वह सुअवसर मिला कि वह धर्म सम्बन्धी बातों के सोचने की प्रबल इच्छा पूरी कर सके। संयोग से ऐसा हुआ कि खैडीज़ा का चचेरा भाई 'वारक' जो यहूदी था क्रिस्तान हो गया। इसी ने पहिले पहिल बाईबिल का अनुवाद अरबी भाषा में किया। इसके धर्म त्याग से मुहम्मद को जो मूर्ति पूजन से घृणा थी वह और पक्की हो गई।

उन ईसाई सन्यासियों की भांति जो कि जंगल में अपनी कुटियों में रहा करते थे मुहम्मद भी हीरा नामक पहाड़ की एक गुफा में जो कि मक्का से कुछ मीलों के अन्तर पर थी चला गया और ध्यान और प्रार्थना में लग गया। इस एकान्त निवास में सर्व शक्तिमान और सनातन ईश्वर के पूजनीय गुणों पर विचार करके उसने अपनी बुद्धि से यह गम्भीर प्रश्न किया कि क्या मुझे वे सिद्धान्त स्वीकार कर लेना चाहिए जो एशिया निवासी क्रिश्चियन लोग मानते हैं अर्थात् ईसा का ईश्वर पुत्र होना और मरियम का कुमारी, माता, और स्वर्ग की रानी होने का चरित्र? और क्या ऐसा मानने से मैं दोष और ईश्वर निन्दा की भय से बच सकूंगा?

गुफा में एकान्त ध्यान करने से मुहम्मद ने यह निश्चित सिद्धान्त निकाला कि उस समय में फैले हुए मतों और झगड़ों की घनघोर घटा में भी एक बड़ी सत्यता दिखाई पड़ सकती थी, अर्थात् ईश्वर की अद्वैतता। एक खजूर वृक्ष की पींड़ से टिक कर

उसने इस विषय के अपने विचार अपने पड़ोसियों और मित्रों से कह सुनाये और उनसे कह दिया कि मैं उसी सत्यता के उपदेश करने में अपना सारा जीवन लगा दूंगा। वह अपने उपदेशों में और कुरान में बार बार कहता है "मैं सिवाय एक सार्वजनिक उपदेशक के और कुछ नहीं हूं, मैं ईश्वर की अद्वैतता का उपदेश देता हूं"। अपनी मिथ्या सुविख्यात पैगम्बरी के बिषय में उसका निज विचार ऐसा था। उस समय से अपने मृत्युसमय तक वह अपनी अँगुली में अपनी नामाङ्कित मुद्रिका पहिने रहता था जिस पर "मुहम्मद ईश्वर दूत" खुदा हुआ था।

वैद्य लोग इस बात को भली प्रकार जानते हैं कि बहुत दिनों तक उपवास करने तथा मानसिक चिन्ता से अवश्य मतिभ्रम पैदा होता है। कदाचित आत्मसंयमी उत्सुक मनुष्यों का चलाया हुआ धर्मपंथ कोई भी ऐसा नहीं हैं जिस में अलौकिक प्रलोभनों और अलौकिक आज्ञाओं के उदाहरण न मिलते हों। अन्तरिक्ष वाणियां इस अरब निवासी उपदेशक को अपने निश्चय पर अटल रहने के लिये उत्साहित करती थीं। आश्चर्य्य प्रद रूपों की छायाएं उसके सामने से निकलती थीं। उसको अन्तरिक्ष में दूर के घंटे की सी आवाजें सुन पड़ती थीं। एक रात को स्वप्न में उसे जिबराईल देवदूत मक्के से जिरोसेलिम ले गया और वहां से क्रमश: छहों आकाशों को ले गया। सातवें आकाश में चरण रखने से डर गया और केवल मुहम्मद उस भयंकर घटा में चला गया जो सदैव सर्वशक्तिमान ईश्वर को छिपाए रहती है। "ईश्वर का ठंडा हाथ उसके कंधे पर छू जाने से उसका चित्त कांप उठा"।

सर्वसाधारण को जो वह उपदेश देता था उसका बहुत विरोध हुआ और पहिले कुछ सफलता न हुई। प्रचलित मूर्तिपूजन प्रथा के मानने वालों ने उसे मक्का से निकाल दिया, उसने मदीना में जहां बहुत से यहूदी और नेस्टर के पंथानुगामी रहते थे, जाकर शरण ली। नेस्टर के पंथानुगामी तुरन्त उसके मतावलम्बी हो गए। उसे विवश होकर अपनी पुत्री और अपने अन्य चेलों को पहिले से हबश देश को भेज देना पड़ा था जहां का राजा नेस्टर मत का ईसाई था।

छः वर्षों में उसने केवल १५०० निज पंथानुगामी बनाए। परंतु तीन छोटी लड़ाइयों में, जिनको पीछे से बहुत बड़ी पदवी देकर बीडर, ओहूद और नेशन्स के युद्ध प्रख्यात किया गया है, मुहम्मद ने जान लिया कि उसकी अत्यन्त विश्वास प्रद तर्क उसकी तलवार है। उसके अनन्तर पूर्वीय वाक्य मनोहरता से वह कहा करता था कि "बैकुंठ तो तलवार के साए के नीचे पाया जायगा"। अच्छे प्रबन्ध से किए गए कई एक सैनिक आक्रमणों से उसने अपने शत्रुओं को पूर्ण रूप से पराजित कर दिया। अरब देश की मूर्तिपूजा जड़ से नष्ट हो गई। जिस सिद्धान्त का वह प्रचार करता था कि "ईश्वर केवल एक है" उसे उसके सबही देश निवासियों ने स्वीकार किया और उसको ईश्वर दूत मान लिया।

अच्छा अब हम उसके झगड़ों से भरे हुए जीवन चरित्र को छोड़ कर उस बात को सुनाना चाहते हैं जो उसने उस समय कही है जब वह सांसारिक शक्ति और प्रख्याति की पराकाष्ठा को पहुंच कर अपने जीवन के अन्तिम समय की ओर जा रहा था।

अपनी ही कही हुई ईश्वर की अद्वैतता पर स्थिर रह कर वह मदीना से मक्का की अन्तिम यात्रा को चला। वह अपने साथ एक लाख चौदह हज़ार भक्त और फूलों के गजरों से सजे हुए ऊंट और फहराते हुए झंडे लेकर चला। जब वह उस पवित्र नगर में पहुंचा, तब उसने यह पवित्र आवाहन उच्चारण किया कि "हे ईश्वर यहां मैं तेरी सेवा के लिये प्रस्तुत हूं, तेरी बराबरी का कोई दूसरा नहीं है केवल तू ही पूजने योग्य है, केवल तू ही सब का राजा है उसमें तेरा कोई साझी नहीं है"।

अपने निज हाथों से बलिदान में उसने ऊंट चढ़ाए। उसने उस पुरानी रीति को वैसी ही पवित्र समझा जैसे कि प्रार्थना को, क्योंकि जो प्रमाण प्रार्थना के समर्थन में दिए जा सकते हैं वेही प्रमाण उसी तरह बलिदान प्रथा को भी समर्थन करते हैं।

काबा की व्याख्यान–पीठ से उसने उच्चस्वर से कहा "हे श्रोतागण मैं केवल तुम्हारे ही समान एक मनुष्य हूं"। लोगों को स्मरण था कि

उसने एक बार एक मनुष्य से जो डरते डरते उसके पास आया था कहा था कि 'तुम किस बात से डरते हो, मैं कोई राजा नहीं हूं, मैं केवल एक अरब निवासी स्त्री का पुत्र हूं जो घाम में सुखाया हुआ मांस खाती थी" ।

वह मरने के लिये मदीने को लौटा । अपने श्रोतागणों से विदा होते समय उसने कहा कि "हर ऐक घटना ईश्वर की इच्छा के अनुसार होती है, और उस घटना का समय नियत होता है, जो कि न तो घट बढ़ सकता है और न टल सकता है । मैं उसी के पास जाता हूं जिसने मुझे भेजा था, और तुम्हारे लिये मेरी अन्तिम आज्ञा यह है कि तुम परस्पर प्रेम रक्खो, आदर करो और सहायता करो, और यह भी आज्ञा है कि तुम परस्पर एक दूसरे को धर्म की ओर उत्साहित करो और अपने विश्वास पर अटल रहो और पवित्र कामों के करने का उत्साह दिलाओ । मेरा जीवन तुम्हारी भलाई ही के लिये था और मृत्यु भी ऐसी ही होगी ।"

मृत्यु कष्ट के समय उसका शीश आयशा की गोद में था । बार बार वह अपना हाथ पानी के बरतन में डुबोता और अपने चिहरे को तर करता था । अन्त में उसकी दम टूटी और आकाश की ओर टकटकी लगाए हुए टूटे फूटे शब्दों में उसने कहा", हे ईश्वर मेरे पाप क्षमा कर—एवमस्तु, मैं आता हूं ।" क्या हम इस मनुष्य के विषय में निरादर सूचक वार्ता कर सकते हैं ? वर्तमान समय में उसके सिद्धान्त एक तिहाई मनुष्य जाति के धार्मिक पथदर्शक हो रहे हैं ।

मुहम्मद ने, जिसने अपनी जन्मभूमि की प्राचीन मूर्तिपूजन प्रथा को छोड़ ही दिया था, उन सिद्धान्तों के छोड़ देने की भी तय्यारी कर ली थी जो उसने अपने नेस्टर मतावलम्बी गुरुओं से सीखे थे और जो बुद्धि और विवेक के विरुद्ध थे । और यद्यपि कुरान के प्रथम पत्रों में वह उन बातों पर अपना विश्वास होना प्रगट करता है जो मूसा और ईसा की कही हुई थीं, और वह उनका आदर भी करता था, तथापि उसका सर्वशक्तिमान ईश्वर का सर्वोपर आदर सब जगह से प्रगट

होता है। वह ईसा के ईश्वर होने वाले सिद्धान्त पर, कुमारी मरियम को ईश्वर माता की भांति माने जाने वाले सिद्धान्त पर, और मूर्तियों और चित्रों के पूजन वाले सिद्धान्त पर जो उसकी दृष्टि में बहुत ही नीच प्रकार की पूजा थी, भयभीत होकर आश्चर्य्य प्रगट करता है। वह त्रिदेव सिद्धान्त को पूर्णत: अस्वीकार करता है। इस सिद्धान्त के विषय में ऐसा ज्ञात होता है कि उसका विचार ऐसा था कि इस सिद्धान्त का सिवाय इसके कि तीन स्पष्ट ईश्वर मान लिये जाएं और कुछ अर्थ ही नहीं हो सकता।

उसका प्रथम और सर्वग्राही विचार केवल धार्मिक सुधार करने का था—अर्थात् अरब देश से मूर्तिपूजन धर्म निकाल देना और ईसाई धर्म के दुष्ट मतमतान्तरों को मिटा डालना। यह बात कि वह एक नया धर्म चलाना चाहता था एक मिथ्या अभिशाप था जो कि कुस्तुन्तुनियां में उस पर लगाया गया था, जहां के लोग उसे ऐसी घृणा की दृष्टि से देखते थे, जैसे कुछ दिनों बाद रोम निवासी ल्यूथर को देखते थे।

परन्तु यद्यपि उसने उन बातों को क्रोध सहित अस्वीकार किया था जिन बातों से ईश्वर की अद्वैतता के सिद्धान्त की उपेक्षा होती थी, तथापि वह ईश्वर के सगुण रूप सम्बन्धी विचारों से नहीं बच सका। कुरान का ईश्वर पूर्णत: मनुष्यवत है—कायिक और मानसिक दोनों भांति—यदि ऐसे शब्द प्रयोग करना उचित हो। परन्तु बहुत शीघ्र ही मुहम्मद के पंथानुगामियों ने इन नीच विचारों को छोड़ दिया और अधिक अच्छे विचारों तक उन्नति कर गए।

मुसल्मानी धर्म के प्राथमिक लक्षणों का जो यहां पर प्रदर्शन किया गया है उसे बहुत दिनों तक बहुत से योग्य प्रमाणिक पुरुष स्वीकार करते रहे। सर विलियम जोन्स, लाक के मतानुसार, मुसल्मानी धर्म का ईसाई धर्म से इन विशेष बातों में भेद मानता है कि ईसा को ईश्वर का पुत्र न मानना, उसको उस पिता के बराबरी वाला न मानना जिसकी अद्वैतता और जिसके गुणों को मुसल्मान लोग बड़े आदर के विचारों सहित मानते और प्रगट करते हैं। यही सम्मति इटैली में अधिकता से मानी जाती रही है। डैन्टी मुहम्मद को केवल एक मतान्तरकर्ता मानता है और मुसल्मानी धर्म को केवल एक एरि-

यन मतावलम्बी समूह मानता है। इंगलेण्ड में हूटली उसे ईसाई धर्म का विगड़ा हुआ रूप मानता है। वह नेस्टर मत की एक शाखा थी और जिस समय तक उसने बहुत सी बड़ी २ लड़ाइयों में यूनानी ईसाई धर्म को न पछाड़ दिया, वह बड़ी तेजी से एशिया और आफ्रिका में फैलता रहा, और जब तक वह अपनी आश्चर्य्यप्रद सफलताओं के कारण उन्मत्त न हो गया तब तक उसने अपने प्राथमिक सीमाबद्ध विचार नहीं छोड़े, और यह कहने की हिम्मत नहीं हुई कि वह एक प्रथक और स्पष्ट ईश्वरवाक्य पर ही स्थित है।

मुहम्मद का जीवन अपनी जन्मभूमि को विजय करने और उसको अपना मतानुयायी बनाने में ही बीता। परन्तु जीवन के अन्तिम भाग में उसने अपने को सीरिया और फारिस पर आक्रमण करने के लिये अलम् शक्तिवान पाया। उसने अपना निज राज्य सदैव स्थित रखने के लिये कोई प्रबन्ध नहीं किया था, इस कारण कुछ झगड़े के बाद उसका एक उत्तराधिकारी निश्चित हुआ। अन्त में अबूबकर, आयशा का पिता, उत्तराधिकारी चुना गया। वह पहिला खलीफा वा पैगम्बर का उत्तराधिकारी स्वीकार किया गया।

मुसलमान धर्म के फैलने और ईसाई धर्म के फैलने में एक बहुत बड़ा अन्तर है। ईसाई धर्म कभी इतना शक्तिवान न हुआ कि रोम राज्य से मूर्ति पूजन को पराजित करके सर्वथा नष्ट कर दे। ज्यों २ वह बढ़ता गया त्यों २ वह उसी से मिल गया अर्थात् दोनों का सम्मेलन हो गया। मूर्ति पूजक धर्म की पुरानी रीतियां ईसाई धर्म के नवीन उत्साह से सजीव हो गईं और वह मूर्ति पूजक धर्म जिसके विषय में वर्णन किया गया है पैदा हो गया।

परन्तु अरब देश में मुहम्मद ने प्राचीन मूर्तिपूजन प्रथा को पराजित कर लिया और सर्वथा विनष्ट कर डाला। उसके और उसके उत्तराधिकारियों के उपदेश सिद्धान्तों में उसका चिन्ह तक नहीं पाया जाता। वह काला पत्थर जो कि आकाश से गिरा था—अर्थात् काबा का उल्कोद्भव पाषाण—और उसके इर्द गिर्द की मूर्तियां पूर्णतः अदृष्ट हो गईं। नवीन धर्म का तत्वमय सिद्धान्त कि "ईश्वर केवल एक है" बिना किसी प्रकार के सम्मेलन के फैल गया।

सांसारिक विचार से सैनिक सफलताओं ने कुरान के धर्म को लाभकारी बना दिया था। और जब यह बात है तब उसके बहुत से ग्राहक होहींगे, सिद्धान्त चाहै जो कुछ हों।

मुसलमानी धर्म के सर्व स्वीकृत सिद्धान्तों के विषय में मुझे यहां कुछ नहीं कहना। जिन पाठकों को इस विषय में कुछ जानने की अभिलाषा हो वे इसका विवरण मेरी बनाई "हिस्ट्री आफ इन्टेलेकचुअल डिवलपमेन्ट आफ यूरोप" के ग्यारहवें अध्याय में "कुरान की समालोचना" में पाएंगे। यहां पर इतना कहना काफी है कि उनका बैकुंठ सतखण्डा था और पूर्वीय भांति के विषय सुखों का एक महल था। वह श्याम नेत्र वाली अप्सराओं और सेवकों से भरा हुआ था। मूर्तिपूजक ईसाई धर्म के रूप की अपेक्षा कदाचित उनके ईश्वर का रूप बहुत ही संभ्रान्त था। परन्तु बुद्धि हीन पुरुषों के विचारों से ईश्वर का सगुण रूप कभी मिटाया नहीं जा सकता। उनका ईश्वर, अच्छे से अच्छा होने पर भी कभी मनुष्य के एक भारी छाया-पुरुष से बढ़ कर नहीं हो सकता—अर्थात् मनुष्यत्व का एक बहुत बड़ा छाया-पुरुष। जैसे अल्प्स पहाड़ पर बादलों के बीच में वे लोग एक छाया-पुरुष देखते हैं जो सूर्य की ओर पीठ देकर खड़े होते हैं।

अबूबकर ने खलीफा होने पर यह निम्नलिखित राजाज्ञा प्रचलित की:-अत्यन्त कृपालु ईश्वर के नाम से प्रारंभ करता हूं। अबूबकर शेष सब मुसलमानों को तन्दुरुस्ती और खुशी की दुआ देता है। ईश्वर तुम्हारे ऊपर दया करे और तुम्हें आनन्द में रखे। मैं ईश्वर की प्रशंसा करता हूं। मैं उसके दूत मुहम्मद के हेतु विनय करता हूं। इस राजाज्ञा द्वारा तुम को सूचना दी जाती है कि मैं सच्चे मुसलमानों को सीरिया देश में भेजना चाहता हूं कि वे जाकर उस देश को काफिरों के हाथ से छीन लें। और मैं तुम्हें जताना चाहता हूं कि धर्म के वास्ते लड़ना मानो ईश्वराज्ञा मानना है"।

पहिली ही लड़ाई में पूर्वीय सेनापति खलीद पर जब कठिन समय आपड़ा तब उसने सेना के मध्य में अपने हाथ आकाश की

ओर उठाये और कहा । "हे ईश्वर यह नीच दुष्ट लोग मूर्तिपूजक शब्दों में प्रार्थना करते हैं और तेरे सिवाय अन्य को भी ईश्वर मानते हैं, परन्तु हम लोग तेरी अद्वैतता को मानते हैं और कहते हैं कि सिवाय तेरे कोई अन्य ईश्वर नहीं है । हम तुझ से विनय करते हैं कि तू अपने दूत मुहम्मद के हेतु इन मूर्तिपूजकों से लड़ने में हमारी सहायता कर ।" पूर्वीय मुसलमानों की ओर से सीरिया की विजय बड़ी भयंकर साधुता से की गई थी । सीरिया निवासी ईसाइयों के धर्म ने उनके बैरियों के चित्त में भयंकरता और क्रोध के विचार जाग्रत कर दिये थे । "मैं उस ईश्वर निन्दक मूर्तिपूजक की खोपड़ी चीर डालूंगा जो ऐसा कहता है कि अत्यन्त पवित्र ईश्वर, सर्व शक्तिमान और सनातन ईश्वर ने पुत्र उत्पन्न किया है ।" खलीफ़ा उमर जिसने जिरोसेलम ले लिया था हिरैक्लियस नामक रोम सम्राट के नाम एक पत्र यों प्रारम्भ करता है । "अत्यन्त कृपालु ईश्वर के नाम से प्रारम्भ करता हूं, ईश्वर प्रशंसनीय है, क्योंकि वह दोनों लोकों का मालिक है और न उसके स्त्री है न पुत्र" । पूर्वीय मुसलमान लोग ईसाइयों को सम्मेलक कहा करते थे, क्योंकि वे लोग मरियम और ईसा को सर्वशक्तिमान और अत्यन्त पवित्र ईश्वर में मिला देते थे ।

खलीफा की यह इच्छा नहीं थी कि वह सेना का मुख्य नायक बने । इस हेतु नाम के लिये तो इस काम का भार अबूउबैदा पर था और वास्तविक भार खलीद पर था । सेना को विदा करते समय खलीफा ने सब सैनिकों को न्याय, दया और अपना अपना बचन पूरा करने की शिक्षा दी थी । उसने उन्हें व्यर्थ बात करने से बचने के लिये और मद्य से बचने के लिये और ठीक समय पर प्रार्थना करने के लिये आज्ञा दी थी और यह भी आज्ञा दी थी कि जिस देश में होकर सेना निकले उस देश के सर्वसाधारण निवासियों पर कृपा करना, परन्तु उनके पुरोहितों पर तनक भी दया न करना ।

जारडन नदी के पूर्व ओर बसरा नगर है । यह एक दृढ़ नगर है जहां मुहम्मद पहिले अपने ईसाई गुरुओं से मिला था । यह नगर रोम राज्य के उन दुर्गों में से एक दुर्ग था जो उस देश में बहुतायत से

थे। इसी नगर के सामने मुसलमानी सेना ने छावनी आ डाली। वहां की दुर्ग रक्षक सेना बलवान थी, और कोट की दीवारों पर पवित्र सूलियां और पवित्र झंडे गड़े हुए थे। यह दुर्ग बहुत दिनों तक सामना कर सकता था परन्तु उसका शासक रोमेनस अपने धर्म पर दृढ़ न रहा, और आक्रमणकारी सेना के लिये चुपके से फाटक खोल दिए। उसके चरित्र से प्रगट होता है कि सीरिया निवासी जन किस हीन दशा के पहुंच गये थे। पराजित हो जाने पर अपने एक व्याख्यान में, जो उसने अपनी विश्वासाहत प्रजा के सामने दिया था, उसने कहा था कि "मैं तुम्हारी संगति छोड़ता हूं, इस लोक के लिये और भविष्यत लोक के लिये भी। और मैं उसको नहीं मानता जो सूली पर चढ़ाया गया था, और उनको भी नहीं मानता जो उसको पूजते हैं। मैं ईश्वर को अपना मालिक बनाता हूं, इस्लाम को अपना धर्म बनाता हूं, और मक्का को अपना देव मन्दिर, और मुसलमानों को अपना भाई और उसी मुहम्मद को अपना पैग़म्बर मानता हूं जो हमें सीधे रास्ते पर चलाने के लिये, और सम्मेलक लोगों के विरोध करते रहने पर भी सच्चे धर्म को उन्नति देने के लिये, इस लोक में भेजा गया था"। फारिस के आक्रमण के समय से एशिया-माईनर, सीरिया ओर पैलेस्टाइन भी ऐसे दग़ाबाजों और बेईमानों से भरे हुए थे जो मुसलमानों की ओर हो जाने के लिये तत्पर ही रहते थे। रोमेनस उन हज़ारों मनुष्यों में से केवल एक था जिन्हों ने फारिस देश की विजयों द्वारा अपना धर्म खो दिया था।

बसरा से सीरिया की राजधानी दमिश्क उत्तर की ओर केवल ७० मील के फ़ासिले पर थी। मुसलमानी सेना ने तुरन्त उस ओर कूच किया। नगर निवासियों को तुरन्त सूचना दी गई कि या तो मुसलमान हो जाओ, या धन दंड दो, या लड़ो। ऐंटीआक नगर के महल में, जो कि वहां से उत्तर की ओर डेढ़ सौ मील से अधिक दूरी पर न था, सम्राट हिरैक्लियस ने आक्रमण कारियों के भयंकर आगमन की सूचना पाई। उसने तुरन्त सत्तर हज़ार सेना भेजी। मुसलमानों को नगर का घेरा उठा देने के लिये विवश होना पड़ा। ऐज़नाडिन के

मैदानों में एक युद्ध हुआ, रोम की सेना पराजित और तितर बितर हो गई। खलीद ने अपने काले गिद्ध वाले झंडे को लिये हुये दमिश्क नगर को फिर जा घेरा, और ७० दिनों तक घेरा डाले रहने पर दमिश्क नगर ने उसके हाथ आत्मसमर्पण कर दिया।

इन घटनाओं के अरबी इतिहासों से हम जान सकते हैं कि इस समय तक की मुसलमानी सेनाएं धर्मोन्मत्त साधारण जनों से कुछ अधिक अच्छी न थीं। बहुत से मनुष्य नंगे लड़ते थे। साहसी सैनिकों के लिए यह एक साधारण बात थी कि सेना के आगे बढ़ कर शत्रु को घातक द्वन्द्वयुद्ध के लिये आवाहन करते थे। इतनाही नहीं वरन् स्त्रियां तक युद्ध करती थीं। जिस योग्यता से स्त्रियां वीरता सहित यह काम करती थीं उसके विचित्र वर्णन अब तक मिलते हैं।

दमिश्क से मुसलमानी सेना लिबैनस पहाड़ की हिमाच्छादित चोटियों और सुन्दर उरंटीज़ नदी के सहारे उत्तर की ओर बढ़ी। रास्ते में उसने सीरिया घाटी की राजधानी बालबक, और पूर्वीय मैदान का मुख्य नगर एमीसा ले लिया। उसका और आगे बढ़ना रोकने के लिये हिरैक्लियस ने एक लाख चालीस हज़ार मनुष्यों की सेना इकट्ठी की। यरमक नामक स्थान पर एक युद्ध हुआ और मुसल्मानी सेना का दक्षिण भाग टूट गया, परन्तु सैनिक गण अपनी स्त्रियों की धर्मोन्मत्त धिक्कार से फिर रण भूमि को लौट गये। यह लड़ाई रोम सेना को पूर्ण रीति से पराजित करने पर अन्त को पहुँची। चालीस हज़ार मनुष्य कैद कर लिये गये और अगणित मारे गये। अब सब देश विजयी सेना के अधीन हो गया। उनकी सेना जारडन नदी के पूर्व ओर बढ़ रही थी। अब यह बात स्पष्ट थी कि एशियामाइनर पर हाथ लगाने से पहिले पैलेस्टाइन के दृढ़ और बड़े २ नगर, जो सेना के पीछे की ओर पड़ते थे अवश्य ले लिये जायें। सेना नायकों की सम्मतियों में इस विषय में कि पहिले सीज़रिया पर वा जिरोसेलिम पर आक्रमण करना चाहिये भेद पड़ गया। यह बात खलीफा को सुनाई गई, जिसने यह सोच कर कि

सीज़रिया के ले लेने के सैनिक लाभों की अपेक्षा जिरोसेलम के ले लेने में अधिक नैतिक लाभ हैं, यह आज्ञा दी कि चाहे कुछ ही क्यों न हो पहिले जिरोसेलम जीत लेना चाहिये। इसलिये उस नगर का कठिन घेरा किया गया। वहां के निवासियों ने, फारसियों के अत्याचारों और ईसा के समाधिस्थल के तिरस्कारों को स्मरण करके, अपनी रक्षा के लिये बड़ी दृढ़ तय्यारी की। परन्तु चार महीना तक घिरे रहने के बाद् सोफ्रोनियस नामक नगर के मुखिया ने कोट की दीवार पर खड़े हो कर नियम सहित आत्मसमर्पण की शर्तें पूंछीं। दमिश्क नगर लेने में सेना नायकों में भ्रम बुद्धि हो गई थी, इस लिये भागते हुये निवासी गण मारे गये थे। इसी लिये सोफ्रोनियस ने यह शर्त लगाई कि जिरोसेलम का आत्मसमर्पण स्वयं खलीफा के सामने होगा। इसी के अनुसार इस काम के लिये खलीफा उमर मदीना से आया। उसने एक गठरी अनाज और एक गठरी छुहारा और एक कठौती और एक मसक पानी लादे हुए लाल ऊंट पर यात्रा की थी। यह अरब विजेता ईसाई मुखिया को अपने साथ लिये हुये उस पवित्र नगर में प्रविष्ट हुआ और ईसाई धर्म की राजधानी का मुसलमानी धर्म का प्रतिनिधि नगर होने का काम बिना दंगा फिसाद् के हो गया। यह आज्ञा देकर कि सुलेमान के मन्दिर के स्थान में एक मसजिद् बनवाई जाय, खलीफा साहब मदीने को लौट गये।

हिरेक्लियस ने स्पष्ट जान लिया कि जो विपत्तियां ईसाई धर्म पर पड़ रही हैं वे विरोधी समूहों के झगड़ों के कारण से हैं, और इसलिये जब सेना द्वारा वह अपने राज्य के बचाने के लिये उद्योग कर रहा था तब उसने उन मत भेदों को भी दूर करने के लिये बहुत परिश्रम किया। इसी तात्पर्य्य से उसने लोगों पर दबाव डाला कि ईसा तत्व का अद्वैतबाद् वाला सिद्धान्त मान लिया जावे। परन्तु अब बहुत देर हो चुकी थी। अलिप्पो और एंटिआक नगर जीत लिये गये थे। मुसलमानों को एशियामाईनर के रोंदने से कोई रोक नहीं सकता था। हिरेक्लियस ने स्वयं भाग कर अपनी प्राण-

रक्षा की। वह सीरिया देश जिसको सीज़र के सम-तुल्य वाले बड़े पाम्पी ने अब से सात सौ वर्ष पहिले रोम राज्य में मिला लिया था, वह सीरिया देश, जो ईसाई धर्म का जन्म स्थान था, जो उस धर्म के बहुत से पवित्र और बहु मूल्य स्मारक चिन्हों का दृश्य स्थान था, और जहां से हिरेक्लियस ने स्वयं एक बार फ़ारिस के आक्रमण-कारी को निकाल दिया था, इस प्रकार हाथ से जाता रहा कि फिर न मिल सका। स्वधर्म-भ्रष्ट और दग़ाबाज़ लोगों के कारण यह विपत्ति आई थी। सुनते हैं कि जिस जहाज़ पर चढ़ कर वह कुस्तुन-तुनिया को जा रहा था उस जहाज़ ने जब किनारा छोड़ा तब हिरेक्लियस बड़े ध्यान से अदृष्ट होते हुये पहाड़ों पर दृष्टिपात करता था और अत्यन्त शोक के साथ उसने यह कहा था, "हे सीरिया देश मेरा प्रणाम ले और यह प्रणाम सदैव के लिये है"।

मुसलमानों के विजय की शेष घटनाओं को विदीवार वर्णन करना अनावश्यक जान पड़ता है। ट्रिपोली और टायर को विश्वास घातियों ने कैसे छला, सीज़रिया कैसे ले लिया गया; लिबेनस पहाड़ की लकड़ी और फुनेशिया के मल्लाहों से वह मुसलमानी बेड़ा कैसे तय्यार हुआ जिसने रोम के बेड़े को हेलेसपांट में भगा दिया, साईप्रस, रोडस, साईक्लेडीज़ कैसे तबाह कर दिये गये और वह पीतल की बड़ी मूर्ति जो संसार के आश्चर्य्यों में गिनी जाती थी कैसे एक यहूदी के हाथ बेंच डाली गई जिसने उसका पीतल ९०० ऊंटों पर लादा था, और खलीफ़ा की सेनाएं कृष्ण-सागर तक कैसे बढ़ीं और कुस्तुनतुनिया के सामने पड़ी रहीं—यह सब बातें जेरोसेलिम के पतन के अनन्तर कुछ भी न थीं।

जेरोसेलिम का पतन! ईसाई धर्म की राजधानी का विनाश!! उस समय के लोग ऐसा समझते थे कि दोनों विरोधी धर्मों ने अपना न्याय ईश्वर से कराना चाहा था। मुसलमान धर्म विजयी ठहरा और उसे उसके पुरस्कार में जेरोसेलिम नगर मिला, और कभी २ थोड़े समय के लिये ईसाई धर्मयोद्धाओं के विजयी होने पर भी १००० वर्ष से अधिक दिनों तक उसके हाथ में रहने के अनन्तर

वह आज दिन भी उसी के हाथ में है। रोम राज्य के इतिहासकारों पर जिस मार्ग को ग्रहण करने का दोष लगाया गया है उसके हेतु वे कुछ कारण भी रखते हैं। "उन्होंने पूर्वीय ईसाई धर्म के नष्ट होने का बड़ा विषय बिलकुल ही छोड़ दिया है"। और पश्चिमीय ईसाई धर्म के विषय में, मध्यकाल (अर्थात् धर्म युद्धों का समय) के नीच प्रकृति के पोप लोगों ने इतना क्रोध प्रगट किया है कि उन्होंने विवश हो कर रोम के ईसाई धर्म की राजधानी होने का दावा एक झूंठी मौखिक कथा पर स्थित किया है कि सेंट पीटर किसी समय उस नगर में आया था। और सच्ची राजधानी, अर्थात् वह बड़ा और स्वयं ईसा की उत्पत्ति, उसके जीवन, और उसके मृत्यु का पवित्र स्थान काफिरों के हाथ में था। इस भारी विपत्तिजनक घटना के छिपाने का उद्योग केवल रोम के इतिहासकारों ही ने नहीं किया वरन् यूरोप के सबही ईसाई लेखकों ने भी, जिन्होंने इतिहास, धर्म, विज्ञान और सबही विषयों पर ग्रंथ लिखे हैं, अपने विजयी शत्रुओं के विरुद्ध एक ही सा मार्ग ग्रहण किया है। ऐसा वे सदैव करते रहे हैं कि जिस घटना को वे बहुत बड़ी समझते थे उसे छिपा जाते थे, और जिसको नहीं छिपा सकते थे उसको हलकी कर देते थे।

न तो यहां स्थान ही है और न वास्तव में इस ग्रंथ के तात्पर्य के अनुकूल ही है कि जैसा विद्वीवार हाल मैंने जेरोसैलिम के पतन का लिखा है वैसाही विद्वीवार हाल मुसलमानों के अन्य विजयों का वर्णन किया जाय। वे मुसलमानी विजय ऐसी थीं जिन्हों ने अन्त में मुसलमानी राज्य को भौगोलिक प्रमाण में सिकन्दर के राज्य तथा रोम के राज्य से बहुत ही बड़ा कर दिया था। परन्तु संक्षेप में इस विषय में यही कहा जा सकता है कि मैगी धर्म को ईसाई धर्म की अपेक्षा अधिक हानिकारी धक्का लगा। केडीसिया की लड़ाई में फारिस के भाग्य का निबटारा हो चुका था। टेसीफोन के घेरे जाने पर ख़ज़ाना, सिलहखाना और बहुत सा लूट का माल मुसलमानों के हाथ लगा और यही कारण है कि निहावंद की विजय को वे लोग सब विजयों की विजय कहते हैं। एक ओर तो वे कैस्पीयन सागर तक बढ़े और

दूसरी ओर टिगरीस नदी के किनारे किनारे परसीपोलिस तक दक्षिण की ओर। फारिस नरेश उस नगर के स्तूपों और मूर्तियों को छोड़ कर, जो सिकन्दर के बड़े भोज की रात्रि से अब तक ऊजड़ पड़ा हुआ था, अपने प्राण बचाने के लिये उस बड़े लवणमय अरण्य में भागता फिरा। अरब की सेना के एक विभाग ने फारिस नरेश को आक्सस नदी पर जा दबाया। उसको तुर्कों ने बध कर डाला, उसका पुत्र चीन देश को भाग गया और चीन नरेश के अंगरक्षकों का कप्तान हो गया। आक्सस नदी के उस पार का देश अधीनस्थ कर लिया गया। उस देश से दो लाख अशर्फी राज्यकर मिलता रहा। जबतक चीन नरेश मदीना के खलीफ़ा की मित्रता चाहता रहा तब तक मुसलमानी पैगम्बर का झंडा सिंध नदी के किनारों पर फहराता रहा।

उन सेनापतियों में, जिन्हों ने सीरिया के युद्धों में नाम पैदा किया था, एक अमरू नामक जनरल था, जिसके भाग्य में मिसिर का विजेता होना लिखा था क्योंकि खलीफा लोगों ने उत्तर और पूर्व की बिजयों से संतोषित न होकर पश्चिम विजय करने की इच्छा की और आफ्रिका को अपने राज्य में मिला लेने की तय्यारी की। जैसा पहिले हो चुका था वैसा ही इस बार भी भिन्न पंथानुगामियों की दग़ाबाज़ी ने उनकी सहायता की। जैकोबाइट धर्मावलम्बियों ने अपना बचाने वाला समझ कर, मुसलमानी सेना दल का स्वागत किया। मिसिर के एकांगवादी क्रिश्चियन लोगों ने–अर्थात् उन लोगों ने जो ईसा को और ईश्वर को एक ही तत्व मानते थे–अपने मुखिया मुकाकस द्वारा यह प्रसिद्ध कराया कि हम यूनानी लोगों के साथ इस लोक में अथवा परलोक में कोई सम्बंध नहीं रखना चाहते और हम सदैव के लिये रोम के अत्याचारी और उसकी कैलसीडोन की सभा को सौगंद खाकर त्यागते हैं। उन्होंने खलीफा को सड़कें और पुल बनवाने के लिये और सेना को रसद और खबरें पहुंचाने के लिये शीघ्रही राज्यकर देना स्वीकार कर लिया।

मेम्फिस नगर ,जो कि प्राचीन फिरऊन के समय के राजनगरों में से एक था, शीघ्र जीत लिया गया, और सिकन्दरिया भी घेर लिया

गया। परन्तु पीछे की ओर खुला हुआ समुद्र होने के कारण हिरेक्लियस को बार बार अवसर मिलजाता था कि वह घिरे हुये मनुष्यों की सहायता कर सके। और अपनी ओर से उस समय के खलीफा उमर ने घेरा डालने वाली सेना की सहायता के लिये सीरिया की अनुभवी सेना भेजी। बहुत से आक्रमण और बहुत से धावे हुये। एक धावा में घिरे हुये मनुष्यों में से एक ने स्वयं अमरू को क़ैद कर लिया परन्तु एक गुलाम की चालाकी से वह भाग निकला। चौदह महीने के घेरे के अनन्तर और तेईस हज़ार सैनिक कटवा कर मुसलमानों ने वह नगर ले लिया। खलीफा के पास भेजी हुई एक चिट्ठी में अमरू ने पश्चिम के उस बड़े शहर के वैभवों की गणना की है कि "चार हज़ार महल हैं, चार हज़ार स्नानागार हैं, चार सै नाट्यशालायें हैं, बारह हज़ार दुकानें केवल तरकारी भाजी बेंचने की हैं, और चालीस हज़ार यहूदी राज्यकर देने वाले हैं"।

ईसाई संसार का दूसरा बड़ा नगर इस भांति जीत लिया गया। अथनैसियस और एरियस और साईरिल के निवास के नगर सिकन्दरिया का भी वही परिणाम हुआ जो जेरोसैलिम का हुआ था। सिकन्दरिया ऐसा नगर था जिसने त्रिदेव विषयक विचारों और मरियम की पूजा को ईसाई धर्म में प्रचलित किया था। हिरेक्लियस ने अपने कुस्तुनतुनिया के राजमहल में यह दुःख दायक खबर सुनी। उसे बड़ा दुःख हुआ। ऐसा ज्ञात होता है कि मानो ईसाई धर्म के पतन की बदनामी उसी के राज्य काल को मिलना थी। सिकन्दरिया के पतन के अनन्तर वह एक मास भी जीवित न रहा।

यदि सिकन्दरिया कुस्तुनतुनिया के लिये धर्मपरायणता देने में आवश्यक नगर था, तो वह दैनिक भोज्य पदार्थ देने में भी उतना ही आवश्यक था। मिसिर देश रोम राज्य का अन्न भण्डार था। इसी कारण उस नगर को फिर ले लेने के लिये बड़े बड़े बेड़ों और सेनाओं के साथ दो बार उद्योग किया गया, और अमरू को दो चढ़ाइयां और करना पड़ीं। उसने जान लिया कि समुद्र की ओर से खुला हुआ होने के कारण उस पर बहुत सुगमता से आक्रमण किये जा

सकते हैं। उसने जान लिया कि केवल एक मात्र उपाय यही है और यह भी घातक है। उसने कहा कि मैं खलीफा की सोगंद खाकर कहता हूं कि यदि तीसरी बार आक्रमण किया जाय तो मैं सिकन्द-रिया को ऐसा बना दूंगा कि वह प्रत्येक मनुष्य के जाने के लिये वैसा ही खुला हुआ हो जैसे एक वेश्या का भवन होता है। उसने अपने कथन से बढ़ कर काम कर दिखलाया, क्योंकि तब से उसने नगर रक्षक कोट के शिरोभाग गिरवा दिये, और उसे रखने के अयोग्य स्थान बना दिया।

खलीफ़ों की यह इच्छा नहीं थी कि वे अपनी विजय को मिसिर देश तक ही सीमाबद्ध रखें। सर्व उत्तरीय आफ्रिका समुद्र तट को राज्य में मिला लेने का काम उसमान ने पूरा किया। उसका सेनापति अब्दुल्ला ४०००० सैनिक लेकर मेमूफिस से चल पड़ा और बारका के मरुस्थल से होता हुआ त्रिपोली नगर को जा घेरा, परन्तु सेना में महामारी फैल गई और उसे मिसिर देश को लौट आने के लिये बिबश होना पड़ा।

इस समय से बीस वर्ष से अधिक तक सब उद्योग रोक दिये गये। तदनन्तर अकबा ने नील नदी से ऐटलान्टिक समुद्र तक चले जाने का साहस किया। कनारी द्वीप समूह के सामने उसने अपने घोड़े को समुद्र में हिला कर ज़ोर से कहा "हे सर्वोपर ईश्वर! यदि यह समुद्र मेरा रास्ता न रोकता होता तो मैं अब भी पश्चिम की अज्ञात राज्यों में चला ही जाता, तेरे पवित्र नाम की अद्वैतता का उपदेश करता, और उन विद्रोही जातियों को जो तेरे अतिरिक्त अन्य देवताओं को पूजती हैं तलवार के हवाले करता"।

ये मुसलमानी चढ़ाइयां देश के भीतरी भागों में होकर हुआ करती थीं, क्योंकि रोम सम्राट गण उस समय तक भूमध्य—सागर पर अधिकार रखने के कारण समुद्र तट के शहरों पर अपना अधिकार रखते थे। अन्त में खलीफा अब्दुलमलिक ने कारथेज नगर को, जो उस समय सब नगरों से बड़ा था और वास्तव में उत्तरीय आफ्रिका का राज्य नगर था, ले लेने के लिये दृढ़ संकल्प किया। उसके सेनापति

हसन ने सीढ़ियों द्वारा कोट की दीवार पर चढ़ कर वह नगर ले लिया, परन्तु सिसली और गाथ की सेनाओं की सहायता सहित कुस्तुनतुनिया से कुमक पहुंच जाने पर उसे लोटने के लिये विवश होना पड़ा। परन्तु यह सहायता केवल अल्पकालिक थी। हसन ने कुछ मास व्यतीत होने पर फिर आक्रमण किया। इस में उसे सफलता हुई, और कारथेज नगर को जला कर भस्म कर डाला।

इस भांति जेरोसेलिम, सिकन्दरिया, और कारथेज, पांच में से तीन ईसाई धर्म के बड़े राज्य नगर जीत लिये गये। कुस्तुनतुनिया का पतन भी कुछ समय के अनन्तर हो गया। इसके पतन के अनन्तर केवल रोम नगर शेष रहा।

ईसाई धर्म की उन्नति में कारथेज ने बड़ा काम किया था, उसने यूरोप को अपने धर्म का यूरोपीय रूप दिया था और कुछ बड़े बड़े ईश्वर तत्व वादी जन भी दिये थे। यही नगर सेंट आगस्टाइन का निवासस्थान था।

जगत के इतिहास से जाना जाता है कि ऐसी शीघ्रता और ऐसी अधिकता से किसी भी धर्म का प्रचार नहीं हुआ जैसे मुसलमानी धर्म का। वह इस समय अल्टाई पर्वत से लेकर अटलान्टिक समुद्र तक, और एशिया के मध्य से लेकर आफ्रिका के पच्छिमी किनारे तक अपना अधिकार जमाये हुये था।

तदनन्तर खलीफा अलवलीद ने यूरोप पर आक्रमण करने की आज्ञा दी। अंडलयूसिया वा संध्या देश विजय करने का भी अधिकार दिया। उसके सेनापति मूसा ने यहां भी अन्य स्थानों की भांति दो प्रभावशाली सहायक पाये अर्थात् मतभेद और राजद्रोह। टोलेडो का मुख्य धर्माध्यक्ष और गाथिक सेनापति काउंट ज्यूलियन ऐसे ही मनुष्य थे। इन्ही की अधीनता में जिरकसीज़ युद्ध के कठिन समय में सेना का बहुत बड़ा भाग आक्रमणकारियों की ओर हो गया। स्पेन नरेश को विवश हो कर युद्ध क्षेत्र से भागना पड़ा, और इसी भागा भागी में वह गाडलकिवर नदी में डूब कर मर गया।

मूसा के लेफ्टनेन्ट तारिक ने युद्ध क्षेत्र से टोलेडो की ओर बड़ी शीघ्रता से कदम बढ़ाये। मूसा के पहुंचने पर स्पेन के प्रायद्वीप की विजय पूरी हो चुकी थी, और गाथिक सेना का बचा बचाया भाग पेरिनीज़ पर्वत की उस ओर फ्रान्स में भगा दिया गया था। अपनी विजयों में इस स्पेन विजय को केवल पहिली विजय मान कर उसने अपनी इच्छा इटली देश में प्रवेश करने की और वेटिकन लोगों में ईश्वर की अद्वैतता का उपदेश करने की प्रगट की। वहां से वह कुस्तुनतुनिया को जाना चाहता था और रोम राज्य और ईसाई धर्म का अन्त करके एशिया में जाने और अपनी विजयी तलवार दमिश्क में खलीफा के चरणों पर रखने की इच्छा रखता था।

परन्तु ऐसा होना ही न था। मूसा ने अपने लेफ्टनेन्ट तारिक से डाह करके उसका बड़ा अपमान किया। तारिक के मित्रों ने जो दरबार में खलीफा के पास रहते थे मूसा से बदला लेने के उपाय निकाल लिये। दमिश्क से आये हुये एक राजदूत ने मूसा को उसके सैनिक शिविर ही में क़ैद कर लिया। वह खलीफा के सामने लाया गया, सर्वसाधारण के सामने उसे कोड़े लगवा कर उसका अपमान किया गया और वह हताश होकर मर गया।

परन्तु अन्य मुखियाओं की अधीनता में फ्रान्स को विजय कर लेने का उद्योग किया गया। एक प्रारम्भिक चढ़ाई में गेरोन नदी के उद्गम-स्थान से लेकर लायर नदी तक का देश ले लिया गया। तदनन्तर मुसलमानी सेनापति अब्दुर्रहमान ने अपनी सेना को दो भागों में विभाजित करके पूर्वीय भाग को साथ लेकर रोन नदी को पार कर गया और आरलीस नगर को जा घेरा। एक ईसाई सेना, जिसने उस स्थान के बचाने का उद्योग किया था, बड़ी हानि के साथ परास्त कर दी गई। अब्दुर्रहमान की सेना का पश्चिमीय भाग उसी प्रकार सफलता के साथ डारडोन नदी को पार कर गया और इतनी भारी हानि के साथ एक अन्य ईसाई सेना को परास्त किया कि स्वयं उस सेना के बचे बचाये लोग कहते थे कि "मारे गये लोगों की गणना ईश्वर ही जानता है।" इस समय सर्व मध्य फ्रान्स

पद दलित हो चुका था; मुसलमान लोग लायर नदी के किनारों तक पहुंच गये थे, और गिरजाघरों और मठों का धन लूट लिया गया था। और उन रक्षक महात्माओं की, इस बड़ी आवश्यकता के समय में कुछ शक्ति नहीं चलती थी जिन्होंने अनावश्यक समयों में बहुत से चमत्कारी कार्य्य किये थे।

अन्त में सन् ७३२ ई० में चार्ल्स मारटेल ने इन आक्रमण कारियों के बढ़ाव को रोका। टूर्स और पायटियर्स के बीच में एक बड़ी भारी लड़ाई हुई जो सात दिन तक चलती रही। इस लड़ाई में अब्दुर्रहमान मारा गया, मुसलमानों को लौटना पड़ा और इसके बाद शीघ्रही उन्हें विवश होकर पेरीनीज़ पर्वत उल्लंघन करना पड़ा।

इस हेतु पश्चिमीय यूरोप में मुसलमानों के बढ़ने के चिन्ह लायर नदी के किनारों तक पाये जाते हैं। इन बड़ी घटनाओं के निज कृत वर्णन में गिबन महोदय यों लिखते हैं कि "जिबराल्टर की पहाड़ी से लायर नदी के किनारों तक अर्थात एक हज़ार मील से अधिक तक मुसलमानों के कूच की विजयी सड़क बढ़ती चली गई है। और यदि इतनी ही दूर वे और आगे बढ़ जाते तो मुसलमान लोग पोलैंड और स्काटलैंड के पहाड़ी भाग तक पहुँच जाते"।

मुझे यह आवश्यक नहीं जान पड़ता कि मैं इस चित्र में मुसलमानी धर्म का सैनिक विस्तार, भूमध्य-सागर पर मुसलमानों के सैनिक काम, क्रीट और सिसली की विजय, और मुसलमानों कृत रोम का अपमान और बढ़ा दूं। परन्तु ऐसा ज्ञात होता है कि सिसली और दक्षिणी इटैली में उनके रहने से यूरोप की मानसिक उन्नति में बहुत बड़ा प्रभाव पड़ा था।

मुसलमानों कृत रोम का अपमान! जिन भावों से यह अपमान सन् ८४६ ई० में किया गया उनसे बढ़कर नीच भाव और क्या हो सकते हैं? एक छोटी सी मुसलमानी सेना टाईबर नदी को पार करके नगर के कोट के सामने आ डटी। इस सेना ने, फाटक तोड़ कर नगर के भीतर जाने के लिये बहुत शक्तिहीन होने के कारण, सैन्टपीटर और सैन्टपाल के समाधिस्थानों को अपमानित करके और

लूट करके देव द्रोह किया। यदि स्वयं नगर लूट लिया जाता तो उसका धार्मिक प्रभाव इतना बड़ा न होता। सैन्टप्रीटर के गिरजा घर से उसकी चांदी की वेदिका तोड़ ली गई और आफ्रिका को भेज दी गई। यह पीटर की वेदिका ही रोम के ईसाई धर्म का मुख्य चिन्ह था।

कुस्तुनतुनिया को मुसलमानों ने कई बार घेरा ही था। उसका पतन होने ही वाला था। पर केवल कुछ दिनों के लिये रुका हुआ था। रोम नगर का सर्वाधिक अपमान हुआ था और भारी हानि भी हुई थी। एशियामाईनर के आदरणीय गिरजाघर मिट चुके थे; बिना आज्ञा लिये हुये कोई ईसाई जिरोसैलिम नगर में पैर नहीं रख सकता था और सुलेमान के मन्दिर के स्थान में खलीफा उमर की बनवाई हुई मसजिद खड़ी थी। सिकन्दरिया नगर के भग्नावशिष्ट भागों में से "दया की मसजिद" उस स्थान का चिन्ह बतलाती थी जहां मुसलमानी जनरल ने मार काट से संतुष्ट होकर घृणासूचक दया के साथ मुहम्मद के शत्रुओं के बचे बचाये शेष स्मारक चिन्ह रखवा दिये थे। कारथेज नगर में सिवाय उसके काले काले खंडहर घरों के और कुछ नहीं बचा था। सर्वाधिक शक्तिवान धार्मिक राज्य जो दुनिया में कभी स्थापित किया गया है अकस्मात स्थापित हो गया। वह अटलान्टिक समुद्र से लेकर चीन की दीवार तक, और केस्पीयन समुद्र के किनारों से लेकर हिन्द समुद्र के किनारों तक फैला हुआ था, और तब भी वह एक विचार से अपने अति उच्च शिखर तक नहीं पहुंचा था। अभी वह समय आने को शेष था जब वह सीज़र के उत्तराधिकारियों को उनकी राजधानी से निकाल देता, यूनान प्रायद्वीप को अपनी अधीनता में रखता, और यूरोप के राज्य के लिये उसी महाद्वीप के मध्य में ईसाई धर्म से झगड़ा करता और आफ्रिकर के अत्यन्त तप्त मरुस्थलों में और भूमध्य सागर और सायन रेखा के बहुत दूर दक्षिण देशों के मध्यस्थ घातक जंगलों के बीच में अपने धार्मिक सिद्धान्त और विश्वास विस्तृत करता।

परन्तु यद्यपि मुसलमान धर्म अपने अत्युच्च शिखर पर नहीं

पहुंचा था तब भी खलीफों का राज्य परमोन्नति को पहुँच चुका था। चार्ल्स मारटेल की तलवार नहीं, वरन् अरब राज्य के आन्तरिक झगड़े यूरोप के बचाव का कारण हुये। यद्यपि उमैया वंश के खलीफा सीरिया में सर्वप्रिय थे, तथापि अन्य देशों में वे अनधिकारप्रवेशी वा राज्यापहारी माने जाते थे। मुहम्मद के निकट सम्बन्धी उसके प्रचलित किये हुये धर्म के सच्चे प्रतिनिधि माने जाते थे। तीन समूहों ने, जो अपने भिन्न रंगों के झंडों से पहिचाने जाते थे, अपने झगड़ों के कारण खलीफों के राज्य के टुकड़े कर डाले; और अपने अत्याचारों से उसे कलंकित किया। उमैया वंश वालों का झंडा स्वेत रंग का था, फातिमा वंश वालों का हरा था, और अब्बासियों का काला था। अन्तोक्त झंडा अब्बास अर्थात् मुहम्मद के चचा का समूह प्रदर्शित करता था। इन झगड़ों का फल यह हुआ कि दशवीं शताब्दी में मुसलमानी राज्य तीन भागों में विभक्त होकर बगदाद, काहिरा और कारडोआ के राज्य बन गये। मुसलमानों की राज्यनैतिक कार्मों की एकता का अन्त हो गया, और ईसाई संसार को दैवी सहायता से नहीं वरन् समतुल्य शासकों के झगड़ों के कारण रक्षा का उपाय मिल गया। इन आन्तरिक शत्रुताओं में बाहरी दबाव भी अन्त में आ मिले। और अरबी धर्म, जिसने संसार की मानसिक उन्नति में बहुत कुछ सहायता की थी, उस समय अन्त को पहुंच गया जब तुर्क और बबर लोगों ने शक्ति प्राप्त की थी।

मुसलमान लोग यूरोप के विरोध से पूर्णतः बे परवाह हो गये थे। वे पूर्णरीति से अपने घरू झगड़ों में ही फँसे रहते थे। आकले ने अपने इतिहास में सत्य कहा है कि "मुसलमानों का कोई ऐसा डिपुटी लेफ्टनेन्ट वा जनरल नहीं था जो तमाम यूरोप की सम्मिलित सेनाओं से अपमानित होने पर अपनी बड़ी भारी बे ईज्ज़ती न समझता रहा हो। और यदि कोई यह पूछे कि इन धृष्ट आक्रमण कारियों को सर्वथा निर्मूल कर देने के हेतु यूनानियों ने क्यों और अधिक उद्योग न किया, तो उन लोगों के स्वभाव से जानकारी रखने वाले

मनुष्य को यह उत्तर देना अलम् है कि अमरू सिकन्दरिया में रहा करता था और मुवैया दमिश्क में।"

उनके घृणा के विषय में यह उदाहरण काफी है–अर्थात नेसीफरस नामक रोम सम्राट ने खलीफा हारूंरशीद के पास एक धमकी का पत्र भेजा था जिसका उत्तर यह था कि "अत्यंत दयालु ईश्वर के नाम पर, मुसलमानों का सेना पति हारूंरशीद रोमीय कुत्ते निसीफरस के नाम यह पत्र लिखता है। हे काफिर माता के पुत्र मैंने तेरा पत्र पढ़ा, उस पत्र का उत्तर तू सुनेगा। नहीं वरन् देखेगा।" और पत्रोत्तर रक्त और अग्नि के अक्षरों से फ्रिजिया के मैदानों में लिखा गया है।

कोई जाति अपने अपहरण किये गये प्रान्तों को फिर से पासकती है, अपहरित धन भी पा सकती है, वह बहुत भारी युद्ध-दंड देने पर भी जीवित रह सकती है, परन्तु स्त्री हरण रूपी अत्यन्त भयंकर युद्ध–कार्य्य से फिर कभी नहीं उभड़ सकती। जब अबूउबैदा ने एन्टिआक नगर ले लेने की खबर खलीफा उमर के पास भेजी तब उमर ने कोमल शब्दों में उसे भर्त्सना की थी कि तूने वहां की औरतों के साथ सिपाहियों को ब्याह क्यों नहीं करने दिया। वे शब्द इस भांति लिखे गये थे "यदि वे लोग सीरिया में बिवाह करना चाहते हैं तो उन्हें कर लेने दो, और जितनी लोंडियों की उन्हें आवश्यकता हो उतनी लोंडियां वे रख सकते हैं।" बस बहु बिवाह प्रथा का यही कानून था कि पराजित देशों से स्त्रियां अपहरण की जायें।

और यही बात फिर सदैव के लिये मुसलमानी रीति हो गई। ऐसे दम्पतियों की सन्तानें अपने विजेता बापों की सन्तान होने पर गर्व करती थीं। इस नीति के प्रभाव का उससे अच्छा प्रमाण नहीं दिया जा सकता जो उत्तरीय आफ्रिका में मिलता है। नवीन प्रबंधों को दृढ़ करने में इस बहु बिवाह प्रथा का बेरोक प्रभाव बहुत ही विचित्र हुआ। एक पीढ़ी से कुछ ही अधिक समय में ख़लीफा के अफसरों ने उसे सूचना दी कि राज्य कर लेना बंद किया जाय, क्योंकि इस देश में

पैदा हुए सब ही बालक मुसलमान हैं और सबही अरबी भाषा बोलते हैं।

मुसलमानी धर्म जैसा कि मुहम्मद छोड़ गया था एक ऐसा धर्म था जो यह मानता था कि ईश्वर मानवी आकार धारण किये है। उस धर्म का ईश्वर केवल एक बहुत बड़ा मनुष्य था, और उस धर्म का स्वर्ग इन्द्री सुख भोगों का भवन था। उस धर्म के बुद्धिमान समाजों ने बहुत शीघ्र ही इन अधूरे विचारों को छोड़ दिया और उनके स्थान में अन्य अधिक तत्वज्ञानी और अधिक सत्य विचार प्रचलित किये। अन्त में वे इस सीमा तक पहुँच गये कि वे उन विचरों के समान हो गए जिनको वैटिकन सभा ने हमारे समय में शास्त्रोक्त कहा है। इस भांति अलग़ज़ाली कहता है "ईश्वर सम्बन्धी ज्ञान, निज शारीरिक ज्ञान वा आत्मिक ज्ञान द्वारा नहीं प्राप्त हो सकता। मनुष्य के गुणों द्वारा ईश्वर के गुण नहीं निश्चित किये जा सकते, उसका ईश्वरत्व और शासन अतुल और अपरिमाण है।"

चौथा अध्याय।

दक्षिण में फिर से विज्ञान का प्रचार।

(नेस्टर मतावलम्बियों और यहूदियों के प्रभाव से अरब लोगों का ध्यान विज्ञान के प्रचार की ओर फिरा। उन्होंने अपने मानवी भाग्य विषयक विचारों को ठीक किया और संसार की बनावट के विषय में सत्य ज्ञान पाया। उन्होंने पृथ्वी के मान को निश्चित किया और उसके आकार को ठीक तौर से जान लिया। खलीफाओं ने बड़े बड़े पुस्तकालय इकट्ठे किये और विज्ञान और साहित्य के प्रत्येक विभाग के आश्रय दाता बने और ज्योतिष सम्बन्धी बेधशालाएं स्थापित कीं। उन्होंने गणित विद्या की उन्नति की, बीजगणित निकाला और रेखागणित वा त्रिकोणमिति विद्या को बढ़ाया। उन्होंने प्राचीन यूनानी गणित और ज्योतिष विद्या के ग्रन्थ एकत्र किये, और अनुवाद कराया, और अरस्तू का अनुमानिक सिद्धान्त स्वीकार किया। उन्होंने बहुत से बड़े विद्यालय स्थापित किये और नेस्टर मतावल-

भियों की सहायता से शिक्षा विभाग संगठित किया। उन्होंने अरबी अंक और अङ्कगणित प्रचलित किये। एक सूची बनाई और ग्रहों के नाम रखाये। उन्होंने नवीन ज्योतिष, रसायन और पदार्थ विद्याओं की नीव डाली और कृषी विद्या और हस्त कला कुशलता में बड़ी उन्नति की)
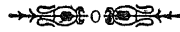
ख़लीफ़ा अली ने कहा था कि अपने जीवन में मैं ने बहुधा देखा है कि मनुष्य अपने पिताओं के अनुसार होने की अपेक्षा अधिक तर अपने वर्तमान समय के अनुसार होते हैं। मुहम्मद के दामाद की यह गम्भीरता मय तत्व विवेचना बहुत सत्य है, क्योंकि यद्यपि मनुष्य के अङ्गों की बनावट उसका कुल प्रगट कर सकती है तथापि उसके मन की बनावट और उसके विचारों का झुकाव उस संगति से जाने जा सकते हैं जिसमें वह रहता है।

जब खलीफ़ा उमर के लेफ्टनेन्ट अमरू ने मिसिर देश को जीत कर मुसलमानी राज्य में मिला लिया था उस समय उसने सिकन्दरिया नगर में एक यूनानी व्याकरणाचार्य्य पाया था जिसका नाम 'जान' था और उपनाम फिलोपोनिस वा 'परिश्रम प्रिय' था। उस मित्रता के कारण जो इन दोनों में हो गई थी यूनानी व्याकरणाचार्य्य ने उपहार की भांति सिकन्दरिया के बड़े पुस्तकालय की बची बचाई पुस्तकें मांग लीं। ये बची बचाई पुस्तकें वेही थीं जो युद्ध और समय और धर्म आग्रह से भी बच गई थीं। इस कारण अमरू ने इस विषय में ख़लीफ़ा की मनशा जानने के लिये उससे पूंछ भेजा। ख़लीफ़ा ने उत्तर दिया कि "यदि वे पुस्तकें ईश्वर वाक्य कुरान के अनुकूल हैं तो वे व्यर्थ हैं और उनको बचा रखने की आवश्यकता नहीं, और यदि वे कुरान के प्रतिकूल हैं तो वे अपकारी हैं उन्हें नष्ट कर देना चाहिये।" इसके अनुसार वे पुस्तकें सिकन्दरिया के हम्मामों को बांट दी गईं, और ऐसा कहा जाता है कि वे पुस्तकें छः महीने तक के समय में भी जलाई नहीं जा सकीं।

यद्यपि इस घटना को कोई कोई नहीं मानते, तथापि कुछ सन्देह नहीं है कि ख़लीफ़ा उमर ने ऐसी आज्ञा दी थी। खलीफ़ा

एक अपढ़ आदमी था और उसकी संगति धर्मोन्मत्त और अज्ञानी पुरुषों की थी। उमर का यह कार्य्य अली के कथन का एक उदाहरण था।

परन्तु ऐसा न मान लेना चाहिये कि वे पुस्तकें जो 'परिश्रम प्रिय' 'जान' लेना चाहता था वे पुस्तकें थीं जो टालेमी नामक राजाओं के बड़े पुस्तकालय में और परगेमस के राजा यूमीनीज़ के पुस्तकालय में थीं। जब से फिलेडेल्फस ने पुस्कें एकत्र करना आरम्भ किया था तब से आज तक लगभग एक हज़ार वर्ष बीत चुके थे। ज्यूलियस सीज़र ने आधी से अधिक पुस्तकें जला दी थीं, और सिकन्दरिया के मुख्य धर्माध्यक्षों ने केवल आज्ञा ही नहीं दी थी, वरन् लगभग सब शेष पुस्तकों को तितर वितर कर देने में प्रबंधक भी बने थे।

ओरोसियस स्पष्ट कहता है कि मैंने सेंटसाईरिल के चाचा थियोफिलस के मरने के बीस वर्ष बाद अलमारियां खाली पाई थीं और सम्राट थियोडोसियस से पुस्तकालय नष्ट कर देने की लिखित राजाज्ञा भी ले ली थी। यदि इस प्राचीन उत्तम पुस्तकालय पर ऐसा अत्याचार न भी किया जाता तो केवल टूटने फूटने और हज़ारों वर्ष के लूट से ही यह पुस्तकालय बहुत कुछ घट जाता। यद्यपि 'जान' जैसा कि उसका उपनाम प्रगट करता है, अधिक काम पाजाने के कारण हर्ष प्रगट कर सकता है, तथापि हमको निश्चय है कि आधे लाख पुस्तकों के पुस्तकालय की देख रेख करना उसकी भली भांति जांची हुई शक्तियों से भी बाहर था; और उसको स्थित रखने और उसकी रक्षा करने का खर्च, जिसमें टालेमी नामक राजाओं और सीज़र नामक राजाओं का बहुत अधिक धन व्यय होता था, एक व्याकरणी की शक्ति के बाहर है। जितना समय उनके जलाने वा नष्ट करने में लगा उससे भी उस पुस्तक समूह के बिस्तार का ठीक अनुमान नहीं होता। क्योंकि जलाने की सब बस्तुओं में से चर्मपत्र तत्यन्त ही खराब बस्तु है। कागज़ और कोमल बस्तुएं तो अच्छी तरह जलती हैं, परन्तु हमें विश्वास रखना चाहिये कि जब तक वे अन्य वस्तुएं पाते रहे होंगे,

सिकन्दरियाके हम्मामों के प्रबंधक चर्मपत्र कदापि न जलाते रहे होंगे और इन पुस्तकों में से अधिकतर पुस्तकें चर्मपत्र परही लिखी हुई थीं।

इसलिये जैसा सन्देह इस बात में किया जाता है कि खलीफा उमर ने व्यर्थ और अधार्मिक समझ कर इस पुस्तकालय के नष्ट कर देने की आज्ञा दी थी, वैसाही संदेह इस बात में भी किया जा सकता है कि क्रूसेडर (धर्मयुद्धकारी) लोगों ने त्रिपोली का पुस्तकालय जलादिया था जिसके विषय में कहा जाता है कि तीनलाख पुस्तकें थी। पहिले दालान में कुरान की पुस्तकें भरी थीं, और अन्य सब पुस्तकें अरब के दाम्भिकों के बनाये ग्रंथ माने जाते थे और इसी लिये वे जलादिये गये थे। दोनों दशाओं में यह कथन कुछ तो सत्य है और बहुत कुछ बढ़ाकर कहा गया है। परन्तु ऐसेही अत्याचारी कामों से धर्म आग्रह की पहिचान होती है। स्पेन निवासी लोगों ने मेक्सिको में अमेरिका के चित्रित ग्रंथों का एक बड़ा भारी ढेर जला दिया था जिस हानि की कभी पूर्ति न होसकी। और ग्रनाडा के चैाकों में बड़े पादरी ज़िमीनीज़ ने अस्सी हज़ार अरबी की हस्तलिखित पुस्तकें जला दी थीं जिनमें से बहुत सी पुस्तकें प्राचीन ग्रंथकारों के ग्रंथों के अनुवाद थे।

हम देख चुके हैं कि सिकन्दर कृत फारिस की चढ़ाई से उत्तेजित होकर यंत्र-कला-कुशलता ने टालेमी नामक राजाओं के राज्य कालमें स्वच्छ विज्ञान की कैसी आश्चर्य्य प्रद उन्नति हुई थी। मुसल्मानों के सैनिक कार्य्यों के प्रतिफल रूप भी ऐसा ही प्राभाव देखा जा सकता है।

मिसिर के विजेता अमरू की व्याकरणी जान के साथ मित्रता यह बात प्रगट करती है कि अरब निवासियों का मन किस भांति उच्च विचारों की ओर झुकने लगा था। काबा के मूर्ति पूजन से मुहम्मद के अद्वैत मत तक बढ़ने के कारण उनका मन साहित्य और तत्वज्ञान के चैाड़े और मनोहर मैदानों में भ्रमण करने के लिये तय्यार हो गया था। उस मन पर इस समय बराबर दो प्रभाव पड़ रहे थे। (१)

सीरिया निवासी नेस्टर मतावलम्बियों का प्रभाव और (२) मिस्रि निवासी यहूदियों का प्रभाव ।

गत अध्याय में मैं संक्षेपतः नेस्टर और उसके अनुगामियों की कष्ट कथा वर्णन कर आया हूं । बहुत से कष्ट पाने तथा धर्म हेतु मारे जाने पर भी वे ईश्वर की अद्वैतता ही मानते रहे । वे आलिम्पस का होना और वहां देवी देवताओं का होना पूर्ण रीति से खण्डन करते रहे । उनका सिद्धान्त था कि "स्वर्ग की रानी हमसे दूर रहे" ।

ऐसे विशेष विचारों वाले होने के कारण नेस्टर मतावलम्बियों को उन मुसल्मान विजेताओं से मिलजाने में कुछ भी कठिनाई न पड़ी जो उनका केवल आदर ही न करते थे वरन् राज्य के बड़े बड़े पद भी देते थे । मुहम्मद ने बड़े ज़ोर के साथ अपने अनुगामियों को मना किया था कि उनको कोई हानि न पहुंचावें । ईसू अब्बासी ने जो उनका पुरोहित था मुहम्मद और उमर से संधियां करली थीं और कुछ दिनों के अनन्तर ख़लीफ़ा हारूंरशीद ने जान मेसू नामक एक नेस्टर पंथानुगामी को अपने राज्य के शिक्षा विभाग का मुख्य प्रबंध कर्त्ता बना दिया था ।

इन नेस्टर पंथानुगामियों के प्रभाव में यहूदियों का प्रभाव और मिल गया । जब ईसाई-धर्म मूर्तिपूजक धर्म से सम्मिलित होने की ओर झुकने लगा तब यहूदियों का ईसाई होना रुक गया, और जब ईसाई धर्म में त्रिदेव विषयक विचार प्रचलित हो गये तब पूर्णतः बंद होगया । सीरिया और मिस्रि देश के नगर यहूदियों से भरे हुये थे । केवल सिकन्दरिया में, जिस समय अमरू ने इस शहर को ले लिया था चालीस हजार यहूदी रहते थे जो राज्यकर देते थे । कई शताब्दियों तक विपत्ति और कष्ट सहने से वे अपने अद्वैत मत में दृढ़ हो गये थे, और मूर्तिपूजक की अशमनीय घृणा, जो उनके चित्त में उस समय से चली आती थी जब वे बेबीलान नगर में कैद किये गये थे, अधिक दृढ़ हो गई । नेस्टर पंथानुगामियों से मिलकर उन्होंने सीरिया की भाषामें बहुत से यूनानी और रोमी तत्वज्ञानी ग्रंथोका अनुवाद किया जिनका अनुवाद अरबी में हो चुका था । एक ओर तो नेस्टर

पंथानुगामी बड़े बड़े मुसल्मान कुलों के बच्चों को शिक्षा देरहे थे, और दूसरी ओर वैद्य रूप से यहूदी लोग उनमें मिल गये थे।

इन प्रभावों से मुसल्मानों की भयंकर धर्मोन्मत्तता कम होगई। उनके आचरण सुधर गये, और उनके बिचार उन्नत हो गये। उन्होंने तत्वज्ञान और विज्ञान के राज्य को इतनी शीघ्रता से मँझा डाला जितनी शीघ्रता से उन्होंने रोम राज्य के प्रान्तों को मँझा डाला था। उन्होंने गँवारू मुसल्मान धर्म के भ्रान्त मतों को त्याग दिया और उनके स्थान में वैज्ञानिक सत्यता ग्रहण करली।

मूर्तिपूजक संसार में मुसल्मानों की तलवार ने ईश्वर की महिमा स्थापित करदी थी। कुरान से उपदिष्ट दैवाधीनता के सिद्धान्त ने इस काम में बड़ी सहायता की थी। "ईश्वर के पूर्वनिर्णीत कार्य को न कोई पहले से जान सकता है न उसे टाल सकता है। उंचे गरगजों पर भी मृत्यु हमें आ लेगी। आदि से ही ईश्वर ने वह स्थान निश्चित कर दिया है जहां प्रत्येक मनुष्य मरैगा"। अपनी अलंकारिक भाषा में उस अरब निवासी ने कहा है "भागने से कोई मनुष्य होनी से नहीं बच सकता। होनी रात्रि को भी अपने घोड़े पर चलती है। चाहे तू पलंग पर हो, चाहे युद्धघमसान में, यमराज तुझे ढूंढही लेंगे"। अली ने, जिसकी बुद्धिमानी के विषय में हम कह चुके हैं कहाथा कि "विश्वास है कि मनुष्यों के सब कार्य ईश्वर की आज्ञा से होते हैं, न कि हमारे प्रबंध से"। सच्चे मुसल्मान वे लोग हैं जो बिनीत भाव से ईश्वर की इच्छा के अधीन रहते हैं। वे भाग्य को और स्वतंत्र इच्छा को इस भांति मिलाते हैं कि बाह्यरेखा युक्त जीवन-चित्र हमें देदिया गया है, हम उस चित्र पर अपनी स्वतंत्र इच्छानुसार रंग भर रहे हैं"। उन्होंने कहा है कि "यदि हम प्रकृति के नियमों को जीतना चाहते हैं तो हम को चाहिये कि हम उनका सामना करें। हमको चाहिये कि हम उनका परस्पर एक दूसरे के विरुद्ध समीकरण करदें।

इस गूढ़ सिद्धान्त ने अपने भक्तों को ऐसे बड़े कामों के करने के लिए तैयार कर दिया जैसे बड़े काम मुसल्मानों ने किये। इस सिद्धान्त ने

निराशा को ईश्वरेच्छा में पलट दिया, और मनुष्यों को आशा से घृणा करना सिखला दिया । वे लोग एक कहावत कहा करते थे कि निराशा एक स्वतंत्र मनुष्य है और आशा एक गुलाम है " ।

परन्तु युद्ध की बहुत सी घटनाओं ने स्पष्ट दिखला दिया कि औषधियां कष्ट को घटा सकती हैं, और यह भी दिखला दिया कि चतुरता से घाव बंद किए जा सकते हैं, और यह भी कि जो मनुष्य मर रहे हैं वे भी कब्र से खींच लिये जा सकते हैं । यहूदियों की वैद्यक विद्या एक पेशा हो गई, और कुरान के होतव्यता सिद्धान्त के विरुद्ध एक सर्वमान्य विरोधवाद हो गई । धीरे २ पूर्व निर्णीत होनी की कठिनता कम हो गई, और यह मान लिया गया कि एक मनुष्य के जीवन में स्वतंत्र इच्छा का प्रभाव हो सकता है, और यह भी मान लिया गया कि अपने इच्छित कामों से निश्चित सीमा के भीतर कोई मनुष्य अपने जीवन निर्वाह का मार्ग निश्चय कर सकता है । परन्तु जातियों के विषय में ऐसा है कि चूंकि वे ईश्वर के सामने व्यक्तिक जवाब देही नहीं दे सकतीं, इस हेतु वे एक स्थिर नियम के अधीन रखी गई हैं ।

इस विचार से ईसाई और मुसल्मान जातियों की तुलना करने में परस्पर बड़ा अन्तर था । ईसाई लोग विश्वास करते थे कि सांसारिक कामों में बहुधा ईश्वरीय हस्तक्षेप होता है । वे यह भी विश्वास करते थे कि संसार के शासन में कोई नियम नहीं है । प्रार्थना और विनय करके मनुष्य ईश्वर को कार्य्यों की धारा पलट देने के लिये मना सकता है, अथवा यदि उसमें भी सफलता न हो, तो मनुष्य ईसा के द्वारा सफल मनोरथ हो सकता है, वा कदाचित कुमारी मरियम के द्वारा, वा सिद्ध पुरुषों की सिफारिश द्वारा, वा उनके अवशिष्ट वा हड्डियों के प्रभाव द्वारा भी काम हो सकता है । यदि मनुष्य की प्रार्थनायें निष्फल हो जायें तो वह अपना मनोरथ अपने पुरोहित की सिफारिश द्वारा प्राप्त कर सकता है अथवा ईसाई धर्म के पवित्र मनुष्यों की सिफारिश द्वारा, और विशेष कर यदि बलिदान वा धन का पुरस्कार उसमें बढ़ा दिया जाय तो मनोरथ

पूरण हो सकता है। ईसाई संसार का विश्वास था कि वह सांसारिक कार्य्यों का प्रवाह अपने पूज्य व्यक्तियों के आचरण पर प्रभाव डाल कर, बदल सकता है। मुसल्मानी धर्म की नीव ईश्वर की अपरिवर्तनीय इच्छा पर निर्भर रहने पर स्थित थी। ईसाइयों की प्रार्थना विशेष कर इच्छित लाभों के प्राप्त होने के हेतु एक सत्य सिफारिश थी, और मुसल्मानों की प्रार्थना गत लाभों की प्राप्ति के हेतु भक्तिमय कृतज्ञता-प्रकाश न थी। दोनों धर्मों ने भारत वर्ष की आनन्दमय ध्यान दशा के स्थान में प्रार्थनाएं प्रचलित की थीं। ईसाइयों के विचार से संसार की उन्नति अनमिल शक्तियों और आकस्मिक घटनाओं का प्रकाशन मात्र थीं। वह उन्नति मुसल्मानों के विचार से एक बहुत भिन्न रूप प्रदर्शित करती थी। अर्थात् प्रत्येक शारीरिक संचालन किसी पूर्व संचालन के कारण से होता है प्रत्येक विचार किसी पहिले विचार से प्रगट होता है। प्रत्येक एतिहासिक घटना किसी पहिले हुई घटना से पैदा होती है। प्रत्येक मानवी कार्य्य किसी विगत और पूर्ण किये हुये कार्य्य का प्रतिफल है। हमारी जाति के बड़े भारी इतिहास में कोई बात अकस्मात नहीं हुई। सदैव क्रमागत और अटलरूप से एक घटना दूसरे से सम्बन्ध रखती आई है। होतव्य की एक पुष्ट लोहशृंखला है जिसकी कड़ियां घटनायें हैं। प्रत्येक कड़ी अपने पूर्व निश्चित स्थान में लगी हुई है। न कभी कोई कड़ी अपने स्थान से इधर उधर की गई है न हटाई गई है। प्रत्येक मनुष्य विना निज ज्ञान के इस संसार में आया है, और कदाचित उसे यहां से अपनी इच्छा के विरुद्ध चला जाना पड़ेगा। जब यह बात है तब उसे चुपके से हाथ ही जोड़ना चाहिये और होतव्य के फल की बाट जोहना चाहिये।

व्यक्तिक जीवन के शासन के विषय में इस सम्मति परिवर्तन के साथही साथ संसार के यंत्रिक बनावट के विषय में भी परिवर्तन हुआ। कुरान के अनुसार यह पृथ्वी एक चौकोर धरातल है जिसके किनारे किनारे बड़े बड़े पहाड़ हैं, जिनसे दो काम निकलते हैं, एक यह कि वे पृथ्वी को अपने स्थान से डिगने नहीं देते, और दूसरा

वह कि आकाश का गुम्बद थांमे हुए हैं। इस भारी, स्फटिकवत, स्वच्छ, शीघ्रभंगुर विस्तार (आकाश) को देख कर जो इस प्रकार सुरक्षित रीति से अपने स्थान में रखा गया है कि उसमें कोई दरार वा हानि नहीं हुई, ईश्वर की बुद्धि और शक्ति पर हमारी भक्ति और अधिक होना चाहिये। इस आकाश के ऊपर और उसी पर रखा हुआ स्वर्ग है, जो सतखंडा बना हुआ है, जिसके सब से ऊपर वाले खंड में ईश्वर का निवासस्थान है। वह ईश्वर एक बड़े भारी मनुष्य के रूप में एक सिंहासन पर बैठता है और उसके दोनों ओर पंखदार बैल हैं जो उन बैलों के अनुसार हैं जो प्राचीन असीरिया नरेशों के महलों में थे।

इन विचारों को, जो वास्तव में विशेष कर मुसल्मानी ही धर्म के नहीं हैं वरन् सब ही मनुष्यों के मन में उनकी मानसिक उन्नति की एक विशेष दशा में धार्मिक ईश्वर वाक्य की भांति पैदा होते हैं, अधिक उन्नत-चित्त मुसल्मानों ने छोड़ दिया, और उनके स्थान में दूसरे विचार ग्रहण किये जो वैज्ञानिक रीति से शुद्ध थे। तब भी जैसा ईसाई देश में हुआ था, यह उन्नति भी ईश्वर कथित सत्यता (अर्थात् धर्मपुस्तकों के कथन को सत्य मानने वालों की ओर) से बिना विरोध किये न बच सकी। इस भांति जब अलमामूं ने, पृथ्वी की गोलाकार आकृति को जान कर अपने गणितज्ञों और ज्योतिषियों को पृथ्वी के वृत्त के एक अंश को नापने की आज्ञा दी थी, तब तक़ीउद्दीन ने, जो उस समय ईश्वर विद्याविशारदों में सब से अधिक विख्यात विद्वान था, यह कह कर कि ईश्वर उसे अवश्य दंड देगा क्योंकि वह धृष्टता सहित झूठे और नास्तिक तत्व ज्ञान को सहारा देकर और लोगों में फैलाकर मुसल्मानों की भक्ति बिगाड़ता है, उस दुष्ट खलीफा की निन्दा की थी। परन्तु अलमामूं ने आग्रह किया और लाल सागर के किनारे पर शीनार के मैदानों में एक चक्रयंत्र की सहायता से क्षितिज से ध्रुव की उंचाई एकही मध्यान्ह रेखा के दो स्थानों से नापी गई जो ठीक एक अंश की दूरी पर थे। तदनन्तर उन दोनों स्थानों के बीच का फासिला नापा गया और दो लाख हाथ

पाया गया। इस हिसाब से पृथ्वी का वृत्त आजकल के प्रचलित चौबीस हज़ार मीलों के लगभग ठहरा। यह निश्चय कुछ बहुत असत्य नहीं है परन्तु चूंकि गोली आकृति की ठीक नाप एकही बार नापने से नहीं हो सकती इस लिये खलीफा ने मिसोपोटेमियां में कूफ़ा नगर के निकट एक बार और नाप कराई। उसके ज्योतिषी दो समूहों में बट गये और एकही स्थान से चलकर एक ने उत्तर की ओर दूसरे ने दक्षिण की ओर, हर एक समूह ने पृथ्वी वृत्त के एक अंश को नापा। उसका प्रतिफल हाथों में लिखा गया है। यदि उस समय का हाथ वही हाथ है जो राजकीय हाथ कहलाता था तो पृथ्वी वृत्त के एक अंश की लम्बाई जो उस समय निश्चित की गई उसमें $\frac{1}{3}$ मील से कम की गलती थी। इन्हीं नापों से खलीफा ने यह प्रतिफल निकाल लिया कि पृथ्वी की गोल आकृति प्रमाणित हो गई।

यह बात बड़ी आश्चर्य्य प्रद है कि कितनी शीघ्रता के साथ मुसल्मानों की भयानक धर्मोन्मत्तता मानसिक खोजों की बलवती अभिलाषा में बदल गई। पहिले तो कुरान साहित्य और विज्ञान के लिये एक रोक थी, मुहम्मद ने उसकी ऐसी प्रशंसा की थी कि वह सबही ग्रंथों से बढ़ कर ग्रंथ है और उसकी अनूपम उत्तमता ही को इस बात का प्रमाण माना था कि वह ईश्वर वाक्य है। परन्तु उसके मृत्यु के अनन्तर बीस वर्ष से कुछही अधिक काल में उस अनुभव ने जो सीरिया, फारिस, एशियामाईनर और मिसिर में हुआ था, बड़ा प्रभाव डाला था और उस समय का खलीफा 'अली' खुल्लम खुल्ला सब प्रकार की विद्योन्नति को उत्तेजना देता था। उमैया बंश के स्थापक मुवैया ने, जो ६६१ ईस्वी में खलीफा हुआ, राज्य प्रबन्धही में बड़ा उलट फेर कर डाला। पहिले खलीफा चुने जाते थे, उसने इस प्रथा को वंश परम्परागत कर दिया। उसने मदीना से राजधानी उठाकर अधिक केन्द्रस्थ स्थान दमिश्क में स्थापित की। और बड़ी शान शौकत और बड़े भोग विलासों से जीवन व्यतीत करने लगा। उसने कठिन धर्मोन्मत्तता के बंधनों को तोड़ डाला और अपने को विद्याओं का सहायक, रक्षक, और प्रचारक प्रसिद्ध किया। ३० वर्ष

में बड़ा भारी परिवर्तन होगया। एक फारिस के सूबेदार ने जो खलीफा उमर (दूसरा खलीफा) के दर्शनों को आया करता था ख़लीफ़ा को फ़क़ीरों के बीच मदीना की मसजिद की सीढ़ियों पर सोता हुआ पाया था। परन्तु जो विदेशी राजदूत छठवें खलीफा मुवैया से मिलने आते थे वे उसके सामने एक बड़े वैभवशाली महल में पेश किये जाते थे जो अत्यन्त सुन्दर अरबी वस्तुओं से सजाया हुआ होता था, और गजरों और फौव्वारों से सुसज्जित किया जाता था।

मुहम्मद की मृत्यु के अनन्तर एक शताब्दी से कमही में खास २ यूनानी तत्वज्ञानी लेखकों के ग्रंथों के अनुवाद अरबी भाषा में हो गये। ईलियड और आडिसी नामक काव्य ग्रंथ भी जो अपनी पौराणिक कथा सम्बन्धों के कारण अधार्मिक ग्रंथ माने जाते थे, विद्वानों की उत्सुकता शांत करने के लिये सीरिया की भाषा में अनुवादित हुये। अल्मंसूर ने अपने राज्य समय में (७५३—७७५ ई०) राजधानी दमिश्क से बग़दाद को बदल दी और उस नगर को उसने बड़ा वैभवशाली राज्यनगर बनाया। वह ज्योतिष विद्या की उन्नति और उसके अध्ययन में बहुत समय लगाता था और वैद्यक और क़ानून के विद्यालय स्थापित किये थे। उसके पौत्र हारूं रशीद (७८६ ई०) ने भी उसी का अनुकरण किया और आज्ञा दी कि उसके राज्य भर में प्रत्येक मसजिद में एक पाठशाला होना चाहिये। परन्तु एशियाई विद्याओं का सर्वोत्तम समय अल्मामूं का राज्य-समय था (८१३—८३२ ई०)। उसने बग़दाद को विज्ञान का केंद्रस्थल बना दिया, बड़े २ पुस्तकालय इकट्ठे किये, और विद्वान मनुष्यों को अपने पास रखने लगा।

इस भांति बढ़ी हुई विद्या की उच्च अभिलाषा मुसल्मानी राज्य के तीन विभाग हो जाने के अनन्तर भी बनी रही। एशिया में अब्बासी वंश, मिस्रि में फातिमा वंश, और स्पेन में उमैया वंश वाले परस्पर एक दूसरे से केवल राज्यनैतिक बातों ही में नही वरन् विज्ञान और अन्य विद्याओं में भी बढ़ जाने की चेष्टा करने लगे।

विद्याओं में से मुसल्मानों ने प्रत्येक विषय को जो मन को प्रसन्न कर सकता वा उन्नति कर सकता ग्रहण कर लिया। कुछ और समय बीतने पर वे लोग इस बात का गर्व करने लगे कि उनकी जाति में इतने कवि हुये हैं जितने संसार के अन्य सबही जातियों के मिला कर भी नहीं हुये। विज्ञान में उनकी बड़ी योग्यता इस बात में है कि उन्होंने उसका प्रचार सिकन्दरिया निवासी यूनानियों की भांति किया, न कि यूरोप निवासी यूनानियों की भांति। उन्होंने जान लिया था कि विज्ञान की उन्नति केवल मनन शीलता से नहीं हो सकती, वरन् उसकी सच्ची उन्नति प्रकृति के अभ्यासिक खोज खाज से ही हो सकती है।

प्रयोगिक अनुभव और निरीक्षण उनके ढंग के आवश्यक लक्षण थे। रेखागणित और गणितविद्याओं को वे विवेचना शक्ति के बढ़ाने का द्वारा मानते थे। यंत्रविद्या, उद्कस्थिति-विद्या, और दृष्टि विद्या पर उनके लिखे हुये अनेक ग्रंथों में यह बात बहुत ही मनोरंजक है कि प्रत्येक सिद्धान्त का साधन सदैव प्रयोगिक अनुभव करके वा यंत्रिक निरीक्षण द्वारा किया गया है। यही बात थी जिसने उन्हें रसायन विद्या का उत्पादक बना दिया और जिसने उन्हें अरक़कशी, भाफ बनाने, पिघलाने और टपकाने के सब प्रकार के यंत्र बनाने वाला कर दिया और जिसने उन्हें ज्योतिष में वृत्तपाद और चक्रयंत्र सरीखे विभाजित यंत्रों से सहायता लेनेवाला कर दिया, और रसायन विद्या में तुला यंत्र का प्रयोग कर्ता बना दिया जिसके सिद्धान्त को वे पूर्ण रीति से जानते थे और प्रत्येक वस्तु के ठीक गुरुत्वमान की सारणियां बनवाईं और बग़दाद, स्पेन और समरकंद की सी ज्योतिष की सारणियां बनवाईं, और जिसने उनसे रेखागणित, त्रिकोणमिति विद्याओं में, बीजगणित के अन्वेषण में, और अंक गणित में हिन्दुस्तानी गणना स्वीकार करने में बड़ी उन्नति कराई। अरस्तू के अनुमानिक ढंग को अधिक पसंद करने और अफ़लातूं के मनन शील ढंग को छोड़ने के ये प्रतिफल हुये।

सार्वजनिक पुस्तकालय स्थापित करने और उन्हें बढ़ाने के लिये बड़े परिश्रम से पुस्तकें इकट्ठा की गईं। इस प्रकार कहा जाता है कि खलीफा अलमामूं चार सौ ऊंटों पर लदने योग्य हस्त-लिखित पुस्तकें बग़दाद में लाया था। यूनानी सम्राट तीसरे माईकेल से जो संधि उसने की थी उसमें उसने यह शर्त की थी कि कुस्तुनतुनियां के पुस्तकालयों में से एक पुस्तकालय उसे दे दिया जाय। इस भांति जो पुस्तक संग्रह उसे मिला था उसमें अंकगणितानुसार आकाशों की बनावट पर टालेमी की लिखी हुई एक पुस्तक थी। उसने अरबी भाषा में उसका अनुवाद किया और उस अनुवाद का नाम "अलमेजेस्ट" रखाया। इस भांति मिली हुई पुस्तकों का संग्रह किसी समय बहुत भारी हो गया। इस भांति फातिमा वंश वाले खलीफों के क़ाहिरावाले पुस्तकालय में एक लाख पुस्तकें थीं जो बहुत सुन्दर अक्षरों में लिखी हुई थीं और उत्तम जिल्दें बँधी थीं। इनमें से छः हज़ार पांच सौ पुस्तकें केवल ज्योतिष और वैद्यक की थीं। इस पुस्तकालय के नियमानुसार क़ाहिरा निवासी विद्यार्थियों को पुस्तकालय से पुस्तकें मंगनी मिल सकती थीं। उस पुस्तकालय में पृथ्वी के दो गोले भी थे। एक बहुत बड़ा गोला चांदी का था और दूसरा पीतल का। कहते हैं कि पीतलवाले गोले को टालेमी ने बनाया था, और चांदीवाले गोले में तीन हज़ार अशर्फियां खर्च पड़ी थीं। स्पेनवाले खलीफों के बड़े पुस्तकालय में वास्तव में छः लाख पुस्तकें थीं। केवल उन पुस्तकों की सूची चवालीस जिल्दों में थी। इसके अतिरिक्त ऐंन्डल्यूसिया में सत्तर सार्वजनिक पुस्तकालय थे। और भिन्न २ पुरुषों के पास जो निज के पुस्तक संग्रह थे वे बहुत बड़े थे। एक साधारण विद्वान ने बुख़ारा के सुलतान का निमंत्रण इस हेतु अस्वीकार किया था कि उसकी पुस्तकों को ले चलने के लिये ४०० ऊंटों की आवश्यकता थी।

प्रत्येक बड़े पुस्तकालय में एक विभाग प्रतिलेखन और अनुवाद का हुआ करता था। ऐसे अनुवाद बहुधा लोग निज के तौर पर भी किया करते थे। होनियन नामक एक नेस्टर मतावलम्बी वैद्य के यहां

बगदाद में एक इसी भांति की संस्था थी (सन् ८५० ई०)। उसने अरस्तू, अफलातून, गेलिन, और हिपाक्रेटोज़ इत्यादि के ग्रंथों के अनुवाद प्रकाशित किये थे। मूल ग्रंथों के विषय में यह बात थी कि बड़े विद्यालयों के कार्याध्यक्षों की यह रीति थी कि वे अपने अध्यापकों से नियत विषयों पर ग्रन्थ बनवाया करते थे। प्रत्येक खलीफा का एक निज का इतिहास कर्त्ता रहा करता था। किस्सा कहानियों की पुस्तकें जैसे सहस्त्ररजनीचरित्र इत्यादि मुसल्मानों की उत्पादक प्रतिभा की साक्षी देती हैं। इनके अतिरिक्त सब प्रकार के विषयों पर ग्रन्थ थे—अर्थात् इतिहास, स्मृतिशास्त्र, राजनीति, तत्वज्ञान और जीवन चरित्र। ये जीवन चरित्र केवल प्रख्यात मनुष्यों के ही नहीं थे, वरन् प्रख्यात घोड़ों और ऊंटों के भी जीवन चरित्र थे। ये पुस्तकें बिना किसी भांति की निन्दा वा रोक के प्रकाशित हुई थीं। यद्यपि कालान्तर में अध्यात्मविद्या के ग्रंथों के प्रकाशन के लिये राजाज्ञा लेना पड़ती थी। भौगोलिक, देशदशा विषयक, वैद्यक विषयक, इतिहासिक और कोश सम्बन्धी संदेह निवारक ग्रन्थ बहुत से थे और उनके संक्षेप और घनीभूतसंग्रह (जैसे मुहम्मद अबू अब्दुल्ला का बनाया हुआ विश्व कोश) भी थे। कागज़ की सफेदी और पवित्रता का, और विविध रंगों की सियाहियों की, वा चतुर मिलावट का, और सोना चढ़ाकर अन्य प्रकार से शृङ्गार करके पुस्तकों के नामाक्षरों को प्रकाशित करने का लोग बड़ा गर्व करते थे।

मुसल्मानी राज्य में जहां तहां बहुत से विद्यालय थे। वे मंगोलिया, तातार, फारिस, मिसोपोटेमिया, सीरिया, मिसिर, उत्तरीय आफ्रिका, मुरक्को, फ़ीज़ और स्पेन में स्थापित थे। इस बड़े राज्य के एक ओर जो रोमराज्य से भी भौगोलिक विस्तार में बहुत बड़ा था, समरकंद का विद्यालय और ज्योतिष सम्बन्धी वेधशाला थे, और दूसरी ओर स्पेन में 'जिरेल्डा' था। गिबन महाशय विद्या के इस संरक्षण की ओर इङ्गित करके कहते हैं कि "भिन्न प्रान्तों के स्वतंत्र अमीर लोग भी इसी भांति के राजकीय अधिकार का दावा करते थे, और उनकी उत्तेजना से विद्या और विज्ञान का व्यसन समरकन्द

ओर बुखारा से लेकर फीज़ और कारडोआ तक फैल गया। एक सुलतान के वज़ीर ने बगदाद में एक विद्यालय स्थापित करने के लिये दो लाख अशर्फ़ी अर्पण की थीं और उस विद्यालय को एक जागीर लगादी थी जिसकी वार्षिक आय १५००० दीनार थी। इस शिक्षा का फल कदाचित् भिन्न भिन्न समयों पर प्रत्येक श्रेणी के छः हजार विद्यार्थियों को मिला, जिनमें कुलीनों के पुत्रों से लगा कर मजूरों के पुत्र तक सम्मिलित थे। देशी विद्यार्थियों के हेतु अलम् मासिक वृत्ति का प्रबंध था और अध्यापकों की योग्यता और परिश्रम का उचित वेतन से बदला दिया जाता था। प्रत्येक नगर में अरबी साहित्य के नवीन ग्रंथ विद्याव्यसनी और धनवान मनुष्यों की ओर से नकल कराये और एकत्रित किये जाते थे।" इन पाठशालाओं का प्रबन्ध और निरीक्षण बड़ी उदारता के साथ कभी नेस्टर मतावलम्बियों को और कभी यहूदियों को दिया जाता था। इसकी कुछ परवाह न की जाती थी कि वह मनुष्य कहां का पैदा हुआ है, वा उसके धार्मिक विचार कैसे हैं, केवल उसकी विद्या का विचार किया जाता था। बड़े खलीफा अलमामूं ने कह दिया था कि "विद्वान लोग ईश्वर के चुने हुये लोग हैं, वे उसके अति उत्तम और अति उपयोगी सेवक हैं, जिनके जीवन बुद्धि सम्बन्धी शक्तियों की उन्नति में व्यतीत होते हैं। और यह भी कह दिया था कि बुद्धि सिखाने वाले लोग इस संसार के सच्चे प्रकाशक और नियम निर्धारक जन हैं, जिनकी सहायता के बिना यह संसार फिर से अज्ञान और उजड्डपन में डूब जायगा।"

क़ाहिरा के वैद्यक विद्यालय की भांति दूसरे वैद्यक विद्यालय भी अपने विद्यार्थियों की कठिन परीक्षा करते थे। तदनन्तर कार्य्याभिलाषियों को अपने पेशे का काम करने का अधिकार मिलता था। यूरोप में स्थापित किया हुआ पहिला वैद्यक विद्यालय वह था जो इटली प्रदेश के सैलर्नो नगर में मुसल्मानों ने स्थापित किया था। और पहिली ज्योतिष सम्बन्धी वेधशाला वह थी जो उन्होंने स्पेन में सिवाईल नगर में बनवाई थी।

इस बड़ी वैज्ञानिक हलचल के प्रतिफलों का ठीक ठीक वर्णन करना इस पुस्तक की सीमा से बहुत अधिक बढ़कर है। प्राचीन विज्ञानों का बहुत विस्तार किया गया और नवीन विज्ञान निकाले गये। गणित विद्या का हिन्दुस्तानी ढंग प्रचलित किया गया। यह ढंग एक बहुत सुंदर अन्वेषण है जो सब गणनाओं को दस अंको से प्रगट करता है जिनमें से एक तो उनका पूर्ण मान होता है और एक स्थानिक मान होता है और इस ढंग में सब प्रकार के साधनों की क्रिया के लिये सरल नियम होते हैं। बीजगणित वा विश्वव्यापक गणित विद्या (अर्थात अज्ञात प्रमाणों के निकालने का ढंग या उन सम्बन्धों के खोज का ढंग जो सब प्रकार के प्रमाणों में पाये जाते हैं, चाहे वे अंक गणित सम्बन्धी हों चाहे रेखा गणित सम्बन्धी) उस बीज से अंकुरित हुई जो डायोफेन्टस छोड़ गया था। मुहम्मद बिन मूसा ने वर्गसमीकरणों का साधन निकाला; उमर बिन इब्राहीम ने घनसमीकरणों का साधन निकाला। मुसल्मानों ही ने त्रिकोणमिति विद्याको प्राचीन काल से वर्तित चापकरणों के स्थान में ज्याओं का प्रचार करके उसका वर्तमान रूप दिया। उन्होंने उसको एक दूसराही विज्ञान बना दिया। उपरोक्त मूसा एक "गोलीय त्रिकोणमिति विद्या पर एक ग्रंथ" का कर्त्ता था। अलबगदादी भूमि की नाप पर एक ऐसा अच्छा ग्रंथ छोड़ मरा जिसके विषय में कतिपय विद्वानों की यह सम्मति है कि वह उसी विषय पर यूकलिड के खोये हुये ग्रंथ की प्रतिलिपि है।

ज्योतिष विद्या में उन्होंने केवल सूची ही नहीं बनाई वरन् अपने आकाशों में देखे हुये सितारों के नक़शे भी बनाये, और उनमें से बड़े २ सितारों के अरबी नाम रखाये जो अब तक हमारे खगोलों में पाये जाते हैं। जैसा कि हम देख चुके हैं, उन्होंने पृथ्वी की आकृति निश्चय करली थी। क्रान्ति वृत्त का झुकाव निश्चित कर लिया था, सूर्य्य और चन्द्रमा की शुद्ध सारणियां प्रकाशित की थीं। वर्षकी लंबाई नियत की थी। और अयनांशभागों की ठीक जांच की थी। ज्योतिषविद्या पर अलबेतेगनियस के लिखे हुये ग्रंथ की 'लैपलेस'

बड़ी प्रशंसा करता है। वही लैपलेस मिसिर के खलीफा हाकिम (सन १००० ई०) के ज्योतिषी इब्नज्यूनिस के एक अधूरे ग्रंथ की ओर हमारा ध्यान आकर्षित करता है। उस ग्रंथ में अलमंसूर के समय से लेकर उसके समय तक के ग्रहणों, सायनों, अयनों, ग्रह सम्मेलनों, ग्रह युतियों के वेध लिखे हुये हैं। ये वेध ऐसे हैं जो सांसारिक स्थिति के बड़े बड़े परिवर्तनों को भली भांति प्रदर्शित करते हैं। अरब के ज्योतिषी लोग ज्योतिष सम्बन्धी यंत्रों को बनाने में और उन्हें पूर्ण करने में विविध भांति की जल और धूप घड़ियों से समय नापने में भी लगे रहते थे। इस तात्पर्य्य से घड़ियों के लंगड़ के प्रयोग के प्रचार में इन्हीं ज्योतिषियों की प्रथम गणना है।

प्रयोगिक विज्ञानों में उन्होंने रसायन विद्या निकाली। उन्होंने उसकी कई एक बहुत आवश्यक प्रतिकारक वस्तुएं जैसे, गंधक का खार, शोरे का खार और मद्यसार खोज निकालीं। उन्होंने वैद्यक के काम में इस विद्या का प्रयोग किया, क्योंकि इन्हीं लोगों ने पहिले पहिल औषधि निर्माण ग्रंथ प्रकाशित किये, और उनमें धातु से बनी हुई औषधियों को भी सम्मिलित किया। यंत्र विद्या में उन्होंने वस्तुओं के गिरने के नियम निश्चित कर लिये थे, और स्पष्ट रीति से गुरुत्वाकर्षण के स्वभाव को समझते थे। यंत्र सम्बन्धी शक्तियों के सिद्धान्त को भी भली भांति जानते थे। उदकस्थित विद्या में उन्होंने वे पहिली सारणियां बनाईं जिनसे विविध पदार्थों का जातीय गुरुत्व प्रदर्शित होता है। और उन्होंने वस्तुओं के पानी में उतराने और डूबने के विषयों पर ग्रंथ लिखे। दृष्टि विद्या में उन्होंने यूनानियों की ग़लती दुरुस्त की अर्थात यूनानी ऐसा मानते थे कि आंख से दृष्टि किरण निकल कर दृष्ट पदार्थ पर पड़ती है। इसको उन्होंने यह अनुमान प्रचलित करके ठीक किया कि दृष्टि किरण वस्तु से आंख तक जाती है। वे प्रकाश के बक्रीभवन और प्रतिबिम्बपात की प्राकृतिक घटनाओं को भली भाँति समझते थे। अल्हज़ीं ने एक बड़ी भारी खोज यह की थी कि प्रकाश की किरणें वायु में होकर तिरछी चलती हैं, और इससे प्रमाणित किया था कि हम सूर्य और

चन्द्रमा को उदय होने से पहिले और अस्त होने के बाद तक भी देखते हैं।

इस वैज्ञानिक उद्योग के प्रतिफल स्पष्ट रीरि से उन बड़ी उन्नतियों में देखे जाते हैं जो उस समय औद्योगिक कला कुशलता में हुईं। कृषि विभाग, उसको सींचने के अधिक उत्तम ढंगों, खादों को चतुराई से काम में लाने, अधिक अच्छे पशु उत्पन्न करने, किसानों के लिये अच्छे नियमों के बनने, और धान की और ऊख और कहवा की खेती के प्रचार होने के द्वारा प्रगट करता है। शिल्पकर्म उसको रेशम, रूई, और ऊन के कारखानों की अधिकता द्वारा प्रगट करता है। कारडोआ और मराको के चमड़े और क़ागज़ की बनावट; खान खोदने, धातु ढालने, और विविध भांति के धातु के कामों, और टोलेडो की उत्तम तलवार की बनावट से भी वह वैज्ञानिक उद्योग प्रगट होता है।

कविता और गान विद्या के अनुरागी प्रेमी होने के कारण वे लोग अपने अवकाश का बहुत सा समय इन सुन्दर कामों में लगाते थे। उन्होंने यूरोप को शतरंज का खेल सिखाया, और उसे किस्सा कहानियों और उपन्यासों का चसका लगाया। साहित्य के गंभीर विषयों में भी उनको आनन्द आता था। उनके पास मानवी गौरव की अस्थिरता के विषय पर बहुत से उत्तम ग्रंथ थे। अधार्मिक होने के फलों और भाग्य के उलट फेर, संसार की उत्पत्ति, स्थिति, और लय इन विषयों पर भी उनके पास ग्रंथ थे। बड़े आश्चर्य के साथ कभी कभी उन ग्रंथों में वे विचार मिल जाते हैं जिनके विषय में हम घमंड करते हैं कि वे हमारे समय में उत्पन्न हुये हैं। इस प्रकार वर्तमान समय के विकाश और विस्तार सिद्धान्त उनके पाठशालाओं में सिखाये जाते थे। वास्तव में उन्होंने उनकी इतनी उन्नति की थी जितनी हम करना नहीं चाहते-अर्थात उन्होंने उन सिद्धान्तों को जड़ पदार्थों और खनिज़ पदार्थों तक विस्तृत किया था। रसायन विद्या का मूलसिद्धान्त धातव वस्तुओं की उन्नति की प्राकृतिक क्रिया ही थी। बारहवीं शताब्दी में लिखते हुये अलख़ज़ीनी कहता है कि "जब सर्व साधारण जन प्राकृतिक तत्व ज्ञानियों को यह कहते हुये सुनते हैं कि सोना एक ऐसा पदार्थ

है जो पूर्णता को पहुंच गया है, तब वे दृढ़ विश्वास करते हैं कि वह कोई ऐसी वस्तु है जो धीरे धीरे अन्य सब धातुओं के रूप में होता हुआ स्वर्णता को पहुंचा है। अर्थात उसकी स्वर्ण प्रकृति उत्पत्ति में सीसा थी, तदनन्तर लोहा हुई, फिर पीतल, फिर चांदी और अन्त में उन्नति करते करते सोना हो गई। वे यह नहीं जानते कि इस बात के कहने में प्राकृतिक तत्व ज्ञानियों का केवल वैसाही अभिप्राय है जैसा कि उस समय होता है जब वे मनुष्य के विषय में, उसके गुणों की पूर्णता और उसकी प्रकृति और बनावट की समतुल्यता के विषय में कुछ कहते हैं। उनका यह तात्पर्य्य नही होता कि मनुष्य प्रहिले बैल था, फिर बदल कर गदहा हो गया, तदनन्तर घोड़ा हुआ, और उसके बाद बंदर होकर अन्त में मनुष्य हो गया।

——:o:——

पांचवां अध्याय।

आत्मा के तत्व के विषय में झगड़ा--उत्पत्ति और लय का सिद्धान्त।

(आत्मा के विषय में यूरोप निवासियों के विचार—आत्मा का रूप शरीर के अनुहार है। एशिया निवासियों के अध्यात्मिक विचार—वेदवर्णित अध्यात्म विद्या, और बौद्ध धर्म, उत्पत्ति और प्रलय का सिद्धान्त प्रतिपादन करते हैं। अरस्तू ने भी इसका समर्थन किया है, अरस्तू ही का अनुकरण सिकन्दरिया के विद्वानों ने किया है, और तदनन्तर यहूदियों और अरब निवासियों ने अनुकरण किया है। यह सिद्धान्त एरीजीना के ग्रंथों में भी पाया जाता है।

शक्ति के रक्षक और पारस्परिक सम्बन्ध की कल्पना का इस सिद्धान्त से सम्बन्ध। शरीर और आत्मा की उत्पत्ति और भवतव्यता की समता। भेद प्रदर्शक मनो विज्ञान के मूलाधार पर मनुष्य के बनाये जाने की आवश्यकता।

अवरोज़ का मत, जिसकी नीव इन्ही बातों पर है, स्पेन और सिसिली होकर ईसाई संसार में लाया गया है।

अवरोज़ के मत के दमन करने का इतिहास—उसके विरुद्ध इस्लाम का विद्रोह, यहूदी समाजों का विरोध; पोप ने उसके विनाश का बीड़ा उठाया। स्पेन में धर्म परीक्षक समाज स्थापित हुई। भयङ्कर बध और उनके फल। यहूदियों और मूरों का निकाला जाना। यूरोप में अवरोज़ के मत की पराजय। वैटिका की सभा का निर्णयकारी काम)

—:o:—

मूर्ति पूजक यूनानी और रोमन लोग विश्वास करते थे कि मनुष्य की आत्मा उसके शारीरिक रूप के अनुहार होती है। ज्यों ज्यों मनुष्य का रूप बदलता है त्यों त्यों आत्मा का भी रूप बदलता है। और ज्यों ज्यों मनुष्य बढ़ता है त्यों त्यों आत्मा भी बढ़ती है उन महा पुरुषों ने, जिनको जमराज पुरी जाने की आज्ञा मिल गई थी इसी कारण से बिना कठिनाई के अपने प्राचीन मित्रों को पहिचान लिया। केवल शारीरिक रूप ही नहीं स्थिर रखा गया वरन् व्यवहारिक पोशाक भी।

उन प्राचीन ईसाइयों ने, (जिनके भविष्य जीवन विषयक विचार और स्वर्ग नर्क विषयक विचार उनसे पहिले के मूर्ति पूजकों के विचारों की अपेक्षा बहुत अधिक स्पष्ट थे,) इन प्राचीन विचारों को स्वीकार कर लिया था और उनका माहात्म बढ़ा दिया था। उनको इसमें कुछ सन्देह ही न था कि वे परलोक में अपने मित्रों से अवश्य मिलेंगे और जैसे यहां इस लोक में करते थे उनसे बातें करेंगे। यह एक ऐसी आशा है जो मनुष्य के चित्त को आश्वासन देती है, बड़े बड़े दुःखदायी वियोगों को मिटा देती है, और मृतकों से भेंट करा देती है।

इस अनिश्चितता के विषय में कि शरीर से प्रथक होने के दिन से न्याय-दिन तक आत्मा की क्या दशा होती है, लोगों की विविधि प्रकार की सम्मतियां थीं। कितनों ही का विचार था कि वह आत्मा कब्र के ऊपर मड़राया करती है, और कितनों ही का यह विचार था कि वह अशान्त भाव से वायुमंडल में घूमा करती है।

साधारण जन ऐसा विश्वास करते थे कि सेन्ट पीटर स्वर्ग के फाटक पर द्वारपाल की भांति बैठा रहता है। उसको आत्माओं के बांध रखने वा छोड़ देने का अधिकार दे रखा गया है। वह अपनी इच्छा-नुसार मनुष्यों की आत्माओं को स्वर्ग में जाने देता है वा नहीं जाने देता। परन्तु बहुत से मनुष्य उसमें यह शक्ति न होना मानते थे, क्योंकि उसके निर्णय न्याय-दिन से पहिले ही हो जायेंगे और इस हेतु वह न्याय दिन व्यर्थ होगा। बड़े ग्रेगरी के समय के अनन्तर पाप-मोचन स्थान का सिद्धान्त जन साधारण ने स्वीकार कर लिया था। इस भांति यहां से विदा हुई आत्माओं के लिये एक विश्राम-स्थान बन गया था।

यह बात कि मृतकों की आत्माएं कभी कभी जीवित मनुष्यों से फिर भेंट करती हैं, या अपने पहिले निवासस्थानों में आया जाया करती हैं सब समयों में युरोप के सबही देशों में केवल गँवारों से ही नहीं वरन् अच्छे समझदार लोगों से भी एक दृढ़ विश्वास की भांति मानी जाती रही है। जाड़े की संध्या को अलाव के इर्द गिर्द पिशाचों निश्चरों और प्रेतों की कथाओं से एक मनोरंजक भय फैल जाता था। प्रचीन समय में रोमन लोग अपने कुल देव अर्थात् पवित्र मनुष्यों की आत्माएं और पिशाच अर्थात् दुष्ट मनुष्यों की आत्माएं और प्रेत अर्थात् संन्दिग्ध मनुष्यों की आत्माएं मानते थे। यदि इन विषयों पर मानवी साक्षी किसी काम की मानी जा सकती हो तो इस बात की प्राचीन तथा नवीन बहुत विस्तृत और अनिन्दनीय बहुत सी साक्षियां हैं कि मृतकों की आत्माएं कबरों के निकट इकट्ठी होती हैं वा ऊजड़ दुर्गों की अंधेरी कोठरियों में अपना निवासस्थान बनाती हैं वा चांदनी रात में निर्जन स्थान में टहला करती हैं।

जिस समय यूरोप में यह सम्मतियां सार्वजनिक भाव से मान ली गई थीं, दूसरी इनसे बहुत भिन्न प्रकृति की सम्मतियां एशिया में फैल रही थीं, और वास्तव में ऊंचे विचार वाले मनुष्यों में अधिकता से फैली थीं। सोलहवीं शताब्दी में धर्म गुरुओं के अधिकार ने

इन सम्मतियों को दबाने में सफलता प्राप्त की, परन्तु उनका कभी सर्वथा अभाव न हुआ। हमारे समय में भी वे इतने चुपके चुपके और विस्तृत भाव से यूरोप में फैलती रहीं कि यह उचित समझा गया कि वे एक बहुत ही खुल्लम खुल्ला रीति से पोप लोगों के कर्तव्य नियमावली में लिखकर प्रगट की जायें।

और वेटिका की सभा ने उनका हानि कारक स्वभाव और चुपके चुपके फैलना मान कर अपनी पहिली व्यवस्थाओं में उसी भांति प्रगट और स्पष्ट रीति से उनके मानने वालों को धर्मच्युत करने की आज्ञा दी है। "वह मनुष्य धर्मच्युत समझा जाय जो यह कहता है कि आत्माएं दैवी पदार्थ से उत्पन्न हुई हैं, वा ऐसा कहता है कि ईश्वरीय तत्त्व प्रकाशन और उन्नति से सब कुछ हो जाता है"। उचित अधिकारियों के इस काम पर दृष्टि रख कर यह आवश्यक जान पड़ता है कि हम अब इन सम्मतियों के लक्षण और इतिहास पर विचार करें।

ईश्वर तत्व विषयक विचार अवश्य ही आत्मा तत्व विषयक विचारों पर प्रभाव डालते हैं। पूर्वीय एशिया निवासी लोगों ने ईश्वर को निराकार माना था और इसका आवश्यक फल यह हुआ कि आत्मा को उसी ईश्वर से निकली हुई और उसी में समाजाने वाली मानना पड़ा।

इस भांति वेद की अध्यात्म विद्या की नीव इस बात के मान लेने पर स्थित है कि एक सर्वत्र व्यापी आत्मा सब ही वस्तुओं में व्याप्त है। "वास्तव में केवल एक ही ईश्वर है जो सर्वोत्तम आत्मा है। उसकी और मनुष्य की आत्मा का एकही तत्व है"। वेद और मनुस्मृति कहते हैं कि मनुष्य की आत्मा एक सर्वत्र व्यापी 'बुद्धि' से उत्पन्न हुई वस्तु है और अवश्यही उसको उसी में लय होना पड़ेगा। वे उस आत्मा को निराकार मानते हैं और यह भी मानते हैं कि यह दृष्टिगत प्रकृति अपनी सुन्दरताओं और साम्यताओं सहित केवल ईश्वर की छाया मात्र है।

वेद मत होते होते बौद्धमत हो गया जो अब मनुष्य जाति के एक बड़े भाग का धर्म हो गया है। यह धर्म यह बात मानता है कि

कोई एक सर्वोच्च शक्ति है, परन्तु इस बात को नहीं मानता कि कोई एक सर्वोत्तम व्यक्ति है। यह धर्म एक ऐसी शक्ति का होना मानता है जो अपने प्रकाशन की भांति पदार्थ को पैदा करती है। यह धर्म उत्पत्ति और लय का सिद्धान्त स्वीकार करता है। दिया की लौ में वह मनुष्य की मूर्ति देखता है और उसी में शक्ति के विस्तार और पदार्थ का एक रूप मानता है। यदि हम उससे आत्मा के अन्तिम परिणाम के विषय में पूछते हैं तो वह हम से प्रश्न करता है कि दिया बुझादेने पर दिया की लौ कहां गई और बत्ती जलाने से पहिले वह लौ किस दशा में थी। क्या उसका अभाव था ? क्या वह सर्वथा विनाश हो गई ?। वह मानता है कि व्यक्ति के अस्तित्व का विचार जो जीवन भर हमको धोखे में डाले रहा है मरने के साथ ही एक दम नहीं मिट सकता, वरन् धीरे धीरे विनष्ट हो सकता है। इसी बात पर पुनर्जीवन का सिद्धान्त स्थित है। परन्तु अन्त में सर्वव्यापी बुद्धि के साथ पुनर्मिलन होता है, निर्वाण प्राप्त होता है, विस्मृति दशा हो जाती है। यह एक ऐसी दशा है जो पदार्थ, अन्तरिक्ष वा समय से कुछ सम्बन्ध नही रखती। यह वही दशा है जिस दशा को उस बुझे हुये दिया की लौ प्राप्त हुई है। यह वही दशा है जिस में हम पैदा होने से पहिले थे। इसी परिणाम की हमें आशा करनी चाहिए। यही सर्वव्यापी शक्ति में लय हो जाना है, यही परम मोक्ष है, यही सदैव कालीन विश्राम है।

ये सिद्धान्त पहिले पहिल अरस्तू द्वारा पूर्वीय यूरोप में प्रचलित हुये थे, और वास्तव में, जैसा कि हम वर्णन करेंगे, वह इनका उत्पादक समझा गया। कालान्तर में सिकन्दरिया के विद्वानों पर इन विचारों ने बड़ा प्रभाव डाला। फाईलो नामक यहूदी ने, जो केलीगुला के समय में वर्तमान था, अपने तत्वज्ञान की नीव इसी उत्पत्ति सिद्धान्त पर स्थित की थी। प्लोटिनस ने इस सिद्धान्त को मनुष्य की आत्मा के लिये चरितार्थ होने वाला ही नहीं माना वरन् ऐसा भी माना है कि यह सिद्धान्त त्रिदेव विषयक सिद्धान्त के स्वरूप का उदाहरण है। क्योंकि जैसे सूर्य से प्रकाश की एक किरण निकलती है

और जैसे उस किरण के किसी पदार्थ से छूजाने पर उससे उष्णता निकलती है, इसी भांति पिता (ईश्वर) से पुत्र (ईसा) उत्पन्न होता है और उससे पवित्र आत्मा उत्पन्न होती है। इन्हीं विचारों से प्लोटिनस ने एक अभ्यास योग्य धार्मिक प्रथा निकाली, जिसके अनुसार वह अपने भक्तों को यह सिखाता था कि परमानन्द की दशा को कैसे पहुँचना चाहिये और यह दशा सर्वव्यापी लौकिक आत्मा में लय होने की आगम दशा थी उस दशा में आत्मा अपना निजत्व ज्ञान भूल जाती है। इसी प्रकार से पारफिरी ईश्वर में लय हो गया। यह पारफिरी टायर निवासी था, रोम में एक पाठशाला स्थापित की थी और ईसाई धर्म के विरुद्ध एक ग्रन्थ लिखा था। इस ग्रन्थ का खंडन यूसीदियस और सेन्ट जेरोमी ने किया था, परन्तु सम्राट थियोडोसियस ने उस ग्रन्थ की सब प्रतियाँ जलवाकर भली भांति उसे शान्त कर दिया। पारफिरी अपनी अयोग्यता पर खेद प्रगट करता है। कहता है कि मैं साठ वर्ष में एक ही बार परमानन्द में ईश्वर से मिल पाया और मेरा गुरु प्लोटिनिस साठ वर्ष में छः बार इस भांति मिला था। प्रोक्लस ने उत्पत्ति सिद्धान्त के अनुसार अध्यात्म विद्या की एक सम्पूर्ण प्रथा बना ली थी। उसने उस ढंग पर विचार किया था जिस ढंग से लय होती है अर्थात मृत्यु के समय ही तुरन्त आत्मा ईश्वर में लय हो जाती है, वा उसे कुछ दिन तक अपने निजत्व की सुधि रहती है और धीरे धीरे पूर्ण पुनर्मिलन होने से दब जाती है।

सिकन्दरिया निवासी यूनानियों से चल कर ये विचार मुसल्मान तत्व ज्ञानियों तक पहुंचे, जिन्होंने मिस्र के बड़े नगर सिकन्दरिया को ले लेने के बाद शीघ्र ही अपने ईश्वर विषयक मानवी आकृत वाले विचार और मनुष्य की आत्मा सम्बन्धी ईश्वरानुरूप वाले विचार नीच श्रेणी वाले लोगों के लिये छोड़ दिये। जब मुसल्मानी धर्म बढ़ कर एक स्पष्ट वैज्ञानिक धर्म हो गया तब उत्पत्ति और लय के सिद्धान्त उसके मुख्य लक्षणों में हो गये। इस साधारण मुसल्मानी धर्म के त्याग में यहूदियों के उदाहरण ने बहुत सहायता की। उन्होंने भी अपने पुरखों का ईश्वर की मानवी आकृत वाला सिद्धान्त छोड़ दिया

था। उन्होंने मन्दिर में पर्दे के पीछे रहने वाले ईश्वर के बदले में एक सर्वव्यापी अनन्त बुद्धि मान ली थी। और यह मानते हुये कि हम नहीं समझ सकते कि कोई वस्तु जो अकस्मात पैदा की गई है अमर हो सकती है। वे मानते थे कि मनुष्य की आत्मा अनादि काल से चली आती है और अनन्त काल तक रहेगी।

मुसल्मानी धर्म के 'बुद्धि' सम्बन्धी इतिहास में यहूदी और मुसल्मान सदैव साथ साथ देखे जाते हैं। ऐसी ही बात उनके राजनैतिक इतिहास में है चाहे हम सीरिया का इतिहास देखें चाहे मिसिर या चाहे स्पेन का। उन्हीं दोनों जातियों से पश्चमीय यूरोप ने अपने वे तत्वज्ञानिक विचार जो समयानुसार अवरोज़ के मत तक पहुंच गये, पाये थे। अवरोज़ का मत तत्वज्ञानिक मुसल्मान मत है। यूरोपियन लोग अवरोज़ को साधारणतः इन नास्तिक विचारों का कर्त्ता मानते थे। और शास्त्रानुगामी लोग भी उसे नास्तिकता का दोष लगाते थे, परन्तु उसने केवल उन सिद्धान्तों को एकत्र किया था और उन पर टीकाएँ की थीं। उसके ग्रंथों ने ईसाई संसार पर दो मार्गों से आक्रमण किया अर्थात् स्पेन से दक्षणीय फ्रान्स होते हुये उत्तरीय इटेली तक पहुंचे और रास्ते में बहुत से नास्तिक विचार पैदा करते गये, और सिसिली से दूसरे फ्रेडरिक के आश्रय में वे सिद्धान्त नेपिल्स और दक्षिणीय इटेली तक पहुँचे।

परन्तु यूरुप पर यह मानसिक आक्रमण होने के बहुत पहिले से वहां पूर्वीय मत के सिद्धान्त प्रचलित थे जिनको कदाचित असर्वव्यापी कहा जा सकता था। उदाहरण की भांति मैं जान एरीजीना के विचारों को उद्धृत कर सकता हूं (सन् ८०० ई०)। उसने अरस्तू का तत्वज्ञान स्वीकार किया था और औरों को सिखाया था, और उस तत्वज्ञानी की जन्मभूमि तक की यात्रा की थी, और ऐसी आशा रखता था कि मैं तत्वज्ञान और धर्म को इस भांति मिला दूंगा जिस भांति वे ईसाई पादरी लोग कहते हैं जो उस समय स्पेन के मुसल्मानी महाविद्यालयों में पढ़ रहे थे। वह इंगलैण्ड का एक निवासी था।

चार्ल्स दी बाल्ड के नाम लिखी हुई एक चिट्ठी में अनेसटेसियस अपना आश्चर्य्य इस भांति प्रगट करता है "किस भांति ऐसे उजड्ड मनुष्य ने पृथ्वी के एक छोर से आकर जहां मनुष्यों की बोली भी नही बोली जाती, इन सब बातों को इतनी स्पष्ट रीति से समझा सका और उनका अनुवाद एक दूसरी भाषा में इतनी अच्छी तरह से कर सका"। उसके ग्रंथों का मुख्यतात्पर्य्य यह था जैसा कि हमने कहा है, वह तत्वज्ञान और धर्म को एक कर दे, परन्तु जिस प्रकार उसने इन विषयों को वर्णन किया है उस से पादरी लोग उस पर अप्रसन्न हो उठे और उसके कई एक ग्रंथ जला दिए गए। उसके सब से मुख्य ग्रंथ का नाक "डी डिवीजन नेचुरी" है।

एरीजीना के तत्वज्ञान की नींव इस देखी हुई और मानी हुई बात पर है कि प्रत्येक जीवित वस्तु एक ऐसी वस्तु से पैदा हुई है जो पहिले जीवित थी। इसी कारण यह दृष्टिगत संसार जीवित संसार होने के हेतु से अवश्य ही किसी ऐसे व्यक्ति से पैदा हुआ है जिसका अस्तित्व पहिले था, और वही अस्ति व्यक्ति ईश्वर है जो कि इस भांति सब का उत्पादक और संरक्षक है। जो वस्तु हमारे दृष्टि-गत होती है वह अपना जीवन उसी शक्ति द्वारा बनाये हुये है जो उस ईश्वर से ली गई है, और यदि वह शक्ति हटा ली जाय तो वह वस्तु अवश्य ही विनष्ट हो जायगी। इस भांति एरीजीना ईश्वर को प्रत्येक प्राकृतिक वस्तु में हर समय मिला हुआ मानता है, क्योंकि वही उसका संरक्षक, संस्थापक और समर्थक है। और इस भांति वह संसार की वह आत्मा है जिसे यूनानी लोग मानते थे। इसलिये विशेष व्यक्तियों का विशेष जीवन उसी सांसारिक आत्मा का एक भाग है।

यदि कभी वह संस्थापक शक्ति हटा ली जायगी तो सब ही वस्तुएं उसी आदि मूल की ओर लौट आएंगी जहां से वे निकली थीं अर्थात् वे अवश्य ईश्वर की ओर लौटेंगी और उसी में लय हो जाएंगी। इस भांति सब दृष्टि गत प्राकृतिक वस्तुएं अन्त में अवश्य उसी एक 'बुद्धि' में मिल जायेंगी। "जीवित पदार्थों की मृत्यु उन पदार्थों के प्रत्यागमन और उनके प्राचीन संरक्षण का शकुन है। इसी

प्रकार शब्द उसी वायु में फिर लौट जाते हैं जहां से वे पैदा हुए थे, और जिसके कारण वे संस्थित थे, और फिर वे सुनाई नहीं देते। कोई नहीं जानता कि उनका क्या हुआ। उस अन्तिम लय में जो समयान्तर में अवश्य ही होने वाली है ईश्वर ही सर्वस्व होगा और सिवाय उसके कोई वस्तु अस्ति न होगी"। "मैं उसको सब वस्तुओं की आदि और सब बस्तुओं का कारण समझता हूं। सब वस्तुएं जो इस समय वर्तमान हैं और जो किसी समय रही हैं पर इस समय नहीं हैं, उसी से निकली थीं, उसी से और उसी में बनाई गई थीं। मैं उसको सब वस्तुओं का अटल अन्त भी मानता हूं। इस सर्वव्यापी प्रकृति के विषय में चार प्रकार का विचार है अर्थात् आदि और अन्त के नाम से ईश्वरीय प्रकृति के दो विचार, और दो विचार देहधारी प्रकृति के अर्थात् कारण और कार्य्य। सिवाय ईश्वर के कोई वस्तु अनादि अनन्त नहीं है"।

इसी आत्मा के, सर्वत्र व्याप्त बुद्धि तक लौट जाने को एरीजीना थियोसिस वा सायुज्य मुक्ति कहता है। उस अन्तिम लय में गत सब बातों का स्मरण भूल जाता है। आत्मा उस दशा को पहुँच जाती है जिस दशा में वह शरीर को चेतन्य करने से पहिले थी। इसी लिये एरीजीना अवश्य पादरियों का कोप भाजन हो गया।

पहिले पहिल हिन्दुस्तान में यह बात मानी गई थी कि शक्ति अविनाशी और अनादि अनन्त है। इस बात से उन विचारों का कुछ २ स्पष्ट आभास मिलता है जिनको अब हम "परस्पर सम्बन्ध और संरक्षण" कहते हैं। जगत की स्थिति से सम्बन्ध रखनेवाले विचार इस विचार को पुष्ट करते हैं, क्योंकि यह स्पष्ट है कि यदि शक्ति की अधिकता वा कमी होगी तो संसार का क्रम विनष्ट हो जायगा। इस हेतु संसार में शक्ति की एक नियत और अपरिवर्तनीय मात्रा होना अवश्य एक वैज्ञानिक बात मानना चाहिये। जो परिवर्तन हम प्रत्यक्ष देखते हैं वे उसके विभाग कल्पना के हैं।

परन्तु इस कारण से कि आत्मा को एक उद्योगी बीज मानना ही चाहिये। इस लिये एक नये पदार्थ का अनस्तित्व से अस्तित्व

में लाना अवश्य ही संसार की पहिली शक्ति को बढ़ा देना है। और यदि यह बात प्रत्येक व्यक्ति जो संसार में पैदा होवे, करता ही जावे और आगे होनेवाले व्यक्ति भी इसी काम को दुहराते जावें तो शक्ति का समूह बराबर बढ़ता ही जावेगा।

इसके अतिरिक्त बहुत से भक्तों के लिये यह विचार बहुतही विद्रोही है कि सर्व शक्तिमान ईश्वर मनुष्य की मनोचंचलताओं और विषय वासनाओं का पूरा करने वाला सेवक है। और यह विचार भी वैसाही है कि आत्मा के उद्भूत होने के कुछ समय बाद ईश्वर के लिये यह आवश्यक है कि वह बीज के लिये एक आत्मा उत्पन्न करे।

ऐसा मान कर कि मनुष्य दो भागों अर्थात् आत्मा और शरीर से बना हुआ है यह बात प्रत्यक्ष प्रगट होती है कि शरीर के स्पष्ट सम्बन्ध आत्मा के गुप्त और अस्पष्ट सम्बन्धों पर बहुत कुछ प्रकाश डाल सकते हैं। जिस पदार्थ से शरीर बना हुआ है वह उस पदार्थ समूह से लिया गया है जो हमारे चारों ओर फैला हुआ है, और मृत्यु के बाद वह पदार्थ उसी समूह में मिल जायगा। तो क्या इस से यह प्रगट होता है कि प्रकृति ने शरीर के पदार्थिक भाग का अन्तिम परिणाम और उसका मूल वस्तु में फिर मिल जाना प्रदर्शित कर दिया, अर्थात् क्या प्रकृति ने हमारी आंखों के सामने ऐसा श्रुति-प्रकाश कर दिया जिस से हम मूल पदार्थ के ज्ञान तक पहुँच सकें और शरीर के साथी आत्मा का भी अन्तिम परिणाम जान सकें ?

अच्छा आओ अब हम थोड़ी देर के लिये एक बड़े शक्तिवान मुसलमानी लेखक की वार्ता सुनें। "ईश्वर ने मनुष्य की आत्मा स्वयं अपने प्रकाश के एक बूंद से पैदा की है। उसका अन्तिम परिणाम उसी तक लौट जाना है। इस व्यर्थ विचार से धोखा मत खाओ कि वह शरीर ही के साथ विनाश हो जायगी। इस संसार में आने के समय जो तुम्हारा रूप था, और यह तुम्हारा वर्तमान रूप, एक ही नहीं है। इस लिये यह आवश्यक नहीं है कि तुम्हारे

शरीर के विनाश होने के कारण तुम भी विनष्ट हो जाओ। तुम्हारी आत्मा इस संसार में एक पथिक की भांति आई है और केवल थोड़े दिन के लिये इस अल्प कालिक घर में ठहरी है। इस कष्टमय जीवन की कठिनाइयों और विपत्तियों से ईश्वर ही हमारा आश्रय है। उस से फिर मिल जाने में ही हम सदैव कालीन विश्राम पावेंगे। यह विश्राम एक दुःख रहित विश्राम, कष्ट रहित आनन्द, निर्बलता रहित शक्ति और सन्देह रहित ज्ञान है। और यह विश्राम, जीवन और प्रकाश और गौरव के आदि मूल का (वह आदि मूल जहां से हम निकले हैं अर्थात् ईश्वर) शान्त और परमानन्दप्रद दृश्य है"। मुसलमान तत्व वेत्ता अलग़ज़ाली ऐसा ही कहता है। (सन् १०१० ई०)

एक पत्थर में उसके पदार्थिक परिमाणु स्थिर समता में रहते हैं, इस लिये वह सदैव रह सकता है। और एक जीवधारी वास्तव में केवल एक ऐसी वस्तु है जिसमें होकर पदार्थ की धारा लगातार बहती ही रहती है। वह अपनी ख़ुराक खाता है और व्यर्थ वस्तुएं निकाल दिया करता है। इस बात में वह जीवधारी एक जलप्रपात वा एक नदी वा एक अग्नि ज्वाला के समान है। जिन परमाणुओं से वह एक समय बना होता है वे दूसरे ही समय उस से निकल जाते हैं। वह अपनी स्थिरता के लिये बाहरी ख़ुराक पर निर्भर रहता है। उसका समय सीमा बद्ध होता है, और एक अटल समय आ पहुँचता है जब उसे अवश्य मरना पड़ता है।

मनोविज्ञान के बड़े सिद्धान्त में यदि हम एक ही घटना के सोच विचार में लगे रहें तो हम किसी वैज्ञानिक फल तक पहुँचने की आशा नहीं कर सकते। हमको सबही प्राप्य घटनाओं से लाभ उठाना चाहिए। मानवी मनोविज्ञान सिवाय युक्त्यात्मक मनोविज्ञान के अन्य किसी द्वारा पूर्णतः साधन नहीं हो सकता। डिस्कारटीज़ के साथ हम भी पूछते हैं कि क्या पशुओं की आत्मायें मनुष्य की आत्मा से ऐसा सम्बन्ध रखती हैं जो एक ही उन्नति की शृंखला में कुछ अपूर्ण कड़ियां कही जासकें ? जो कुछ हम एक चींटी की बुद्धि में देखते हैं हमें उस पर भली भांति विचार करना चाहिये, और इसी भांति

जो कुछ हम मनुष्य की बुद्धि में देखते हैं उस पर भी खूब विचार करना चाहिये। यदि वह युक्तयात्मक मनोविज्ञान के प्रखर प्रकाशों से प्रकाशित न होता तो मानवी मनोविज्ञान की क्या स्थिति होती ?

"ब्राडी" घटनाओं पर बहुत बड़ा विचार करने के अनन्तर कहता है कि पशुओं का मन उसी तत्व का बना हुआ है जिस तत्व का मनुष्यों का मन है। प्रत्येक मनुष्य जो एक कुत्ते के स्वभावों को भली भांति जानता है इस बात को मानेगा कि वह पशु भलाई बुराई के भेद को जानता है, और जब उससे कोई चूक हो जाती है तब उस चूक को समझता हुआ जान पड़ता है। बहुत से पालतू पशुओं में सोच विचार करने की शक्तियां होती हैं, और वे अपने इच्छित तात्पर्य्यों को प्राप्त करने के लिये उचित उपाय काम में लाते हैं। हाथी और पुच्छ विहीन बन्दर के इच्छित कामों की बहुत अधिक कथायें वर्णित हैं। यह प्रत्यक्ष बुद्धि अनुकरण पर निर्भर नहीं है, और न इस बात पर कि वे मनुष्यों के संग रहते हैं, क्योंकि यही जानवर जब जंगल में रहते हैं और मनुष्य से ऐसा सम्बन्ध नही रखते, तब भी वे वैसे ही गुण प्रगट करते हैं। भिन्न जातियों में यह योग्यता और स्वभाव बहुत भिन्न भिन्न होता है। इस भांति कुत्ते में केवल अधिक बुद्धि ही नहीं होती वरन् उसमें सामाजिक और सुसभ्य गुण भी ऐसे होते हैं जो बिल्ली में नहीं होते, कुत्ता अपने मालिक से प्रेम रखता है और बिल्ली अपने रहने के स्थान से।

'डू ब्वाय रेमण्ड' निम्नलिखित आश्चर्य्यप्रद विवरण देता है। "प्रकृति को जानने की इच्छा रखनेवाले को मज्जातन्तुगत पदार्थ के उस सूक्ष्म कण को बड़े आदर और आश्चर्य्य से देखना चाहिये जो एक चींटी की परिश्रमी, निरमात्री, व्यवस्थित, स्वामिभक्त और निडर आत्मा के रहने का स्थान है। वह कण अगणित पीढ़ियों से उन्नति करते २ इस वर्तमान दशा तक पहुंचा है"। 'ह्यूबर' के वर्णन से, जिसने इस विषय में बहुत ही अच्छा लिखा है, हम कैसा प्रभावजनक अनुमान निकाल सकते हैं। वह लिखता है कि "यदि तुम काम करती हुई चींटी को ध्यान से देखो तो तुम कह सकोगे

कि वह उस काम के अनन्तर कौन सा काम करेगी" वह उस विषय को सोच रही है और तुम्हारे ही समान विचार कर रही है। सत्यवादी और निरछल ह्यूबर कथित बहुत सी कथाओं में से एक कथा सुनो "जब एक निरीक्षक चींटी काम देखने के लिये उस समय आई जिस समय मजदूर चींटियों ने नियत समय से पहिले ही छत बनाने का लग्गा लगा दिया था, तब उसने उस काम को देखा और दीवारें ठीक ऊंचाई तक उठजाने पर भी उसने उस छत को गिरवा दिया और उसी पुरानी छत के टुकड़ो से नई छत बनवाई"। ये चींटियां वास्तव में स्वयंवाही यंत्र नहीं हैं, वरन् वे इच्छा शक्ति प्रगट करती हैं। वे अपने प्राचीन साथियों को पहिचानती हैं जो बहुत महीनों तक उनसे प्रथक रहे हैं, और उनके लौट आने पर हर्ष का विचार प्रगट करती हैं। उनकी साम्पार्किक भाषा बहुत प्रकार के भाव प्रगट करने योग्य है। वह उनके घर के भीतरी भाग के लिये जहां बिलकुल अंधेरा ही रहता है बहुत उचित भाषा है।

अकेले रहने वाले कीड़े अपनी सन्तान बढ़ाने के लिये अधिक दिनों तक जीवित नहीं रहते, और समूह बांध कर रहने वाले कीड़े अधिक दिनों तक जीवित रहते हैं। वे सभ्य प्रेम भी प्रगट करते हैं और अपने बच्चों को शिक्षा देते हैं, धैर्य और कारीगरी के नमूना की भांति इन छोटे कीड़ों में से कई एक कीड़े प्रति दिन सोलह वा अठारह घंटे तक काम करते हैं। थोड़े ही मनुष्य ऐसे हैं जो चार या पांच घंटे से अधिक समय तक लगा तार मानसिक काम करने योग्य हैं।

प्रतिफलों की एक प्रकारता कारणों की एक प्रकारता प्रगट करती है। और कामों की एक प्रकारता अङ्गों की एक प्रकारता चाहती है। मैं इस पुस्तक के पढ़ने वाले को, जो पशुओं के स्वभावों से जानकारी रखता है और विशेष कर उस अजीब कीड़े के जातीय सम्बन्धों से जानकारी रखता है जिसका वर्णन हो चुका है फिर से निजकृत "इन्टे-लेक्चुअल डिवलपमेन्ट आफ यूरोप" नामक पुस्तक का उन्नीसवां अध्याय पढ़ने के लिये अनुरोध करता हूं, जिसमें उसे पेरू के 'इनका नामक

जाति के जातीय प्रथा का वर्णन मिलेगा। तब कदाचित कीड़ों के जातीय नियमों और व्यक्तिक आचार की एक प्रकारता के विचार से, और सभ्य 'इन्डीज़' नामक द्वीप निवासी जाति के जातीय नियमों और व्यक्तिक आचार के विचार से जिसमें से प्रथम अर्थात कीड़े बहुत तुच्छ वस्तु हैं, और दूसरे मनुष्य हैं, वह इस सम्मति में मुझसे विरोध न करेगा कि "मधुमक्खियों, बर्रों, चीटियों, चिड़ियों और उन तमाम छोटे जन्तुओं से जिनको बहुत ही तुच्छ दृष्टि से देखता है मनुष्य को एक न एक दिन यह सीखना पड़ेगा कि वास्तव में वह स्वयं क्या वस्तु है"।

डिस्कारटीज़ के विचार, जो सब कीड़ों को स्वयम्ग्राही यंत्र के समान मानता था, बिना सुधार किये हुये नहीं स्वीकार किये जा सकते। कीड़े केवल वहीं तक स्वयम्ग्राही यंत्र है जहां तक उनके उदरिक नसों के काम और उनके मस्तकीय नस जालों के उस भाग से सम्बन्ध है जो समकालीन अनुभावों से संसर्ग रखते हैं।

यह पोले नसजाल मय पदार्थ का काम है, कि वह उन अनुभवों के चिन्हों को धारण करे जो ज्ञानेन्द्रियों द्वारा उस तक पहुंचाये जायें। इसी हेतु नस समूह को उसी पदार्थ से बने होने के कारण एक लेखन यंत्र समझना चाहिये। वे ही ज्ञानेन्द्रियां उस नस जाल यंत्र के काम में समय तत्व का भी प्रचार करती हैं। एक अनुभव जो बिना उनके लौट जाकर बिनाश हो जाता, ठहरा दिया जाता है और इतनी देर में वे सब भारी भारी प्रभाव हो जाते हैं जो नये और पुराने बहुत से अनुभवों के पारस्परिक क्रिया के कारण एक दूसरे पर होते हैं।

अकस्मात वा स्वयं उत्पन्न विचार कोई वस्तु नहीं है। प्रत्येक मानसिक काम किसी पहिले हो गये हुये काम का प्रतिफल है। वह उस वस्तु से पैदा होता है जो पहिले हो चुकी है। दो मनों में जो ठीक एक ही भांति के बने हों और ठीक एक ही भांति के प्रभाव से घिरे हुये हों अवश्य ठीक एक ही भांति का विचार पैदा होगा। जब हम सर्व साधारण में प्रचलित "सामान्यबुद्धि" शब्द को जो बहुत बड़े अर्थ से भरा हुवा है बोलते हैं तब काम की इसी एक प्रकारता

की ओर इशारा होता है। विचार के पैदा होने में दो स्पष्ट बातें हैं, अर्थात् पूर्वगामी अनुभवों पर आश्रित रहने वाली मानसिक रचना की दशा, और वर्तमान स्थूल पदार्थ संबंधी दशायें।

कीड़ों के मस्तकीय नसजाल में अनुभवों के वे चिन्ह एकत्र रहते हैं जो चारों ओर की साधारण नसों पर बन जाते हैं और उन्हीं में वे चिन्ह भी एकत्र रहते हैं जो विशेष विशेष ज्ञानेन्द्रियों द्वारा मस्तक तक पहुंचाये जाते हैं, अर्थात् आंख, कान, और नाक द्वारा। इनकी पारस्परिक क्रिया कीड़ों को केवल एक स्वयंवाही यंत्र से कुछ अधिक ऊंची वस्तु बना देती है। क्योंकि स्वयंवाही यंत्र में अनुभव के अनन्तर तुरन्त ही प्रतिक्रिया होती है।

सब अवस्थाओं में प्रत्येक नसजाल का काम, (चाहे वह नस जाल छोटा हो या बड़ा और चाहे किसी अवस्था का हो) एक आवश्यक रासायनिक दशा पर निर्भर है जिसे 'जारण' कहते हैं। यहां तक कि मनुष्य में भी यदि नसों में रक्त का संचालन थोड़ी ही देरके लिये रुक जाय तो नस यंत्र शक्ति विहीन हो जाता है, अगर रक्त कम हो जाय तो वह उतना ही कमजोर हो जाता है। और यदि इसके विरुद्ध रक्त अधिक हो जाय तो काम अधिक तेज होने लगता है। यही कारण है कि नसजाल की मरम्मत की आवश्यकता पड़ती है अर्थात विश्राम लेने और सोने की।

बाहरी वस्तुओं के विषयानुभव में दो मूल विचार अवश्य सम्मिलित हैं। एक **'अन्तरिक्ष'** दूसरा **'समय'** और इनके लिये नस जालिक यंत्र में तभी से प्रबन्ध हो जाता है जब वह लगभग प्राथमिक अवस्था में होता है। नेत्र अन्तरिक्ष का ज्ञान देने वाली इन्द्री है, और कान समय का ज्ञान देने वाली। इन इन्द्रियों के विषयानुभव इनकी कठिन यंत्रिक बनावट के कारण बहुत अधिक ठीक होते हैं जितना केवल स्पर्श ज्ञान से होना संभव न था।

कुछ बहुत ही साधारण परीक्षायें हैं जो नसजालिक अनुभवों के चिन्हों को प्रगट करती हैं। यदि एक ठंडी, चिकनी धातु पर, जैसे कि नवीन छुरा, कोई वस्तु, जैसे कि एक पतली टिकुली, रख दी जाय,

और तदनन्तर उस धातु पर एक फूंक मारी जाय और जब फूंक की भाफ विलीन हो जाय और टिकुली गिरा दीजाय, तब यद्यपि बहुत तेज़ दृष्टि से देखने पर भी उस चिकने धरातल पर किसी रूप का कोई चिन्ह न पाया जायगा, तथापि यदि हम उसपर फिर फूंक मारें तो उस टिकुली की छाया की प्रतिआकृत स्पष्ट देख पड़ेगी और यह बात बार बार की जा सकती है। इतना ही नहीं वरन् कुछ और अधिक भी अर्थात यदि वह चिकनी धातु युक्ति सहित एकान्त स्थान में रखदी जाय, जहां उसके तल को कोई हानि न पहुंचे, और इस भांति वह महीनों रक्खी रहै तो फिर उस पर फूंक मारने से वह छाया आकृति प्रगट हो जायगी।

ऐसे उदाहरण से यह बात प्रगट होती है कि एक बहुत ही तुच्छ चिन्ह कैसे इस भांति लिख लिया जा सकता है, और सुरक्षित रक्खा जा सकता है। परन्तु यदि ऐसे निर्जीवित तल पर कोई चिन्ह इस प्रकार अमिट रूप से बन जा सकता है तो वह चिन्ह कितना अधिक अमिट न होगा जो विशेष कर इसी काम के लिये बनाये हुये नसजाल पर हो। किसी दीवार पर कोई छाया ऐसी नहीं पड़ती कि वह सदैव काल के लिये कोई अपना चिन्ह वहां न छोड़े। यह चिन्ह उचित उपाय करने पर प्रगट किया जा सकता है। फोटो-ग्राफ़ी के काम ऐसे ही काम हैं। हमारे मित्रों के चित्र अथवा प्राकृतिक दृश्यों के चित्र छाया ग्राही तलों पर मानवी नेत्रों से छिपे रह सकते हैं, परन्तु ज्योंही उचित विकाशक उपाय किये जायेंगे त्योंही वे प्रगट हो जायेंगे। चांदी वा शीशा के तल पर एक छाया-कृति तब तक छिपी रहती है जब तक हम अपनी मंत्र शक्ति से संसार में प्रगट नहीं करते। बहुत ही गुप्त कोठरियों की दीवालों पर जहां हम विचारते हैं कि किसी की दृष्टि नहीं पड़ती और हमारे एकान्त निवास को कोई अपवित्र नही कर सकता हमारे कामों के चिन्ह बने रहते हैं अर्थात उन कामों के चिन्ह जो हमने उस स्थान में किये हैं।

थोड़ी देर तक आंखे बंद रखने के बाद यदि हम, जैसे सबेरे सो कर जगते हैं, एकाएक और बड़े ध्यान से एक अति प्रकाशमय वस्तु को देखें और तदन्तर तुरन्त ही फिर आखें बंद करलें तो हमारे सामने वाले अनन्त अंधेरे में एक आभास चित्र दिखलाई पड़ता है। हम को भली भांति जान लेना चाहिये कि यह छायाचित्र एक कल्पित वस्तु नहीं है वरन् वास्तविक वस्तु है। क्योंकि बहुत सी विदीवार बातों को जिनको हम क्षणिक दृष्टि से नहीं पहिचान सकते, हम अवकाश के समय इस छायाचित्र में ध्यान कर सकते हैं। इस भांति हम ऐसी वस्तु के नमूने देख सकते हैं जैसे खिड़की से लटकता हुआ एक ज़रदोज़ी का परदा या सामने वाले एक दरख़्त की शाखाएं। धीरे धीरे वह चित्र धुँधला होता जाता है और एक या दो मिनट में बिलकुल ग़ायब हो जाता है। ऐसा जान पड़ता है कि उस चित्र में हमारे सामने वाले अन्तरिक्ष में तैरने का स्वभाव होता है। यदि आंख के गटे को हिलाते हुये हम उस चित्रका पीछा करें तो वह अकस्मात विलीन हो जाता है।

आंख के पर्दे पर चिन्हों का इतनी देर तक ठहराव प्रमाणित करता है कि नस कोषों पर बाहरी वस्तुओं का प्रभाव क्षणिक ही नहीं होता है। इस घटना में और फोटो तय्यार करने वाले कांच के चिन्हों की स्थिरता, विकाश और बिनाश में एक प्रकार की सादृश्यता है।

इस भांति मैंने उन दृश्यों और मकानों के चित्र देखे हैं जिनका फोटो मेक्सिको में लिया गया था और कारीगरों के कथनानुसार महीनों के अनंतर न्यूयार्क में विकाशित किये गये। इतना बड़ा सफर करने के बाद भी वे चित्र ठीक ठीक प्रकाशित हो गये। उनके ज्यों के त्यों रूप और उनके अंधेरे उजेरे अङ्गों की विभिन्नता कुछ भी नहीं बिगड़ी। वह चित्रांकण कांच कुछ भी नहीं भूला। उसमें सदैव कालीन पहाड़ों के आकार और लुटेरों की आगके क्षणिक धुएं का आकार एक ही भांति सुरक्षित रहा।

तब क्या ज्ञानेन्द्रियों से प्राप्त किये अनुभवों के चिन्ह जैसे आंख के पर्दे में थोड़ी देर रहते हैं दिमाग़ में सदैव काल के लिये रहते हैं? क्या स्मरण शक्ति की व्याख्या यही है, अर्थात् क्या मस्तिष्क गत वस्तुओं और घटनाओं के ऐसे चित्रों पर मनन करता रहता है जो उसको सौंपे गये हैं? क्या उसके निस्तब्ध चित्रभवन में जीवित और मृतकों के, देखे हुये दृश्यों के, और की हुई घटनाओं के सूक्ष्म चित्र टँगे हुये हैं? क्या यह स्थाई चिन्ह पुस्तक के अक्षरों की भांति कोई इंगित चिन्ह हैं जो मन को विचारों का स्मरण दिलाते हैं वा वे वास्तविक मूर्ति चित्र हैं जो कारीगरों से बनाये हुए चित्रों से अत्यंत सूक्ष्म होते हैं, और जिनमें सूक्ष्म दर्शक यंत्र की सहायता से हम बहुत ही छोटे स्थान में एक बंश भर के मनुष्य देख सकते हैं?

आंख के पर्दे पर के आभास चित्र दिन के प्रकाश में देखे जाने के योग्य नहीं होते। इसी भांति वे चित्र जो ज्ञान कोष में हैं हमारे ध्यान को उस समय तक नहीं आकर्षित करते जब तक ज्ञानेन्द्रियां काम में लगी रहती हैं और नवीन अनुभव लाने में लगी रहती हैं। परन्तु जब वे इन्द्रियां थक जाती हैं वा सुस्त हो जाती हैं वा जब हमारे ऊपर बड़ी चिंता पड़ती है, वा हम अस्पष्ट काल्पनिक विचारों में रहते हैं, वा सो जाते हैं, तब उन गुप्त छायाचित्रों की स्पष्टता अधिक हो जाती है और वे बिना बुलाये ही मन के पास पहुँचते हैं। और इसी कारण से वे ज्वर की बेहोशी में भी हमारे पास आते हैं और निश्चय ही मृत्यु के समय भी। जीवन के एक तिहाई भाग में अर्थात् सोने के समय में, हम बाहरी प्रभावों से अलग रहते हैं। सुनने, देखने और अन्य प्रकार की ज्ञान शक्तियां बेकाम रहती हैं, परन्तु सदैव जगते रहने वाला मस्तिष्क (यह सोच विचार करने वाला और गुप्त जादूगर) अपने गुप्त निवासस्थान में अपने एकत्र किये हुये बीजाङ्कों को (बीजाङ्क इस हेतु कहा कि वे वास्तव में सच्चे अमिट चिन्ह हैं) उलट पलट कर देखा करता है और जैसे वे घटित हुये हैं वैसे ही उन्हें मिला जुला कर उनसे स्वप्न का एक मनोहर दृश्य बनाता है।

इस प्रकार प्रकृति ने प्रत्येक मनुष्य के अंग की बनावट में ऐसी युक्ति रखदी है जो बड़े जोर के साथ उसे आत्मा का अमरत्व और भविष्य जीवन सुझाती है। इस भांति एक अज्ञान बनवासी भी स्वप्न में उन दृश्यों के क्षणभंगुर आकार देखता है जो कदाचित उसके अत्यंत आनन्द प्रद स्मरणों से सम्बन्ध रखते हैं और वह उन स्वप्नों के काल्पनिक चित्रों से, सिवाय इसके कि वे परलोक के आगम चित्र हैं, और क्या फल निकाल सकता है? कभी कभी वह अपने स्वप्नों में उन मनुष्यों के आकार देखता है जिनको वह जीवित समय में प्यार करता था अथवा उनसे घृणा करता था और उसके लिये यह दृश्य आत्मा के होने और अमरत्व के अकाट्य प्रमाण हैं। हम अपने अत्यन्त सभ्य सामाजिक अवस्था में भी इन घटनाओं के अनुभवों को कभी छोड़ नहीं सकते और सदैव उनसे वही फल निकालते चले आते हैं जो हमारे असभ्य पूर्व पुरुष निकालते थे। हमारा अधिक उच्च जीवन किसी प्रकार हमको हमारे शारीरिक बनावट के अटल कामों से नहीं छुड़ा सकता, जैसे वह हमें निर्बलताओं और रोग से नहीं छुड़ा सकता। इन बातों में संसार भर के मनुष्य एक ही से हैं। चाहे हम बनवासी हों चाहे सभ्य, हम अपने शरीर के अन्दर एक ऐसा यंत्र रखते हैं जो हमें अत्यंत गम्भीर घटनाओं का स्मरण कराता है जिनसे हमारा सम्बन्ध हो सकता है। उसको अपना पूर्ण प्रभाव जानने के लिये केवल विश्राम वा बीमारी के समय की आवश्यकता है। ऐसे समयों में बाहरी वस्तुओं का प्रभाव घट जाता है और ये ही ठीक वे समय हैं जब हम उन सत्यताओं को ग्रहण करने के लिये खूब तय्यार होते हैं जो वह शारीरिक यंत्र हमें सुझाना चाहता है। वह शारीरिक यंत्र किसी का संकोच नहीं करता। वह न तो घमण्डियों को उपदेश देने से चूकता है और न दीन हीनों को भविष्य जीवन के ज्ञान की सांत्वना से बंचित रखता है। वह छली और स्वार्थी मनुष्यों से छले जाने का समय ही नहीं रखता, क्योंकि उसे अपने काम में बाहिरी मनुष्य की सहायता की आवश्यकता नहीं, वरन् सदैव प्रत्येक मनुष्य के साथ रह कर (चाहे वह कहीं क्यों न

जाय) वह विगत समय के अनुभवों के चिन्हों से, आश्चर्य्यप्रद रीति से, भविष्य की सत्यताओं के विषय में बहुत से प्रमाण निकाल लेता है; और इस प्रकार प्रगट में अत्यंत असम्भव कारण द्वारा अपनी शक्ति इकट्ठा करके अज्ञात रूप से (चाहै हम कोई हों वा कहीं हों) उन छाया चित्रों से लेकर, जो स्पष्ट होते ही मिट जाते हैं, उस वस्तु के गम्भीर विश्वास तक ले जाता है जो अमर और अविनाशी है अर्थात् आत्मा।

एक कीड़ा स्वयम्ग्राही यंत्र से इस बात में भिन्न है कि उस पर पुराने और अंकित अनुभवों का प्रभाव पड़ता है। जीवधारियों के अधिकाधिक ऊंची श्रेणियों में वह चित्रांकण अधिकाधिक पूर्ण होता जाता है और स्मरण शक्ति अधिक सम्पूर्ण होती जाती है। बाहरी रूप और उसके नस जालिक अनुभव में कोई आवश्यक एक-रूपता नहीं है; जैसे तार घर में दिये हुये संदेश-शब्दों और दूरस्थ स्थान तक पहुंचाई हुई तार की खबर के चिन्हों में अनुरूपता नहीं होती, और जैसे पुस्तक पर छपे हुये अक्षरों और उन अक्षरों में वर्णित कामों वा दृश्यों में अनुरूपता नही होती, परन्तु वे अक्षर पढ़ने वाले के मन में उन घटनाओं और दृश्यों का स्पष्ट ज्ञान पहुँचा देते हैं।

यदि किसी जन्तु में अनुभवों को ग्रहण करने वाला कोई यंत्र न हो, तो वह अवश्य एक निपट स्वयम्ग्राही यंत्र हो सकता है, अर्थात उसमें स्मरण शक्ति नहीं हो सकती। छोटे छोटे और अनिश्चित प्रारम्भों से यह मानसिक यंत्र धीरे धीरे विकाश करता जाता है, और ज्यों ज्यों उसकी उन्नति होती जाती है त्यों त्यों मानसिक योग्यता बढ़ती जाती है। मनुष्य में यह ग्रहण वा अंकण शक्ति पूर्णता को पहुँच जाती है। वह गत और वर्तमान अनुभवों के अनुसार चलता है। उस पर अनुभव का प्रभाव पड़ता है, और उसका आचार व्यवहार बुद्धि से निश्चित होता है।

बहुत भारी उन्नति उस समय कहलाती है जब कोई जंतु ऐसी योग्यता प्राप्त कर लेता है कि अपने मन में एकत्र किये हुये अनुभवों के ज्ञान को अपनेही जाति के अन्य व्यक्तियों को दे सकता है। यही

बात उस व्यक्ति के जातीय जीवन के प्रसार का चिन्ह है और वास्तव में यह उसके लिये आवश्यक है। उच्च कोटि के कीड़ों में यह काम सम्पर्क शक्ति द्वारा किया जाता है और मनुष्यों में भाषा द्वारा। मनुष्य जाति अपनी प्राचीन जंगली दशाओं में इस विषय में सीमा-बद्ध थे। एक व्यक्ति का ज्ञान वार्तालापही द्वारा दूसरे तक पहुँचता था। एक पीढ़ी के काम और विचार दूसरी पीढ़ी को दिये जा सकते थे और इस प्रकार उस पीढ़ी के काम और विचारों पर प्रभाव डाला जा सकता था। परन्तु इन मौखिक कथाओं की भी सीमा है, वाक्य शक्ति द्वारा एक जातीयता होना सम्भव है, पर इससे अधिक और कुछ नहीं।

बड़े आनन्द के साथ हम इस काम की उन्नति के विस्तार का वर्णन करते हैं। लेखन गुण के अन्वेषण ने अनुभवों के अंकण को प्रसार और स्थिरता दी। वे अनुभव जो अबतक एक आदमी के मन में एकत्रित थे सब मनुष्य जाति भर को दिये जा सकते हैं, और सदैव काल स्थित रक्खे जा सकते हैं। सभ्यता की संभावना हुई। क्योंकि बिना लेखन गुण जाने हुये, चाहे किसी रूप में वह लेखन हो, सभ्यता ठहर नहीं सकती।

इस मनोवैज्ञानिक विचार में हम छापा के अन्वेषण का ठीक गुण समझ सकते हैं जो लेखन गुण का एक प्रकार का प्रसार ही है; और जो विचारों के फैलाव की तेज़ी को बढ़ा कर और उनकी स्थिरता को निश्चित कर के सभ्यता को बढ़ाता है और मनुष्य जाति को एक बनाता है।

मनुष्य के मनोभावों को वैज्ञानिक रीति से जानने का केवल एक मात्र उपाय यह है कि उसे भेद प्रदर्शक मनोविज्ञान द्वारा जानें। यह एक बड़ा लम्बा और थका देने वाला रास्ता है, परन्तु सत्यता तक पहुँचा देता है।

तब क्या जैसे यह सब संसार पदार्थ मय है वैसेही कोई बड़ी आत्मा इस संसार भर में व्याप्त है? क्या वह ऐसी आत्मा है जिसके विषय में एक बड़े जर्मन लेखक ने कहा है कि "वह पत्थर में निद्रा-

वस्था में है, पशुओं में स्वप्नावस्था में है और मनुष्य में जाग्रतावस्था में है ?" तब क्या हमारी आत्मा उसी आत्मा से निकली है, जैसे हमारा शरीर उन्हीं सांसारिक पदार्थों से निकला है ? और क्या वे उसी भांति प्रत्येक अपने अपने मुख्य कारण तक लौट जाते हैं जहां से वे आये थे? यदि ऐसाही है तो हम मानवी अस्तित्व का अर्थ समझा सकते हैं और हमारे विचार तब भी वैज्ञानिक सत्यता के अनुकूल होंगे, और हमारे विचार स्थिरता के विचार के अनुकूल होंगे और संसार के अपरिवर्तन के भी अनुकूल होंगे ।

इसी आत्मिक अस्तित्व को मुसल्मान लोग पूर्वीय जातियों की भांति 'रूहेमुतहर्रिक' (चैतन्य आत्मा) कहते थे । उनका ऐसा विश्वास था कि मनुष्य की आत्मा उसी आत्मा से निकली है (जैसे वर्षा जल का एक बुन्द समुद्र से आया है) और थोड़े ही काल के अनन्तर उसी तक लौट जाती है । इस भांति उन लोगों में उत्पत्ति और लय के भारी सिद्धान्त माने जाने लगे । वही चैतन्य आत्मा ईश्वर है । हम ने देखा है कि यही विचार अपने एक रूप में हिन्दुस्तान में बहुत अच्छी रीति से शाक्यमुनि ने विस्तृत किया था और बौद्ध मत की बड़ी भारी चलतू धार्मिक प्रथा में सम्मिलित कर दिया गया था । और दूसरे रूप से इसी विचार को अवरोज़ ने कम शक्ति के साथ मुसल्मानों में फैलाया था ।

परन्तु कदाचित हमको यह कहना चाहिये कि यूरोप निवासी लोग अवरोज़ को इस सिद्धान्त के उत्पादक की भांति मानते हैं । क्योंकि उन्होंने उसको अपने पहिले सिद्धान्तों से प्रथक पाया । परन्तु मुसल्मानों ने उसे उन सिद्धान्तों का उत्पादक होने का सन्मान नहीं दिया । वे उसे अरस्तू के ग्रन्थों का टीकाकार ही समझते रहे और सिकन्दरिया के और अपने समय तक के अन्य तत्वज्ञानिक विद्वानों की सम्मतियों का प्रकाशक ही जानते रहे। 'मिस्टर रिनान' कृत "हिस्टारिकल इसे आन अवरोइज़्म" नामक पुस्तक से निम्न लिखित चुने हुए अवतरण प्रगट करेंगे कि मुसल्मानों के विचार ऊपर लिखे हुये विचारों से कितना अधिक मिलते जुलते हैं ।

यह सिद्धान्त प्रणाली अनुमान करती है कि किसी व्यक्ति के मरजाने पर उसकी आत्मा प्रथक अस्तित्व नहीं रख सकती, वरन् उस सर्व व्याप्त मन (चैतन्य बुद्धि, लोक व्यापी आत्मा जो ईश्वर है) में मिल जाती है, जहां से वास्तव में वह पहिले पहिल निकली थी।

वह सर्वव्यापी वा चैतन्य वा पदार्थनिष्ठ बुद्धि अनुत्पादित, दुःखविहीन और कभी न बिगड़ने वाली है। और न उसका आदि है न अन्त, न वह व्यक्तिक आत्माओं की भांति गणना में बढ़ती है। वह पदार्थ से सर्वथा प्रथक हैं। मानो वह जगत सम्बन्धी मूलतत्व है। उस चैतन्य बुद्धि वा मनन शक्ति की एकता अवरोज़ के सिद्धान्त का मुख्य तत्व है, और मुसल्मानी मत (ईश्वर की एकता) के मुख्य सिद्धान्त के अनुकूल है।

व्यक्ति गत बुद्धि उसी सर्वव्यापी बुद्धि से उत्पन्न हुई है, और वही मनुष्य की आत्मा कहलाती है। एक विचार से वह लय होने योग्य है और शरीर के साथही उसका अन्त हो जाता है, परन्तु एक उच्च कोटि के विचार से वह सदैव ठहरने वाली है। क्योंकि मृत्यु के अनन्तर वह उस सर्वत्र व्यापी आत्मा में मिल जाती है, और इस भांति सब मनुष्यों की आत्माओं में से केवल एक आत्मा रह जाती है जो उन सब आत्माओं का समूह है। जीवन किसी विशेष व्यक्ति की सम्पत्ति नहीं है, वरन् वह प्रकृति की वस्तु है, मनुष्य का अन्त धीरे धीरे बढ़कर उस चैतन्य बुद्धि में पूर्ण रीति से मिल जाना ही है। उसी में आत्मा की शान्ति है, शान्तिही हमारा अन्तिम परिणाम है। अवरोज़ की सम्मति यह थी कि मृत्यु होते ही व्यक्तिगत आत्मा तुरन्त सर्वव्यापी आत्मा में चली जाती है, परन्तु बौद्ध लोग कहते हैं कि मनुष्य का मनुष्यत्व, एक विशेष समय तक, नित्य घटता रहता है और तदनन्तर अनस्तित्व वा निर्वाण प्राप्त होता है।

सांसारिक प्रथा की व्याख्या के लिये तत्व ज्ञान ने केवल दो कल्पनाएं की हैं। प्रथम यह कि एक शरीर धारी ईश्वर सब से अलग है, और मनुष्य की आत्मा उत्पत्ति की गई है और उसी समय से अमर है। और दूसरी यह कि एक शरीर रहित बुद्धि वा अमिश्रित

ईश्वर है और आत्मा उसी से निकलती है और उसी तक लौट जाती है। और व्यक्तिक वस्तुओं की उत्पत्ति के विषय में दो विरोधी सम्मतियां हैं। प्रथम यह कि वे नास्ति से पैदा की गईं। दूसरी यह कि वे प्रथमस्थित रूपों से विकाश करते हुये निकली हैं। उत्पत्ति का सिद्धान्त उपरोक्त कल्पनाओं में से प्रथमोक्त कल्पना का है और विकाश सिद्धान्त दूसरी कल्पना का है।

इस भांति अरब निवासियों के तत्व ज्ञान ने वही मार्ग धारण किया जो उसने चीन, हिन्दुस्तान, और सब ही पूर्वीय देशों में धारण किया था। उस सिद्धान्त का सर्वथा तात्पर्य्य यह था कि "पदार्थ" और "शक्ति" अविनाशी हैं। उसने मानवी शरीर के पदार्थ का प्रकृति के पदार्थिक ढेर से लिये जाने और अन्त में उसके उसी में मिल जाने में, और सर्वत्र व्यापी बुद्धि अर्थात ईश्वर से मानवी आत्मा के निकलने और फिर अन्त में उसी में लय हो जाने में एक समता पाईथी।

इस प्रकार अलम् विस्तार से उत्पत्ति और लय के सिद्धान्त के तत्वज्ञानिक लक्षणों को वर्णन करके अब मुझे उसका इतिहास वर्णन करना है। यूरोप में स्पेन निवासी अरबों ने उसका प्रचार किया। स्पेन ही वह केन्द्रस्थल था जहां से निकल निकल कर उसने तमाम यूरोप भर के बुद्धिमान और व्यवहारचतुर लोगों पर प्रभाव डाला और स्पेन में उसका बुरी भांति से अन्त हो गया।

स्पेन का खलीफ़ा पूर्वीय जीवन के भोग विलासों में पड़ गये थे। उनके बड़े बड़े महल, मनोहर उद्यान और रूपवती स्त्रियों से भरे हुये अन्तःपुर थे। यूरोप आज भी उससे अधिक रुचि, अधिक नफ़ासत, अधिक सुन्दरता नहीं प्रगट करता जितनी कि उस समय स्पेन निवासी अरबों के राज्य नगरों में देखी जा सकती थी जिस समय का हम वर्णन कर रहे हैं। उनकी गलियां प्रकाशित और पक्की खरंजेदार थीं, और निवासस्थान चित्रित और फ़र्शदार थे। जो जाड़े में अगीठियों से गर्म रक्खे जाते थे और गर्मी में उस सुगंधित वायु से ठंढे रक्खे जाते थे जो फूलों की क्यारियों से भूगर्भस्थित नलों द्वारा लाई जाती थी। उनके यहां स्नानागार, पुस्तकालय,

भोजनालय और पारा और पानी के फौवारे भी थे। नगर और देहात सब आनन्दी जीवों से भरे थे, और बीणा और मेन्डोलिन बजा कर नाचते गाते थे। अपने उत्तरीय पड़ोसियों के मद्यपी और अति भोजन युक्त नाट्य सम्बन्धी रतजगों के स्थान में मुसलमानों के भोजोत्सव मदाभाव से विशिष्ट होते थे। मद्पान की मनाही थी। ऐंडल्यूसिया की चन्द्रछटा युक्त मनोहर रातियां मूर लोग एकान्त-स्थान में, मनोहर उद्यानों में अथवा नारंगियों के कुंजों में कल्पित कहानियों को सुनते हुये तत्व ज्ञानिक व्याख्यानों में लगे हुये बिताते थे। वे इस जीवन की निराशाओं से, ऐसा विचार कर अपने को धीरज देते थे कि यदि इस संसार में नेकी का फल नहीं मिलता तो हमें परलोक में आशायें न करना पड़ेंगी। और अपने दैनिक कठिन कार्य्यों में इस आशा से धीर युक्त रहते थे कि हम मरणोपरान्त एक ऐसा विश्राम पायेंगे जिसके अनन्तर परिश्रम करना ही नहीं पड़ता।

दशवीं शताब्दी में दूसरे 'हाकिम' नामक खलीफा ने सुन्दर ऐंडल्यूसिया को पृथ्वी पर का स्वर्ग बना दिया था। ईसाई, मुसल्मान और यहूदी बिना किसी प्रकार की रोक टोक के मिल जुल कर रहते थे। बहुत से प्रसिद्ध मनुष्यों में से जिनके नाम अब तक प्रसिद्ध हैं, 'जरबर्ट' जो कुछ कालोपरान्त पोप हो गया, वहीं रहता था। आदरणीय पीटर और बहुत से ईसाई पादरी लोग भी वहीं के थे। पीटर कहता है कि मैं ने वहां ऐसे विद्वान भी पाये जो ज्योतिष सीखने को बरतानिया देश से आये थे। वहां सब ही विद्वान पुरुषों का आदर सहित स्वागत होता था चाहे वे किसी देश से आये हों या चाहे जिस मत के अवलम्बी हों। खलीफा के महलों में पुस्तक बनाने वालों, लेखकों, जिल्दसाजों और जिल्द पर स्वर्णाक्षरों से चित्रकारी करने वालों का एक कारख़ाना ही था। उसकी ओर से एशिया और आफ्रिका के सबही बड़े बड़े नगरों में पुस्तक खरीदने वाले नियत थे। उसके पुस्तकालय में चार लाख पुस्तकें थीं जिनकी बहुत अच्छी जिल्दें बँधी थीं और वे जिल्दें स्वर्णाक्षरों से भूषित थीं।

एशयिा, आफ्रिका और स्पेन के मुसल्मानी राज्य भर में निम्न श्रेणी के मुसल्मान विद्या की ओर से एक बड़ी धर्मोन्मत्त घृणा रखते थे। और बड़े भक्तों में जो शास्त्र पंथानुगामी कहलाने का दावा करते थे खलीफा अलमामूं के मोक्ष के विषय में (जिसे वे लोग दुष्ट खलीफा कहते थे) बड़े बड़े सन्देह फैले हुये थे, क्योंकि उसने केवल अरस्तू और अन्य यूनानी मूर्ति पूजकों के ग्रन्थों का प्रचार करके ही प्रजा को विपथगामी नहीं किया था, वरन् यह प्रसिद्ध करके कि पृथ्वी गोलाकार है और वह नापी भी जा सकती है, स्वर्ग और नर्क का अस्तित्व ही मिटा दिया था। गणना में बहुत अधिक होने के कारण राज्य शक्ति ऐसेही लोगों से बनी हुई थी।

'अलमंसूर' ने जिसने खलीफा हाकिम के लड़के को हानि पहुँचा कर राज्य छीन लिया था, विचार किया कि यदि वह शास्त्र पंथानुगामी समूह का मुखिया बनेगा तो उसका राज्यापहरण कार्य्य उन लोगों के कारण सुरक्षित रहैगा। इस हेतु उसने हाकिम के पुस्तकालय की खोज कराई और विज्ञान और दर्शन सम्बन्धी सबही ग्रन्थ निकाल कर खुले मैदानों में जला दिये गये वा महल के कुंडों में फेंक दिये गये। इसी प्रकार के एक राज्य दरबार सम्बन्धी विद्रोह से अवरोज़ बुढ़ापे में (इसकी मृत्यु सन् ११९८ ई० में हुई) स्पेन से निकाल दिया गया। धार्मिक जनों के समूह ने दार्शनिक जनों के समूह पर विजय पाई। वह धर्म का विरोधी कहकर बदनाम किया गया। मुसल्मानी संसार भर में दर्शन शास्त्र का विरोधी एक दल बन गया। कोई ऐसा तत्व ज्ञानी न बचा जिसको दंड न दिया गया हो। कतिपय तत्व ज्ञानी मरवा डाले गये, जिसका फल यह हुआ कि मुसल्मानी धर्म बगुला भक्तों से भर गया।

परन्तु अवरोज का मत चुपके चुपके इटली, जर्मनी और इङ्गलैंड तक में फैल गया था। 'फ्रान्सिसकन' लोगों की दृष्टि में उसने बड़ा आदर पाया था और पेरिस का महाविद्यालय उसका केन्द्रस्थल हो गया था। बहुत से मुखियाओं ने उसे स्वीकार कर लिया था। परन्तु अन्ततः फ्रांसिसकन लोगों के विरोधी 'डामीनिकन' लोगों ने

लोगों को सचेत किया। वे लोग कहते थे कि अवरोज के मत ने व्यक्तिक अस्तित्व को मिटा दिया, दैवाधीनता की ओर लिये जाता है, और व्यक्ति गत बुद्धियों के भेद और उन्नति को अविवेचनीय कर डाला है । ऐसा कहना कि संसार में केवल एकही "बुद्धि" है एक ऐसी भूल है जो पवित्र महात्माओं की योग्यताओं को नष्ट भ्रष्ट करती है, अर्थात् यह कहना है कि सब मनुष्यों में कोई भेद नहीं है । तो क्या पीटर की पवित्र आत्मा और जूडाज़ की अपवित्र आत्मा में कुछ भेद नहीं है ? क्या वे एकही हैं ? अवरोज़ अपने इस नास्तिक सिद्धान्त में संसार की उत्पत्ति, ईश्वर कृत पोषण, श्रुतिप्रकाश, त्रिदेव सिद्धान्त और प्रार्थना, दान और विशेष प्रार्थनाओं के प्रभाव को नहीं मानता । वह पुनरुत्थान ओर अमरत्व पर विश्वास नहीं करता । वह केवल विषय सुख को ही सर्वोच्च भलाई मानता है ।

इसी भांति यहूदियों में भी जो उस समय संसार के बुद्धिमानों में मुखिया माने जाते थे अवरोज़ का मत अधिकता से फैल गया था। उनके बड़े भारी लेखक मेमोनाईडीज़ ने उसे पूर्णत: स्वीकार कर लिया था, उसके शिष्य वर्ग उसे चारों ओर फैला रहे थे। कट्टर यहूदियों की ओर से एक भयङ्कर आक्रमण हुआ । मेमोनाईडीज़ के विषय में पहिले तो उन्होंने ऐसा प्रसिद्ध किया था कि "वह एक दूरदर्शी विद्वान, बड़ा महात्मा, पश्चिम देश का भूषण, पूर्व देश का प्रकाश और मूसा से दूसरे दरजे का मनुष्य था" । अब उन्होंने यह बात प्रसिद्ध की कि उसने इब्राहीम का पंथ छोड़ दिया था, संसार की उत्पत्ति की सम्भावना को नहीं मानता था, उसे विश्वास था कि यह संसार अनादि और अनन्त है, वह लोगों को नास्तिक बनाने में लगा रहता था, उसने ईश्वर को गुण विहीन कर दिया था और उसे नास्ति ही कर डाला था, और यह कहता था कि प्रार्थना ईश्वर तक नहीं पहुँचती, ओर वह संसार का शासन भी नहीं करता । मेमोनाईडीज के ग्रंथों को मांटपीलियर, वारसिलोना और टोलेडो की धार्मिक सभाओं ने जलादिया था ।

फरडीनेंड और इज़्ज़ाबिला के शस्त्रों ने स्पेन की मुसल्मानी राज्य कों पराजित भी न कर पाया था कि ईसाई पोपों ने उन सम्मतियों को विनष्ट करने के उपाय किये, जो उनके विश्वास से यूरोपस्थ ईसाई मत की जड़ें काट रहीं थीं।

पोप चौथे इनोसेंट के समय तक (सन् १२४३ ई०) विशप लोगों के न्यायालयों से प्रथक नास्तिकों को दंड देने के लिये कोई विशेष न्यायालय न था। तदनन्तर जो धर्म परीक्षक सभा स्थापित की गई वही समयानुसार एक सार्वजनिक और पोपों का न्यायालय माना गया जिसने सब प्राचीन स्थानिक न्यायालयों को उठा दिया। इस लिये विशप लोग अपने अधिकारों की बाधक समझ कर नवीन सम्प्रदाय से बड़ी घृणा करने लगे। ऐसी सभायें इटैली, स्पेन, जर्मनी और फ्रान्स के दक्षिणीय प्रान्त में स्थापित की गई।

उस समय के राजा लोग भी, इस शक्तिवान न्यायालय को अपने राजनैतिक कार्य साधन में काम में लाने के लिये बड़े उत्सुक थे। पोप लोगों ने इस बात का बड़ा विरोध किया। वे नहीं चाहते थे कि ऐसे न्यायालयों का प्रयोग पादरियों के हाथ के अतिरिक्त अन्य लोगों के हाथों में चला जाय।

इस धर्म परीक्षक सभा की परीक्षा दक्षिणीय फ्रान्स में होही चुकी थी और वहां वह नास्तिकता को दबाने में बड़ी काम की वस्तु प्रमाणित हो चुकी थी। वह अरेगान में भी प्रचलित हो चुकी थी। अब उसे यहूदियों से वर्त्ताव करने का भी अधिकार मिल गया था।

प्राचीन समय में विसीगोथियों के राज्य काल में ये यहूदी लोग बड़ी अच्छी दशा में थे, पर उनके साथ जो रिआयतें की गई थीं उसके कारण जब विसीगोथों ने एरियन धर्म को छोड़ा और शास्त्र पंथानुगामी हुये तब उन पर अत्याचार होने लगे। उनके विरुद्ध अत्यंत अमानुषीय नियम प्रचलित किये गये। एक कानून बनाया गया जिसके अनुसार उन सब को गुलाम बनने को कहा गया। इस पर आश्चर्य्य न करना चाहिये कि जिस समय मुसल्मानी आक्रमण हुआ उस समय यहूदियों ने जितना उनसे हो सका उस आक्रमण

की सफलता को बढ़ाने के लिये उद्योग किया। वे भी अरबों के समान पूर्व के निवासी थे, दोनों जातियां अपने को इब्राहीम की सन्तान मानती थीं, दोनों ईश्वर की एकता पर विश्वास रखती थीं। इसी नियम के प्रतिपादन के कारण ही उनके विसीगोथी मालिक उनसे घृणा करने लगे थे।

मुसलमानी राज्य काल में उनके साथ बड़ा आदरणीय वर्त्ताव किया गया। वे अपने धन और अपनी विद्या के कारण मुख्य गिने जाने लगे। उनमें से अधिकतर लोग अरस्तू के मतावलम्बी थे। उन्होंने बहुत से पाठशालाओं और विद्यालयों की नींव डाली। व्योपार में स्वार्थ लेने के कारण उन्हें संसार भर में पर्य्यटन करना पड़ा। उन्होंने विशेष कर वैद्यक विद्या सीखी। मध्य काल के समय भर में (Middle ages) यही लोग यूरोप के वैद्य और महाजन थे। सब मनुष्यों में से इन्हीं लोगों ने मनुष्य सम्बन्धी घटनाओं के प्रवाह को बड़े उच्च विचारों से देखा। विशेष विद्याओं में से यह लोग गणित विद्या और ज्यौतिष विद्या में बहुत प्रवीण हो गये। उन्होंने अल्फान्सो की सारणियां बनाईं और इसप्रकार 'डीगामा' के समुद्रीय यात्रा का कारण हुये। उन्होंने सुगम साहित्य में बड़ी प्रख्यात प्राप्त की। दशवीं शताब्दी से लेकर चौदहवीं शताब्दी तक यूरोप में उन्हीं का साहित्य प्रथम श्रेणी का था। वेही लोग राजाओं के दरबार में वैद्यों की भांति वा कोशाध्यक्षों की भांति सरकारी आय का प्रबंध करते हुये पाये जाते थे।

नेवर के धर्म परायण पादरियों ने सर्व साधारण लोगों में उनके विरुद्ध अविचार बुद्धि फैलादी। इन अत्याचारों से बचने के लिये उनमें से बहुतों ने ईसाई हो जाने का बहाना किया और इनमें से बहुतों ने अपने प्राचीन धर्म को फिर से ग्रहण किया। केस्टाइल के दरबार में रहने वाले धर्म दूत ने धर्मपरीक्षक सभा स्थापित होने के लिये चिल्लाहट मचाई। ग़रीब यहूदियों पर यह दोष लगाया गया कि वे पैसोवर पर ईसा की सूली का ठट्ठा उड़ाने की भांति ईसाई बालकों का बलिदान करते हैं। और धनी यहूदियों को अव-

रोज़ के मत के अनुगामी होने का कलंक लगाया गया। टारकीमेडा के प्रभाव से, (जो एक डामेनीकन सन्यासी और इज्जाविला रानी का पाप–स्वीकारश्रोता पुरोहित था) उस रानी ने पोप से होली आफिस स्थापित करने के लिये आज्ञा पत्र मँगाया। तदनुसार एक आज्ञा पत्र सन् १४७८ ई० के नवम्बर मास में नास्तिकता के खोजने और दबाने के लिये प्रकाशित किया गया। धर्म रक्षक सभा के कार्य्य के पहिले ही साल (१४८१) में ऐंडल्यूलिया में दो हजार दोषी जला दिये गये। इनके अतिरिक्त कई हज़ार मनुष्य कबरों से खोद निकाले गये और जला दिये गये। सत्रह हज़ार मनुष्यों पर जुरमाना हुआ वा जीवन भर के लिये कैद किये गये। इन क्लेशित मनुष्यों में से, जो भाग सके वे अपने प्राण बचाने के लिये भाग निकले। टारकीमेडा ने जो अब केस्टाइल और लीयन का बड़ा धर्म परीक्षक नियत हो चुका था, अपनी क्रूरता से अपने पद को प्रख्यात किया। लोगों पर गुप्त रीति से दोष लगाये गये, दोषी के सामने गवाहों की साक्षी न लीं गई, और प्रमाणित हो जाने पर शिकंजे में दबा कर मार डाले जाने लगे। यह दंड ऐसे भूगर्भस्थित स्थानों में दिया जाता था जहां कोई उस कष्टित मनुष्य का चिल्लाना न सुन सके। दूसरी बार शिकंजे में दबाना मना होने के कारण जैसा कि झूठी दया दिखाने के समय होता है, बड़े भयङ्कर कपट के साथ यह कहा जाता था कि पहिली बार शिकंजे का दंड पूर्ण रीति से नहीं दिया गया था किन्तु दया वश दूसरे दिन के लिये टाल दिया गया था। दोषियों के घराने असाध्य हानि में डूब गए। धर्मपरीक्षक सभा का इतिहास कार 'लारेन्टी' गणना करता है कि 'टारकीमेडा' और उसके सहकारियों ने अट्ठारह वर्ष में दश हजार दो सै बीस मनुष्यों को जीवित जला दिया, छः हजार आठ सौ साठ मनुष्यों की मूर्तियां जलवादीं। और सत्तानबे हजार तीन सौ इक्कीस मनुष्यों को अन्य प्रकार से दंडित किया। इस धर्मोन्मत्त पुरोहित ने हब्रानी भाषा की इंजीलों को, जहां कहीं से वह पा सका, विनष्ट करवा डाला और यह कलंक लगा कर कि ये पुस्तकें ज्यूडा धर्म का प्रचार करती

हैं पूर्वीय साहित्य की छः हजार पुस्तकें सलामेनका नगर में जलवा डाली। अकथनीय घृणा और क्रोध सहित हमने यह भी सुना है कि पोप महाशय ने धर्म परीक्षक सभा से बचाने के हेतु धनी पुरुषों को नियममुक्ति पत्र देकर अतुल धन प्राप्त किया था।

परन्तु ये सब भयानक अत्याचार निर्फल हुये। थोड़े ही मनुष्यों ने ईसाई धर्म ग्रहण किया। इस कारण टारकीमेडा ने यह आग्रह किया कि वे यहूदी जिन्होंने बप्तिस्मा नहीं लिया तुरन्त देश से निकाल दिये जायें। ३० मार्च सन् १२९२ ई० को इस देश-निष्काशन दंडाज्ञा पर पोप के हस्ताक्षर हो गये। सबही यहूदियों को, जिन्होंने बप्तिस्मा नहीं लिया था (चाहे वे किसी उमर के हों, चाहे पुरुष हों चाहे स्त्री, वा चाहे किसी दशा के हों) आने वाले जुलाई मास के अन्त तक राज्य से निकल जाने की आज्ञा हो गई। यदि वे फिर उस देश में आवें तो उन्हें मृत्यु दण्ड दिया जायगा। वे अपनी जायदादें बेंच सकते थे और उसके मूल्य से सौदागरी का सामान या हुंडी ले जा सकते थे, परन्तु रुपया पैसा नहीं। इस भांति अकस्मात् अपनी जन्मभूमि, अपने पुरुषाओं के सैकड़ों वर्ष रहने की भूमि से निकाले जाने पर वे लोग अपनी वस्तुओं को आवश्यकता से अधिक भरी पूरी बाज़ार में न बेच सके। जो वस्तु जुलाई मास के बाद बेदाम मिल सकेगी उसे कोई खरीदता न था। स्पेन निवासी पादरी लोग खुले मैदानों में ऐसे व्याख्यान देने लगे जिनमें वे खुल्लम खुल्ला यहूदियों को तर्जन करते थे। जब देश निकाले का समय आगया तब यहूदी सड़कों पर जमा हुए और अपनी निराश पूर्ण चिल्लाहटों से वायु को गुंजा दिया। यहां तक कि स्पेन निवासी दर्शक जन उनकी इस कष्टावस्था को देख कर रो देते थे। परन्तु 'टारकीमेडा' ने यह आज्ञा दी कि कोई उनकी सहायता न करे।

देश से निकाले हुये जनों में से कुछ आफ्रिका को चले गये और कुछ इटेली को। इटेली जाने वाले लोग अपने साथही नेपिल्स नगर में वह जहाज़ी ज्वर ले गये जिसने उस नगर के २०००० हज़ार मनुष्यों से कम को नहीं विनष्ट किया, और उस प्रायद्वीप को ऊजड़

कर दिया। कुछ लोग रूम पहुंचे और कुछ थोड़े से इंगलैंड गये। हज़ारों मनुष्य, और विशेष कर दूध पीते बच्चों की मोतायें, दुधमुख बच्चे, और वृद्ध जन मार्गही में मृत्यु को प्राप्त हुये, और बहुत से प्यास के मारे मर गये।

यहूदियों के साथ ऐसा काम होने के अनन्तर मूर लोगों के साथ भी ऐसाही हुआ। सिवाइल नगर से फरवरी सन् १५०२ ई० में एक जुल्मी आज्ञापत्र जारी हुआ, जिसमें कस्टीलियन लोगों को यह आज्ञा दी गई थी कि वे लोग उस देश से ईश्वर के शत्रुओं को निकाल बाहर करें। और यह भी आज्ञा दी गई थी कि सब मूर जो ईसाई नहीं हैं और केस्टाइल और लियन के राज्य में रहते हैं और जो दुधमुख बच्चों की अवस्था से अधिक अवस्था के हैं उन्हें अप्रैल मास के अन्त तक यह देश छोड़ देना चाहिये, वे अपनी जायदाद बेंच सकते थे पर उसका मूल्य सोने चांदी के रूप में नहीं ले जा सकते थे। उन्हें मुसल्मानी राज्य में भी जा बसने की मनाही थी, और यह आज्ञा न मानने वाले के लिये मृत्यु दण्ड था। इस भांति इन मूर लोगों की दशा उन यहूदियों से भी अधिक बुरी थी जिनको यह आज्ञा थी कि वे जहां चाहैं तहां जायें। स्पेन निवासियों की यह असहनशीलता ऐसी राक्षसी थी कि वे लोग इस बात को समर्थन करते थे कि राजा को न्याययुक्त यह अधिकार है कि वह लज्जास्पद नास्तिकता के हेतु सब मूरों के प्राण ले सकता है।

हा! यह बात उस सहनशीलता के बदले में जो मूर लोगों ने अपनी बढ़ती के समय में ईसाइयों को दिखलाई थी कैसी बड़ी कृतघ्नता है। इन दोषियों के साथ कोई वचन पूरा नहीं किया जाता था। ग्रानाडा निवासियों ने धार्मिक सौगन्द के भरोसे पर अपनी नागरिक और धार्मिक स्वतंत्रता त्याग दी थी। कार्डिनल ज़िमिनीज़ के बहकाने से यह प्रतिज्ञा तोड़ दी गई, और आठ शताब्दियों तक निवास करने के अनन्तर मुसल्मान लोग उस देश से निकाल दिये गये।

एंडल्यूसिया में तीन धर्मों के एक सामाजिक अस्तित्व से (अर्थात् ईसाई धर्म, मुसल्मानी धर्म, और मूसा धर्म) अवरोज़ के मत

को प्रकाश होने का सुअवसर मिल गया। यह बात मानो उस बात का पुनर्घटन था जो रोम देश में उस समय घटित हुई थी जब सब पराजित देशों के देवता राजधानी में इकट्ठा किये गये थे और उन पर से सब का विश्वास दूर होगया था। स्वयं अवरोज पर यह दोष लगाया गया था कि वह पहिले मुसल्मान था, फिर ईसाई हुआ, तदनन्तर यहूदी हुआ, और अन्त में काफिर हो गया। ऐसा कहा जाता था कि वह एक रहस्यपूर्ण पुस्तक का कर्त्ता था जिसका नाम "डी ट्राईबस इम्पास्टोरीबस" था।

मध्य समय (Middle ages) में दो प्रख्यात नास्तिक पुस्तकें थीं। एक का नाम "दी एवरलास्टिंग गास्पेल" और दूसरी का "डी ट्राई-बस इम्पास्टोरीबस" था। दूसरी पुस्तक का कर्त्ता कोई पोप जरवर्ट को मानते थे, कोई दूसरे फ्रेडरिक को और कोई अवरोज को। डामेनीकन लोग अपनी कठोर घृणा के कारण उस समय में प्रचलित ईश्वर निन्दा के कामों का सब दोष अवरोज़ पर लगाते थे। वे लोग उस प्रख्यात और अत्याचारी देवनिन्दा के खंडन करने में कभी न थकते थे जो ईसा के मृत्यु स्मारक भोज के विषयों में की गई थी। तेरहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में माईकेल स्काट के अनुवाद द्वारा ईसाई यूरोप को पहिले पहिल उसके ग्रंथों का पता लगा था, परन्तु उसके समय से बहुत पहिले ही, पश्चिमीय देशों का साहित्य एशिया के साहित्य के समान, ऐसे विचारों से परिपूर्ण था। हम देख चुके हैं कि एरीजीना ने कैसे विस्तार से उनको प्रकाशित किया था। अरब लोगों पर भी उन विचारों का प्रभाव उस समय से पड़ता था जब से उन्होंने पहिले पहिल तत्वज्ञान का प्रचार किया था। वे विचार तीनों मुसल्मानी राज्यों के सबही विद्यालयों में प्रचलित थे। लोग ऐसा नहीं मानते थे कि वे ऐसे विचार हैं जिनका ढंगही ऐसा होता है कि वे मानसिक उन्नति की एक विशेष अवस्था में सबही मनुष्यों के हृदय में स्वयं ही उदय होते हैं, वरन् ऐसा मानते थे कि उनका उत्पादक अरस्तू है। इसी हेतु वे विचार सदैव बड़े बड़े विद्वानों के सन्निकट आदर पाते रहे। हम रावर्ट ग्रास्टीट, रोजर बेकन, और

स्पिनोज़ा के ग्रंथों में भी वे विचार देखते हैं। अवरोज उनका उत्पादक नहीं था वरन् उसने केवल उन विचारों को साफ किया और स्पष्ट भाषा में वर्णन किया है। तेरहवीं शताब्दी के यहूदियों में से वह पूर्णतः अपने गुरु से बढ़ कर हुआ है। अरस्तू उनकी दृष्टि से छिप गया था, उसके ग्रंथों का बड़ा टीकाकार अवरोज़ ही उसके स्थान पर था। ईसाई संसार में उत्पत्ति सिद्धान्त को मानने वाले इतने अधिक बढ़ गये थे कि पोप चौथे अलेग्जेंडर को (सन् १२५५ ई०) इसमें हस्ताक्षेप करने की आवश्यकता पड़ी। उसी की आज्ञा से 'अल्बरटस मैगनस ने "बुद्धि की एकता" को खंडन करने वाला एक ग्रंथ बनाया। आत्मा के मूल कारण और प्रकृति को वर्णन करते हुये उसने इस सिद्धान्त को प्रमाणित करने का उद्योग किया है कि ऐसा मानना कि "एक प्रथक बुद्धि है जो अपनी किरणों द्वारा मनुष्य को प्रकाशित करती है और वह मनुष्य की उत्पत्ति से पहिले भी थी और उसके पश्चात भी बनी रहेगी, एक घृणास्पद भूल है"। परन्तु इस बड़े टीकाकार का अत्यन्त प्रसिद्ध विरोधी "सेंट टामस एक्यूनास" था जिसने बुद्धि की एकता, ईश्वर का अनस्तित्व और उत्पत्ति की असम्भावना सरीखे नास्तिकतामय विचारों का विनाश कर डाला। इस देवदूत विद्वान की विजयों को केवल डामीनिकन लोगों के वाद विवादों से ही प्रख्याति नहीं प्राप्त हुई, वरन् फ्लारेन्स और पीसा के चित्रकारों के चित्रों से भी ऐसा ही हुआ है। इस साधु को असीम क्रोध हुआ जब ईसाई लोग एक ऐसे नास्तिक के चेले हो गये जो एक मुसल्मान से भी अधिक बुरा था। डामीनीकन लोगों (जिस सम्प्रदाय का सेंट टामस भी था) का क्रोध इस बात से बहुत अधिक बढ़ गया कि उनके प्रतिद्वन्दी फ्रांसिस्कन लोग अवरोज के विचारों की ओर झुकने लगे। डैंटी जो डामीनीकन लोगों की ओर था अवरोज पर यह दोष लगाता था कि वह एक अत्यंत भयंकर सम्प्रदाय का उत्पादक था। तीनों बड़े बड़े धर्मों की अध्यात्मिक घृणा उस पर थी। वह उस अत्याचारी कहावत का उत्पादक गिना जाता था जो यों है कि "सब ही धर्म झूठे हैं,

यद्यपि सब ही सम्भवतः उपयोगी हैं" । वीनी की सभा में इस बात का उद्योग किया गया था कि उसके ग्रंथ पूर्ण रीति से दबा दिये जायें और ईसाइयें के मना कर दिया जाय कि वे उन्हें न पढ़ें । डामीनीकन लोग धर्म परीक्षक सभा के शस्त्रों से सुसज्जित हो कर ईसाई यूरोप के अपने निर्दय अत्याचारों का भय दिलाते थे । उस समय की सब नास्तिकता का दोष वे लोग इस अरब निवासी तत्वज्ञानी पर लगाते थे । परन्तु उसके भी पक्षपाती थे । पेरिस में और उत्तरीय इटेली के बड़े बड़े नगरें में फ्रानसिस्कन लोग उसके विचारों के मानते थे, और सब ईसाई संसारमें इन वादविवादों से हलचल मची थी ।

डामीनीकन लोगें की उत्तेजना के प्रभाव से इटेली के चित्रकारें के लिये अवरोज़ नास्तिकता का चिन्ह बन गया । इटेली के बहुत से नगरें में न्यायदिन के और नर्क के चित्र वा मंडोदक चित्र थे । इन चित्रों में अवरोज का चित्र बहुधा बनाया गया है । इस भांति पीसा नगर के एक चित्र में वह एरियस, मुहम्मद और ऐंटीक्राइस्ट के साथ दिखलाया गया है । एक दूसरे चित्र में यों दिखलाया गया है कि सेंट टामस ने उसे पछाड़ दिया है । डामीनीकन जाति वाले इस बड़े विद्वान की विजयें में अवरोज़ एक आवश्यक अंग हो गया था । इस भांति वह सोलहवीं शताब्दी तक इटली के चित्रकारें का परिचित व्यक्ति हो गया था । पैडुआ के महा विद्यालय में उसके सिद्धान्त सत्रहवीं शताब्दी तक माने जाते रहे ।

अवरोज़ के मत ने जिस भांति स्पेन से निकल कर यूरोप पर आक्रमण किया उसका संक्षेप इतिहास ऐसा ही है । दूसरे फ्रेडरिक के आश्रय में वह मत कुछ कम भव्य रूप से सिसिली से निकला । उस राजा ने उसे पूर्णरीति से स्वीकार कर लिया था । निज कृत "सिसे-लियन क्वेश्चन" नामक पुस्तक में उसने संसार की नित्यता और आत्मा के स्वभाव का ज्ञान प्राप्त करने की इच्छा प्रगट की है, और उसने मान लिया है कि वह ज्ञान उसे इब्न सबीन के उत्तरों में मिला जो इन्हीं सिद्धान्तों का समर्थक था । परन्तु पोप के साथ झगड़ा करने

में वह पराजित हुआ, और उसी के साथ ये नास्तिक विचार भी विनष्ट हो गये ।

परन्तु उत्तरीय इटेली में अवरोज का मत बहुत दिनों तक स्थायी रहा । वह वेनिस की उच्च समाजों में इतना अधिक प्रचलित था कि प्रत्येक सभ्य मनुष्य को विवश होकर उसी मत का अनुगामी होना पड़ता था । अन्तमें धर्म गुरुओं ने उसके विरुद्ध निश्चित रूप से कार्य करना आरंभ किया । सन् १५१२ में लैटिरन की सभा ने इन घृणित सिद्धान्तों की ओर उत्तेजकों को नास्तिक और धर्म रहित जन माने जाने का मन्तव्य प्रकाश किया । जैसा कि हम देख चुके हैं, हाल वालों वैटिका की सभा ने उनको धर्मच्युत किया था । इतना कलंक होने पर भी यह बात स्मरण रखने योग्य है कि मनुष्य जाति का बड़ा भारी भाग इन सम्मतियों को सत्य मानता है ।

——:o:——

छठवां अध्याय ।

इस विषय का झगड़ा कि जगत की आकृति कैसी है ।

(जगत के विषय में शास्त्रोक्त सम्मति । पृथ्वी एक चौरस धरातल है । स्वर्ग और नर्क का स्थान ।

वैज्ञानिक सम्मति–पृथ्वी गोल है, इसका डीलडौल निश्चित किया गया, सूर्य्य सम्प्रदाय में उसका स्थान और सम्बन्ध–तीन बड़ी समुद्र यात्राएं–अर्थात् कोलम्बस, डीगामा और मजेल्लां की– पृथ्वी के चारों ओर जहाजों का परिक्रमा–एक अंश को नाप कर पृथ्वी की गोलाई का अनुमान करना और लंगर से भी पृथ्वी की गोलाई का अनुमान करना ।

कोपरनिकस की खोजें–दूरबीन का अन्वेषण गेलीलियो धर्म परीक्षक सभा के सामने लाया गया-उसका दंडित होना-धर्म गुरुओं पर विजय ।

सूर्य सम्प्रदाय के विस्तार को निश्चित करने के उद्योग । शुक्र क्रान्ति द्वारा सूर्य का स्थान भेद निश्चित करना । पृथ्वी और मनुष्य की लघुता ।

विश्व विस्तार विषयक विचार—ग्रहों का स्थान भेद—'ब्रनो' का प्रमाणित करना कि बहुत से जगत हैं—धर्म रक्षक सभा ने उसे क़ैद किया और मरवा डाला।)

अब मुझे वे वादविवाद दिखलाना है जो तीसरे बड़े दार्शनिक सिद्धान्त (अर्थात् जगत की प्रकृति) के विषय में हुये।

प्रकृति के रूप का साधारण दर्शन हमें यह निश्चय दिलाता है कि पृथ्वी एक विस्तृत चौरस तल है जिसके ऊपर अन्तरिक्ष का गुम्बज़ ठहरा हुआ है, और यह ठोस गगन गुम्बज़ के नीचे के जलों को ऊपर के जलों से अलग करता है, और यह भी निश्चय दिलाता है कि आकाशस्थित ग्रहगण (सूर्य, चन्द्र और अन्य ग्रह) पूर्व से पश्चिम को चलते हैं, और उनके छोटे छोटे शरीर और उनका अचल पृथ्वी के चारों ओर घूमना यह प्रदर्शित करता है कि वे पृथ्वी से छोटे हैं। मनुष्य के चारों ओर जितने शरीर धारी हैं उनमें से कोई भी मनुष्य की समता नहीं कर सकता। इसलिये जान पड़ता है कि मनुष्य को यह प्रतिफल निकालने का अधिकार है कि प्रत्येक वस्तु उसी के काम के लिये बनाई गई है, अर्थात् सूर्य इस हेतु बनाया गया है कि वह मनुष्य को दिन में प्रकाश दे, और चंद्रमा और अन्य ग्रह रात में प्रकाश दें।

तारतम्यात्मक ईश्वर विद्या यह प्रगट करती है कि प्राचीन समय के बुद्धिमान लोगों ने सर्वसम्मति से प्रकृति का ऐसाही रूप मान लिया था। सभ्यता के आरम्भ में जगत के सब भागों में सब जातियों का यही विश्वास होता है। अर्थात् पृथ्वी को विश्व भर का केन्द्र मानना, और मनुष्य को पृथ्वी भर की वस्तुओं का केन्द्र मानना। जगत को साधारण दृष्टि से देखने से अकस्मात केवल यह विचार पैदा ही नहीं होता, वरन यही विचार उन भिन्न भिन्न धार्मिक श्रुतियों का दार्शनिक मूलाधार हो जाता है, जो समय समय पर कृपा करके मनुष्य को मिली हैं परन्तु ये श्रुतियां मनुष्य को बतलाती हैं कि

आकाश के इस विमल गुम्बज के ऊपर एक लोक है जहां सदैव प्रकाश और शान्ति रहती है, अर्थात् बैकुण्ठ, ईश्वर और देवदूतों का घर, और कदाचित मरणोत्तर स्वयं मनुष्य का भी घर। और पृथ्वी के नीचे एक ऐसा लोक है जहां सदैव अंधेरा और विपत्ति रहती है अर्थात् बुरे लोगों के रहने का स्थान है। इस भांति इस दृष्टिगत जगत में अदृष्ट संसार का एक चित्र दिखलाई पड़ता है।

जगत की बनावट की इसी सम्मति की नींव पर बड़े बड़े धार्मिक सम्प्रदायों की स्थिति है और इसी कारण उसके प्रतिपादन में शक्तिवान पदार्थिक स्वार्थों का उपयोग किया गया है। इन सम्प्रदायों ने कभी कभी रक्तपात करके भी उन उद्योगों को रोका है जो उसकी अखण्डनीय भूलों को दुरस्त करने के लिये किये गये थे। इस रोक टोक का कारण वह सन्देह था कि ऐसा न हो कि स्वर्ग और नर्क की निश्चित स्थिति और संसार में मनुष्य की सर्वोत्कृष्टता में अन्तर पड़ जाय।

इन उद्योगों का होना अटल बात थी। ज्योंही मनुष्यों ने इस विषय पर विचार करना आरम्भ किया, त्योंहीं उन्हों ने इस कथन को कि "पृथ्वी एक असीम धरातल है" असत्य ठहराया। इस में किसी को सन्देह नहीं हो सकता कि जो सूर्य हम आज देख रहे हैं वह वही सूर्य है जिसे गत दिवस देखा था। उसका प्रत्येक प्रातः काल को फिर फिर से प्रगट होना निश्चय ही यह बात बतलाता है कि वह पृथ्वी के नीचे की ओर चला गया था। परन्तु यह बात उस ओर वाले अंधेरे के अनुकूल नहीं हो सकती। यह घटना कुछ कुछ स्पष्ट रीति से यह विचार प्रगट करती है कि पृथ्वी का आकार गोल है।

पृथ्वी नीचे की ओर असीम विस्तार तक फैली हुई नहीं हो सकती। क्योंकि सूर्य उसके मध्य में होकर नहीं जा सकता और न उसके किसी दरार वा मार्ग हो कर जा सकता है, क्योंकि उसका उदय और अस्त वर्ष के भिन्न भिन्न ऋतुओं में भिन्न भिन्न स्थानों में होता है। अन्य ग्रहगण भी पृथ्वी के नीचे होकर अगणित मारगों से चलते हैं। इसलिये पृथ्वी के नीचे अवश्यही एक खुला मार्ग होना चाहिये।

शास्त्रोक्त विवरण को इन नवीन घटनाओं से मिलाने के लिये, ऐसी युक्तियां जैसी कि 'कास्मसइंडिको प्लियसटीज़' ने निज कृत "ईसाई स्थान वर्णन" में लिखी हैं बहुधा निःसन्देह मान ली जाती थीं। इस बात की ओर हम विशेष कर इस से पहिले किसी स्थान में इशारा कर आये हैं। उसमें यह कहा गया है कि इस चौरस पृथ्वी के उत्तरीय भागों में एक बहुत बड़ा पहाड़ है जिसके पीछे हो कर सूर्य को जाना पड़ता है और इस प्रकार रात्रि होती है।

बहुत प्राचीन एतिहासिक काल में ग्रहणों की कला ज्ञात हो चुकी थी। चन्द्र ग्रहणों से प्रमाणित होता था कि पृथ्वी की छाया सदैव गोलाकार होती है। इस हेतु पृथ्वी का रूप अवश्य गोल होना चाहिये। जो वस्तु सबही स्थितियों में एक गोल छाया डालती है वह स्वयं अवश्य गोल होना चाहिये। अन्य विचार भी जिनको अब प्रत्येक मनुष्य जानता है यही प्रमाणित करते थे कि पृथ्वी का आकार गोलही है।

परन्तु पृथ्वी का रूप निश्चित हो जाने से भी किसी प्रकार वह अपने उच्च स्थान से नहीं गिरी। प्रत्यक्ष देखने में और वस्तुओं से बहुत अधिक बड़ी होने के कारण यही उचित था कि वह केवल संसार का केन्द्र ही न मानी जाय वरन वास्तव में स्वयं संसार ही मानी जाय। अन्य सब वस्तुएं मिलकर भी पृथ्वी की समता में अत्यन्त तुच्छ जान पड़ती थीं।

यद्यपि जो प्रतिफल पृथ्वी को गोलाकार मानने से निकलते थे वे वर्तमान ईश्वर सम्बन्धी विचारों पर बहुत गम्भीर प्रभाव डालते थे, तथापि वे इतने महत्व के न थे जितने कि वे विचार थे जो पृथ्वी के डील डौल निश्चित करने पर निर्भर थे। इस बात के जांचने में केवल प्रारम्भिक रेखा गणित विद्या की आवश्यकता है कि पृथ्वी के डील डौल निश्चित करने के शुद्ध शुद्ध विचार पृथ्वी तल का एक अंश नाप कर ही प्राप्त किये जा सकते हैं। सम्भवतः बहुत प्राचीन काल में इस कार्य को पूरा करने के उद्योग किये गये थे जिसके प्रतिफल खो गये हैं। परन्तु 'इरैटास्थिनीज' ने मिसिर में सैनी और सिक-

न्दरिया के बीच में एक अंश नापने का उद्योग किया क्योंकि 'सैनी' ठीक कर्क रेखा के नीचे माना जाता था। परन्तु दोनों स्थान एक ही याम्योत्तर रेखा में नहीं हैं, और उन स्थानों के बीच की दूरी नापी न गई थी वरन अनुमान करली गई थी। दो शताब्दी के बाद पोसी-डोनियस ने सिकन्दरिया और रोड्स के बीच में नाप करने का दूसरा उद्योग किया। अगस्त नामक चमकीला सितारा रोड्स नामक स्थान से देखने से ठीक क्षितिज को छूता हुआ देख पड़ता था, और सिक-न्दरिया से साढ़े सात अंश ऊंचा दिखाई पड़ता था। इस अवस्था में भी सामने समुद्र पड़ने के कारण फासिला नापा नहीं गया था वरन अनुमानही किया गया था। आखिरकार जैसा कि अभी हमने वर्णन किया है, खलीफा अलमामूं ने दो प्रकार से नाप कराई; एक लाल सगर के किनारे और दूसरी मेसोपोटेमिया में कूफा नगर के निकट। इन विविध भांति के निरीक्षणों से यह प्रतिफल हुआ कि पृथ्वी का व्यास सात और आठ हज़ार मील के बीच में निकाला गया।

पृथ्वी के डील डौल के इस अनुमानिक निश्चय ने उसको उसके उच्चस्थान से गिरा दिया और ईश्वर विद्या सम्बन्धी बड़े गम्भीर फल पैदा कर दिये। सैमास निवासी इरिस्टारकस (सिकन्दरिया का एक विद्वान जो सन ईसवी से २८० वर्ष पहिले हो गया है) के पुराने खोजों ने इस बात में बड़ी सहायता पहुँचाई। उसने जो ग्रन्थ सूर्य और चन्द्रमा के डीलडौल और दूरियों पर लिखा है उसमें वह उस चतुर, यद्यपि अपूर्ण, ढंग को वर्णन करता है जो उसने इस सिद्धान्त के साधन करने के लिये स्वीकार किया था। इस समय से बहुत पहिले फीसागोरस हिन्दुस्तान से एक विचार यूरोप में लाया था। उस विचार के अनुसार इस सम्प्रदाय का केन्द्र सूर्य्य प्रगट किया गया था। और उसके चारों ओर ग्रहगण गोल मारगों में घूमते हुये माने गये थे, और उनके स्थिति का क्रम यों था कि पहिले बुध, तदनन्तर शुक्र, तदनन्तर, पृथ्वी, मंगल, बृहस्पति, और शनि। इनमें से प्रत्येक ग्रह सूर्य के इर्द गिर्द घूमते हुये स्वयं अपनी धुरी पर भी घूमते हुये माना गया था। सिसरो का कथन है निसटास ने यह बात सुझाई थी कि

यदि पृथ्वी भी अपनी धुरी पर घूमती हुई मानली जाय, तो वह कठिनता जो आकाश को बड़ी तेजी से घूमता हुआ मानने में पड़ती है न पड़ेगी।

ऐसा विश्वास करने का कारण है कि अरिस्टारकस के ग्रंथ जो सिकन्दरिया के पुस्तकालय में थे उस समय जल गये थे जब सीज़र ने आग लगाई थी। उसका केवल एक मात्र ग्रंथ जो अब तक पाया जाता है वही उपरोक्त ग्रंथ है जिसमें सूर्य और चन्द्रमा के डील डौल और दूरी का वर्णन है।

अरिस्टारकस ने फीसागोरिस की विचार शैली को सत्य घटना प्रद मान कर अंगीकार कर लिया था। यह बात सूर्य की बहुत अधिक दूरी और उसके बहुत बड़े डील डौल वाला मान लेने का फल था। सूर्य को सम्प्रदाय का केन्द्र मानने वाली इस शैली ने पृथ्वी को बहुत नीचे स्थान तक उतार दिया, अर्थात् छः इर्द गिर्द घूमने वाले ग्रहों में से एक मानी गई।

परन्तु अरिस्टारकस ने ज्योतिष विद्या पर केवल यही एक ग्रंथ नहीं लिखा, क्योंकि यह विचार कर कि पृथ्वी की चाल से अन्य ग्रहों की स्थिति में प्रत्यक्ष कोई प्रभाव नहीं पड़ता उसने यह अनुमान निकाला था कि वे ग्रह सूर्य से जितनी दूरी पर हैं उससे अधिक दूरी पर हम से हैं। इसलिये "लैपलेस" के कथनानुसार, सब प्राचीन विद्वानों में से संसार की बड़ाई के विषय में इस के विचार सब से अधिक शुद्ध थे। उसने जान लिया था कि पृथ्वी नक्षत्रान्तरों के मिलान के विचार से बहुत ही छोटी है। उसने यह भी जान लिया था कि ऊपर की ओर सिवाय अन्तरिक्ष और सितारों के और कुछ भी नहीं है।

परन्तु अरिस्टारकस के विचार जो ग्रहों के स्थानों के विषय में थे वे प्राचीन समय के लोगो ने स्वीकार न किये थे। टालेमी की सुझाई हुई शैली को जिसका वर्णन उसके सिंटैक्सिस नामक ग्रंथ में है सर्वजन अधिक पसंद करते थे। उस समय का पदार्थिक विज्ञान बहुत ही अपूर्ण था। फीसागोरिस की विचार शैली के विषय में टालेमी

ने यह तर्क की थी कि यदि पृथ्वी चलती होती तो वह वायु और अन्य हलके पदार्थों को पीछे छोड़ती जाती। इस भांति उसने पृथ्वी को केन्द्रस्थल में रखा था और पृथ्वी के इर्दगिर्द चन्द्रमा, बुध, शुक्र, सूर्य, मंगल, बृहस्पति और शनि को क्रमशः घूमती हुआ ठहराया था। और शनि की कक्षा के आगे नक्षत्र जटित आकाश का स्थान माना गया था। इन ठोस और साफ गोलों के विषय में जिनमें से कोई पूर्व से पश्चिम को जाता है, कोई उत्तर से दक्षिन को जाता है यह सब यूडाक्सस की कल्पना थी जिसके विषय में टालेमी ने कुछ नहीं कहा।

इसलिये टालेमी की प्रथा अवश्य ही भूकेन्द्रिक प्रथा थी। इस प्रथा ने पृथ्वी को अपने उच्चस्थान ही में रहने दिया और इस कारण ईसाईयों या मुसल्मानों की धार्मिक सम्मतियों को असन्तुष्ट होने का कारण नहीं हुई। ग्रंथ कर्ता की बड़ी प्रख्याति ने और आकाश की वनावट पर ग्रंथ खिलने की बड़ी भारी योग्यता ने उस ग्रंथ को १४०० वर्ष तक प्रचलित रक्खा अर्थात् दूसरी शताब्दी से सोलहवीं शताब्दी तक।

ईसाई संसार में इस भारी समय का अधिक भाग ईश्वर तत्त्व विषयक वादविवादों और धार्मिकगुरु शक्ति के झगड़ों में ही व्यतीत हो गया। पादरियों के अधिकार और यह विश्वास कि धार्मिक ग्रंथों ही में सब ज्ञान भरा हुआ है किसी प्रकार के प्राकृतिक खोज नहीं होने देतेथे। यदि संयोग से किसी ज्योतिष विषयक सिद्धान्त में कोई कुछ स्वार्थ भी लेता, तो वह प्रश्न तुरन्त ही आगस्टाइन वा लैक्टेंटियस के ग्रन्थों को देख कर उनके सिद्धान्तानुसार निपटा दिया जाता, न कि आकाशीय घटनाओं की जांच करके। सांसारिक विद्या की अपेक्षा धार्मिक विद्या इतनी अधिक पसन्द की जाती थी कि १५०० वर्ष के अस्तित्व में ईसाई धर्म ने एक भी ज्योतिषी पैदा नहीं किया।

मुसल्मानी जातियों ने बहुत कुछ किया। उनका विज्ञान प्रचार सन् ६३८ ई० में सिकन्दरिया लेलेने के समय से प्रारम्भ होता है। यह

बात मुहम्मद की मृत्यु के केवल छः वर्ष बाद हुई थी। दो शताब्दियों से कम ही समय में वे केवल यूनानी वैज्ञानिक लेखकों से परिचित ही नहीं हुये थे, वरन् ठीक ठीक उनकी कद्रदानी भी करने लगे थे। जैसा कि हम प्रगट कर चुके हैं खलीफा अलमामूं ने तीसरे माइकेल से संधि करके टालेमी कृत सिंटैक्सिस नामक पुस्तक की एक प्रति प्राप्त की थी। तदनन्तर उसका अरबी भाषा में अनुवाद कराया था। वह पुस्तक तुरन्त मुसलमानों की ज्योतिष के लिये एक भारी प्रमाण स्वरूप हो गई। इस जड़ से मुसलमान लोग कतिपय अत्यंत आवश्यक वैज्ञानिक सिद्धान्तों के साधन तक उन्नति कर गये। उन्हों ने पृथ्वी का विस्तार निश्चत कर लिया था, आकाश के दृष्टिगत सब सितारों की सूची बना ली थी जिसमें से बड़े सितारों के उन्होंने वे नाम रखाये थे कि वे अब तक उन्हीं नामों से हमारे मान चित्रों और भूगोलों में पाये जाते हैं। उन्होंने वर्ष की पूर्ण लम्बाई निश्चित करली थी, ज्योतिष सम्बंधी ग्रहों की प्रकाश किरणों का झुकाव खोज लिया था, लंगर दार घड़ी निकाली थी, सितारों की ज्योतिमापक विद्या का सुधार किया था, क्षितिजस्थित सूर्य और चन्द्रमा की प्राकृतिक घटनाओं की व्याख्या की थी कि उनको हम उदय से पहिले और अस्त से कुछ काल बाद तक क्यों देखा करते हैं। वायु मंडल की उँचाई नाप कर ५८ मील तक निश्चित की थी, सन्ध्या-राग का सच्चा सिद्धान्त प्रकाशित कर दिया था। यूरोप में उन्होंने पहिली वेधशाला बनाई थी और अपने निरीक्षणों में वे ऐसे ठीक थे कि वर्त्तमान समय के अति योग्य गणित विद्या विशारद लोगों ने भी उनके निकाले हुये फलों से काम लिया है। इस प्रकार लैपलेस निज कृत "सिस्टीम डु-मांडी" नामक पुस्तक में अलबैटेगनी के निरीक्षणों के विषय में कहता है कि वे भूकक्षा की उत्केन्द्रता के घटने का अकाट्य प्रमाण देते हैं। वह 'इब्न जुनीस' के निरीक्षणों को क्रांति वृत्त की टेढ़ाई के विवरण में काम में लाया है, और वृहस्पति और शनिश्चर की बड़ी असमताओं के सिद्धान्तों के साधन में भी काम में लाया है।

ये सब बातें उन सेवाओं का केवल एक अल्प भाग प्रगट करती हैं जो अरबी ज्योतिषियों ने जगत की प्रकृत्ति के सिद्धान्त के साधन के हेतु की थीं। इसी समय में ईसाई संसार की ऐसी अज्ञान मय दशा थी, ऐसा खेद जनक अज्ञान था कि उसने इस विषय की कुछ परवाह ही न की। उस ईसाई संसार का ध्यान केवल मूर्ति पूजन और क्राइस्ट-मृत्यु-स्मरणार्थक-भोज, साधु महात्मों की योग्यता, धार्मिक चमत्कार और तीर्थस्थानों की रोगनिवारण प्रथा में ही निमग्न रहा।

यह उदासीनता पन्द्रहवीं शताब्दी के अन्त तक ज्यों की त्यों बनी रही। और उस समय भी कोई वैज्ञानिक उत्तेजना न थी। उत्तेजक विचार दूसरी ही भांति के थे जो व्योपारिक स्पर्धा से उत्पन्न हुये थे, और पृथ्वी के डीलडौल का प्रश्न अन्त में तीन जहाजियों अर्थात कोलम्बस, डीगामा और सर्वोपरि फरडीनेंड मजिल्लां द्वारा निपटाया गया।

पूर्वीय एशिया का व्योपार सदैव उन पश्चिमीय जातियों के लिये अनन्त धन प्राप्ति का द्वारा रहा है जो क्रमश: उसे करती रही हैं। मध्य काल में उसका केन्द्रस्थल उत्तरीय इटेली में था। वह व्यापार दे भागों से होता था, एक उत्तरीय अर्थात श्यामसागर और केस्पीयन सागर के रास्ते, और उसके आगे ऊंटों के टांड़ों द्वारा, जिसका सदर मुकाम जिनोवा था; और दूसरा दक्षिणीय अर्थात् सीरिया और मिसिर देश के पोतस्थलों और अरब सागर द्वारा जिसका सदर मुकाम वेनिस था उन व्यापारी लोगों ने जो दूसरे मार्ग से व्यापार करने में लगे थे धर्म युद्धों का सामान लाने लेजाने से भी बहुत बड़ा लाभ उठाया था।

वेनिस निवासियों ने सीरिया और मिसिर के मुसलमानी राज्यों से प्रेम नेम बनाये रखा था। उनको सिकन्दरिया और दमिश्क में अपने अपने व्यापार-दूत-कार्य्यालय रखने की आज्ञा थी और बहुत से सैनिक विप्लव होने पर भी, जो कि उन देशों में बहुत से हुये थे, उनका व्यापार अब तक भी अन्य स्थानों की अपेक्षा अच्छी दशा में चला जाता था। परन्तु उत्तरीय मार्ग अथवा जिनोवा वाला मार्ग तातारियों

और तुरकों के आक्रमणों के कारण और उन सैनिक और राज्य नैतिक गड़बड़ियों के कारण जो उस देश में हुई थीं बिलकुल टूट गया था। जिनोवा का पूर्वीय व्यापार केवल सन्दिग्ध दशा ही में न था, वरन् वह विनाश के तट तक पहुँच गया था।

दृष्टिगत क्षितिज का गोला होना और उसका समुद्र में निमग्न होना और जहाजों का दूरवर्ती समुद्रस्थान पर क्रमशः दिखाई देना और क्रमशः छिप जाना ये सब बातें ऐसी न थीं कि समझदार जहाजियों को पृथ्वी के गोल आकार के विश्वास की ओर न झुका देतीं। मुसल्मान ज्योतिषियों और तत्व ज्ञानियों के ग्रन्थों ने पृथ्वी के गोलाकार सिद्धान्त को पश्चिमीय यूरोप भर में प्रचारित कर दिया था, परन्तु आशानुसार परमार्थवादियों ने उसे नहीं माना था। जब इस भांति जिनोवा विनाश का तटवर्ती हो रहा था, उसके कतिपय जहाजियों को यह सूझी कि यदि यह विचार सत्य निकले तो उस देशकी दशा फिर सुधर सकती है। क्योंकि एक जहाज़ जिबराल्टर की जलडमरूमध्य से पश्चिम की ओर चलता हुआ अटलांटिक समुद्र को पार करके ईस्ट इंडीज़ तक पहुँचने में विफल मनोरथ नहीं हो सकता। और इसके अतिरिक्त और भी बहुत से प्रगट लाभ हैं। जहाज़ों में लदा हुआ बहुत सा सामान बिना परिश्रम और अधिक खर्च के एक स्थान से दूसरे स्थान तक ले जाया जा सकता है और बार बार उतारने लादने का काम भी बच सकता है।

जिनोवा निवासी उन जहाजियों में से जो ऐसे विचार रखते थे क्रिस्टोफर कोलम्बस भी एक था। वह कहता है कि अवरोज़ के ग्रंथ पढ़कर उसका ध्यान इस ओर आकर्षित हुआ था, परन्तु उसके मित्रों में फ्लारेंस निवासी टास्केनली एक मित्र था, जिसने अपना ध्यान ज्योतिष विद्या में लगाया था और इस बात को दृढ़ता से मानता था कि पृथ्वी का आकार गोल है। परन्तु स्वयं जिनोवा में कोलम्बस को कुछ उत्साह न मिला। तदनन्तर उसने कई साल इस उद्योग में खो दिये कि भिन्न भिन्न राजाओं को निज कथित उद्योग की ओर ध्यान दिलावे। परन्तु कोलम्बस के उद्योग की विधर्मी

प्रकृति के स्पेन के पादरियों ने प्रगट किया और सलैमेनिका की सभा ने उसकी निन्दा की। उसकी शास्त्र विहितता तौरेत, भजनों, भविष्यवाणियों, इन्जीलों, ईसा के पत्रों, और पादरियों लिखित अनेक ग्रंथों से अर्थात् सेंटक्रिसास्टम, सेंटअगस्टाइन, सेंटजिरोमी, सेंटग्रेगरी, सेंटबेसिल और सेंटएम्ब्रोज़ के ग्रंथों से खण्डन की गई।

परन्तु अन्त में स्पेन की रानी इज्जाबिला ने उसे उत्साह दिलाया और पैलास निवासी पिन्ज़न नामक समुद्रीय यात्रा करने वाले धनी वंश ने धन से सहायता दी और उस वंश के कुछ लोग उसके साथ भी हो गये और वह ३ अगस्त सन् १४९२ ई० को तीन छोटे जहाजों सहित फरडीनेंड राजा का पत्र तातार के बड़े खान के नाम, तथा एक समुद्रीय नक़शा जो टास्कैनेली के सिद्धान्तानुसार बनाया गया था, लेकर पैलास से चल पड़ा। ११ अकतूबर सन् १४९२ ई० की आधीरात से कुछ पहिले उसने अपने जहाज़ के अगले भाग से बहुत दूरी पर एक चलता फिरता प्रकाश देखा। दो घंटे के अनन्तर उसी के दूसरे जहाज़ से एक सांकेतिक तोप ने दग कर सूचना दी कि कोई देश दिखाई पड़ा। बस सवेरे कोलम्बस नवीन दुनिया (अमेरिका) में जा उतरा।

उसके यूरोप लौट आने पर यह बात सर्व मान्य हो गई कि वह एशिया के पूर्वीय भागों तक पहुँच गया, और इस हेतु उसकी समुद्रीय यात्रा सिद्धान्तानुसार सफल हो चुकी। कोलम्बस ने भी इसी विश्वास में प्राण त्यागे। परन्तु और बहुत सी समुद्र यात्राओं ने जो शीघ्र ही की गईं, अमेरिका के समुद्रतट का साधारण नकशा प्रगट कर दिया और बलबोआ ने बड़े दक्षिणीय समुद्र को खोज कर इस विषय की सच्ची बातें खोल दीं, और वह भ्रम भी खोल दिया जिसमें टास्कैनेली और कोलम्बस दोनों पड़े हुये थे। अर्थात् पश्चिम ओर की समुद्र यात्रा में यूरोप से एशिया की दूरी उससे अधिक नहीं हो सकती जितनी कि इटैली से गिनी की खाड़ी तक की है, जो समुद्र यात्रा कोलम्बस कई बार कर चुका था।

अपनी पहिली समुद्र यात्रा में १३ सितम्बर सन् १४९२ ई० की संध्या को, जब अजोर्स द्वीप समूह के कारबो नामक द्वीप से अढ़ाई अंश पूर्व की ओर था, तब कोलम्बस ने देखा कि जहाज़ के कुतुबनुमा की सूइयां ठीक उत्तर से केवल थोड़ा ही पूर्व न झुक कर पश्चिम की ओर झुकती जाती हैं। और ज्यों ज्यों जहाज़ बढ़ते गये, त्यों त्यों यह झुकाव अधिक अधिक प्रगट होता गया। उसने पहिले पहिल केवल इस विकार ही को नहीं देखा वरन् निश्चय वही पहिला मनुष्य था जिसने पहिले पहिल, अपरिवर्तनीय रेखा को ढूंढ निकाला। लौटते समय इसके विरुद्ध बात देखने में आई, अर्थात् सूइयों का पश्चिमीय झुकाव उपरोक्त याम्योत्तर रेखा तक पहुंचने के समय तक कम ही होता गया, और उस रेखा पर पहुंच कर सूइयों ने फिर ठीक उत्तर दिशा प्रदर्शित की, और तदनन्तर ज्यों ज्यों यूरोप की ओर बढ़ने लगे त्यों २ सूइयां पूर्व की ओर झुकने लगीं। इसलिये कोलम्बस ने यह फल निकाला कि वह अपरिवर्तनीय रेखा पूर्वीय और पश्चिमीय गोलार्द्धों के बीच की स्थिर भौगोलिक रेखा वा सीमा है। सन् १४९३ ई० के मई मास के धर्म आज्ञापत्र में पोप चौथे एलेग्ज़ेंडर ने स्पेन और पुर्तगाल के राज्यों का झगड़ा निपटाते समय इसी रेखा को उन राज्यों के बीच की सीमा मानी थी। परन्तु उसके अनन्तर यह ज्ञात हुआ कि वह रेखा पूर्व की ओर हटती जाती है। सन् १६६२ ई० में वह रेखा लन्दन की याम्योत्तर रेखा से मिल गई।

पोप के इस आज्ञा पत्र के अनुसार पुर्तगाल वालों का राज्य उस अपरिवर्तनीय रेखा के पूर्व ओर निश्चित हुआ। उस देश के राजा को कतिपय मिसिर निवासी यहूदियों से यह सूचना मिली कि आफ्रिका महाद्वीप के चारों ओर घूम आना सम्भव है, क्योंकि आफ्रिका के दक्षिणीय अन्तिम भाग पर एक अन्तरीप है जिसके चारो ओर सरलता से घूम सकते हैं। वास्कोडिगामा के निरीक्षण में तीन जहाजों का एक बेड़ा ९ जुलाई सन् १४९७ ई० को रवाना हुआ और २० नवम्बर को उस अन्तरीप को लांघ कर दूसरी ओर मुड़ा और १९ मई सन् १४९८ ई० को हिन्दुस्तान के किनारे पर कालीकट में पहुँच गया।

पोप के आज्ञा पत्र के अनुसार इस पूर्वीय समुद्र यात्रा ने पुर्तगाल वालों को हिन्दुस्तान के साथ व्योपार करने का अधिकार प्रदान किया।

जब तक अन्तरीप नहीं लांघी गई थी तब तक डीगामा के जहाज़ो की चाल साधारणतः दक्षिण ओर को थी। तदनन्तर बहुत शीघ्र ही यह बात देखी गई कि क्षितिज के ऊपर ध्रुवीय किनारे की उँचाई कम होती जाती है और भूमध्य रेखा पार करने के बाद शीघ्रही वह सितारा न देख पड़ने लगा। इसी बीच में अन्य सितारे जिन में से कई एक बड़े बड़े नक्षत्र समूह थे, देख पड़ने लगे थे अर्थात् वे दक्षिणीय गोलार्द्ध के सितारे थे। यह सब बातें उन सिद्धान्तक विचारों से मिलती थीं जिनके अनुसार यह बात मानी गई थी कि पृथ्वी का आकार गोल है।

इसके अनन्तर तुरन्तही जो राजनैतिक प्रतिफल हुये उन्होंने पोप के शासन को बड़ी हैरानी में डाल दिया। पोप शासन की मौखिक कथायें और नीति इस बात को मना करती थी कि पृथ्वी का आकार सिवाय एक चौरस आकार के जैसा कि धर्म ग्रन्थों में लिखा हुआ है अन्य प्रकार का न माना जाय। परन्तु सच्ची घटनाओं का छिपाना असम्भव था और वाक्य छल व्यर्थ था। व्योपारिक सुदशा ने इस समय वेनिस और जिनेवा को छोड़ दिया था। यूरोप का रुख बदल गया था। भूमध्य सागर के तटस्थ देशों से समुद्रीय शक्ति विदा हो गई थी और अटलांटिक सागर के तटस्थ देशों में चली गई थी।

परन्तु स्पेन राज्य अपने प्रतिद्वन्दी को इस भांति व्यौपारिक लाभ होते देख बिना उद्योग किये न रह सका। उसने फरडीनेंड मजिल्लां की उन बातों को ध्यान से सुना कि यदि केवल कोई जल-डमरू-मध्य वा मार्ग उस भूखण्ड के बीच में हो कर निकल आवे जिसको इस समय अमेरिकन महाद्वीप मान लिया गया है, तो हिन्दुस्तान और स्पाइस द्वीपों तक पश्चिम की ओर जहाज लेजाकर पहुँच सकते हैं। और यदि ऐसा हो जाय तो पोप के आज्ञापत्र के अनुसार स्पेन को भी हिन्दुस्तान के साथ व्योपार करने का वैसाही

अधिकार मिल जाय जैसा कि पुर्तगाल वालों को मिला है। मजिल्लां के अधिकार में पांच जहाजों का एक बेड़ा जिसमें २७५ मनुष्य थे १० अगस्त सन १५१९ ई० को सिवाइल नगर से रवाना हुआ।

मजिल्लां, इस आशा से कि कोई न कोई रास्ता महाद्वीप के बीच होकर जाने का मिलही जायगा जिसमें होकर बड़े दक्षिणीय सागर तक पहुँच सकूंगा, तुरन्त बड़े उत्साह के साथ दक्षिणीय अमेरिका के समुद्र तट की ओर चल पड़ा। ७० दिनों तक वह भूमध्य रेखा पर निश्चल रहा। उसके मल्लाह भय भीत हो गये कि शायद वे ऐसे स्थान में आगये हैं जहां हवा कभी चलती ही न थी, और शायद अब वहां से उनका निकलना असम्भव हो। परन्तु यह निश्चलता, तूफान, जिहाजियों का विद्रोह और परित्याग मजिल्लां को अपने निश्चित विचार से न फेर सके। एक वर्ष से अधिक दिनों के बाद उसने वह जल-डमरू-मध्य खोज निकाली, जो अब तक उसके नाम से प्रख्यात है, और जैसा कि पिगोफिटी नामक एक इटेली निवासी ने जो उसके साथही था, बयान किया है, उसने स उसमय आनन्दाश्रु बरसाये थे जब उसने जान उलया था उक ईश्वर ने कृपा करके उसको उस स्थान तक पहुँचा दिया है जहां उसे दक्षिणीय समुद्र अर्थात बड़े और प्रशान्त सागर में अज्ञात विपत्तियों के साथ हाथापाई करना पड़ेगी।

भूख के मारे लोग चमड़े के उन तस्मों को खाने लगे जो जहाज की रस्सियों में जहां तहां बंधे थे, और प्यास के मारे सड़ा पानी पीने लगे। इस भांति भूख और खाज से उसके जहाजी मरने लगे परन्तु मजिल्लां पृथ्वी के गोलाकार होने पर पूर्ण विश्वास किये हुये धीर्य के साथ उत्तर पश्चिम के कोन को जहाज़ खेता ही गया, और लगभग चार महीने तक उसने मनुष्यों से बसा हुआ कोई देश नहीं देखा। उसने अनुमान किया था कि उसने प्रशान्त महासागर पर १२००० मील से कम का सफर नहीं किया। वह भूमध्य रेखा को पार कर गया और एक बार फिर ध्रुवीय सितारा देखा और अंत में लेड्रोन्स नामक देश में जा पहुँचा। इस देश में वह सुमात्रा के साहसी

व्यवसाइयों से मिला। इन्हीं द्वीपों में या तो जंगली मनुष्यों से या स्वयं अपने ही मनुष्यों से वह मार डालागया। तब उसके सहायक लेफटनेन्ट सिवैस्टियन डी इलकेनो ने जहाज़ का प्रवन्ध अपने हाथ में लिया और उस जहाज़ को उत्तमाशा अन्तरीप की ओर चलाया और बड़ी भयानक कठिनाइयां झेलीं। अन्त में उसने उस अन्तरीय को पार किया और तदनन्तर चौथी बार भूमध्य रेखा का उल्लंघन किया। सातवीं सितम्बर सन १५२२ ई० को, तीन साल से अधिक की समुद्रीय यात्रा करने के पश्चात, उसने सानविटोरिया नामक अपना जहाज़, सिवाइल नगर के निकट सेन्टल्यूकर के पोतस्थल में ला लगाया। इस जहाज़ ने मनुष्य जाति के इतिहास में सबसे बड़ी सफलता प्राप्त की थी अर्थात् उसने पृथ्वी की परिक्रमा कर डाली। यह सानविटोरिया नामक जहाज़ पश्चिम की ओर चल कर अपने चलने के स्थान पर फिर लौट आया। इसलिये इस समय से पृथ्वी के चौरस होने का शास्त्रिक सिद्धान्त अनुल्लंघ्य रीति से विनष्ट हो गया।

मजिल्लां की समुद्रीय यत्रा पूरी होने के पांच वर्ष के अनन्तर ईसाई संसार में पृथ्वी का डील डौल निश्चित करने का प्रथम उद्योग किया। इस उद्योग का कर्त्ता फरनेल नामक एक फरासीसी वैद्य था जो पेरिस नगर में ध्रुव की उंचाई देख कर वहां से उत्तर की ओर चला, और उस स्थान तक चला गया जहां ध्रुव की उँचाई पेरिस नगर वाली उँचाई से ठीक एक अंश अधिक थी। तब उसने अपनी गाड़ी के एक पहिये के चक्करों की गणना द्वारा जिसमें एक ठीक नाप सूचक यंत्र लगा हुआ था उन दोनों स्थानों का फासिला नापा और यह प्रतिफल निकाला कि पृथ्वी का वृत्त २४४८० इटेलियन मील है।

तदनन्तर बहुत से देशों में अधिकाधिक युक्त पूर्ण नापें की गईं; अर्थात् स्नेल ने हालेन्ड में, नारउड ने लंदन और यार्क के बीच इगलेंड, में, और पिकार्ड ने फरासीसी वैज्ञानिक महा विद्यालय के आश्रय में फ्रान्स में कीं। पिकार्ड की युक्ति यह थी कि वह त्रिकोणों की एक शृंखला द्वारा दो स्थानों को जोड़ता था और इस भांति

उन दोनों स्थानों के बीच की याम्योत्तर रेखा के चाप की लम्बाई निश्चित करके उसको आकाश निरीक्षणों द्वारा परिज्ञात अक्षांशों के अन्तर से मिलान करता था। यह दोनों स्थान पेरिस के निकटस्थ मालवायसीन, और अमींस के निकटस्थ सोरडान, थे। अक्षांशों का यह अन्तर काशोपी नामक नक्षत्र के नतांश देख कर निश्चित किया गया था। पिकार्ड के इस कार्य में दो बातें उत्तमता की हैं, एक यह कि यह पहिला कार्य था जिसमें दूरबीनों से सजे सजाये यंत्र काम में लाये गये थे, और दूसरी यह कि (जैसा हम आगे देखेंगे) इसके फल को न्यूटन ने सर्वत्रव्यापी गुरुत्वाकर्षण के सिद्धान्त का प्रथम प्रमाण माना।

इस समय यंत्रिक विचारों से और विशेष कर न्यूटन के विचारों से यह बात स्पष्ट होगई थी कि पृथ्वी के स्वयं अपनी धुरी पर घूमने के कारण उसका आकार ठीक गोल नहीं हो सकता, वरन् अंडाकृत वा ध्रुव पर चिपटा होना चाहिये। इससे यह प्रतिफल निकलेगा कि ध्रुव के निकट एक अंश की लम्बाई भूमध्यरेखा के निकट वाले अंश की लंबाई की अपेक्षा अधिक तर होना चाहिये।

फरासीसी विद्यालय ने पिकार्ड कृत कार्य्य को प्रत्येक दिशा में नाप करा कर बिस्तार करने का दृढ़ निश्चय किया। और उसके फल के मूलाधार पर फ्रांस देश का एक अधिक ठीक नक़शा बनाना निश्चित किया। परन्तु इस कार्य में बहुत देर हुई और सन् १७१८ ई० तक उत्तर में डंकर्क से लेकर फ्रांस की दक्षिणीय सीमा तक पूरी नाप न हो सकी इन नापों के तात्पर्य्य समझने के विषय में वादविवाद हुआ, कोई कहता था कि ये नापें पृथ्वी को द्वितीयाण्ड गोलाकार प्रगट करेंगी। और कोई कहता था कि प्रथमाण्ड गोलाकार प्रमाणित करेंगी। प्रथम आकार साधारण निम्बू से प्रदर्शित किया जा सकता है और दूसरा आकार नारंगी से। इस झगड़े को निपटाने के लिये फरासीसी सरकार ने विद्यालयकी सहायता से याम्योत्तर रेखा के अंशो को नापने के लिये दो विद्वान समूहों को बाहर भेजा। एक भूमध्य रेखा पर और दूसरा उत्तर की ओर जहां तक जा सके। पहिला समूह

पेरूदेश देको गया और दूसरा समूह स्वीडन देश अधीनस्थ लैपलैंड को गया। इन दोनों समूहों को भारी भारी कठिनाइयां झेलना पड़ी। परन्तु लैपलैंड वाले कार्य्यकारी समूह ने अपने निरीक्षण पेरू वालों से बहुत पहिले पूरे कर लिये, और पेरू वालों ने नौ वर्ष का समय बिता दिया। इस प्रकार हस्तगत नापों के प्रतिफलों ने पृथ्वी के प्रथमाण्ड गोलाकार होने की सिद्धान्तिक आशा को प्रमाणित कर दिया। उस समय से बहुत से विस्तृत और ठीक पुनर्निरीक्षण किये गये हैं जिनमें से इंगलैण्ड और हिन्दुस्तान में अंग्रेजों के किये हुए निरीक्षणों का भी उल्लेख किया जा सकता है, जो उस समय किया गया जब नाप और तौल की मात्रिक प्रथा का प्रचार किया गया। इस नाप को डिलम्ब्रे और मिकैन ने डंडर्क और बारसिलोना से आरम्भ किया था और बायट और इरैगो ने उसे बढ़ा कर माईनारका के निकटस्थ फारमेन्टिरा नामक द्वीप तक ले गये। इसकी लम्बाई लगभग साढ़े बारह अंशों की थी।

इस प्रत्यक्ष नाप लेने के ढंग के अलावा पृथ्वी के आकार का निश्चय भिन्न भिन्न अक्षांशों में एकही लम्बान के लंगर के संचालनों की गणना देख करभी हो सकता है। ये संचालन, यद्यपि वे उपरोक्त प्रतिफलों को प्रमाणित करते हैं, पृथ्वी को अंशों की नाप से परिज्ञात अंडाकृति होने की अपेक्षा कुछ अधिक अंडाकृति प्रगट करते हैं। ये लंगर भूमध्य रेखा के जितनेही निकट होते हैं उतनेही अधिक मंद-गामी होते हैं। इस लिये यह फल निकलता है कि भूमध्य रेखा पर वे अन्य स्थानों की अपेक्षा पृथ्वी के केन्द्र से अधिक दूरी पर हैं।

अत्यन्त विश्वासनीय नापों से पृथ्वी का विस्तार इस भांति वर्णित है।

बड़ा वा भूमध्य-रेखा-गत व्यास .... ७९२५ मील।
छोटा वा ध्रुवगत व्यास .... ७८९९ मील।
इन दोनों का अन्तर वा ध्रुवीय संकोचन............... २६ मील।

पृथ्वी के डील डौल के विषय में जो जांच पड़ताल हुई उसका यही फल है। यह बात अभी निश्चित न होने पाई थी कि एक और

वादविवाद खड़ा हो गया जो इससे भी अधिक गम्भीर फलों से भरा हुआ था। यह इस विषय का झगड़ा था कि सूर्य तथा अन्य ग्रहों के सम्बन्ध से पृथ्वी की स्थिति क्या है।

जर्मनी निवासी कोपरनिकस ने सन् १५०७ ई० के लगभग एक ग्रन्थ लिखकर पूर्ण किया जिसका नाम "आन दी रैवोल्यूशंस आफ दी हेविनली बाडीज" (on the revolutions of the heavenly bodies) था। वह अपनी युवा अवस्था में इटली देश को गया था, ज्योतिष विद्या पर अपना ध्यान लगाया था, और रोम नगर में गणित विद्या सिखलाता रहा था। टालेमी और फीसागोरस की विचार शैलियों को गम्भीरता समेत मनन कर के उसने द्वितीय शैली को मानने का प्रतिफल निकाला था; और उसकी पुस्तक का तात्पर्य उसी शैली को समर्थन करने का था। इस बात को जान कर भी कि उसके सिद्धान्त शास्त्रोक्त सत्यता के बिलकुल विरुद्ध हैं, और यह देख कर भी कि वे सिद्धान्त धर्म गुरुओं की ओर से उसे दंडित करायेंगे, उसने सुरक्षित और विनीत भाव से अपने विचार प्रगट किये थे। वह कहता है कि मैंने यह धृष्टता केवल इस हेतु की है कि मैं जांच करूं कि पृथ्वी को चलता हुआ अनुभाव करके आकाशस्थित ग्रहों के घूमने के विषय में प्राचीन व्याख्याओं की अपेक्षा कुछ अधिक अच्छी व्याख्यायें मिलना सम्भव है कि नहीं। वह यह भी कहता है कि इस काम के करने में मैंने केवल वही अधिकार ग्रहण किया है जो दूसरों को मनमाने सिद्धान्त ग्रहण करने के हेतु दिया गया था। उस ग्रंथ की भूमिका पोप तृतीय पाल के नाम लिखी गई है।

इस सन्देह में पड़कर कि न जाने क्या फल हो, उसने ३६ वर्ष तक अपनी किताब नहीं प्रकाशित कराई। वह ख्याल करता था कि "कदाचित फीसागोरिस और अन्य विद्वानों के उदाहरणों ही पर चलना अधिक अच्छा होगा जो अपना सिद्धान्त केवल मौखिक प्रकाश करते थे और वह भी केवल अपने मित्रों में"। कार्डिनल स्कौम्बर्ग के सविनय आग्रह पर उसने आखिरकार उस पुस्तक को १५४३ ई० में प्रकाशित कराया। उस पुस्तक की एक प्रति उसके पास

उस समय पहुँची जब वह मृत्यु शय्या पर पड़ा हुआ था। उस पुस्तक का अन्तिम परिणाम वैसाही हुआ जैसा उसने सोचा था, अर्थात् धर्म रक्षक सभा ने उसे एक नास्तिक सिद्धान्त पूर्ण पुस्तक ठहराया। इंडेक्स की सभा ने अपनी मना करने वाली आज्ञा में उसकी शैली को यों कह कर निन्दित किया कि वह फीसागोरस का सा झूठा सिद्धान्त है जो कि पवित्र धर्म पुस्तकों के पूर्णत: विरुद्ध है।

ज्योतिषी लोग बड़े न्याय के साथ यह बात कहते हैं कि कोपर निकस के "डी रैवोल्यूशनीबस" नामक ग्रंथ ने उनके विज्ञान का रुख ही बदल दिया। उसने अकाट्य प्रमाणों से साबित कर दिया कि सूर्य ही इस विश्व का केन्द्र है। उसने प्रगट कर दिया कि निश्चल सितारे बहुत बड़ी दूरी पर हैं और पृथ्वी अन्तरिक्ष में केवल एक बिन्दु के समान है। न्यूटन से पहिले ही सूर्य चंद्र और अन्य ग्रहों में आकर्षण शक्ति का होना कोपरनिकस ही ने बतलाया था, परन्तु भूल से उसने ऐसा माना था कि वे एक वृताकार मार्ग से आकाश में चलते हैं। मंगल ग्रह के मार्ग के निरीक्षणों से तथा भिन्न भिन्न समयों में उसका भिन्न भिन्न व्यास पाये जाने से ही कोपरनिकस ने यह सिद्धान्त ठहराया था।

कोपर निकस की शैली को धर्म विरुद्ध कह कर इस भांति निन्दित करने में धर्मगुरुओं के चित्त पर निःसन्देह अनुमानिक विचारों का बड़ा गहरा प्रभाव पड़ा था। पृथ्वी को उसकी केन्द्रीय स्थिति से गिरा देना और ऐसा प्रगट करना कि बहुत से ग्रह उसके बराबरी के हैं और कुछ उससे बड़े भी हैं माने उसके ईश्वरीय कृपा पात्र होने के दावों को मिटा देना था। यदि इन अगणित सितारों में से प्रत्येक सितारा एक सूर्य हो, और बहुत से गोले उसके चारों ओर घूमते हों, और हमारे ही समान उत्तराभारी मनुष्य उसमें रहते हों, और यदि हम लोग ऐसी सरलता से पापी हो गये हैं, और ईश्वर पुत्र का बलिदान स्वरूप भारी मोल लगाकर बचाये गये हैं तो उन लोगों की क्या दशा होगी? क्या उसमें से कोई ऐसा नही है जो

हमारे ही समान अधोगति को प्राप्त हुआ हो वा प्राप्त हो सकता हो? तब उनके बचाने के लिये सुरक्षक कहां से आवेगा?

सन् १६०८ ई० में 'लिपर्शे' नामक एक हालैण्ड निवासी ने यह बात खोज निकाली कि कांच के दो लेन्सों में होकर देखने से, जो एक विशेष प्रकार से मिला दिये जाते हैं, दूरकी वस्तुएं बहुत बड़ी और साफ दिखलाई पड़ती हैं, अर्थात् उसने दूरबीन निकाल ली थी। उसके दूसरे साल फ्लारेंस निवासी गेलीलियो ने जो अपने गणित विद्या सम्बन्धी और विज्ञान सम्बन्धी ग्रंथों से बहुत प्रख्यात हो चुका था, इस घटना को सुनकर परन्तु उसकी बनावट के विषय में बिना विशेष विवरण जाने ही, अपने लिये एक प्रकार का यंत्र अन्वेषण कर लिया था। और धीरे धीरे उसको सुधारते हुये उसने एक ऐसा यंत्र बना लिया जो किसी वस्तुको तीस गुना बड़ा करके दिखला सकता था। चंद्रमा को देखने पर उसे ज्ञात हुआ कि उसमें भी ऐसी ही घाटियां हैं जैसी पृथ्वी पर हैं और ऐसे पहाड़ हैं जो दूर दूर तक अपनी छाया डालते हैं। प्राचीन समय में ऐसा कहा जाता था कि कृत्तिका नक्षत्र पुंज में पहिले सात सितारे थे, परन्तु एक पौराणिक कथा कहती थी कि उनमें से एक गुप्तरीति से अंतर्धान होगया था। इस नक्षत्र पुंज की ओर दूरबीन लगाने पर गेलीलियो को ज्ञात हुआ कि वह उसमें बड़ी आसानी से ४० से कम सितारे नहीं गिन सकता। जिस ओर वह देखता था उसी ओर उसको ऐसे सितारे दिखाई पड़ते थे जो केवल चाक्षुकयंत्र रहित आंख से नहीं दिखाई पड़ सकते थे।

सन् १६१० ई० की सातवीं जनवरी की रात को उसने बृस्पति के निकट एक सीधी रेखा में तीन छोटे छोटे सितारे देखे, और कुछ रात्रियों के अनन्तर एक चौथा सितारा भी देखा। उसने देखा कि यस सितारे अपनी अपनी कक्षाओं में उस ग्रह के चारों ओर घूम रहे हैं और अति हर्ष के साथ उसने मान लिया कि वे एक छोटे रूप में कोपरनिकस के सिद्धान्त को प्रगट करते हैं।

इन आश्चर्यों की विज्ञप्ति ने तुरन्त ही सर्व साधारण का ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया। अध्यात्मविद्या विशारद धर्म गुरुओं ने भी तुरन्त ही देख लिया कि इन आश्चर्यों से अवश्य उस सिद्धान्त को धक्का पहुंचेगा जिसका तात्पर्य्य यह है कि सर्व विश्व मनुष्य के लिये बनाया गया है। इन अगणित सितारों के बनाने में जो अब तक अदृष्ट थे अवश्य ही कुछ और तात्पर्य्य है न कि केवल इतना ही कि वे मनुष्य को रात्रि में प्रकाश देवें।

कोपरनिकास के सिद्धान्त के विरुद्ध यह तर्क की जाती थी, कि यदि बुद्ध और शुक्र ग्रह पृथ्वी की कक्षा के भीतर होकर अपनी अपनी कक्षाओं में सूर्य के गिर्द घूमते होते, तो चन्द्रमा के समान उन्हें भी अपनी अपनी कलायें प्रगट करना चाहिए था। और यह भी तर्क थी कि शुक्र की दशा में, जो इतना प्रगट और प्रकाशमान है, ये कलायें बहुत प्रत्यक्ष होना चाहिये। कोपरनिकस ने स्वयं इस तर्क की शक्ति को मान लिया था और इसकी व्याख्या करने का व्यर्थ परिश्रम भी किया था। गेलीलियो ने इस ग्रह की ओर अपनी दूरबीन लगाकर खोज लिया कि वे अभिलषित कलायें वास्तव में थीं। कभी तो वह ग्रह द्विलिया के चन्द्रमा के समान होता है, कभी अर्द्ध चन्द्र समान, कभी अर्द्धाधिक, और तदनन्तर पूर्ण होता है। कोपरनिकस से पहिले ऐसा माना जाता था कि ग्रहगण स्वयं अपने प्रकाश से प्रकाशित होते हैं, परन्तु शुक्र और मंगल की कलाओं ने प्रमाणित कर दिया कि उनका प्रकाश छाया भास है। अरस्तू का यह विचार था कि आकाशस्थित ग्रहगण पृथ्वी स्थित वस्तुओं से भिन्न प्रकार के हैं। वे कभी क्षय नहीं होते। गेलीलियो के इन खोजों से कि पृथ्वी के से पहाड़ और घाटियां चन्द्रमा में भी हैं, सूर्य पूर्ण नहीं है, वरन् उसके चिहरे पर धब्बे हैं, और वह प्रभावशाली स्थिर दशा में न रहकर अपनी धुरी पर घूमता है अरस्तू के उस विचार को बड़ा धक्का लगा। नवीन सितारों के छायाभास ने इस अक्षयता के सिद्धान्त पर बड़े गम्भीर संदेह डाल दिये थे।

इन उपरोक्त और अन्य बहुत सी अच्छी अच्छी दूरबीन सम्बन्धी खोजों ने कोपरनिकस के सिद्धान्त की सचाई के स्थापित करने में सहायता की, और धर्मगुरुओं को बहुत मौका दिया। नीचे दरजे के और अज्ञान पादरियों ने उन खोजों को धोखा वा छल कहकर निन्दा की। कुछ लोग यह कहते थे कि भूमि सम्बन्धी वस्तुओं के लिये दूरबीन पर भली भांति विश्वास किया जा सकता है, परन्तु आकाश-स्थित ग्रहों की दूसरी बात है। दूसरे यह कहते थे कि दूरबीन का अन्वेषण केवल, अरस्तू के उस कथन का उपयोग मात्र है कि "गहरे कुएं की तली से दिनमें भी सितारे देखे जा सकते हैं" गेलीलियो पर धूर्तता, पाखंड, ईश्वर निन्दा और नास्तिकता का दोष लगाया गया। अपने बचाव के लिये उसने ऐबीकैस्टिली के नाम एक पत्र लिखा जिसमें यह बात दर्शाई कि धार्मिक ग्रंथ वैज्ञानिक प्रमाणों के लिये नहीं हैं, वरन् केवल सदाचार पथ दर्शक हैं। इससे बात और भी बिगड़ गई। वह पवित्र धर्मपरीक्षक सभा के संमुख बुलाया गया कि तुमने लोगों को यह सिखलाया है कि पृथ्वी सूर्य के चारों ओर घूमती है, जो एक ऐसा सिद्धांत है जो धर्म पुस्तकों के बिलकुल विरुद्ध है। उसे आज्ञा दी गई कि तुम इस पाखंड को छोड़ दो नहीं तो तुम कैद किये जाओगे। उस से यह भी कहा गया कि तुम कोपर-निकस का सिद्धान्त सिखलाना और समर्थन करना छोड़ दो, और प्रतिज्ञा करो कि तुम भविष्य में उस सिद्धान्त का न तो बिस्तार करोगे न समर्थन करोगे। भली भांति जान कर कि सत्य को बलिदान की आवश्यकता नहीं है उसने इस इच्छित प्रत्यादेश को मान लिया और इच्छित प्रतिज्ञा करदी।

सोलह वर्ष तक धर्मगुरु लोग निश्चिन्त रहे। परन्तु सन् १६६२ ई० में गेलीलियो ने अपना "दी सिस्टम आफ दी वर्ल्ड" नामक ग्रंथ प्रकाशित कराने का साहस किया, जिसका तात्पर्य्य कोपरनिकस के सिद्धान्त का प्रतिपादन ही था। वह फिर रोम में धर्मपरीक्षक सभा के सामने बुलाया गया और दोष लगाया गया कि तुमने प्रतिपादन किया है कि पृथ्वी सूर्य के इर्द गिर्द घूमती है। उससे कहा गया

कि पाखण्ड का दण्ड तुमने स्वयं अपनी ऊपर लिया है। उस पर दबाव डाला गया कि वह घुटनों के बल बैठ कर और अपना हाथ इंजील पर रख कर शपथ करे और पृथ्वी के संचलन सिद्धान्त की निन्दा करे। कैसा दृश्य है! अपने समय का अत्यन्त सुप्रसिद्ध यह आदरणीय पुरुष मृत्यु की धमकी से दबाया गया कि वह उन बातों को असत्य कहे जिनको वह स्वयं और उसके न्याय कर्ता सत्य जानते थे! तदनन्तर वह कैद कर दिया गया और उसके जीवन के शेष दश वर्षों में उसके साथ अत्यन्त कठोर वर्ताव किया गया और मरने पर दफ़न होने के लिये उसे क़ब्रस्तान की पवित्र भूमि भी न मिली। क्या वह बात असत्य नहीं हो सकती जिसके समर्थन में इतने छल और इतनी निर्दयता की आवश्यकता पड़े? जिन सम्मतियों को धर्मपरीक्षक सभा उस समय इस भांति समर्थन करती थी वेही सम्मतियां अब इस समय में सब सभ्य जगत के लिये हँसी की वस्तु हो रही हैं।

वर्तमान समय का एक सर्वोच्चगणित बिद्या बिशारद पुरुष कहता है कि जिस विषय पर उस समय झगड़ा हुआ था वह मनुष्य जाति के लिये एक बड़े काम का विषय था, क्योंकि उसने हमारे निवासस्थान पृथ्वी का एक स्थान तो निश्चित किया। यदि विश्व में पृथ्वी अचल है तो मनुष्य को अधिकार है कि वह अपने को प्रकृति की दया का मुख्य भाजन समझे। परन्तु यदि वही पृथ्वी सूर्य के इर्द गिर्द घूमने वाले ग्रहों में से केवल एक और सूर्य सम्प्रदाय में से एक अत्यंत लघु ग्रह है, तो वह उन आकाशों के दीर्घ विस्तार में बिलकुल अदृष्ट हो जायगी जिन आकाशों में यह सूर्य सम्प्रदाय, देखने में बहुत बड़ा होने पर भी सिवाय एक अतिलघु बिन्दु के और कुछ नहीं है।

कोपरनिकस के सिद्धान्त की सफली भूत स्थापना उस समय से हुई जिस समय से दूरबीन का अन्वेषण हुआ। शीघ्र ही यूरोप भर में कोई ऐसा ज्योतिषी नहीं पाया जाता था जो सूर्य केन्द्रीय सिद्धान्त को और उसीके साथ पृथ्वी के दोहरे संचालन के आवश्यकीय अवाच्योवक्रम को न मानता हो, अर्थात् एक अपनी धुरी पर घूमने की चाल, और दूसरी सूर्य के चारो ओर घूमने की चाल। यदि पृथ्वी की

दूसरी चाल के विषय में अधिक प्रमाण की आवश्यकता आ पड़ती थी तो वह प्रमाण ब्रैडले कृत उस बड़ी खोज से दिया जाता था जो उसने अचल सितारों के कुपथगमन के विषय में की थी अर्थात् वह कुपथगमन जो कुछ कुछ तो प्रकाश के वर्द्धमान संचालन पर निर्भर था और कुछ पृथ्वी-कृत सूर्य की परिक्रमा पर निर्भर था। ब्रेडले की खोज महत्व में अयनांश-भाग वाली खोज के बराबर ही थी। प्रकाश के वर्द्धमान संचालन वाली रोमर कृत खोज आख़िरकार विश्व निवासियों को विवश होकर मानना ही पड़ी, यद्यपि फोंटेनेली ने छली भ्रम कह कर उसकी निन्दा की थी और कैसिनी ने उसे नहीं माना था।

तदनन्तर यह आवश्यक हुआ कि सूर्य सम्प्रदाय के विस्तार के विषय में ठीक ठीक विचार हस्त गत किये जायें, वा (इस प्रश्न को अधिक ठीक शब्दों में यों कहिये कि) यह निश्चित किया जाय कि सूर्य से पृथ्वी कितनी दूरी पर है।

कोपरनिकस के समय में इसा अनुमान किया गया था कि पृथ्वी से सूर्य की दूरी पचास लाख मील से अधिक नहीं हो सकती, और वास्तव में बहुत से ऐसे मनुष्य थे जो इस अनुमानित दूरी को भी बहुत अधिक समझते थे। परन्तु केपलर ने टाइकोब्रेही के निरीक्षणों की जांच परताल से यह फल निकाला था कि यह भ्रम वास्तव में कमी की ओर है, और इस अनुमान को कम से एक करोड़ तीस लाख मील तक बढ़ाना चाहिये। १६७० ई० में कैसिनी ने दिखला दिया कि यह गणनायें ठीक घटनाओं से बिलकुल अनमिल हैं और अपनी सम्मति अनुसार यह दूरी आठ करोड़ पचास लाख मील ठहराई।

सूर्य मंडल पर होकर शुक्र के गमन की घटना जो तीसरी जून सन् १७६९ में होने वाली थी पहले से जान ली गई थी और ज्योतिष के इस मूल प्रश्न के हल करने में उस घटना से जो लाभ होगा वह भी भली भांति समझ लिया गया था। प्रशंसा योग्य उत्साह के साथ भिन्न भिन्न राज्यों ने इस घटना के निरीक्षण में सहायता दी यहां

तक कि यूरोप में पचास स्थानों में निरीक्षण हुआ; एशिया में छ: स्थानों में और अमेरिका में सत्रह स्थानों में। इसी तात्पर्य से अंग्रेजी राज्य ने कप्तान कुक को उसकी पहली प्रसिद्ध समुद्र यात्रा पर भेजा था। वह ओटाहीट नामक स्थान को गया। उसकी समुद्र यात्रा पूर्ण रीति से सफल हुई। मेघ रहित सूर्य उदय हुआ और दिन भर आकाश स्वच्छ रहा। कुक के स्थान पर यह रविमण्डलोपर शुक्र-गमन सवेरे के साढ़े नो बजे के लगभग से लेकर संध्या के साढ़े तीन बजे के लगभग तक रहा और सब प्रकार के निरीक्षण भली भांति किये गये।

परन्तु भिन्न भिन्न स्थानों में इन निरीक्षणों पर वादविवाद होने पर यह ज्ञात हुआ कि वे उन निरीक्षणों के फल जैसे मिलना चाहिये नहीं मिलते, वरन् आठ करोड़ अस्सी लाख से लगा कर दस करोड़ नव्वे लाख मील तक निकलते हैं। इस लिये सन् १८२२-२४ में 'एनके' नामक प्रसिद्ध गणित विद्या विशारद ने उनकी फिर से जांच की और यह फल निकाला कि सूर्य का परमदृग्लम्बन (अर्थात् वह कोण जो सूर्य से निकलती हुई रेखा पृथ्वी के अर्द्ध व्यास के साथ बनाती है) ८$\frac{५७६}{१०००}$ विकला का है। इस से सूर्य की दूरी ९५२७४७०० मील निकली। तदनन्तर उन निरीक्षणों पर हान्सेन ने फिर विचार किया और उनका फल ९१६५९००० मील बतलाया। उसके और अनन्तर लिवरियर ने उसे ९१७५९००० मील किया। एयरी और स्टोन ने एक दूसरी भांति से उसे ९१४००००० मील निश्चित किया। और केवल स्टोन ने प्राचीन निरीक्षणों को फिर से जांच कर ९१७३०००० मील बतलाया। और अन्त में फोकाल्ट और फीजो ने पदार्थ विद्या सम्बन्धी अनुभवों से प्रकाश की गति की शीघ्रता निश्चय करके, (यह ढंग उपरोक्त कारण से शुक्रीयगति निरीक्षणों से बहुतही भिन्न प्रकार का था) ९१४००००० मील ठहराया। जब तक १८७४ ई० वाले रवि-मण्डलोपर शुक्रगति के फल निश्चित न हो गये, तब तक यही माना जाता रहा कि सूर्य से पृथ्वी की दूरी ९२०००००० मील से कुछ कम है।

यह दूरी एक बार निश्चित होजाने पर सूर्य सम्प्रदाय का

विस्तार ठीक ठीक और बहुत आसानी से निश्चित किया जा सकता है। इतना कह देना अलम् है कि सूर्य से निप्चून नामक ग्रह की दूरी (जो वर्तमान समय में सब ग्रहों से अधिक दूर जाना गया है) सूर्य से पृथ्वी की दूरी की अपेक्षा लगभग तीस गुना है।

इन गणनाओं की सहायता से हम विश्व पर मानव जाति के अधिकार वाले सिद्धान्त का ठीक मूल्य जान सकते हैं; अर्थात इस सिद्धान्त का मूल्य कि विश्व की सब ही वस्तुएं मनुष्य के लिये बनाई गई हैं। यदि पृथ्वी को सूर्य्य मंडल से देखें तो वह केवल एक बिन्दु मात्र है।

तब ऐसा अदर्शनीय कणिका किस काम का हो सकता है? कोई मनुष्य यह विचार सकता है कि यह तुच्छ कणिका संसार से हटा दिया जा सकता है वा मिटा दिया जा सकता है और तब भी बिना उसके कोई हानि न होगी। और वे मानवी कणिका (जो ऐसे अदर्शनीय कणिका के एक स्थान पर लाखों रहते हैं और उन लाखों में से कोई एक भी कठिनता से इस बात का चिन्ह छोड़ जायगा कि वह कभी जीवित था) किस काम के हो सकते हैं, अतएव मनुष्य, उसके विषयानन्द और उसके दुःख किस काम के हैं? अर्थात तुच्छ हैं।

कोपरनिस की विचार शैली के विरुद्ध, उसके समय जो तर्कें की गई थीं उनमें से एक तर्क टाईको ब्रेही नामक एक डेनमार्क निवासी बड़े ज्योतिषी की तर्क थी। वह मूल में वही तर्क थी जो फीसागोरस की विचार शैली के विरुद्ध एरिस्टारकस ने की थी, जिसका तात्पर्य्य यह था कि यदि उसके कथनानुसार पृथ्वी सूर्य के इर्द गिर्द घूमती है तो स्थिर सितारों की दिशा में परिवर्तन होना चाहिये। किसी एक समय में हम अन्तरिक्ष के किसी विशेष प्रदेश के इतने निकट तर होते हैं जितना कि भूकक्षा का व्यास होता है और उस समय से छः महीने पहले हम उतना निकट न थे, इस हेतु नक्षत्रों के भेदप्रदर्शक स्थान में भी परिवर्तन होना चाहिये। अर्थात ज्यों ज्यों हम उनके निकट पहुँचते हैं त्यों त्यों उन्हें अधिक अधिक अलग होते हुये दिखाई पड़ना चाहिये, और ज्यों ज्यों हम उनसे दूर जाते हैं त्यो त्यों उन्हें

अधिक निकट होते हुये दिखलाई पड़ना चाहिये। अथवा ज्यौतिषी भाषा में यों कहिये कि इन सितारों का वार्षिक लम्बन होना चाहिये।

किसी सितारे का लम्बन वह कोण है जो उन दो रेखाओं के बीच में हो जिनमें से एक उस सितारे से सूर्य तक और दूसरी पृथ्वी तक हो।

उस समय सूर्य से पृथ्वी की दूरी बहुत कम अनुमान की गई थी। यदि वर्तमान समय की भांति ऐसा ज्ञात होता कि वह दूरी ९०००००० मील से भी अधिक है अथवा भूकक्षा का व्यास १८०००००० मील से भी अधिक है तो वह तर्क निःसन्देह बड़े महत्व की हुई होती।

टाईको की तर्क के उत्तर में यह कहा गया था कि चूंकि किसी सितारे का लम्बन ज्यों ज्यों वह अधिक दूर होता है घटता जाता है इसलिये कोई सितारा इतनी अधिक दूर भी हो सकता है कि उसका लम्बन देखा ही न जा सके। यह उत्तर ठीक ही निकला। सितारों के लम्बन का देखना कोण मापक यंत्रों की उन्नति पर निर्भर था।

अल्फासेन्टारी का लम्बन जो कि दक्षिणीय गोलार्द्ध का एक बड़ा सितारा है और जो वर्तमान समय में स्थिर सितारों के निकटतम माना जाता है, उत्तमाशा अन्तरीप में सन् १८३२-३३ में हेन्डर्सन और मेक्लियर ने पहले पहल निश्चित किया था। वह लम्बन एक बिकला के $\frac{९}{१०}$ के लगभग है। इसलिये यह सितारा हमसे सूर्य की दूरी की अपेक्षा २३०००० गुणा अधिक दूरी पर है। यदि सूर्य इतना बड़ा हो जाय कि वह सब भूकक्षा को भर ले अर्थात् १८०००००० मील के व्यास वाला हो जाय, तो भी उस सितारे से देखे जाने पर वह केवल एक विन्दु बराबर दिखाई देगा। वह अपने साथी को लिये हुये अपने केन्द्रीय आकर्षण के चारों ओर ८१ वर्ष में घूमता है, इसलिये ऐसा जान पड़ेगा कि उनका एकत्रित डील सूर्य्य के डील से कम है।

६१ सिगनी सितारा बड़ाई में छठवें नम्बर का है। उसका लम्बन पहले पहल विसेल ने सन् १८३८ ई० में निकाला था और एक विकाला के $\frac{१}{३}$ के लगभग है। इसलिये हम से उसकी दूरी सूर्य की दूरी की अपेक्षा ५०००००० गुणा से भी बहुत अधिक है। वह अपने साथी को

लिये हुये अपने केन्द्रीय आकर्षण के चारों ओर ५२० वर्ष में घूमता है। उनका एकत्रित बोझ सूर्य के बोझ से लगभग एक तिहाई के है।

यह बात विश्वासनीय है कि बड़ा लुब्धक सितारा जो अन्तरिक्ष में सब से अधिक प्रकाशित है, अल्फासेन्टारी की अपेक्षा लग भग छः गुणा अधिक दूरी पर है। अनुमान से उसका व्यास १२००००००० मील का है और जो प्रकाश उससे निकलता है वह सूर्य के प्रकाश से २० गुणा अधिक है। तब भी दूरबीन से देखे जाने पर उसका व्यास इतना छोटा है कि नापते नहीं बनता। वह केवल एक प्रकाशित अग्नि कणिका के समान दिखाई पड़ता है।

इसलिये सितारे केवल दृष्टिगत बड़ाई छोटाई में ही भिन्न नहीं हैं वरन वास्तविक डील डौल में भी भिन्नता रखते हैं। और जैसा कि स्पेक्ट्रास्कोप से प्रगट होता है वे रसायनिक और पदार्थिक बनावट में भी बहुत कुछ विभिन्नता रखते हैं। वह स्पेकट्रास्कोप यंत्र निकले हुये प्रकाश के वक्रीभवनीयता के परिवर्तनों द्वारा अब उन सितारों का जीवन काल भी प्रगट कर रहा है। यद्यपि जैसा कि हम देख आये हैं अत्यंत निकटस्थ सितारा भी बहुत अधिक और असापनीय दूरी पर है और कुछ ऐसे सितारे हैं जिनकी किरणें हम तक हजारों नहीं वरन् लाखों वर्षों में पहुँची हैं। हमारे सूर्य सम्प्रदाय की सीमाएं ज्ञात कर लेना अत्यंत शक्तिवान दूरबीन के अधिकार से बाहर है, तब हम दूसरे सम्प्रदाय के विषय में क्या कर सकते हैं? इस अन्तरिक्ष की अंधेरी गुफा में रज कण की भांति अगणित जगत भरे पड़े हैं।

तब क्या इन बड़े २ शरीर धारी व्यक्तियों से (जिनमें से हजारों इतनी अधिक दूरी पर हैं कि हम उन्हें बिना यंत्रिक सहायता के देख ही नहीं सकते) सिवाय उसके और कुछ तात्पर्य्य नहीं है जो अध्यात्म विद्या विशारदों ने बताया है कि वे हमें प्रकाश देते हैं? क्या उनके बड़े २ डील डौल यह नहीं प्रमाणित करते कि शक्तिमय केन्द्र होने के कारण वे संचालक केन्द्र भी अवश्य होंगे अर्थात् वे अन्य जगत सम्प्रदायों के सूर्य होंगे?

अभी ये घटनाएं बहुत ही अपूर्ण रीति से जानी गई थीं (अथवा वास्तव में घटनाओं की अपेक्षा केवल काल्पनिक विचारों ही के रूप में थीं) कि एक इटली निवासी गोरडेनो ब्रनो नामक विद्वान ने, जो कोपरनिकस की मृत्यु के सात वर्ष के बाद पैदा हुआ था, "जगत मय विश्वकी असीतमा" विषय पर एक ग्रन्थ प्रकाशित किया। वह "ईवनिंग कनवरसेशन्स आन ऐश वेंज़डे" जो कि कोपरनिकस की विचार शैली को प्रतिपादन करता था, और "दी वन सोल काज़ आफ थिंग्ज़" नामक ग्रंथों का भी कर्त्ता था। इन ग्रन्थों में एक रूपक का नाम और बढ़ाया जा सकता है जो १५८४ ई० में प्रकाशित हुआ और जिसका नाम "दी एकसपलशन आफ दी ट्रायमफेन्ट बीस्ट" है। उसने भविष्य ज्योतिषियों के काम के लिये वे सब निरीक्षण भी इकट्ठे किये थे जो उसे उस नवीन सितारे के विषय में मिल सके थे जो अकस्मात काशोपी नक्षत्र समूह में सन् १५७२ ई० में दिखाई पड़ा था और जिसका प्रकाश बढ़ता ही जाता था यहाँ तक कि वह प्रकाश में अन्य सब सितारों से बढ़ गया था। वह दिन में साफ २ दिखाई देता था। अकस्मात् ११ नवम्बर को वह इतना प्रकाशित हो उठा जितना कि शुक्र अपनी उच्चस्थित में होता है। तदनन्तर मार्च मास में वह उस नक्षत्र समूह में प्रथम गणना का सितारा हो गया। कुछ ही मासों में उसने भिन्न२ रंग दिखाये और मार्च सन १५७४ ई० में गायब हो गया।

वह सितारा जो केपलर के समय सन् १६०४ ई० में, सरपेंटेरियस नामक नक्षत्र समूह में अकस्मात दिखाई पड़ाथा पहले पहल शुक्र से भी अधिक प्रकाशवान था वह एक साल से अधिक दिन तक रहा और विविध प्रकार के धुमले पीले और लाल रंगों में हो कर अन्तर-धान हो गया।

सर्व प्रथम ब्रनो धर्माचार्य्य होने के हेतु तय्यार हो रहा था। वह डामीनीकन हो गया था परन्तु 'ट्रॅनसब्सटॅनशीएशन' और निष्कलंक गर्भ के विषयों पर विचार करने से वस सन्देह में पड़ गया। अपनी सम्मतियों को छिपाने की परवाह न करके वह शीघ्र ही धर्मा-

चार्यों का कोप भाजन बन गया, और आवश्यकता वश क्रमशः स्वीटज़र लेंड, फ्रांस, इंगलेंड, और जर्मनी देशों में आश्रय ढूंढता फिरा। धर्मपरीक्षक सभा के सूंघ कर खोज चलाने वाले कुत्तों ने बड़ी निर्दयता से उसका पीछा किया और अन्त में उसे इटली तक घेर लाया। वह वेनिस में पकड़ा गया और पियाम्बी में छः वर्ष के लिये कैद कर दिया गया जहां न उसे किताबें मिलती थीं न समाचार पत्र और न वह किसी मित्र से मिल सकता था।

इंगलेंड में उसने जगतों की बहुतायत पर व्याख्यान दिये थे और उसी देशमें उसने इटैलियन भाषा में अपने सर्वोत्तम ग्रन्थ लिखे थे। वह सदैव अपने कष्टदाता पादरियों की असत्यता और छलों की निन्दा किया करता था और जहां कहीं जाता था वहीं नास्तिकता को ऊपर से चिकनी चुपड़ी और पाखण्ड से छिपी हुई पाता था और उसकी निन्दा करता था। इससे धर्म्माचार्य्यगण उससे बहुत अप्रसन्न रहा करते थे। वह मनुष्यों के विश्वास के विरुद्ध नहीं लड़ता था किन्तु बनावटी विश्वास के विरुद्ध लड़ता था। वह एक ऐसे शास्त्रोक्त मत से झगड़ा करता था जिसमें न सदाचार था न विश्वास।

अपने "ईवनिंग कनवरसेशन्स" नामक ग्रन्थ में उसने बड़े आदर के साथ कहा है कि धर्म ग्रन्थों का तात्पर्य्य विज्ञान सिखाना नहीं है, वरन केवल सदाचार सिखाना है। और वे ग्रन्थ ज्योतिष विद्या और पदार्थ विद्या के प्रमाणित ग्रंथ नहीं माने जा सकते। और विशेष कर हमें उनका वह विचार नहीं मानना चाहिये जो वे दुनिया की बनावट के विषय में प्रगट करते हैं, पृथ्वी को चौरस धरातल मानते हैं, और अकाश को खम्भों पर स्थित बैकुण्ठ का फर्श मानते हैं। इसके विरुद्ध हमें यह विश्वास करना चाहिये कि यह विश्व अनन्त है, और स्वयं-प्रकाश और अपारदर्शी जगतों से भरा हुआ है। उनमें से बहुतों में जीव बसते हैं, और हमारे ऊपर और चारो ओर सिवाय अन्तरिक्ष और सितारों के और कुछ नहीं है। इन विषयों पर विचार करके वह इस सिद्धान्त तक पहुंचा था कि अवरोज़ के विचार असत्य न थे, अर्थात् एक ऐसी "बुद्धि" है जो विश्व भर को जीवित किये

हुये हैं, और यह दृष्टिगत जगत उसी बुद्धि का प्रकाशन मात्र है, जो उसी की शक्ति से पैदा हुआ है और स्थित है; और यदि वह शक्ति हटाली जाय तो सब कुछ विलीन हो जायगा। यही सर्वत्र-व्यापी और सदैवोपस्थित "बुद्धि" ईश्वर है, जो सब वस्तुओं में मौजूद है, यहां तक कि ऐसी वस्तुओं में भी है जो जीव विहीन ज्ञात होती हैं, और प्रत्येक वस्तु नियम बद्ध होने के लिये तय्यार हैं और विकसित होकर जीवधारी होने को तत्पर है। इस लिये ईश्वर ही "सब वस्तुओं का एक मात्र कारण" है और वही उन वस्तुओं का "सब कुछ" है।

इस हेतु ब्रनो को अवरीज़ और स्पिनोज़ा का मध्यवर्ती वैज्ञानिक लेखक समझना चाहिये। स्पिनोज़ा का यह मत था कि ईश्वर और विश्व एकही है और सब घटनाएं प्रकृति के एक अटल नियम के द्वारा एक अपराजित आवश्यकता द्वारा हुआ करती हैं, ईश्वरही विश्व रूप है और प्राकृतिक, अपरिवर्तनीय, और अनिवार्य्य शक्ति के कारण आवश्यक संचालनों वा घटनाओं की शृंखलाएं पैदा किया करता है।

धर्म गुरुओं के कथनानुसार ब्रनो वेनिस से हटा कर रोम को भेज दिया गया। उसको केवल पाखण्डी होनेही का दोष नहीं लगाया गया, वरन् नास्तिकों का मुखिया होने का दोष भी लगाया गया। यह भी कहा गया कि उसने ऐसी बातें लिखी हैं जो धर्म विषय के लिये अनुचित हैं। उसे विशेष दोष यह लगाया गया कि उसने लोगों को जगतों की बहुतायत का सिद्धान्त सिखाया जो धर्म ग्रन्थ के बिलकुल विरुद्ध है, और ईश्वरप्रकाशित धर्म का शत्रु है, विशेष कर जितना कुछ मुक्ति मार्ग से सम्बन्ध रखता है। दो वर्ष तक कैद रहने के बाद वह अपने न्याय कर्ताओं के सामने लाया गया, लगाये हुये दोषों का दोषी ठहराया गया, धर्म समाज से च्युत किया गया, और जब उसने सद्भाव से अपने कथन को खण्डन करने से इनकार किया तब वह सांसारिक हाकिमों के हाथ दण्ड पाने के लिये सौंप दिया गया। पर दण्ड देने के विषय में धर्मगुरुओं की यह आज्ञा

भी कि "जितनी सम्भव हो उतनी दया के साथ और बिना रक्त-पात किये हुये" उसे दण्ड दिया जाय। यह आज्ञा दोषी को जला देने की भयंकर व्यवस्था थी। यह जान कर कि उसके कष्ट दायक उसके शरीर को नष्ट कर सकते हैं, परन्तु उसके विचार उसके मरणोत्तर भी मनुष्यों के बीच जीवित रहेंगे, उसने अपने न्यायकर्त्ताओं से यह बात कही थी कि "शायद आप इस दण्डाज्ञा देने में उस से अधिक डरते हैं जितना कि मैं इसे ग्रहण करने में डरता हूं"। दण्डाज्ञा का प्रतिपालन हुआ, और वह सोलहवीं फरवरी सन् १६०० ई० को रोम नगर में जला दिया गया।

बिना खेद किये हुये कोई भी मनुष्य उन अगणित धर्म हेतु तन-त्यागी मनुष्यों की विपत्तियों को स्मरण नहीं कर सकता जो कभी किसी समूह से और कभी किसी समूह से अपनी धार्मिक सम्मतियों के हेतु जीवित जलादिये गये। परन्तु इनमें से प्रत्येक मनुष्य अपने मरने के समय अपने चित्त में एक शक्तिवान और निश्चित सहायता पाता था, अर्थात् यह समझता था कि इस जीवन से दूसरे जीवन में चला जाना, यद्यपि एक कठिन परीक्षा द्वारा होता है, एक क्षणभंगुर कष्ट से सदैव कालीन शान्ति की ओर चला जाना है, वा पृथ्वी की निर्दयता से बच कर स्वर्ग की कृपा में जाना है। अंधेरी घाटी में होकर जाने वाले रास्ते में धर्म हेतु तनु त्यागी मनुष्य विश्वास करता था कि एक अदृष्ट हाथ उसका पथदर्शक है, और एक मित्र अग्नि ज्वालाओं के भय के कारण बड़ी कृपा और धीर्य से उसको अपने साथ लिवा ले जायगा। परन्तु ब्रूनो के वास्ते ऐसी कोई सहायता न थी। वे तत्वज्ञानिक विचार, जिनके हेतु उसे अपना जीवन देना पड़ा, उसे कुछ आश्वासन न दे सके। उसे अन्तिम लड़ाई अकेले ही लड़ना पड़ी। जिस समय वह अंधेरे दालान में अपने निठुर न्याय कर्त्ताओं के सामने खड़ा हुआ था, उस समय क्या इस अकेले मनुष्य के भाव में एक बहुत बड़ी बात न देख पड़ती थी, अर्थात् एक ऐसी बात जिसकी प्रशंसा किये बिना कोई मनुष्य रह नहीं सकता? न वहां कोई दोष लगाने वाला था, न कोई साक्षी था, और न कोई वकील मुख्तार

था। केवल वेही पवित्र कार्य्यालय के परिचित लोग काले वस्त्र पहिने चुपके चुपके इधर उधर टहलते थे। बधिक और शिकंजा नीचे अंधेरी कोठरी में उपस्थित थे। उससे केवल यह कहा गया था कि जब से तुमने यह कहा है कि इस लोक के सिवाय और भी बहुत से लोक हैं, तब से तुमने स्वयं नास्तिकता का भारी सन्देह अपने शिर पर लिया है। उससे अपने भ्रम का खंडन करने और उसे शपथ खाकर छोड़ देने के लिये कहा गया, परन्तु उसने कहा कि जिस बात को मैं सत्य जानता हूं उससे मैं इन्कार कर नहीं सकता और न करूंगा, और कदाचित उसने अपने न्यायकारियों से यह भी कहा, (जैसा कि वह पहिले भी बहुधा कह चुका था) कि तुम भी तो अपने अपने हृदयों में यही विश्वास रखते हो। इस मानवी गौरव, अटल धैर्य, और अचल सत्य निष्ठा के दृश्य और उस दूसरे दृश्य के बीच में कितना भारी अन्तर है, जो आज से पन्द्रह शताब्दियों से भी अधिक पहिले मुख्य पादरी क्याफास के दालान के अलाव के पास, बड़े सबेरे और उस समय हुआ था जब "ईश्वर ने मुँह फेर कर पीटर की ओर देखा था"। (ल्यूका कृत इनजील, अध्याय २२, श्लोक ६१)! और तब भी जैसा व्यवहार ब्रनो के साथ किया गया, उसके करने का अधिकार पाने के विषय में धर्मगुरुओं ने पीटर ही को मूलाधार ठहराया है।

परन्तु कदाचित अब वह समय आ रहा है जब अगली पीढ़ी इस बड़े भारी धार्मिक दोष का प्रायश्चित्त करेगी, और रोम नगरमें सेंटपीटर के मंदिर में ब्रनो की एक मूर्ति स्थापित की जायगी।

सातवां अध्याय।

पृथ्वी की आयु के विषय का वादविवाद।

(शास्त्रिक सम्मति, कि पृथ्वी केवल छः हजार वर्ष की पुरानी है और वह एक सप्ताह में बनाई गई थी–प्राचीन काल निरूपक विद्या

जिसका मूलाधार प्राचीन आदि पुरुषों के समयों पर है। बाईबिल के भिन्न २ अनुवादों में भिन्न अनुमानों के कारण पैदा हुई कठिनाइयां।

जल प्रलय की पौराणिक कथा—जगत का फिर से आबाद होना बाबिल का गरगज, भाषाओं का मेल—आदि भाषा।

वृहस्पति ग्रह के ध्रुवीय चिपटेपन की कैसिनी कृत खोज—पृथ्वी के ध्रुवीय चिपटेपन की न्यूटन कृत खोज—यह सिद्धान्त, कि पृथ्वी यंत्रिक कारणों से बनाई गई है—जलकृत चट्टानों के विषय में भूगर्भ विद्या सम्बन्धी खोजों से उपरोक्त बात की पुष्टि—जीवधारी जन्तुओं की ठठरियों से उसकी अधिक पुष्टि—बहुत भारी समय मानने की आवश्यकता—विकाशसिद्धान्त से उत्पत्तिसिद्धान्त का हटा दिया जाना—मनुष्य की प्रचीनता के विषय की खोजें।

जगत के समय सूचक और विस्तार सूचक अनेक द्वारा हैं—जगत का समय निर्द्धारित करने वाले वादविवाद करने की शान्ति।)

—:o:o:—

विश्व संसार में पृथ्वी की सच्ची स्थिति बड़े लम्बे और कठिन वादविवाद के अनन्तर स्थिर हुई। धर्म गुरुओं ने अपने सब अधिकार प्रयोग किये थे, यहां तक कि अपने विचारों को स्थित रखने के हेतु मनुष्यों को मरवा तक डाला। परन्तु यह सब कर्तव्य निष्फल हुआ। कोपरनिकस के सिद्धान्त को पुष्ट करने वाली साक्षी अकाट्य हो गई। अन्त में इस बात को सब लोगों ने मान लिया कि हमारे सूर्य सम्प्रदाय में सूर्य ही केन्द्र और सर्वोत्तेजक ग्रह है। पृथ्वी उस सम्प्रदाय की केवल एक और बहुत छोटी वस्तु है।

इस झगड़े के फल से शिक्षित हो कर, जब जगत की आयु का प्रश्न विचार हेतु उपस्थित किया गया, तब धर्मगुरुओं ने वैसा उत्तेजनापूर्ण विरोध नहीं प्रगट किया जैसा कि प्रथमोक्त घटना के विषय में किया था। क्योंकि यद्यपि उनकी मौखिक कथायें फिर भी विपत्ति में पड़ गई थीं, तथापि धर्म गुरुओं के विचार से उन कथाओं पर घातक आक्रमण नहीं हुआ था। अध्यात्म विद्या विशारद धर्मगुरु लोग कहते थे कि पृथ्वी को उसके सर्वोच्च पद से गिरा देना मानों ईश्वर

प्रकाशित सत्यता की नीव खोदना है। परन्तु जगत के उत्पत्ति समय के विषय में सीमाबद्ध वादविवाद करने की आज्ञा दे दी थी। परन्तु वे सीमायें बहुत शीघ्र उल्लंघन की गईं और इस भांति यह वादविवाद भी उतनाही भयंकर हो उठा जितना कि प्रथमोक्त विवाद था।

जब लोग इस विषय पर अर्थात संसार के आदि मूल पर विचार करने के लिये तय्यार थे तब अफलातूंकृत "टाइमियस" नामक ग्रन्थ में लिखे हुये उपदेश को स्वीकार करना सम्भव नहीं था। वह उपदेश यों था कि "मुझ वर्णन करने वाले और तुम न्याय करने वाले को यह स्मरण रखना उचित है कि हम केवल मनुष्य हैं इसलिये यथा सम्भव सत्य पौराणिक कथा को ग्रहण करके यही उचित है कि हम उसकी अधिक जाँच न करें"। सेंट आगस्टाइन के समय से धार्मिक ग्रंथ सब ही वैज्ञानिक विषयों के अन्तिम प्रमाण माने जाते रहे थे और अध्यात्म विद्या विशारदों ने उन्हीं ग्रंथों से काल-निरूपक विद्या और जगत सृष्टि की ऐसी युक्तियां निकाली थीं जो वास्तविक ज्ञान के विस्तार में बाधा रूप प्रमाणित हुईं।

इसकी अपेक्षा कि हम केवल इन युक्तियों के कुछ बड़े २ लक्षणों की ओर इंगित करदें हमें कुछ अधिक करने की आवश्यकता नहीं देख पड़ती क्योंकि उनकी विशेषता बड़ी सरलता ही से प्रत्यक्ष प्रगट होगी। इस भांति उत्पत्ति के छ: दिनों और बिश्राम के एक दिन से यह बात समझी गई कि पृथ्वी कष्ट उठाती हुई छ: हज़ार वर्ष तक रहेगी और तदनन्तर और एक हज़ार वर्ष तक विश्राम-महस्त्री का समय होगा, क्योंकि ईश्वर का एक दिन एक हज़ार वर्ष का माना गया था। यह बात सब लोगों ने मानली थी कि ईसा की उत्पति के समय पृथ्वी लगभग चार हजार वर्ष की प्रचीन थी परन्तु पृथ्वी का इतिहास जानने में यूरोप इतना बेपरवाह रहा था कि सन् ५२७ ई० तक उसके पास स्वयं अपना कोई कालनिरूपक इतिहास न था। तब एक रोमन पादरीने जिसका नाम "डायोनीसियस एग्ज़ीगुअस" वा "छोटा डैनिस" था एक साधारण सम्बत निश्चित किया और यूरोप की वर्तमान ईसाई काल-निरूपक विद्या प्रदान की।

बहुत प्राचीन एतिहासिक सम्वत निकालने में जो ढंग ग्रहण किया जाता था वह गणना करने का था जो विशेष कर मूल पुरुषों के जीवन कालों पर निर्भर था। इन गणनाओं की कमी बढ़ी मिलाने में बड़ी कठिनाई पड़ती थी। जैसा कि उन अछिद्रान्वेषी समयों में मान लिया गया था, यदि मूसा ही उन ग्रंथों का कर्त्ता था जो उसके नाम से प्रसिद्ध हैं तो भी इस बात पर ध्यान नहीं दिया गया कि उसने ऐसी घटनायें वर्णन की हैं जिनमें से बहुत सी उसके पैदा होने से दो हजार वर्ष से भी अधिक वर्षों पहिले हुई थीं। यह आवश्यक नहीं समझा गया कि मूसाकृत 'तौरेत' ग्रंथ पूर्ण ईश्वर प्रेरित ज्ञान समझा जाय, क्योंकि उसकी शुद्धता को सदैव बनाये रखने के लिये कोई उपाय नहीं किया गया। उसकी भिन्न भिन्न प्रतियों में, जो समय से बच गई हैं, बहुत भिन्नता पाई जाती है। इस प्रकार समैरिटन लोग सृष्टि काल से जल प्रलय काल तक १३०७ वर्ष का समय बताते हैं; इबरानी लोग १६५६ वर्ष बताते हैं और यूनानी अनुवादक लोग २२६३ वर्ष लिखते हैं। यूनानी अनुवादकों ने इबरानियों की अपेक्षा सृष्टि काल से इबराहीम तक के समय में १५०० वर्ष और बढ़ा दिये हैं। परन्तु सब साधारण जन इस अनुमान को मानते थे कि सृष्टि काल के लगभग २००० वर्ष बाद जल प्रलय वाली घटना हुई और उसके २००० वर्ष के अनन्तर हजरत ईसा पैदा हुये। जिन लोगों ने इस विषय पर अधिक ध्यान दिया था, उन्होंने कहा है कि ईसा के प्रगट होने के समय के विषय में १३२ सम्मतियों से कम नहीं हैं। इस हेतु उन्होंने कहा कि इञ्जील की गणना अति ठीक स्वीकार करने के लिये दबाव डालना उचित नहीं जान पड़ता; क्योंकि भिन्न भिन्न प्रतियों में बड़ा भेद होने के कारण यह बात स्पष्ट ही है कि उसका पाठ सदैव शुद्ध बनाये रखने के लिये कोई ईश्वरीय आग्रह नहीं हुआ था, और न उसमें कोई ऐसा चिन्ह पाया जाता है जिस से मनुष्य यह जान सकें कि उसका ठीक अनुवाद यही है। जिन अनुवादों का बड़ा आदर था उनमें भी बड़ी बड़ी भूलें थीं। जैसे

यूनानी अनुवादक लोग मैथूसीला को जल प्रलय के बाद तक जीता बतलाते हैं।

ऐसा माना जाता था कि जल प्रलय से पहिले वाले जगत में ३६० दिन का वर्ष होता था। कतिपय मनुष्यों ने तो यहां तक कहा है कि यही मूल कारण है जिस से पृथ्वी का वृत्त ३६० अंशों में विभाजित किया गया है। बहुत से धर्म-विद्या-विशारद लोग कहते थे कि जल प्रलय के समय सूर्य की गति में परिवर्तन होगया और वर्ष में पांच दिन छः घंटे की बढ़ी हो गई। एक यह सम्मति प्रचलित थी कि वह बड़ी जल-प्रलय जगत के १६५६ वें वर्ष के नवम्बर मास की दूसरी तारीख को हुई थी। परन्तु डाक्टर ह्विस्टन जो अधिक शुद्धता चाहता था उस प्रलय का होना २८ नवम्बर को मानता था। कतिपय लोग अनुमान करते थे कि उस जल प्रलय के पहिले इन्द्र धनुष नहीं दिखाई पड़ता था, और अन्य कुछ अधिक समझदार लोगों ने यह अनुमान किया था कि इन्द्र धनुष का निकलना चिन्ह की भांति पहले पहल उसी समय से प्रचलित हुआ। नूह की नौका से निकलने के अनन्तर मनुष्यों को मांस भोजन की आज्ञा दी गई। उस जल प्रलय के पहले वाले लोग बनस्पति खाते थे। यह बात अनुमानित हो सकती है कि उस जल प्रलय ने पृथ्वी के आकार में कोई बड़ा परिवर्तन नहीं किया, क्योंकि नूह ने प्रलय से पहले वाली अपनी जानकारी पर भरोसा करके पृथ्वी को अपने तीन लड़कों में बांट दिया था, अथात् 'जेफेट' को यूरोप दिया, 'शेम' को एशिया और 'हेम' को आफ्रिका। अमेरिका के लिये कुछ प्रबंध न किया गया, क्योंकि अमेरिका का होना नूह को ज्ञात न था। ये मूल पुरुष भयंकर निर्जनता और दलदलों और पथहीन जंगलों से भयभीत न होकर अपने अपने पाये हुये भागों को चले गये और इन महाद्वीपों में बसने लगे।

७० वर्ष में एशिया वाला वंश बढ़ कर कई सौ का हो गया वे मेसोपोटेमिया के मैदानों तक चले गये, और वहां किसी ऐसे विचार से जिसका तात्पर्य्य हम समझ नहीं सकते, एक गरगज बनाने लगे जिसकी चोटी आकाश तक पहुँच सकै। यूसीवियस हमको सूचित

करता है कि यह काम ४० वर्ष तक होता रहा। उन्होंने उसका बनाना नहीं छोड़ा जब तक कि एक दैवी योग से उनकी भाषाओं में गड़बड़ न होगई। उस गड़बड़ ने उन्हें तमाम पृथ्वी पर तितर बितर कर दिया। सेन्ट एम्ब्रोज़ प्रगट करता है कि भाषाओं का यह गड़बड़ मनुष्यों का किया हुआ नहीं हो सकता था। 'ओरीजेन' विश्वास करता है कि देव दूत भी वह गड़बड़ नहीं कर सकते थे।

भाषाओं की इस गड़बड़ ने पादरियों में मनुष्य की आदि भाषा के विषय में बहुत से विचित्र विचार पैदा कर दिये। कुछ लोगों ने अनुमान किया है कि आदम की भाषा केवल संज्ञाओं से बनी हुई थी, और वे संज्ञायें एकाक्षरी थीं और वह गड़बड़ अनेकाक्षरी शब्दों के प्रचार से हुई थी। परन्तु इन विद्वान मनुष्यों ने धर्म ग्रन्थ में लिखी हुई कई एक वार्तालापों पर अवश्य कुछ ध्यान नहीं दिया,—जैसे कि ईश्वर और आदम की वार्तालाप; और सर्प और हौवा की की वार्तालाप, इत्यादि। इन वार्तालापों में भाषा के सब प्रकार के शब्द पाये जाते हैं। परन्तु सब की सम्मति यह थी कि वह आदि भषा इबरानी भाषा थी। एकही मूल पुरुष सब जातियों का पुरखा होने के सिद्धान्तों से यह बात उचित ही थी कि ऐसाही हो।

यूनानी पादरियों ने गणना की थी कि तितर बितर होने के समय बहत्तर जातियां बन गई थीं। सेंटआगस्टाइन भी इस कथन से सहमत है। परन्तु इन गणनाओं में कुछ कठिनाइयां भी मानी गई जान पड़ती हैं। इस भांति शकफर्ड नामक एक विद्वान डाक्टर, जिसने एक अत्युत्तम निज कृत ग्रन्थ (On the sacred and profane history of the world connected) में इन उपरोक्त सब विषयों पर बड़े परिश्रम के साथ लेख लिखे हैं, प्रमाणित करता है कि उन राज्यों में से प्रत्येक राज्य में स्त्री पुरुष और बच्चे मिलाकर २१ वा २२ से अधिक न रहे होंगे।

इस काल निरूपक गणना शैली में जिसका मूलाधार आदि पुरुषों के जीवनकालों पर है, एक महत्व पूर्ण बात यह थी कि वे योग्य पुरुष बहुत बड़ी आयु वाले थे। सब लोग ऐसा मानते थे कि

ज्योतिषी था जिसको १४ वें लुई ने पेरिस की बेधशाला का अफसर बनादिया था। इस कैसिनी ने यह खोज की थी कि बृहस्पति ग्रह गोल नहीं है वरन ध्रुवों पर चिपटा है। यंत्रिक विज्ञान ने प्रमाणिति कर दिया था कि ऐसा रूप कोमल पदार्थ के अपनी धुरी पर घूमने का आवश्यक फल है, और यह भी प्रामाणित किया था कि जितना ही शीघ्रगामी यह घुमाव होगा ध्रुवों पर उतना ही अधिक चिपटा-पन होगा या यों कहिये कि मध्यस्थ भाग उतना ही अधिक उभरा हुआ होगा।

निरे यंत्रिक विचारों से न्यूटन ने अनुमान कर लिया था कि बहुत अधिक नहीं तो कुछ कुछ इसी भांति का रूप पृथ्वी का होगा। इसी उभड़े हुये भाग के कारणही सम्पात होता है, जो २५८६८ वर्ष में पूरा होता है और इसी कारण से पृथ्वी का अक्षविचलन भी होता है जिसको ब्रैडले ने ज्ञात किया था। हम पहिले ही कह आये हैं कि पृथ्वी का सायन व्यास ध्रुवीयव्यास से लगभग २६ मील बड़ा है।

पृथ्वी के चिपटेपन से दो बातें ज्ञात होती हैं (१) यह कि पृथ्वी पहिले एक कोमल दशा में रही है, और (२) यह कि यंत्रिक कारणों द्वारा बनी है।

परंतु यह यंत्रिक कारणों का प्रभाव केवल पृथ्वी के ऊपरी बनावट ही से नहीं प्रगट होता, वरन वह उन पदार्थों को ध्यान सहित देखने से भी प्रगट होता है जिन पदार्थों से पृथ्वी बनी हुई है।

यदि हम जल कृत चट्टानों पर विचार करें तो उनका समूह कई मील मोटा पाया जाता है, परन्तु वे निश्चय ही धीरे धीरे संग्रहीत हुई हैं। जिस पदार्थ से वे बनी हैं, वे पदार्थ पुरानी भूमि के काटकूट से लिये गये हैं। वे कटे छटे भाग नदियों में बह गये, और नवीन नवीन स्थानों तक पहुँच गये। ऐसी बातें जो अब भी हमारे देखते होती हैं कोई बड़ा फल पैदा करने के लिये बहुत समय चाहती हैं। अर्थात जल द्वारा संग्रहीत पदार्थ इस भांति एक शताब्दी में केवल कुछ इञ्च ही मोटा हो सकता है। तब जो संग्रह कई हज़ार गज़ का मोटा हो उसकी बनावट के समय के विषय में हम को क्या कहना चाहिये ?।

मिसिर देश का समुद्रतट दो हज़ार वर्षों से अधिक समय से लोगों को ज्ञात है। इतने समय में नील नदी में बह आये हुए पदार्थों से वह समुद्र-तट भूमध्यसागर की ओर इतना बढ़गया है कि स्पष्ट ज्ञात होता है। मिसिर देशका समस्त समुद्र तटस्थ भाग इसी प्रकार बना है। मिसीसिपी नदी के मुहाने के निकट वाला समुद्र तट ३०० वर्ष से ज्ञात है और तब भी इतने समय में वह समुद्र तट मेक्सिको की खाड़ी की ओर कुछ भी नहीं बढ़ा। परन्तु किसी समय उस नदी का डेल्टा सैन्टलुई के पास था, जो अब हाल वाले डेल्टा के स्थान से ७०० मील ऊपर की ओर है। मिसिर में, अमेरिका में, और वास्तव में सबही देशों में नदियां थोड़ा २ करके भूमि को समुद्र की ओर बढ़ाती रही हैं। उनके काम की सुस्ती और उस काम की अधिकता हमें यह बात बताती हैं कि हमें उस काम के बनाने के लिये बहुत समय देना चाहिये।

यदि हम झीलों के पटजाने, खुरंडों के जमने, पहाड़ों के कट जाने, समुद्र का अपना तट काटने, चटानों का मूल भाग खुदजाने, बर्सात के पानी और कारबोनिकएसिड से चटानों के टूट फूट पर विचार करें तो भी हम इसी फल तक पहुँचते हैं।

तलछट से बनी हुई भूमि तहें पहले पहल अवश्य ही समधरातल में लगभग चौरस संग्रह हुई होंगी। उस में से बहुत सी तहें या तो समय २ के दौरों से या धीर संचालन से दबाकर सब भांति से कोणदार कर दी गई हैं इन अगणित और बड़े २ झुकावों और टूटनों की हम चाहे जो कुछ व्याख्यायें करें पर उनके पूर्ण होने में बहुत भारी समय का लगना ज्ञात होता है।

वेल्स में कोयला पूरित भूमि तहें अपने धीरे २ निमग्नता से १२००० फीट की मोटाई तक पहुँच गई हैं और नोवास्कोशिया में १४५७० फीट की मोटाई तक पहुँची हैं। यह निमग्नता इतनी मंद गामी और इतनी धीर थी कि क्रमागत तहों में एक दूसरे के ऊपर सीधे वृक्ष खड़े हुये हैं। ४५१५ फीट की मोटाई में ऐसी १७ तहें गिनी जा सकती हैं। वृक्षों की अवस्थाएं उनके डील डौल से प्रमाणित

होती हैं। उनमें से कतिपय वृक्षों की मोटाई चार फीट व्यास की है। ज्यों २ वे धीरे धीरे दबती हुई भूमि के साथ दबते गये त्यों २ क्रमागत तहों में उन पर और विपत्तियां पड़ती गईं। सिडनी की कोयले की खानि में एक दूसरे के ऊपर ५९ ऐसे फोसिल जंगल पाये जाते हैं।

महाद्वीपों के मध्यवर्ती पहाड़ों पर समुद्रीय सीपों के पाये जाने को ईश्वरविद्यावादी लोग जलप्रलय का अकाट्य प्रमाण मानते थे, परन्तु जब भूगर्भ विद्या के पढ़ने पढ़ाने का प्रचार हुआ और यह प्रमाणित हुआ कि पृथ्वी के ऊपरी परत में बहुत से मीठे पानी में रहने वाले जन्तु समुद्रीय पानी में रहने वाले जन्तुओं के साथ इस प्रकार मिले हुए हैं जैसे किसी पुस्तक के पत्रे। तब यह बात प्रत्यक्ष ज्ञात हुई कि केवल एक जलप्रलय ऐसी बातों का अलम् कारण नहीं हो सकती। अर्थात यह बात प्रमाणित हुई कि एक ही स्थान विविध प्रकार के परिवर्तनों और स्थानान्तरों के कारण कभी सूखा स्थान था, कभी मीठे पानी में डूबा हुआ था, और कभी समुद्रीय जल में निमग्न रहा था। यह प्रगट हुआ कि इन परिवर्तनों के पूर्ण होने के लिये लाखों वर्ष दरकार हैं।

पृथ्वी के ऊपरी धरातल से, तथा भारी मोटाई और उसकी तहों की विविध प्रकारता से पाये हुये पृथ्वी की बहुत प्राचीनता के इस प्रमाण में फोलिस ठठरियों पर निर्भरित बहुत से भारी २ प्रमाण और भी बढ़ा दिये गये। जीवधारियों की एक वर्गीय उमरें निश्चित करके यह प्रगट किया गया कि बहुत प्राचीन काल से आज तक वानस्पतिक और पाशविक जीवधारियों में शरीर सम्बन्धी उन्नति होती ही रही है। यह भी प्रगट हुआ कि वे जीवधारी जो पृथ्वी पर इस समय पाये जाते हैं, प्राचीन काल में रहने वाले अगणित जीवधारियों की अपेक्षा बहुत ही कम हैं, और यह बात भी जानी गई कि जितनी जातियों के जीव इस समय पाये जाते हैं वैसी हजारों जातियों के जन्तु होकर मिट गये हैं। यद्यपि विशेष प्रकार के जन्तुओं की विशेष प्रकार की बनावट होने के कारण, मालस्क

समय, कीटसयय, पाशव समय सरीखे शब्द बोले जाते हैं, तथापि नवीन जीवधारियों का प्रचार अकस्मात नहीं हुआ, अर्थात् वे यकायक नहीं पैदा हो गये। वे पूर्वगत समय में धीरें २ उत्पन्नहुये, और अपने निज समय में पूर्णोन्नति को पहुँचे, और तदनन्तर उत्तर काल में धीरे २ विनष्ट हो गये। आकस्मिक उत्पत्ति, आकस्मिक अजीव पैदाइश कोई वस्तु नहीं है, वरन धीरे २ रूप विकार होता है और पूर्व जीवित जीवों से धीरे २ विकाश होकर नवीन जीव बनते हैं। यहां फिर भी वही आवश्यकता आ पड़ती है कि ऐसे प्रतिफलों के होने के लिये बहुत बड़ा समय मानना पड़ता है। एतिहासिक समय के भीतर ऐसे विकाश का कोई अच्छा उदाहरण नहीं मिलता और न किसी प्रकार के जीवों के मिटने का ही उदाहरण मिलता है। तब भी भूगर्भ विद्या सम्बन्धी समयों में ऐसे हज़ारों विकाश और विनाश हुए हैं।

इस कारण से कि मानवी अनुभव के भीतर २ इस भांति का कोई रूपान्तर वा विकाश देखा नहीं गया, बहुत से मनुष्य इस बात की सम्भावना को मानने से ही इन्कार करते हैं, और कहते हैं कि सब भिन्न २ उत्पादक कार्य्यों से पैदा हुए हैं, परन्तु निश्चय ही ऐसा मानने से कि प्रत्येक जाति के जीव अकस्मात नास्ति से अस्ति किये गये हैं ऐसा मानना कि प्रत्येक जाति किसी पूर्वस्थित जाति के अंगों को सुधारते हुये विकाशित हुई है अधिक बुद्धिमानी की बात है। और यह कथन भी कुछ बड़े गौरव का नहीं है कि ऐसे रूपान्तरों का होना किसी मनुष्य ने देखा नहीं। स्मरण रखना चाहिये कि उत्पत्ति का काम भी तो किसी मनुष्य ने नहीं देखा, अर्थात यह कभी नहीं देखा गया कि बिना किसी पैदा करने वाले के कोई जीवधारी अकस्मात पैदा हो गया हो।

आकस्मिक, स्वतंत्र, और असम्बन्ध उत्पत्ति कार्य ईश्वरीय शक्ति का अच्छा उदाहरण हो सकता है, परन्तु प्राचीन जीवों से आज तक के जीवों की बनावट कीं वह अटूट शृङ्खला जिस में प्रत्येक कड़ी अपनी पूर्वस्थित कड़ी से सम्बन्ध रखती है और उत्तरस्थित कड़ी को

सँभालती है केवल यही नहीं प्रमाणित करती कि जीवधारियों की उत्पत्ति एक नियमानुसार होती है, वरन यह भी प्रगट करती है कि वह एक ऐसा नियम है जिसमें कभी परिवर्तन नहीं हुआ। अनन्त युगों से उसके काम में न कोई परिवर्तन हुआ है न वह कभी बन्द हुआ है।

ये उपरोक्त वाक्यखण्ड उस साक्षी के एक भाग का स्वभाव प्रगट कर सकते हैं जिससे पृथ्वी के आयुनिरूपक सिद्धान्त के विचार में हम से काम पड़ेगा। भूगर्भ विद्या विशारदों के अटूट परिश्रमों द्वारा इतने अधिक प्रमाण इकट्ठा हो गये हैं कि उनका विदीवार हाल लिखने के लिये बहुत से ग्रंथों की आवश्यकता है। वे प्रमाण सब प्रकार की चट्टानों से प्रकाशित प्राकृतिक घटनाओं से लिये गये हैं, अर्थात् जलकृत और अग्निकृत चट्टानों और रूपान्तरित चट्टानों से। जलकृत चट्टानों से वह साक्षी मोटाई, टेढ़ाई और उनकी एक दूसरे से अनमिलित स्थिति निश्चित करती है, और यह भी कि किस भांति मीठे पानी में पैदा होने वाले जीवधारी समुद्रीय पानी में रहनेवाले जीवधारियों से मिल गये हैं, और कैसे जलकृत कटाव के मन्दगामी कारणों द्वारा बहुत बड़े बड़े पदार्थिक ढेर स्थानान्तरित कर दिये गये हैं और बड़े बड़े नवीन भौगोलिक धरातल बना दिये गये हैं; और किस भांति महाद्वीप ऊंचे नीचे हो गये हैं अर्थात् उनके समुद्रतट समुद्र में डूब गये हैं वा समुद्र तट वा समुद्रस्थ पर्वत समुद्र के और भीतर की ओर चले गये हैं। वह साक्षी प्राणीशास्त्र सम्बन्धी और बनस्पति शास्त्र सम्बन्धी बातों पर भी विचार करती है, अर्थात् उत्तरोत्तर समयों के पशुओं और पेड़ों पर विचार करती है और बतलाती है कि कैसे एक यथाक्रम ढंग से जीवधारियों, पेड़ों और पशुओं की शृङ्खला उनके सन्दिग्ध प्रारम्भ से हमारे समय के निश्चित रूप तक चली आरही है। पेड़ों के बिगाड़ से पैदा हुए बिबिध भांति के कोयलों की तहों से जो घटनायें प्रगट होती हैं, वे केवल पृथ्वी के वायुमंडल के ही परिवर्तन नहीं प्रमाणित करतीं, वरन जल वायु के संसारव्याप्त परिवर्तनों को भी प्रमाणित करती हैं। अन्य घटनाओं से वह साक्षी प्रमाणित करती है कि शीतोष्णता

में भी परिवर्तन हुये हैं, अर्थात् कोई कोई समय ऐसे हुए हैं जब जब गरमी अधिक बढ़ी रही है, और कोई समय ऐसे हुए हैं जब वर्तमान महाद्वीपों के बड़े बड़े भाग ध्रुवीय हिम से ढके रहे हैं और इन्हीं समयों का नाम हिमानी युग था।

भूगर्भ विद्या विशारदों का एक समूह बड़ी भारी साक्षी पर अपने तर्क की नीव रख कर यह बतलाता है कि यह सर्व पृथ्वी पिघली हुई वा कदाचित वाष्पीय दशा से लाखों युगों के बीतने पर गरमी निकालते २ ठंढी हुई है और इस वर्तमान काल के शीतोष्णीय समता को पहुँची है। ज्योतिषीय निरीक्षण इस अर्थ को अधिक गौरव देते हैं और विशेष कर उतनी ही दूरतक जहां तक सूर्य सम्प्रदाय के ग्रहों का सम्बन्ध है। यह बात ऐसी घटनाओं से और भी पुष्ट होती है जैसे कि पृथ्वी का हलका मध्यम घनत्व, गहराई के साथ २ गरमी का भी बढ़ना, ज्वालामुखी पहाड़ों और जलस्रोतों की प्राकृति घटनायें और अग्निकृत और रूपान्तरित चटानों की घटनायें। इन भूगर्भ विद्या विशारदों के विचारों के अनुसार रूप परिवर्तनों के होने के लिये लाखों शताब्दियां चाहिये।

परन्तु कोपरनिकस की शैली के विचारों के अनुसार यह बात स्पष्ट है कि हम पृथ्वी की उत्पति और उसके जीवन के विषय में केवल एक पृथ्वी ही पर नहीं विचार कर सकते, वरन हमें उसके साथ वे सब ग्रह भी मिला लेना चाहिये जिनके समूह में वह परिगणित है। इतनाही नहीं वरन इससे भी अधिक हम केवल इसी सूर्य सम्प्रदाय तक अपने को सीमाबद्ध नहीं कर सकते वरन हमें सब ग्रह उपग्रह वाले जगतों को भी इस विचार में मिला लेना चाहिये। और इस हेतु से कि हम उनकी पारस्परिक असीम दूरी से परिचित हो चुके हैं, हम इस बातके मानने के लिये तय्यार हैं कि उनको पैदा हुए अनन्त समय हो गया। कोई २ सितारे इतनी दूर हैं कि उनके प्रकाश को, अति शीघ्रगामी होने पर भी, हम तक पहुँचने में हज़ारों वर्ष लगे हैं। इस हेतु फल यह निकलता है कि वे अब से कई हज़ार वर्ष पहले पैदा हुए होंगे।

सब ही भूगर्भविद्याविशारद् इस विषय में सहमत हैं (एक भी इस बात का विरोध नहीं करता) कि पृथ्वी की उत्पत्ति का समय बहुत कुछ बढ़ाया जा सकता है और उसको ठीक करने के उद्योग भी किये गये हैं। इन में से कतिपय उद्योग ज्योतिष सम्बन्धी हैं, और कतिपय पदार्थविद्यासम्बन्धी। इस भांति अंतिम हिमानी युग के आरम्भ का निश्चय करने का हेतु भूकक्षा की उत्केंद्रता के परिज्ञात परिवर्तनों द्वारा लेखा लगाने से जान पड़ा कि उस समय से अब तक २५०००० वर्ष बीते हैं। यद्यपि भूगर्भविद्या सम्बन्धी समयों की अनन्तता के सर्व मान्य स्वयंसिद्ध अनुमान मानलिये जा सकते हैं, तथापि ऐसे लेखों का मूलाधार अनिश्चित सिद्धान्तों पर होने के कारण वे लेखे अकाट्य प्रमाण नहीं दे सकते।

परन्तु इस विषय पर वर्तमान वैज्ञानिक भाव से विचार करके देखने से स्पष्ट ऐसा ज्ञात होता है कि धार्मिक शास्त्र कारों के विचार जैसा कि मूसा कृत पुस्तकों से प्रगट होता है, माननीय नहीं हो सकते। कई बार ऐसे उद्योग किये गये हैं कि शास्त्रोक्त बातों को वैज्ञानिक बातों से मिलावें, परन्तु वे शास्त्रोक्त बातें असन्तोष प्रद् प्रमाणित हुई हैं। मूसा लिखित समय बहुत छोटा है, उत्पत्ति का क्रम शुद्ध नहीं, और ईश्वरीय हस्ताक्षेप बहुत अधिक माननीय है। और यद्यपि वह विषय उसी प्रकार प्रगट किया गया है जैसे उस समय के मनुष्यों के विचार थे जब उनके चित्त प्राकृतिक ज्ञान को प्राप्त करने के लिये उत्सुक हुये थे, तथापि वह ढंग अब पृथ्वी की छोटाई और विश्व की बड़ाई के विषय वाले वर्तमान विचारों से नहीं मिलता।

हाल की भूगर्भविद्या सम्बन्धी खोजों में से एक खोज विशेष मनोरंजक है। वह यह है कि पृथ्वी की बनावट में मनुष्यों की ठठरियां और उनकी बनाई हुई वस्तुएं पायी गई हैं, जो कि भूगर्भविद्या के अनुसार अभी हालही की हैं, पर इतिहास के अनुसार वे बहुत पुरानी हैं।

मनुष्यों की पत्थरीभूत लाशें और उनके भद्दे हथियार जो चिपटे या खुरखुरे चकमक के, वा चिकने पत्थरों के, वा हड्डियों के बने हुये

थे, यूरोप की गुफाओं, बहावों, या कच्चे कोयले की खानों में पाई गई हैं, उनसे ज्ञात होता है कि वे जंगली मनुष्य थे, आखेट करके वा मछली मारकर अपना जीवन व्यतीत करते थे। हाल की खोजों से विश्वास होता है कि मनुष्य का अस्तित्व भूगर्भ विद्या सम्बन्धी तीसरे समय तक खोज निकाला जा सकता है, परन्तु वे मनुष्य बहुत ही नीची श्रेणी के होंगे। वह (मनुष्य) दक्षिणीय हाथी, थुथनी दार गैंड़ों और बड़े दरियाई घोड़ों का समसामयिक था, और कदाचित उससे भी प्राचीन समय में मैस्टोडन (Mastodon) नामक जंतु का भी समसामयिक रहा हो।

भूगर्भ विद्यासम्बन्धो तृतीय समय के अंत में कुछ ऐसे कारणों से जो अब तक निश्चित नहीं हुये पृथ्वी के उत्तरीय गोलार्द्ध में गरमी बहुत कम हो गई। अत्यंत प्रतप्तदशा से वह हिमदशा तक पहुँच गया। बहुत समय बीत जाने पर उसकी गरमी फिर बढ़ी और वह हिम समूह जो उसे बहुत समय तक ढाँके रहा था पिघल गया। दुबारा फिर गरमी की कमी हुई और बर्फ फिर बढ़ा परन्तु उतना नहीं जितना कि पहिलीबार। यहीं समय भूगर्भ विद्या सम्बन्धी चतुर्थ समय है। इस समय में धीरे २ सरदी गरमी उस दरजे तक पहुँच गई जैसी अब वर्तमान है। पानी की तलछट से जम जम कर जो भाग बन रहे थे उनके पूर्ण होने में हजारों शताब्दियां लग गईं। इस चौथे समय के आरम्भ में गुफा निवासी रीछ तथा शेर, जल और स्थल निवासी दरियाई घोड़े, गहरे नथुनों वाले गैंड़े और झबरे हाथी मौजूद थे। वास्तव में झबरे हाथी बहुत थे। वे शीत देशों में बड़े आनन्द से रहते थे। धीरे २ हरिण, घोड़े, बैल, और जंगली भैंसे बहुत बढ़ गये, और उसका भोजन छीनने लगे। कुछ तो इसी कारण से और कुछ गरमी बढ़ने से उसकी जाति बिनष्ट हो गई। मध्य यूरोप से हिरण भी हट गया। हिरण का चला जाना ही चतुर्थ समय का अंत सूचित करता है।

इसलिये पृथ्वी पर मनुष्य के आगमन के समय से आज तक अपार समय गुज़र गया। जलवायु और पशु संसार में धीरे धीरे

बहुत बड़े बड़े परिवर्तन हो चुके; और वेही कारण अब भी अपना काम किये जाते हैं। यह भारी समय हम अंकों से नहीं प्रगट कर सकते।

यह बात संतोष जनक रीति से प्रमाणित हो चुकी है कि "वास्क" नामक लोगों के सम जातीय लोगों का पता 'नियोलेथिक' समय तक लगाया जा सकता है। उस समय में बृटिश द्वीप समूह का धरातल परिवर्तन हो रहा था जैसा कि अब आजकल स्केन्डीनेविया प्रायद्वीप में हो रहा है। स्काटलैण्ड का धरातल ऊपर उठ रहा था और इङ्गलैण्ड का धरातल नीचे को धँसता जाता था। 'प्लीस्टोसीन' समय में मध्य यूरोप में शिकारियों और मछुओं की एक उजड्ड जाति रहती थी जो इस्कीमाक्स जाति से बहुत मिलती थी।

स्काटलैण्ड के पुराने बरफी बहाव में मनुष्य की ठठरियाँ पत्थरीभूत हाथियों के साथ साथ पाई जाती हैं। इसी से हमें उस उपरोक्त समय का पता लगता है जब यूरोप का बहुत बड़ा भाग उस बरफ़ से ढका हुआ था जो ध्रुवीय देशों से दक्षिणीय अक्षांशों तक फैला हुआ था और हिमानी नद के रूप में पहाड़ों की चोटियों से मैदानों में उतरता था। बरफ और पाला के इस विप्लव में पशुओं की अगणित जातियाँ विनष्ट हो गईं परन्तु मनुष्य बचा रहा।

अपनी प्राथमिक जंगली दशा में भी, जब अधिकतर फल, मूल और सीपदार मछलियों को खा कर जीवन व्यतीत करते थे, मनुष्य के पास एक ऐसी बात थी जो अन्त में निश्चय ही उसे सभ्य बना देती। वह आग बनाना जानता था। कच्चे कोयले की तहों में उन वृक्षों के ठठरों के नीचे जो उन स्थानों में बहुत दिन से नापैद हो चुके हैं, मनुष्य के स्मारक चिन्ह अबतक पाये जाते हैं अर्थात् उसके वे हथियार जो उसी के साथ साथ ठीक क्रम से एतिहासिक समय स्पष्ट प्रगट करते हैं। ऊपरी धरातल से थोड़ीही गहराई पर पीतल के हैं, और उससे नीचे हड्डी वा सींगों के, और अधिक नीचे चिकने पत्थर के और सब से नीचे तराशे या खुरदुरे पत्थर के हथियार पाये जाते हैं। इन तहों की उत्पति का समय चालीस या पचास हज़ार वर्ष से कम का नहीं अनुमान किया जा सकता।

फ्रान्स देश और अन्य देशों में जो जो गुफायें देखी गई हैं वे पत्थरयुग की साक्षी में पत्थर की बनी हुई कुल्हाड़ियां, छुरियां, भाले, तीर की गांसियां खुरचुनिया और हथौड़े देती हैं। खुरदुरे पत्थर के समय से चिकने पत्थर के समय तक का परिवर्तन बहुत धीरे धीरे हुआ है। वह समय उसी समय से मिलता है जब कुत्ते पाले गये अर्थात शिकारी जीवन के समय से। वह हज़ारों शताब्दियों का है। तीर की गांसियों का प्रगट होना धनुष का अन्वेषण इङ्गित करता है, और यह भी प्रगट करता है कि मनुष्य अपना बचाव करने की दशा से दूसरों पर आक्रमण करने की दशा तक उन्नति कर गया था। गांसीदार तीरों का प्रचार प्रगट करता है कि अन्वेषण शक्ति कैसे प्रकाश कर रही थी। हड्डी और सींगों की नोकदार चीज़ों का प्रचार प्रगट करता है कि शिकारी लोग छोटे छोटे पशुओं और कदाचित पक्षियों का भी शिकार करने लगे थे। और हड्डी की बनी हुई सीटियां प्रगट करती हैं कि वे अन्य शिकारियों से वा अपने कुत्ते से हिले लिले रहते थे। खुरचुनी, छूरियां जो कि चकमक की बनी हुई हैं, प्रगट करती हैं कि वे चमड़े के पहिनने के काम में लाते थे, और भद्दे सूजे और सूईयां चमड़े के कपड़े बनाये जाना प्रगट करती हैं। छेद की हुई सीपें जिनकी चूड़ियां और हार बनते थे प्रमाणित करती हैं कि शारीरिक बनाव शृंगार की अभिलाषा कितनी जल्द पैदा हो गई थी। रंगों के तय्यार करने के आवश्यक औज़ार प्रगट करते हैं कि वे अपने शरीर को रँगते थे वा कदाचित गुदना गुदाते थे; और पदवी सूचक छड़ियां इस बात की साक्षी देती हैं कि उनमें जाति पांति का प्रबंध प्रारम्भ हो गया था।

इन प्राथमिक मनुष्यों की कारीगरी के प्रथम चीजों पर हम बड़े चावसे दृष्टि डालते हैं। वे हाथी दांत के टुकड़ों और हड्डियों के टुकड़ों पर अपने समय के पशुओं के खुदे हुये चित्र और भद्दे पाण्डुचित्र छोड़ गये हैं। इन एतिहासिक समय से पहिले वाले चित्रों में कभी कभी झबरे हाथियों के चित्र और हरिणों के लड़ने के चित्र पाये जाते हैं। किसी चित्र में कोई मनुष्य भाले से मछली मार रहा है और

किसी में यह दृश्य दिखाया गया है कि भाले लिये हुये नंगे आदमी शिकार कर रहे हैं। मनुष्य ही एक ऐसा जीवधारी है जो चित्र खींचने का चाव और अग्नि से लाभ उठाने की अभिलाषा रखता है।

सीपों के ढेर, जिनमें हड्डियां और सीपें मिली हुई हैं, जिनमें से कई एक बहुत बड़े २ और कांसा–युग के पहले के कहे जा सकते हैं, और जो पत्थरों के औज़ारों से भरे हुये हैं, अपने सब ही भागों से अग्नि के प्रयोग के चिन्ह प्रगट करते हैं। ये ढेर बहुधा वर्तमान समुद्र तटों के निकट पाये जाते हैं, परन्तु कभी २ बहुत दूर भीतरी देश में भी पाये जाते हैं, और कहीं २ तो समुद्र तट से ५० मील की दूरी पर मिलते हैं। इन में जो वस्तुयें सम्मिलित हैं और इनके स्थान, यह प्रगट करते हैं कि वे विनष्टभूत दूध पिलाने वाले बड़े पशुओं के अनन्तर के हैं, परन्तु पालतू पशुओं के पहले के हैं। कहा जाता है कि इन ढेरों में से कोई २ ढेर एक लाख वर्ष से कम का नहीं हो सकता।

स्वीटज़रलैण्ड में झील तटस्थ निवासस्थान (अर्थात वे झोपड़े जो टीलों पर वा काष्ठखण्डों पर मुलायम शाखायें लपेट कर बनाये जाते थे) पत्थर युग में बनना प्रारम्भ हुये थे और कासा युग तक बनते ही रहे, जैसा कि उनके साथ वाले औज़ारों से अनुमान किया जा सकता है। उसके बाद वाले समय में कृषिक जीवन स्वीकार करने के बहुत से प्रमाण पाये जाते हैं।

ऐसा अनुमान न करना चाहिये कि वे समय, जिनको भूगर्भ विद्याविशारद लोग सभ्यता के हेतु की गई मानवी उन्नति के कई विभागों में विभाजित करते हैं, एक दूसरे के बाद अकस्मात आजाने वाले ऐसे समय थे जो सब मनुष्य जाति के लिये समसामयिक होना सत्य ठहरा सकें। इस प्रकार अमेरिका के घूमनेवाले इंडियन केवल अब पत्थर युग से बाहर निकल रहे हैं। वे अब भी बहुत से स्थानों में चकमक की गांसी लगे हुये तीरों से सुसज्जित देखे जाते हैं। अभी यह कल्ह की बात है कि उनमें से कुछ लोगों ने अँगरेजों से लोहा, आग्नेय अस्त्र और घोड़े पाये हैं।

जहां तक खोजें की गई हैं, उनसे यह निश्चय ज्ञात होता है कि मनुष्य का अस्तित्व लाखों वर्ष प्राचीन काल से चला आता है। यह बात अवश्य स्मरण रखना चाहिये कि ये खोजें बहुत हाल के समय की हैं और बहुत थोड़े से प्रदेश ही में सीमा बद्ध हैं। उन प्रदेशों में अभी तक खोजें नहीं की गईं जो ठीक २ मनुष्य के प्रथम निवासस्थान अनुमान किये जा सकते हैं।

इस भांति धर्म गुरुओं की कालनिरूपक विद्या के छः हज़ार वर्षों से हमें बहुत आगे बढ़ना पड़ता है। यूरोप के अन्तिम हिमानी काल को २५०००० वर्ष के समय से कम समय देना एक कठिनाई की बात है और मनुष्य का अस्तित्व उस से भी पहले का है। परन्तु केवल एक यही बड़ी बात हमें कठिनाई में नहीं डालती, वरन् हमें यह भी मानना पड़ता है कि सर्व प्रथम मनुष्य जाति पाशविक दशा में थी और पुन: धीरे २ और क्रम क्रम से उसने विकाश पाया।

परन्तु मनुष्य जाति की यह पाशविक और एकान्त निवासी दशा एडिन के बागीचे की बैकुण्ठीय सुख शान्ति के बहुत विरुद्ध है। और मानवी पतनसिद्धान्त से मीलान नहीं खाती जो और भी कठिन बात है।

इस अध्याय का विषय उसके उचित कालक्रम से न रखने के लिये मुझे विवश होना पड़ा है, क्योंकि जगत के प्रकृत के विषय में जो कुछ मुझे कहना था वह पूर्ण रीति से और स्वतन्त्र भाव से कहना था। पृथ्वी की उमर के विषय में जो वादविवाद हुए वे उस वादविवाद के बहुत दिन बाद हुये जो सत्य के लक्षण के विषय में हुआ था, अर्थात् रिफारमेशन के बाद। वास्तव में वे वादविवाद वर्तमान शताब्दी ही में सम्मिलित थे। वे वादविवाद ऐसी शान्ति के साथ किये गये थे कि उनको मुझे झगड़े के बजाय 'वादविवाद' कहना पड़ा जैसा कि इस अध्याय के नाम करण में मैंने लिखा है। भूगर्भ विद्या को उन क्रोध विरोधों का सामना नहीं करना पड़ा जिन्होंने ज्योतिष विद्या पर आक्रमण किया था और यद्यपि अपनी ओर से भूगर्भविद्या ने पृथ्वी को बहुत भारी प्राचीनता देने में बहुग आग्रह किया है, तथापि उसने स्वयं

दरशाया है कि आजतक दिये हुये सब अंकीय अनुमान अप्रमाणित भी हो सकते हैं। इस अध्याय के दत्तचित्त पाठक ने इस अध्याय में दिये अंकों में विरोध अवश्य देखा होगा। परन्तु वे अंक यद्यपि ठीक नहीं हैं यथापि पृथ्वी की प्राचीनता को ठीक ठहराने का दावा कर सकते हैं, और हम को इस प्रतिफल तक पहुँचा देते हैं कि जगत की प्राचीनता से उसके डौल डौल की बड़ाई का भी काम निकल सकता है।

आठवां अध्याय।

सत्य के विषय का झगड़ा।

———:o:———

(प्राचीन तत्व ज्ञान कहता है कि मनुष्य के पास सत्यता को निश्चित करने के हेतु कोई उपाय नहीं है।

प्राचीन ईसाइयों में विश्वास भेद पैदा हुआ–सभाओं ने उन भेदों को मिटाने के लिये उद्योग किया परन्तु व्यर्थ हुआ। अप्राकृतिक चमत्कार और शपथ खाकर प्रमाण देने की चाल निकली।

पोप लोगों ने गुप्त पाप-स्वीकार-प्रथा और धर्म परीक्षक प्रथा का आश्रय लिया। उन्होंने सम्मति भेदों को मिटाने के लिये बड़े भयंकर अत्याचार किये।

जस्टीनियन के स्मृति संहिताओं के प्रगट होने के प्रभाव और साक्षी की प्रकृति के अनुसार धार्मिक नियमों की उन्नति। वे धार्मिक नियम अधिक वैज्ञानिक हो गये।

रिफारमेशन ने व्यक्तिक विचार रखने का अधिकार स्थिर कर दिया– कैथोलिक मत कहता है कि सत्यता का लक्षण धर्मग्रन्थों में है, कैथोलिक मत ने "इन्डेक्स एक्सपरगेटोरियस" सभा द्वारा पुस्तकों का पढ़ना रोक दिया, और सैन्टबारथालोम्यू की रात्रि वाले बध द्वारा विरोध का सामना किया।

प्रोटेस्टेन्ट धर्म के लक्षणों की भांति तौरेत की सहायता की जांच–उन पुस्तकों की कृत्रिम प्रकृति।

विज्ञान के लिये सत्य का लक्षण प्राकृतिक प्रकाशन में ही पाया जायगा. और प्रोटेस्टेन्ट धर्म के लिये वह लक्षण सत्यवादी पोप में ही बसता है)

"सत्य क्या है ?" यह प्रश्न एक रोमन अधिकारी ने बड़ी उत्सुकता के साथ एक विशेष एतिहासिक घटना के समय पर किया था। और दैवीव्यक्ति (ईसा) ने, जो उसके सामने खड़ा था और जिससे प्रश्न किया गया था, कुछ उत्तर न दिया था। इसका उत्तर वास्तव में चाहे उसके चुप रहनेही में हो, तो हो।

यह प्रश्न बहुधा और व्यर्थ रूप से प्राचीन काल में किया गया है, और बहुधा और व्यर्थ रूप से उस समय से आज तक भी होता रहा है, पर अभी तक इसका किसी ने सन्तोषजनक उत्तर नहीं दिया।

यूनान में विज्ञान के उदय के समय जब प्राचीन धर्म कुहरे के समान लोप हो रहा था, उस देश के सदाचारी और विवेकी जन मानसिक निराशा की दशा में पड़ गये थे। अनग्ज़ागोरस बड़े खेद के साथ कहता है कि कोई वस्तु जानी नहीं जा सकती, कोई विषय सीखा नहीं जासकता, कोई विषय निश्चयात्मक नहीं हो सकता, इन्द्रीजन्य ज्ञान सीमाबद्ध है, बुद्धि बलहीन है और जीवन काल छोटा है"। ज़िनोफेन्स कहता है कि "हमारे लिये निश्चित होना असम्भव है, चाहे हम सत्य ही बोल रहे हों"। परमीनाईडीज़ कहता है कि "स्वयं मनुष्य के शरीर की बनावट ही उसे पूर्ण सत्य निश्चय करने से रोकती है"। इम्पीडाक्लीज़ कहता है कि "सबही तत्वज्ञानिक और धार्मिक प्रथायें अविश्वासनीय होना चाहिये, क्योंकि हमारे पास उनके जांचने की कोई कसौटी नहीं है"। डिमाक्रीटस कहता है कि "सत्य वस्तुएं भी हमको निश्चयात्मकता नहीं दे सकतीं। और यह भी कहता है कि मानवी खोज का अन्तिम प्रतिफल यह ज्ञात हो जाना है कि मनुष्य सत्य ज्ञान को पाने के अयोग्य है। और यह भी कहा है कि यदि 'सत्य' मनुष्य के हस्तगत भी हो जावै, तब भी उसे उसका निश्चय नहीं हो सकता"। पिरहो आज्ञा देता है कि "वस्तुओं की जांच करने में हमें अपनी जांच

ठहरा रखने की आवश्यकता पर विचार करना चाहिये, क्योंकि हमारे पास सत्य की कसौटी नहीं है। उसने अपने शिष्यों में इतना गंभीर अविश्वास भर दिया था, कि उन्हें ऐसा कहने का स्वभाव पड़ गया था कि भाई हम कुछ नहीं कहते। नहीं, हम यह भी नहीं कहते कि हम कुछ नहीं कहते"। एपीक्यूरस ने अपने शिष्यों को यह सिखलाया था कि बुद्धि से किसी प्रकार सत्य निश्चय नहीं किया जा सकता"। आरसैसिलास मानसिक और इन्द्रीजन्य ज्ञान दोनों को न मान कर खुल्लम खुल्ला यह कहता था कि 'मैं कुछ नहीं जानता, यहां तक कि अपने अज्ञान तक को भी नहीं जानता"। यूनानी तत्व ज्ञान जिस सर्वव्यापी प्रतिफल तक पहुँचा था वह यह था कि इन्द्रीजन्य ज्ञानों की विरुद्धता का विचार कर के हम सत्य का भेद नहीं जान सकते, और बुद्धि इतनी अपूर्ण है कि हम किसी वैज्ञानिक प्रतिफल की शुद्धता को सत्य प्रतिपादन नहीं कर सकते।

ऐसा अनुमान हो सकता है कि वह सत्य प्रकाश जो ईश्वर की ओर से मनुष्य तक पहुँचता है वह ऐसी शक्ति और स्पष्टता का हो कि वह सब अनिश्चितताओं को तथा सब विरोधों को दबादे। एक यूनानी तत्वज्ञानी ने जो अन्य लोगों की अपेक्षा कम निराश था ऐसा कहने का साहस किया है कि दो प्रकार के धर्मों का एक साथ रहना (जिनमें से प्रत्येक धर्म ईश्वर प्रकाशित होने का दावा करता है) प्रमाणित करता है कि उन दोनों में से कोई भी सत्य नहीं है। परन्तु हमें स्मरण रखना चाहिये कि जब तक वे वस्तुयें वैसी ही न हों, पदार्थिक और दृष्टिगत वस्तुओं के विषय में मनुष्यों को उसी प्रतिफल तक पहुँचना कठिनाई की बात है। यदि ईसा के पैदा होने के ३०० वर्ष पहले तत्वज्ञान की दशा में झगड़ा और अविश्वास था, तो उसकी मृत्यु के ३०० वर्ष बाद वाली धर्म की दशा में भी झगड़ा और अविश्वास हुआ। पायटियर्स के बिशप हिलैरी ने नाईसीन की सभा के समय के लगभग लिखे हुये अपने प्रसिद्ध लेख में यही बात तो कही है:—

वह कहता है कि "यह बात जितनी भयंकर है उतनी ही खेद जनक भी है कि मनुष्यों में जितनी सम्मतियां हैं उतने ही पंथ भी हैं, जितनी प्रवृतियां है उतने ही सिद्धान्त हैं, और हम में जितने ही दोष हैं उतने ही ईश्वर निन्दा के मार्ग भी हैं, क्योंकि हम मनमाने पंथ बना लेते हैं और उसी भांति मनमाने प्रकार से उसकी व्याख्या कर देते हैं। प्रति वर्ष, नहीं वरन् प्रति मास, हम नये पंथ बना लेते हैं और उन्हीं के अनुसार अदृष्ट भेदों का विवरण करते हैं। कभी हम अपने कृत्यों पर पश्चाताप करने वालों का अनुमोदन करते हैं कभी अनुमोदित मनुष्यों को धर्मच्युत करते हैं, कभी हम दूसरों के सिद्धान्तों को जो हमने स्वीकार कर लिये हैं अभिशाप लगाते हैं वा स्वयं अपने सिद्धान्तों को जो दूसरों ने स्वीकार कर लिये हैं बुरा कहते हैं। और परस्पर एक दूसरे को तोड़ ताड़ कर हम लोग एक दूसरे के विनाश का कारण हो गये हैं"।

ये केवल शब्द ही नहीं हैं, वरन इस स्वयं स्वीकृत अभिशाप का तात्पर्य्य वे लोग भली भांति समझ सकते हैं जो उस समय के धार्मिक सम्प्रदायों के इतिहास से भली भांति परिचित हैं। ज्योंही ईसाई मत का पुनीत उत्साह घटने लगा त्योंही विरोध फैलने लगा। धार्मिक सम्प्रदायों के इतिहासकर्ता गण कहते हैं कि "दूसरी ही शताब्दी में विश्वास और बुद्धि का, धर्म और विज्ञान का, धर्म निष्ठा और कल्पना शक्ति का झगड़ा प्रारम्भ हो गया था"। इन विरोधों को शान्ति करने के लिये और कोई सत्य की पूर्ण कसौटी हस्तगत करने के लिये मंत्रप्रद समाजें स्थापित की गईं, जिन्होंने अन्त में सभाओं का रूप धारण किया। बहुत काल तक तो उन्हें केवल सलाह देने का अधिकार था, परन्तु जब चौथी शताब्दी में ईसाई मत राज्याधिकार तक पहुँच गया, तब उन सभाओं की आज्ञायें विवश माननीय हो गईं; क्योंकि वे राज्याधिकार सहित प्रचलित की जाती थीं। इस कारण से धर्म सम्प्रदाय का रुख़ ही बदल गया। वही धार्मिक सभायें जिनको ईसाई मत की महा सभायें कहना चाहिये, और जिनमें दुनिया भर की ईसाई सम्प्रदायों के प्रतिनिधि

होते थे, और सम्राट की आज्ञा से एकत्रित की जाती थीं, और जिनमें सम्राट स्वयं सभापति होता था या अपनी ओर से उन्हीं में से किसी को सभापति होने का अधिकार देता था, सब मत विरोधों को शान्त करती थीं, और वास्तव में ईसाई संसार की पोप थीं। मोशीम नामक इतिहास कार जिसकी ओर मैं विशेष कर ऊपर इंगित कर चुका हूं इस समय के विषय में कहता है कि "कोई बात ऐसी न थी जो अपढ़ मनुष्यों को पादरी होने से रोके, इस हेतु गँवार और अपढ़ लोग, जो सब प्रकार की विद्या को और विशेष कर विज्ञान को धर्मनिष्ठा का शत्रु समझते थे, पादरियों में बढ़ने लगे; और तद्नुसार नीसिया की कौंसिल में जो वादविवाद हुये थे उनसे बड़ी भारी अज्ञानता और पूर्ण मतिभ्रम का उदाहरण मिलता है; विशेष कर उन लोगों की भाषा और व्याख्या में जिन्होंने उस सभा के निश्चित सिद्धान्तों को मान लिया था। वह सभा थी तो बड़ी प्रभाव शाली "परन्तु प्राचीन तार्किक लोग न तो उस सभा के होने के समय, तथा स्थान (जहां वह सभा एकत्रित हुई) के विषय में, और न उसमें सम्मिलित लोगों की गणना के सिषय में सहमत हैं, और न सभापति होने वाले विशपही के विषय में एक मत प्रकाश करते हैं। उस सभा की प्रख्यात दण्डाज्ञा के सच्चे नियम कहीं लिखे हुये नहीं हैं, वा कम से कम हमारे समय तक नहीं पहुंचाये गये"। धर्म सम्प्रदाय एक ऐसी वस्तु हो गई थी जिसको अब हाल की राजनैतिक भाषा में सम्मिलित राज्य कह सकते हैं। सभा की इच्छा अधिक सम्मतियों द्वारा निश्चित की जाती थी, और इन अधिक सम्मतियों को हस्तगत करने के लिये सब प्रकार के छल कपट किये जाते थे; यहां तक कि राज्य वंशीय स्त्रियों के प्रभाव, रिशवत, और अत्याचार भी काम में लाये जाने से नहीं छूटते थे। नीसिया की सभा उठने भी न पाई थी कि सब ही अपक्षपाती मनुष्यों को स्पष्ट ज्ञात हो गया था कि ऐसी सभाओं को धार्मिक विषयों की निश्चित कसौटी मानना बड़ी भारी भूल है। अधिक सम्मतियों के आगे कम सम्मतियां मानी नहीं जाती थीं। बहुत से अच्छे मनुष्यों का यह

एतराज़, कि केवल प्रतिनिधियों की अधिक सम्मति पूर्ण सत्यता को निश्चित करने वाली नहीं मानी जा सकती, हँस कर उड़ा दिया गया। और इसका फल यह हुआ कि उस सभा के विरुद्ध एक सभा की गई और उनकी झगड़ालू और विरोधी आज्ञाओं ने ईसाई संसार भर में हैरानी और गड़बड़ी फैला दी। केवल चौथी ही शताब्दी में १३ सभायें एरियस के विरुद्ध, और १५ सभायें उसके पक्ष में हुईं; और १७ सभायें अर्द्ध एरियन लोगों की हुईं। सब मिला कर ४५ सभायें हुईं। कम सम्मति पाने वाला समूह सदैव उसी अस्त्र के प्रयोग करने का उद्योग करता था जिसको अधिक सम्मति पानेवाले समूह ने निरादर किया हो।

इसके अतिरिक्त इस उपरोक्त अपक्षपाती धार्मिक इतिहास कर्त्ता ने यह भी कहा है कि "इस चौथी शताब्दी में राक्षसी और बिपत्ति जनक दो भूलें स्वीकार करली गई थीं, एक यह कि यदि किसी द्वारा से धार्मिक सम्प्रदाय का स्वार्थ साधन होता हो तो धोखा देना और झूठ बोलना भी एक पुण्य कार्य्य है, और दूसरी यह कि यदि कोई मनुष्य ठीक उपदेश किये जाने पर भी अपने धार्मिक भ्रमों को प्रतिपादन करे और उन्हें मानता ही जावे तो राज्य-दण्ड से और शारीरिक पीड़ा देकर उसे दंडित किया जा सकता है"।

उन समयों में जो बातें सत्य की कसैाटी मानी जाती थीं उन पर दृष्टि डालने से हमें बड़ा आश्चर्य्य होता है। कोई सिद्धान्त उन मनुष्यों की गणना से निश्चित मान लिये जाते थे, जो उस सिद्धान्त के हेतु मर मिटे हों। कोई सिद्धान्त अलैाकिक चमत्कारों द्वारा, पागलों वा प्रेत ग्रहीत मनुष्यों के कथनों द्वारा निश्चित सत्य मान लिये जाते थे। इस भांति सैन्ट एम्बरोज़ ने एरियन लोगों के साथ वादविवाद करते समय उन प्रेतग्रहीत मनुष्योंसे काम लिया था, जिन्होंने विशेष २ धर्महेतुतनत्यागी मनुष्यों के स्मारक दिखलाये जाने पर चिल्ला २ कर इस बात को स्वीकार किया था कि नीसिया की सभा का "ईश्वर के तीन शरीर वाला सिद्धान्त" सत्य है। परन्तु एरियन लोगों ने उस पर यह दोष आरोपण किया था कि उसने इन नारकीय

साक्षियों को बड़ी २ रिशवतें देकर बहकाया है। शपथ लेकर न्याय करने वाले न्यायालय भी पैदा हो चुके थे। तदनन्तर छः शताब्दियों में वे न्यायालय अंतिम न्यायालय समझे जाते थे। उन्हीं के द्वारा ठण्डे पानी, द्वंद युद्ध, अग्नि और क्रास की परीक्षा द्वारा दोषी वा निर्दोषी होना स्थिर किया जाता था।

खेद! इस समय में साक्षी और उसके नियमों के विषय में कैसा महा अज्ञान फैला हुआ था। कोई मनुष्य पानी के कुण्ड में फेंक दिये जाने पर डूब जाता था वा तैर जाता था, किसी के हाथों पर लोहे का प्रतप्त गोला रक्खा जाता था, जिससे कोई जल जाता था वा कोई बच जाता था, किसी का किराये पर लाया हुआ वीर द्वंद युद्ध में हार जाता था वा जीत जाता था, कोई मनुष्य अपने हाथ क्रास की भांति अपने दोष लगाने वाले की अपेक्षा अधिक देर तक फैलाये रख सकता था और बस इन्हीं जांचों द्वारा उसके दोषी वा निर्दोषी होने का निपटारा हो जाता था। क्या यह बातें सत्य की कसौटी हो सकती हैं? क्या यह आश्चर्य की बात है कि उस समय सर्व यूरोप छली चमत्कारों से भर गया था? वे चमत्कार ऐसे हैं जो मनुष्य की साधारण बुद्धि को भी लज्जा दिलाते हैं।

परन्तु अन्ततः वह अटल दिन आही पहुँचा। इस मूर्खता की साक्षी पर स्थित सिद्धान्तों और कथनों ने इस साक्षी को बदनाम कर डाला। ज्योंहीं हम तेरहवीं शताब्दी में पहुँचते हैं त्योंहीं हम देखते हैं कि चारों ओर अविश्वास फैल रहा है। पहिले तो वह अविश्वास धार्मिक सन्यासियों के समूहों में स्पष्ट देखा जाता है, और तदनन्तर सर्वसाधारण में शीघ्रता से फैल जाता है। "दी ऐवर लास्टिंग गास्पेल" सरीखी पुस्तकें तो धार्मिक सन्यासियों में देख पड़ने लगीं और केथरिस्ट, वाल्डेन्स, और पिटरो ब्रूसियन सरीखे समूह सर्वसाधारण में पैदा हो गये। वे सब इस बात में एक मत थे कि "साधारण जन मान्य और स्थापित धर्म भूलों और मूढ़ विश्वासों की खिचड़ी था, और इस बात में भी सहमत थे कि ईसाई लोगों पर पोप का अधिकार अनियम और अत्याचारी था, और रोम का यह दावा

कि रोम का विशप सब संसार का मालिक है और राजाओं, अन्य विशपों, राज्य शासकों, और धार्मिक शासकों में से किसी को धर्म वा राज्य में जब तक रोम का विशप अधिकार न दे, कोई अधिकार नहीं है, बिलकुल निर्मूल और मनुष्य के मानवी अधिकार छीन लेना है"।

अधर्म के इस जलप्लाव को रोकने के हेतु पोप की सरकार ने दो व्यवस्थायें कीं, (१) धर्मपरीक्षक सभा, (२) गुप्त पाप स्वीकार। प्रथम तो दण्ड देने के लिये एक न्यायालय था, और दूसरी व्यवस्था पापी खोज निकालने का द्वारा थी।

स्पष्टशब्दों में यों समझिये कि धर्म रक्षक सभा का काम यह था कि वह डरा कर और नास्तिकता को बड़े भयंकर संयोगों से घेर कर निर्मूल कर डाले। इससे यह बात अवश्य प्रगट होती है कि उस सभा को यह शक्ति थी कि वह निश्चित करले कि नास्तिकता बनती किस वस्तु से है। इस भांति सत्य की कसौटी इसी न्यायालय के हाथ थी जिसका काम यह था कि वह कसबों, घरों, तहखानों, जंगलों, गुफाओं और खेतों में छिपे हुये नास्तिकों को खोज निकाले और उनका न्याय करे। इस न्यायालय ने धर्म के स्वार्थ की रक्षा का काम ऐसी असभ्य शीघ्रता से किया कि सन् १४८१ और १८०८ के बीच में उसने ३४०००० मनुष्यों को दंड दिया जिनमें से लगभग ३२००० जला दिये गये। प्राथमिक समय में जब सर्वसाधारण सम्मति को उसके अत्याचारों के विरुद्ध कोई ऐतराज़ करने का उपाय न था, उस समय उसने बहुधा दोष लगाए जाने वाले दिन ही को बिना अपील किये हुये अनेक उच्चवंशियों, लेखकों, सन्यासियों, एकान्त निवासी साधुओं और प्रत्येक श्रेणी के ग्रहस्थों को मरवा डाला। विचारवान मनुष्य जिस ओर देखते थे उसी ओर वायु मण्डल भयंकर प्रेतों से भरा हुआ दिखाई पड़ता था, कोई मनुष्य स्वतंत्र विचार नहीं रख सकता था, जो रखता था वह दंडित होने की आशा रखता था। धर्म रक्षक सभा के काम ऐसे भयंकर थे कि पैगलियेरीसी का यह कथन हज़ारों मनुष्यों का कथन हो गया था कि "मनुष्य के लिये यह बात असम्भव है कि ईसाई होकर अपने पलंग पर मर सके"।

धर्म रक्षक सभा ने तेरहवीं शताब्दी में दक्षिणीय फ्रान्स की शाखा सम्प्रदायों को विनष्ट करडाला। उसके अविचार संयुक्त अत्याचारों ने इटली और स्पेन में प्राटेस्टेन्ट मत को निर्मूल कर दिया। वह केवल धार्मिक बातों ही तक सीमा बद्ध न रही, वरन वह राजनैतिक अशान्ति के दबाने में भी लग गई। निकोलस ईमरिक जो एरेगन राज्य का लगभग ५० वर्ष तक बड़ा धर्म परीक्षक रहा था और जो सन् १३९९ ई० में मरा था "डाईरेकटोरियम इनक्वीज़िटोरम" नामक पुस्तक में अपने व्यवहार और भयंकर निर्दयताओं का अत्यंत भयंकर वर्णन छोड़ मरा है।

ईसाई धर्म (और वास्तव में मानव बंश) के इस कलंक ने भिन्न२ देशों में भिन्न रूप धारण किये थे। पोप की धर्म परीक्षा ने अत्याचार जारी ही रक्खा और अन्त में प्राचीन धर्म परीक्षक सभाओं की स्थानापन्न हो गई। विशप लोगों का अधिकार पोप के अफसरों द्वारा बिना संकोच हटा दिया गया।

सन् १२१५ ई० की चौथी लेट्रन सभा के काम ने धर्म परीक्षक सभा की शक्ति को बहुत अधिक बढ़ा दिया था, क्योंकि किसी पादरी के सामने निज के तौर पर गुप्त पाप स्वीकार की प्रथा नियमित रूप से स्थिर हो चुकी थी। इसके कारण, जहां तक ग्रहस्थों से सम्बन्ध था धर्म परीक्षक सभा सर्वव्यापी और सर्व ज्ञानी हो गई थी। कोई आदमी ऐसा न था जिसके पापों को वह सभा न जानती हो। गुप्त पाप स्वीकार सुनने वाले पादरी के हाथ में, (जो गुप्त से गुप्त विचार स्वीकार करा लेता था,) किसी मनुष्य की स्त्री और उसके नौकर जासूस की भांति रहा करते थे। जब वह मनुष्य उस भयंकर न्यायालय के सामने बुलाया जाता तब केवल उससे यह कह दिया जाता कि तुम पर नास्तिकता का बड़ा भारी संदेह है। किसी दोष लगाने वाले का नाम न बतलाया जाता था परन्तु उसके स्थान में लोहे की कीलें, और रस्सी, चमड़े का सन्दूक और पच्चड़ वा कष्ट देने के और औज़ार शीघ्रही प्रस्तुत किये जाते थे और चाहे वह निर्दोष हो वा दोषी उसे अपना दोष स्वीकार करना ही पड़ता था।

इस सर्व शक्ति के होते हुए धर्म परीक्षक सभा अपने तात्पर्य्य साधन में निष्फल हुई। जब नास्तिक लोग सभा का सामना न कर सकने लगे तब वे उसे धोखा देने लगे। एक भयंकर अविश्वास चुपके २ सारे यूरोप में व्याप्त होगया, अर्थात् ईश्वरीय नियमों का न होना, आत्मा का अमर न होना, मनुष्य की इच्छा का स्वतंत्र होना इत्यादि। और यह भी माना जाने लगा कि मनुष्य के लिये सम्भव है कि वह अपने अदृष्ट को रोक सके। ऐसे २ विचार धार्मिक सभाओं के अत्याचारी कामों के कारण गुप्त रीति से हज़ारों मनुष्यों के थे। कष्ट उठाने पर भी, वाल्डेन्स लोग इस बात का प्रचार करने को वक रहे थे कि रोम की धार्मिक सम्प्रदाय कांसटेन्टाइन के समय से अपवित्र होती आती है। वे लोग यह कह कर कि इस प्रथा ने ईश्वर प्रार्थना, व्रत रखना, और दान प्रथा को बिलकुल उठा ही दिया है, धन लेकर मुक्ति पत्र देने की प्रथा के विरुद्ध एतराज़ किया करते थे। वे यह भी कहते थे कि मृतक मनुष्यों की आत्माओं के लिये प्रार्थना करना निरा व्यर्थ है, क्योंकि वे शरीर से अलग होते ही वैकुण्ठ वा नर्क में चली जाती हैं। यद्यपि सर्व साधरण लोग ऐसा विश्वास करते थे कि तत्व ज्ञान वा विज्ञान ईसाई धर्म के स्वार्थों को हानि कारक है, तथापि मुसलमानी साहित्य जो उस समय स्पेन में प्रचलित था सब श्रेणी के लोगों में प्रचलित होता जाता था। हम बहुत स्पष्ट रीति से उसका प्रभाव उस समय पैदा हुई सम्प्रदायों में देखते हैं। इस भांति "स्वतंत्र आत्मा भ्रातृ और भगिनी गण" यह मानते थे कि "यह विश्व संसार ईश्वर से निकला है और अन्त में उसी में लय हो जायगा। और बुद्धिमान आत्मायें उसी परमात्मा ईश्वर के भाग हैं, और यह सर्व विश्व एक विराट रूप से ईश्वर ही है"। ये ऐसे विचार हैं कि केवल उन्नति प्राप्त मानसिक दशा में ही हो सकते हैं। इस सम्प्रदाय के विषय में ऐसा कहा जाता है कि उसमें से बहुतों ने स्पष्ट गम्भीरता और आनन्द के साथ जल जाना स्वीकार किया था। उनके कट्टर शत्रुओं ने उन पर यह दोष लगाया था कि वे अपनी विषय वासनाओं को पूर्ण करने के लिये अर्द्धरात्रिक समाजों में, अंधेरे घरों

में स्त्री पुरुष वस्त्र रहित दशा में इकट्ठा होते थे। रोम की सभ्य समाज ने प्राथमिक ईसाइयों पर भी ऐसा ही दोष लगाया था जैसा कि सब लोगों को भली भांति ज्ञात है।

इन सम्प्रदायों में से बहुत सी सम्प्रदायों में अवरोज़ के तत्वज्ञान के प्रभाव स्पष्ट देखे जाते थे। ईसाइयों के विचार के अनुसार उस मुसल्मानी प्रथा ने यह नास्तिक विश्वास पैदा कर दिया था कि आत्मा और परमात्मा का मेल ही ईसाई सिद्धान्तों का अंतिम परिणाम है, और ईश्वर और प्रकृत में परस्पर वही सम्बन्ध हैं जो आत्मा और शरीर में हैं, और संसार में केवल एक ही बुद्धि है और सब मनुष्य जाति भर में एक ही आत्मा सब अध्यात्मिक और बुद्धि सम्बन्धी काम करती है। तदनन्तर जब रिफारमेशन के समय में इटली निवासी अवरोज़ मतावलम्बियों से धर्म परीक्षक सभा ने उनका वृतान्त पूंछा, तब उन्होंने इस बात को प्रदर्शित करने का उद्योग किया कि वैज्ञानिक और धार्मिक सत्यता में बहुत बड़ा अन्तर है, और जो वस्तुयें वैज्ञानिक रीति से सत्य हो सकती हैं वे ही धार्मिक रीति से असत्य हो सकती हैं। यह एक दोष विमोचक युक्ति थी पर अन्त में दशम 'लियो' के समय की लेटरन सभा ने इसकी निन्दा की थी।

परन्तु गुप्त पाप स्वीकृत प्रथा और धर्म परीक्षक सभा के होते हुये भी ये नास्तिक बिचार बने ही रहे। यह बात सत्य कही गई है कि 'रिफारमेशन' के समय में यूरोप के बहुत से भागों में छिपे पड़े हुये ऐसे बहुत से मनुष्य थे जो ईसाई धर्म से बड़ी प्रचण्ड शत्रुता रखते थे। इस अपकारक सम्प्रदाय में 'पाम्पोनेटियस' सरीखे बहुत से अरस्तू के मतावलम्बी थे, और बहुत से बोडिन, रैविले, और मान्टेन सरीखे तत्वज्ञानी और बुद्धिमान मनुष्य थे और दशम 'लियो', बिम्बो, सौर ब्रनो सरीखे बहुत से इटली निवासी थे।

अलौकिक चमत्कार साक्षी ग्यारहवीं और बारहवीं शताब्दी में अमाननीय होने लगी। हिस्पेनोमूरिश तत्वज्ञानियों की कटूक्तियों की छलीप्रकृति की ओर बहुत से अधिक विद्वान ईसाई पदारियों का

ध्यान विवश आकर्षित होने लगा था। सन् ११३० ई० में अलमफ़ी नगर में जस्टीनियन के क़ानूनों के मिलने से लोगों पर निस्संदेह रोमन कानून के पढ़ने की उन्नति में बड़ा प्रभाव पड़ा और कानूनी वा वैज्ञानिक साक्षी की प्रकृति के विषय में उत्तम विचारों के प्रचार करने में भी प्रभाव पड़ा। 'हैलम' ने इस खोज की प्रसिद्ध कथा पर कुछ सन्देह डाल दिया है, परन्तु वह मानता है कि फ्लारेन्स नगर के लारेंटियन पुस्तकालय वाली प्रसिद्ध प्रति ही केवल एक वह प्रति है जिसमें पूरे पचासी अध्याय हैं। उसके बीस वर्ष बाद ग्रेटियन नामक सन्यासी ने "दी डिक्रेटस" नामक एक संग्रह में पोपों की भिन्न२ आज्ञायें, सभाओं की व्यवस्थायें, और धार्मिक सम्प्रदाय के पादरियों और विद्वानों की विज्ञप्तियां एकत्र की थीं जो धार्मिक व्याख्याओं में अति प्राचीन प्रमाण मानी जाती थीं। उसके अनन्तर वाली शताब्दी में नवें ग्रेगरी ने धर्म संहिता के पांच अध्याय प्रकाशित किये और तदनन्तर आठवें 'बोनीफेस' ने एक छठवां अध्याय और बढ़ाया। इनके बाद क्लीमेन्ट के कानून जारी हुये जो धर्म संहिता का सातवां अध्याय बने, और इसी के साथ २ तेरहवें ग्रेगरी ने सन् १५८० ई० में "कारपस ज्यूरिस केनोनिसी" नाम की एक धार्मिक नियमों की पुस्तक प्रकाशित की। धार्मिक व्यवस्थाओं ने धीरे २ बहुत बड़ी शक्ति प्राप्त करली क्योंकि वसीयतनामों, अनाथ बालक रक्षण, विवाहों और स्त्री परित्याग इत्यादि विषयों में इन व्यवस्थाओं ने पूर्णाधिकार प्राप्त कर लिा था।

अलौकिक चमत्कारों की साक्षी के अस्वीकार और उसके स्थान में कानूनी साक्षी के स्थापन होने ने रिफारमेशन के आगमन में सरलता कर दी। अब उस आवश्यकता को मानना सम्भव न था, जिसे अगले समय में, कैन्टरबरी के मुख्य बिशप ऐन्सैल्म ने, निजकृत 'कर डियसहोमो' नामक पुस्तक में जबरदस्ती प्रचलित किया था 'कि हम को पहिले बिना जांचे ही विश्वास कर लेना चाहिए और तदनन्तर विश्वास किए हुए सिद्धान्त को समझने के लिये उद्योग कर सकते हैं'। जब कैजिटन ने ल्यूथर से कहा था कि 'तुझे विश्वास करना

चाहिए कि ईसा के रक्त की एक बूंद सब मनुष्य जाति को क्षमा प्रदान कराने के लिये अलम है और शेष रक्त जो बागीचे में और सूली पर गिरा था वह पोप के लिये पैतृक धन है जिस से मुक्तिपत्र लिखे जांयगे', तब इस राक्षसी कथन के विरुद्ध उस हृष्ट पुष्ट जर्मन निवासी सन्यासी की आत्मा ने विद्रोह मचा दिया, और वह उसे कभी न मानता चाहे उसके प्रमाण में हज़ारों अलौकिक चमत्कार किए जाते। यह मुक्तिपत्रों के बेंचने का लज्जास्पद काम जिसके बल लोग पाप करते थे वास्तव में उन बिशप लोगों ने प्रचलित किया था जो अपने निज विषयानन्दों के लिये धन की आवश्यकता पड़ने पर उसके द्वारा धन प्राप्त करते थे। छोटे दरजे के पादरी और सन्यासी जिनको यह धनप्रद व्यापार करने का अधिकार न था, स्मारक चिन्हों को जलूस के साथ इधर उधर घुमा कर और उनके स्पर्श करने की फीस लेकर धन कमाते थे। उन पोप लोगों ने जिन्हें धन की तंगी रहा करती थी यह देख कर कि यह काम बड़ा धनाकर्षक हो सकता है बिशप लोगों का ऐसे मुक्तिपत्र बेचने का अधिकार छीन लिया और वह अधिकार स्वयं ले लिया और इस व्यापार के चलाने के लिये आढ़तें स्थापित कीं। विशेष कर ये आढ़तिए भीखमंगी सम्प्रदायों के होते थे। इन सम्प्रदायों में बड़ी तीक्षण स्पर्धा थी, अर्थात प्रत्येक सम्प्रदाय इस बात का गर्व करती थी कि ईश्वरीय दरबार में अधिक प्रभाव होने, तथा कुमारी मरियम से और प्रख्यात सन्तों से परिचय होने के कारण उसके दिए हुए मुक्तिपत्र औरों से बढ़कर हैं। स्वयं ल्यूथर के विरुद्ध भी, जो अगस्तायन सम्प्रदाय का सन्यासी था, यह अपवाद फैला दिया गया था कि वह स्वयं पहिले अपनी सम्प्रदाय के स्थान में डामीनिकन सम्प्रदाय वालों को, दशम लियो के समय में जब वह सन् १५१७ ई० में रोम नगर में सैन्टपीटर का गिरजा बनाने के लिये धन एकत्र कर रहा था, इसी भांति के व्यापार का अधिकार देने के कारण, धर्म सम्प्रदाय से निकाल दिया गया था, और इस बात के विश्वास करने का कारण भी है कि स्वयं लियो रिफारमेशन की प्राथमिक दशाओं में इस मिथ्यावाद को बहुत कुछ मानता था

इस भांति येही मुक्तिपत्र रिफारमेशन का तत्कालीन उत्तेजक कारण हुये थे, परन्तु शीघ्र ही वह वास्तविक सिद्धान्त भी प्रगट हो गया जो इस वादविवाद को उत्तेजित कर रहा था। वह यह प्रश्न था कि धार्मिक सम्प्रदाय के कारण बाइबिल की सत्यता स्थिर है वा बाइबिल के कारण धार्मिक सम्प्रदाय की सत्यता है? सत्य की कसौटी कहां हैं?।

इस स्थान में मुझे उस वादविवाद की विशेष २ प्रसिद्ध बातों की व्याख्या करने की आवश्यकता नहीं है, और उन विनाशक लड़ाइयों और रक्तपात के दृश्यों के वर्णन की आवश्यकता है जो उस वादविवाद के कारण हुये। किस भांति ल्यूथर ने विटेम्बर्ग के गिरजाघर के दरवाजे पर ९५ प्रतिज्ञायें रक्खी थीं और और अपने दोषों का उत्तर देने के लिये रोम में बुलाया गया था, और किस भांति भ्रम में पड़ कर उस समय वह एक पोप के यहां से दूसरे के यहां अपील करता फिरता था और किस भांति वह नास्तिकता का दोषी ठहराया गया, और तदनन्तर उसने बड़ी सभा में अपील की थी, और किस भांति पाप मोचन, ट्रेनसब्सटेन्सीएशन, गुप्त पाप स्वीकृति, और मोक्ष विषयक झगड़ों द्वारा निज सम्मति के अधिकार रखने के मूल सिद्धान्त का विचार स्पष्ट उभर पड़ा, और किस भांति सन् १५२० ई० में ल्यूथर धार्मिक सम्प्रदाय से च्युत किया गया और सामना करने के हेतु उस आज्ञा को उसने जला लिया, और धार्मिक व्याख्याओं की पुस्तकों को भी जला दिया जो उसके कथनानुसार सब प्रकार के राज्यशासन को उलट देनेवाली और पापों को सर्वोच्च बना देने वाली थीं, और कैसे उसने इस कुशलता से बहुत से जर्मन राजाओं को अपने पक्ष में कर लिया, और किस भांति वार्म्स स्थान में राज्य दरबार के सामने बुलाये जाने पर उसने अपने कथन के निराकरण करने से इन्कार किया और वार्टबर्ग के किले में छिपे रहने के समय उसके सिद्धान्त फैलते जाते थे, और ज्विंगली की अधीनता में स्वीटज़रलेण्ड में रिफारमेशन होना प्रारम्भ हुआ, और किस भांति इस हलचल के नीचे दबे हुये सम्प्रदायिक विनाश के सिद्धान्त ने जर्मन

निवासियों और स्वीटज़रलेण्ड निवासियों में पारस्परिक स्पर्धाएं और विरोध उत्पन्न कर दिये, और यहां तक कि स्वीटज़रलेण्ड निवासियों को ज्विंगली और कालविन की आधीनता में दो दलों में विभाजित कर दिया, और किस भांति मारबर्ग की सभा और स्पायर्स और आक्सबर्ग की राज्य सभाएं इन अशान्तियों को शान्त करने में विफल मनोरथ हुईं, और अन्त में जर्मन देशीय रिफारमेशन ने स्मालकैल्डे में राजनैतिक समूह का रूप धारण किया, इन सब उपरोक्त बातों के वर्णन करने की आवश्यकता नहीं है। ल्यूथर और कालविन के अनुयाइयों के बीचवाले झगड़ों ने रोम को आशा दिलाई कि कदाचित वह फिर से अपनी हानियों की पूर्ति करले।

पोप 'लियो' इस बात के लखलेने में सुस्त नहीं था कि यह ल्यूथर कृत रिफारमेशन, मुक्तिपत्र बिक्री के लाभ विषयक कतिपय सन्यासियों के मौखिक झगड़े की अपेक्षा, कुछ अधिक गम्भीर विषय था, और पोप ने बड़ी गम्भीरता के साथ विद्रोहियों के दमन करने का काम प्रारम्भ कर दिया। उसने वे भयंकर युद्ध प्रारम्भ कराये जो बहुत वर्षों तक यूरोप को उजाड़ करते रहे और ऐसी शत्रुतायें छोड़ गये जिन को नतो वेस्ट फैलिया के संधिपत्र ने और न १८ वर्ष तक वादविवाद करने के उपरान्त ट्रेन्ट की सभा ने शान्त कर पाया। कोई मनुष्य बिना कांपे हुये उन उद्योगों का वर्णन नहीं पढ़ सकता जो धर्म परीक्षक सभा का विस्तार विदेशों में फैलाने के लिये किये गये थे। सैन्टबारथालाम्यू की रात्रिवाले (सन १५७२ ई०) ह्यूजेनाट लोगों के सार्वजनिक वध से सारा यूरोप—क्या केथेलिक और क्या प्रोटिस्टेन्ट—भय भीत हो उठा था। विश्वासघातकता और अत्याचार में संसार के इतिहास में इस बध के बराबरी का कोई सार्वजनिक बध नहीं पाया जाता।

वह साहसिक उद्योग, जो पोप ने राजा प्रजा में युद्ध, सार्वजनिक बध, और व्यक्तिक बध कराकर अपने शत्रुओं को दबाने के लिये किया था, सर्व भाव से निष्फल हुआ। ट्रेन्ट की सभा का कुछ अच्छा फल न हुआ। यह सभा दिखाव में तो सम्प्रदाय के सिद्धान्त को

शुद्ध करने, उसकी व्याख्या करने, और सूक्ष्म दृष्टि से उसे स्थिर करने के हेतु, उसके नियमों की शक्ति को फिर स्थापित करने के हेतु और उसके प्रचारकों के जीवनचरित्रों को सुधारने के हेतु एकत्रित हुई थी, परन्तु वह ऐसी हस्तपाद रहित थी कि उसके बहुत से मेम्बर इटली निवासी थे और उस सभा पर पोप का बड़ा प्रभाव था। इस कारण प्राटेस्टेंट लोगों ने उसके निश्चयों को नहीं माना।

इस रिफारमेशन का फल यह हुआ कि सब प्राटेस्टेंट सम्प्रदायों ने इस सिद्धान्त को मान लिया कि बाइबिल प्रत्येक ईसाई मनुष्य को ईश्वर पथ दरशाने के हेतु काफी है। पौराणिक कथाएं अमाननीय ठहराई गईं, और निज प्रकार से अर्थ करने का अधिकार स्थिर कर दिया गया। ऐसा मान लिया गया कि सत्य की कसौटी आखिर कार मिल गई।

इस भांति धर्म ग्रंथों को जो प्रमाणिकता प्रदान की गई वह केवल धर्म और सदाचरण ही तक सीमाबद्ध नहीं रही, वरन् वह वैज्ञानिक घटनाओं और प्रकृति के गूढ अर्थों के ऊपर तक फैल गई। बहुतों ने तौ वह बात तक कह डाली जो प्राचीन काल में इपीफेनियस ने कही थी, अर्थात् उसका विश्वास था कि बाइबिल में धातुशास्त्र की पूरी प्रथा पाई जाती है। सुधारक लोग उस विज्ञान को नहीं मानना चाहते थे जो बाइबिल के विरुद्ध हो। उनमें बहुत से मनुष्य ऐसे थे जिनकी सम्मति यह थी कि धर्म और पवित्रता कभी उन्नति नहीं कर सकते जब तक उन्हें विद्या और विज्ञान से पृथक न रक्खा जाय। यह घातक सिद्धान्त, कि बाइबिल में वह सब ही ज्ञान भरा हुआ है जो मनुष्य के लिये लाभदायक और सम्भव है, अब तक बड़े आग्रह से प्रतिपादन किया जाता था। यह सिद्धान्त ऐसा था कि इसे टरट्यूलियन और सेंट आगस्टाइन प्राचीन काल में बड़े हानिकारक प्रभाव के साथ काम में लाये थे, और इसे पोप ने भी बहुत बार ज़बरदस्ती प्रचलित किया था। इस धार्मिक सुधार के अगुआ ल्यूथर और मैलेन्कथन धर्म से विज्ञान को अलग कर देना चाहते थे। ल्यूथर ने प्रकाशित किया कि अरस्तू कृत ग्रंथों का

पढ़ना निरा व्यर्थ है। उसने उस यूनानी तत्ववेता की बेहद हँसी उड़ाई। ल्यूथर कहता है कि "यह अति अधम अरस्तू वास्तव में एक शैतान था, एक भयंकर निन्दक था, एक दुष्ट चापलूस था, मूर्खता का राजा था, एक वास्तविक एपालियन, पशु, और मनुष्य जाति के साथ एक महा भयंकर छल करने वाला था, एक ऐसा मनुष्य था जो विज्ञान जानता ही न था, एक पूरा विषय बिलासी मनुष्य था" ल्यूथर ने उसके अनुयाइयों के विषय में यों कहा है कि वे "टिड्डी, कीड़े, मेढक, और जुएं थे। वह उनसे बड़ी घृणा रखता था। यही सम्मतियां कालविन भी रखता था। पर उसने उन्हें ज़ोर के साथ प्रकाशित नहीं किया। परन्तु इस रिफारमेशन से बिज्ञान का कुछ भला न हुआ। तौरेत में वर्णित प्रोक्रस्टी का बिछौना अब भी उसके सामने था।

ईसाई धर्म के इतिहास में सर्वाधिक अशुभ दिन वह है जिस दिन उसने अपने को विज्ञान से प्रथक कर लिया। उसने ओरीजेन को, जो कि उस समय [सन् २३१ ई०] उसका सम्प्रदाय भर में विशेष प्रतिनिध और सहायक था, सिकन्दरिया से अपना कार्य्य छोड़ कर सीज़रिया को चले जाने के लिये बिबश किया। तदनन्तर कई शताब्दियों तक उसके मुखियों ने, उस समय के बोलचाल के अनुसार बस्तुओं की व्याख्या करने के हेतु धर्म ग्रंथो का भीतरी रस और गूदा निकालने में" अपने को व्यर्थ थका डाला। तीसरी शताब्दी से छठवीं शताब्दी तक का जगत का इतिहास प्रगट करता है कि इन सब बातों का क्या फल हुआ। अज्ञान समय की अज्ञता इसी घातक कूट नीति के कारण थी। यह सत्य है कि जहां तहां दूसरे फ्रेडरिक और दसवें अल्फान्सो सरीखे बड़े २ मनुष्य थे, जिन्हों ने ऊंचे और सर्व व्यापी विचारों से लख लिया था कि सभ्यता के लिये विद्या की कितनी आवश्यकता है, और उस निरानन्द प्रत्याशा के बीच में जो धर्मोपदेशक पत्र ने चारो ओर फैला रक्खी थी उन लोगों ने इस बात को मान लिया था कि केवल विज्ञान ही से मनुष्य की जातीय दशा सुधार सकती है।

तब भी सम्मति भेद के कारण मृत्यु दण्ड दिया जाना प्रचलित ही था। जब कालविन ने जनेवा नगर में सर्वीटस को जलवा दिया था तब यह बात प्रत्येक मनुष्य पर प्रगट हो चुकी थी कि दुःखदायी भाव अभी कम नहीं हुआ। उस तत्व ज्ञानी मनुष्य का दोष उसके विश्वास में था। उसका यह विश्वास था कि ईसाई मत के सच्चे सिद्धान्त नीसिया की सभा के समय से पहिले ही विनिष्ट हो चुके थे, और जगत की एक आत्मा के समान पवित्र आत्मा (होली घोस्ट) प्रकृति के सर्व प्रबन्ध को चैतन्य करती है और सब वस्तुओं के अन्त में ईसा के साथ वह उस ईश्वरीय पदार्थ में लय हो जायगी जहां से वे सब वस्तुएं निकली थीं। इस विश्वास के कारण वह मन्द अग्नि में भून कर मार डाला गया। क्या इस प्राटेस्टेण्ट विश्वास और उस वैनिनी के कैथोलिक विश्वास में कुछ भेद है? वही वैनिनी जिसको सन् १६२९ ई० में धर्म परीक्षक सभा ने "प्रकृति विषयक बार्तालाप" नामक पुस्तक लिखने के हेतु तुलूसी नगर में जला दिया था।

छापे की ईजाद और पुस्तकों के प्रचार ने ऐसे भय पैदा कर दिये थे जिन तक धर्म परीक्षक सभा के अत्याचार पहुँच नहीं सकते थे। १५५९ ई० में पोप चौथे पाल ने "कांग्रीगेशन आफ दी इनडैक्स परगेटोरियस" नामक एक सभा स्थापित की। उसका काम यह था कि "वह छपी किताबों और छपाई जाने वाली हस्त लिखित प्रतियों को जांचे और निश्चय करे कि लोगों को वे पुस्तकें पढ़ने देना चाहिये वा नहीं और उन पुस्तकों को शुद्ध करे, जिनमें बहुत अशुद्धियां नहीं है, और जिनमें कुछ ऐसे अच्छे और हितकर सत्य सिद्धान्त हों जो सम्प्रदाय के सिद्धान्त हों जो सम्प्रदाय के सिद्धान्तों से मिलते हों, और उन पुस्तकों पर दोषारोपण करे जिनके सिद्धान्त नास्तिक और धर्म-बाधक हों, और विशेष२ मनुष्यों को नास्तिक सिद्धान्त मय पुस्तकों के पढ़ने के हेतु विशेष अधिकार प्रदान करे। यह सभा, जो कभी२ पोप के सामने ही होती थी परन्तु साधारणतः कार्डिनल सभापति के महल में होती थी, धर्मरक्षक-सभा के अधिकारों की अपेक्षा अधिक अधिकार रखती थी, क्योंकि वह केवल उन्हीं पुस्तकों को

नहीं जांचती जिनमें रोमन कैथोलिक धर्म के बिरोधी सिद्धान्त हों, वरन् उन पुस्तकों को भी जांचती है जो सदाचार, सम्प्रदायक नियम, और जातीय स्वार्थ से सम्बन्ध रखती हों। उस सभा का नाम उन अक्षरों से बना हुआ है जो अक्षर उन ग्रंथो और ग्रंथकारों के नामों के प्रथमाक्षर हैं जो उसकी आज्ञा से उन्हीं ग्रंथकारों ने बनाये थे"।

निषेध की हुई पुस्तकों की सूची सर्व प्रथम उन ग्रन्थों को प्रगट करती थी जिनका पढ़ना कानून विरुद्ध था, परन्तु इतना काफी न पाये जाने पर जिन पुस्तकों के विषय में कुछ आज्ञा न दी गई थी उनके विषय में निषेध किया गया। ऐसा करना मानो उस सब प्रकार की विद्या को जो धर्म के तात्पर्यों के अनुसार न थी, लोगों तक न पहुँचने देने का अनाधिकार उद्योग था।

ईसाई सम्प्रदाय के दोनों प्रतिस्पर्धी समूह—प्राटेस्टेन्ट और कैथोलिक–इस भांति एक विचार में सहमत थे, अर्थात् किसी ऐसे विज्ञान को प्रचलित न होने देना चाहिए जो उनके बिचार से धर्म ग्रन्थों का पोषक न हो। कैथोलिक सम्प्रदाय के लोग एक मुख्य अधिकारी रखने के कारण अपने अधिकृत देश भर में अपने निश्चित बिचारों का सन्मान करा सकते थे और 'इन्डैक्स एक्सपरगेटोरियस' के उपदेशों का प्रचार करा सकते थे; परन्तु प्राटेस्टेंट सम्प्रदाय जिसका प्रभाव भिन्न जातियों में बहुत से केन्द्रों में फैला हुआ था, ऐसे सीधे और दृढ़ ढंग से काम नहीं कर सकता था। उसके काम करने का ढंग यह था कि किसी दोषी के विरुद्ध धार्मिक घृणा पैदा कर देते थे और उसे कोई जातीय दण्ड देते थे। यह भी एक ऐसा मार्ग था जो किसी अन्य मार्ग की अपेक्षा कुछ कम प्रभाव जनक नहीं है।

जैसा कि हम गत अध्यायों में देख आये हैं, धर्म और विज्ञान में प्रचीन काल से विरोध चला ही आता था, समय२ पर प्रगट हो जाने से वह क्रमागत शताब्दियों में लखा भी जा सकता है। हम उसे सिकन्दरिया के अजायब-घर के पतन में, एरीजीना और विकिलिफ की दशाओं में, उत्पति की धार्मिक व्याख्या के (तेरहवीं शताब्दी के नास्तिकों से) उपहास सहित अस्वीकृत होने में देखते ही हैं। परन्तु

कोपरनिकस, केपलर और गैलीलियो के समय तक विज्ञान के स्वतंत्र होने के अदमनीय उद्योग नहीं हुए थे। सबही देशों में धार्मिक सम्प्रदाय की राज्य नैतिक शक्ति बहुत घट गई थी, और मुखिया मनुष्यों ने जान लिया था कि धर्म की आकाशस्थित नीव विलीन होती जाती थी। विरोधियों को दमन करने वाली युक्तियां जो प्राचीन काल में यथेच्छित भाव से की जाती थीं, अब अधिक लाभ के साथ काम में नहीं लाई जा सकती थीं। जहां तहां तत्व ज्ञानियों के जलाये जाने से धर्म के स्वार्थों में लाभ की अपेक्षा हानि अधिक हुई। ज्योतिष विद्या के साथ वाले बड़े झगड़े में जिसमें गैलीलियो मुख्य नायक था धर्म पूर्ण रीति से पराजित हुआ और जैसा कि हम देख चुके हैं, जिस समय न्यूटन का अमरग्रंथ छप कर प्रकाशित हुआ धर्म उसे रोक न सका, यद्यपि 'लीबनिट्ज़' ने यूरोप भर के विरुद्ध कहा था कि "न्यूटन ने ईश्वर के कुछ सर्वोत्तम गुण छीन लिये हैं और प्राकृतिक धर्म की नींव खोद डाली है"।

न्यूटन के समय से लेकर वर्तमान समय तक धार्मिक सिद्धान्तों से वैज्ञानिक सिद्धान्तों की प्रथकता क्रमशः बढ़ती ही गई। धर्म यह कहता था कि संसार में पृथ्वी ही सर्वोत्तम और केन्द्रस्थ व्यक्ति है और सूर्य, चन्द्रमा और तारागण उसके अधीनस्थ हैं। इन विषयों में धर्म को ज्योतिष ने पूर्ण रीति से पछाड़ दिया। धर्म कहता था कि पृथ्वी पर एक विश्वव्यापी जल प्रलय हुई थी, और केवल वे ही जीवधारी बच सके थे जो नूह की नौका में सुरक्षित रक्खे गये थे। इस विषय में धर्म की भूल भूगर्भ-विद्या ने प्रमाणित करदी। धर्म यह बताता था कि एक प्रथम पुरुष था जो छः हज़ार वर्ष पहले शारीरिक और मानसिक पूर्णता सहित एकाएक उत्पन्न कर दिया गया था और उस पूर्ण दशा से उसका पतन हुआ। परन्तु मनुष्यविद्या ने प्रगट कर दिया है कि मनुष्यजाति भूगर्भ-विद्या कथित समय से भी पहले वर्तमान थी, और यद्यपि एक असभ्य दशा में थी परन्तु तब भी पशुओं से कुछ अच्छी दशा में थी।

बहुत से अच्छे और शुभकांक्षी मनुष्यों ने इस बात का उद्योग किया है कि वे ईसाई धर्म ग्रन्थों के कथनों को वैज्ञानिक खोजों से मिलावें, परन्तु वे सफल मनोरथ नहीं हुये, विभिन्नता इतनी बढ़ती गई, कि पूर्ण विरोध हो गई। पर दोनों प्रतिद्वंदियों में से एक को हारना ही चाहिये।

तब क्या हम उस किताब की सत्यका की जांच नहीं कर सकते जो दूसरी शताब्दीं से अबतक वैज्ञानिक सत्यता की कसौटी की भांति मानी जाती रही है? इतनी बड़ी उच्च पदवी का अभिमान यथास्थित रखने के हेतु उसे मानवी गुण दोष विवेचन का समराह्वान करना ही चाहिए।

प्राचीन काल में ईसाई धर्म के धार्मिक सम्प्रदाय के बहुत से प्रसिद्ध पादरी लोग पूरी तौरैत के कर्त्ता के विषय में सन्देह रखते थे, मुझे इस छोटी पुस्तक में स्थान नहीं है कि मैं उन बातों और युक्तियों का विदीवार वर्णन करूं जो उस समय और उस समय से अब तक इस विषय में की गई हैं। अब इसका साहित्य बहुत बढ़ गया है। परन्तु मैं पाठक को पवित्र चरित्र और विद्वान डीन प्रीडो कृत "दी ओल्ड ऐन्ड न्यू टेस्टामेंट कनेक्टेड" नामक ग्रंथ की ओर इंगित करूंगा। यह ऐसा ग्रंथ है जो गत शताब्दी के साहित्य भूषणों में से एक है। पाठक यह विषय बहुत हाल ही में और पूर्णरीति से विवेचन किया हुआ विशप कोलेंसो के ग्रंथ में भी पा सकता है। निम्न लिखित वाक्यखण्ड इस वादविवाद की वर्तमान दशा का पूर्ण और स्पष्ट अनुभव देगा।

कहा जाता है कि पंचाध्यायी तौरैत ईश्वरीय प्रेरणा द्वारा मूसा ने लिखी है : इस भांति ईश्वर कृत और सत्य पुस्तक होने के विचार से वह केवल विज्ञानियों ही को माननीय वस्तु नहीं है वरन् संसार भर की माननीय वस्तु है।

परन्तु पहले तो यही बात पूंछी जा सकती है कि किसने और क्यों उस पुस्तक की ओर से इतना बड़ा दावा प्रगट किया है?

स्वयं उस ग्रंथ ने तो ऐसा दावा किया नहीं। उसका यह भी

दावा नहीं है कि वह एक ही मनुष्य कृत ग्रंथ है, अथवा वह यह भी नहीं कहता कि मैं ईश्वर का लिखा हुआ हूं।

दूसरी शताब्दी के बाद तक मनुष्य को ऐसा मिथ्या विश्वास करने का कोई बड़ा आग्रह न था। यह आग्रह केवल ईसाई तत्वज्ञानियों की उच्च श्रेणियों में ही नहीं पैदा हुआ, वरन धर्म सम्प्रदाय के उन अधिक प्रचण्ड पादरियों में भी पैदा हो गया जो निज कृत ग्रंथों ही से अविद्वान और अविवेचक प्रमाणित होते थे।

दूसरी शताब्दी से वर्तमान समय तक के प्रत्येक समय ने बहुत भारी योग्यता के ईसाई और यहूदी पैदा किये, जिन्होंने इन दावों को पूर्णतः खण्डन किया है। उनका निश्चय स्वयं उन किताबों की स्वसाक्षी ही पर स्थित है। यह निश्चय स्पष्ट प्रगट करता है कि कम से कम उस ग्रंथ के दो कर्त्ता थे जिनके नाम एलोहिस्टिक और जिहोविस्टिक कहे गए हैं : हपफील्ड मानता है कि जिहोविस्टिक वर्णन में ऐसे चिन्ह हैं जो प्रदर्शित करते हैं कि वे एलोहिस्टिक वर्णन से कोई पृथक ही वस्तु हैं। ये दोनों द्वारा जिनसे ये वर्णन पाये गये हैं, बहुत सी दशाओं में परस्पर विरोधी हैं। इसके अतिरिक्त यह भी कहा गया है कि इबरानी भाषा की हस्तलिखित वा इबरानी बाइबिल की छपी हुई प्रतियों में यह नहीं लिखा है कि ये पुस्तकें मूसा की बनाई हुई हैं, और न 'वलगेट' नामक सत्तर विद्वानों कृत अनुवाद में "मूसा कृत ग्रन्थ" लिखा हुआ है। यह बात केवल हाल के अनुवादों में लिखी है।

यह बात स्पष्ट है कि वे ग्रन्थ केवल मूसा के बनाये नहीं कहे जा सकते, क्योंकि उनमें मूसा की मृत्यु भी लिखी हुई है। यह भी स्पष्ट है कि वे मूसा की मृत्यु से कई सौ वर्ष बाद तक नहीं लिखे गये थे, क्योंकि उन में ऐसी घटनाओं की ओर इंगित किया गया है जो यहूदी राजाओं के राज्य स्थापन के बाद तक नहीं हुई थीं।

किसी मनुष्य को यह भी साहस नहीं हो सकता कि वह उन्हें ईश्वर प्रेरणा से लिखी हुई पुस्तकें कह सके, क्योंकि हाल के जर्मन और अँगरेज़ विद्वानों की दिखलाई हुई उनकी पूर्वापर विरुद्धता, अनुप-

पत्तियां, विरोधोक्तियां, और असम्भवताएं बहुत भारी २ हैं। इन विवेचकों का यह निश्चय है कि तौरेत का पहला काण्ड मौखिक कथा मूलक वर्णन है, और दूसरा काण्ड एतिहासिक विचार से सत्य नहीं है, और सर्व पंचाध्यायी इतिहास तत्व रहित है और मूसा कृत नहीं है। उसमें इतनी असाधारण विरोधोक्तियां और असम्भवताएं हैं जो सर्व पुस्तक की असत्यता प्रगट करने को काफी हैं, और उसमें इतने और ऐसे स्पष्ट दोष हैं कि वे यदि वर्तमान समय के किसी इतिहास में होते तो उसकी सत्यता विनष्ट कर देते।

हेंगस्टेनवर्ग निजकृत "डिज़रटेशन्स आन दी जिन्यूआइननेस आफ दीपेंन्टाट्यूक" में कहता है कि "कल्पित एतहासिक ग्रंथ में जो तनक बड़ा भी हो, बिरोधोक्तियां हो जाना अनिवार्य्य है। मूसा कृत पंचाध्यायी तौरेत में भी अधिक तर यही बात है। यदि तौरेत कृत्रिम है तो उसके इतिहास और कानून सब क्रमागत समयों में बनाये गये हैं, और कई एक शताब्दियों में उन्हें भिन्न २ मनुष्यों ने लिखा है। इस प्रकार के ग्रंथ में बहुत सी बिरोधोक्तियां हो ही जातीहैं, और तदनन्तर वाले सम्पादक का सुधारक हाथ उनको पूर्ण रीति से मिटाने में कभी समर्थ नहीं हो सकता"। इसमें इतना मैं और जोड़े देता हूं कि इज़रा ने स्पष्ट (ऐसड्राज़, २, १४ में) कहाहै कि उसने स्वयं पांच मनुष्यों की सहायता से चालीस दिन के समय में लिखा था। वह कहता है कि बैबिलान में क़ैद हो जाने के समय यहूदियों के प्राचीन पवित्र ग्रंथ जला दिये गये थे, और उन अवस्थाओं का बिदीवार हाल वर्णन करता है जिन अवस्थाओं में ये ग्रंथ बने हैं। वह कहता है कि मैं ने वे सब बातें लिखनी चाहीं जो प्रारम्भ से संसार में हुई हैं। लोग ऐसा कह सकते हैं कि एसड्राज़ नामक ग्रंथ सन्दिग्ध प्रमाण है, परन्तु उसके जवाब में यह भी कहा जा सकता है कि क्या उसके सन्दिग्ध होने का प्रतिफल ऐसी साक्षी से निकाला गया है जो वर्तमान कालिक विवेचना के सामने ठहर सके? ईसाई धर्म के पतन की कथा ईसाई धर्म के लिये आवश्यक न समझी जाती थी.

और प्रायश्चित्त का सिद्धान्त ऐसी निश्चित अवस्था तक न पहुँचा था जहां तक ऐनूरैल्म ने उसे पहुँचा दिया। यह बात साधारणतः सब पादरी मानते थे कि इज़रा ने ही सम्भवतः तौरेत बनाई है। सेंट जेरोमी कहता है कि "मुझे इससे इन्कार नहीं है चाहे तुम मूसा को तौरेत का कर्त्ता कहो वा चाहे ऐसड्राज़ को उस ग्रंथ का संग्रह कर्त्ता कहो"। क्लीमेन्स अलेग्जेंन्ड्रीनस" कहता है कि जब नेब्यूचैडनेज़र के कैद में ये पुस्तकें नष्ट हो गई थीं, तब एसड्राज़ ने देवदूत की शक्ति पाकर उन्हें फिर से लिखी थीं। इरीन्यूस भी यही कहता है।

तौरेत के पहले अध्याय से दशवें अध्याय तक (अन्य अध्यायों की अपेक्षा ये ही अध्याय वैज्ञानिक विषय में अधिक ज़रूरी हैं) में लिखी हुई घटनाएं प्रत्यक्षतः भिन्न २ ग्रन्थकारों के छोटे २ आख्यानिक टुकड़ों से संग्रहीत हैं। परन्तु विवेचना दृष्टि से देखने से उनमें कुछ ऐसी बिशेष बातें मिलती हैं जो यह प्रमाणित करती हैं कि वे अध्याय अरब के मरुस्थल में नहीं वरन् फ्रात नदी के किनारों पर लिखे गये थे। उनमें बहुत से कैल्डिया देश सम्बन्धी तत्व पाये जाते हैं। एक मिश्र देश निवासी भूमध्य-सागर को पश्चिम ओर होना नहीं कह सकता, असीरिया देश निवासी कह सकता है। उनमें वर्णित दृश्य और यंत्र (यदि वे इन शब्दों से कहे जाने के योग्य हों) बिलकुल असीरिया देश, सम्बन्धी हैं, न कि मिश्र देश सम्बन्धी। वे ऐसे ग्रन्थ हैं जिनके मिलने की आशा मिसोपोटेमिया के राजाओं के खपरैले पुस्तकालयों के कोणदार अक्षरों ही में की जा सकती है। ऐसा कहा जाता है कि एक ऐसी कथा अर्थात वही जलप्रलय वाली कथा खोद ही निकाली गई है, और सम्भवता से बाहर नहीं है कि शेष बातें भी इसी भांति प्राप्त करली जायें।

ऐसे ही असीरिया देश सम्बन्धी द्वाराओं से इज़रा ने पृथ्वी और आकाश की उत्पति की कथाएं, एडिन के बाग की कथा, मिट्टी से मनुष्य बनाये जाने की कथा, और उस की पँसुली से स्त्री की उत्पत्ति की कथा, सांप से ललचाये जाने की कथा, पशुओं के नाम करण की कथा, फिरिश्तों और ज्वालामय खड्ग की कथाएं,

जलप्रलय और नूह की नौका की कथाएं, वायु द्वारा समुद्र सोषण, बाबिल के गरगज के बनने और भाषाओं की गड़बड़ की कथाएं, पाई थीं। वह एकाएक ग्यारहवें अध्याय में यहूदियों का ठीक इतिहास प्रारम्भ करता है। उसी स्थान में उसका सार्व भौमिक इतिहास अन्त होता है, और वह केवल एक बंश अर्थात शेम के वंशजों की कथा के वर्णन में लग गया है।

इसी निरोध के विषय में आरजाईल के ड्यूक ने निज कृत "प्राइमवलमैन" नामक पुस्तक में खूब स्पष्ट रीति से कहा है कि शेम के बंशवृत्त में हमें ऐसे नामों की एम सूची मिलती है जो हमारे लिये केवल नाम ही मात्र हैं। वह एक ऐसा बंशवृक्ष है जो उस समय के वर्तमान लाखों घरानों में से केवल कतिपय घरांनों के क्रमागत पुरुषों का पता देने के अतिरिक्त न और कुछ करता है न करने का दावा करता है। उसमें केवल एक दूसरे के बाद होने वाले पुरुषों का क्रम दिया है और यह भी निश्चय नहीं है कि वह क्रम ठीक अथवा पूरा है कि नहीं। इन पुरुषों के पहले वाली अज्ञान दशा का कुछ भी हाल नहीं ज्ञात होता, तब भी उस में कुछ ऐसी बातें हैं जिनके कारण कभी २ थोड़ी देरके लिये अज्ञानान्धकार का पर्दा उठ जाता है और उतनेही में हम उन बड़ी २ हलचलों की कुछ झलक देखलेते हैं जो उस समय वा उससे पहले हो रही थीं। स्पष्ट स्वरूप तो नहीं दिखाई पड़ते, यहां तक कि उन हलचलों की केवल दिशामात्र का अनुमान हो सकता है, परन्तु कुछ ऐसे शब्द सुनाई पड़ते हैं जैसे बहुत सी नदियों के मिलकर हों"। मैं हपफील्ड की सम्मति से सहमत हूं कि इस बात की खोज कि तौरेत भिन्न २ द्वाराओं से संग्रह की गई है, एक ऐसी खोज है जो केवल प्राचीन धर्म पुस्तक के एतिहासिक अध्यायों का अर्थ लगाने के लिये वा संपूर्ण ईश्वर बिद्या और इतिहास के लिये ही अत्यन्त आवश्यक फल पूर्ण नहीं है, वरन् वह एक ऐसी अति निश्चयात्मक खोज भी है जो बिवेचन के राज्य में और साहित्य के इतिहास में की गई है। उसके विरुद्ध विरोधी बिवेचक समाज चाहे कुछ कहे पर वह खोज स्वयं

अपना प्रतिपादन करेगी, और जब तक विवेचना सिद्धान्त संसार में रहेगा तब तक वह किसी वस्तु से पीछे न हटेगी और वर्तमान समय की विद्वतानुसार यदि कोई पाठक आग्रह छोड़ कर और सत्य ज्ञान निष्ठा से उसकी जांच करेगा तो यह बात उसके लिये सहज नहीं होगी कि वह उस खोज के प्रभाव को हटा देने में समर्थ हो"।

तब क्या हम इन पुस्तकों को छोड़दें ? क्या यह बात मान लेना कि एडिन के बाग से गिरने की कथा एक पौराणिक कथा है प्रायश्चित्त की शरण जाना नहीं है। यही प्रायश्चित्त ईसाई सिद्धान्तों का सब से अधिक महत्वमय और पवित्र सिद्धान्त है।

अच्छा इस विषय में अब हमें सोचने दो। ईसाई धर्म अपने प्रारम्भिक समय में जब वह संसार को निज अनुयायी और पराजित कर रहा था, उस सिद्धान्त के विषय में कुछ नहीं जानता था। हमने देखा है कि टरत्यूलियन ने उस सिद्धान्त को 'अपालोजी' नामक निज कृत ग्रन्थ में वर्णन करने के योग्य ही नहीं समझा। उसकी उत्पत्ति प्राचीन काल के ईसाई नास्तिकों के सम्प्रदाय में हुई। इस सिद्धान्त को सिकन्दरिया के ईश्वरानुयायी भी नहीं मानते थे। न कभी पादरियों ने ज़ोर के साथ उसका प्रचार ही किया। ऐन्सेल्म के समय तक वह इस स्थिति को नहीं पहुँचा था, जैसा कि अब है। फाईलोज्यूडिअस इस पतन की कथा को एक चिन्ह मात्र बताता है। 'ओरीजेन' इस कथा को एक रूपक मानता है। कतिपय प्राटेस्टेंट सम्प्रदायों पर असंगतपन का दोष लगाया जा सकता है, क्योंकि वे इस पतन सिद्धान्त को कुछ काल्पनिक और कुछ सत्य मानते हैं। परन्तु उन्हीं की भांति यदि हम भी सांप को शैतान का चिन्ह मानते हैं, तो क्या यह बात उस सब कथा को रूपक नहीं बना देती ?

यह खेद की बात है कि ईसाई सम्प्रदाय ने इन पुस्तकों के प्रतिपादन करने का भार अपने ऊपर ले लिया है, और उनकी प्रत्यक्ष विरोधोक्तियों और भूलों के लिये स्वेच्छानुसार अपने को जवाबदेह बना लिया है। यदि सम्भव होता तो उनका प्रतिपादन उन्हीं यहूदियों को दिया जाता जिनसे उनकी उत्पत्ति है और जिनसे वे

पुस्तकें हमें मिली हैं। और इससे भी अधिक खेद की बात यह है कि तौरेत ग्रंथ जो ऐसा अपूर्ण है कि वर्तमान कालिक विवेचना की जांच में ठहर नहीं सकता, विज्ञान के पंच की भांति प्रगट किया जाय। यह बात स्मरण रखना चाहिये कि इन पुस्तकों की सत्य प्रकृति केवल छिद्रान्वेषी शत्रुओं ने ही नहीं प्रगट की वरन् सम्प्रदायिक पवित्र और विद्वान मनुष्यों ने भी कलई खोली है, जिनमें से कई एक बहुत ऊंचे दरजे के लोग हैं।

इस भांति जब प्राटेस्टेण्ट सम्प्रदाय धर्म ग्रन्थों को सत्यता की कसौटी माने जाने के लिये आग्रह करते थे, तब कैथोलिक सम्प्रदाय ने वर्तमान समय में पोप को सत्य की अव्यर्थ कसौटी माना। ऐसा कहा जा सकता है कि यह अव्यर्थता केवल सदाचार सम्बंधी और धर्म सम्बंधी मामलों के लिये है, परन्तु भेद कारक रेखा कहां खींची जा सकती है? थोड़े से प्रश्नों ही से सर्वज्ञान सीमा बद्ध नहीं हो सकता। स्वभाव ही से उससे सर्वज्ञता प्रगट होती है और अव्यर्थता का अर्थ सर्वज्ञता ही है।

निःसन्देह यदि इटली वाले ईसाई धर्म के मूल सिद्धान्त मान लिये जायें, तो उनका न्याय युक्त प्रतिफल अव्यर्थ वादी पोप ही है। इस बिचार के विज्ञान रहित स्वभाव पर कुछ कहने की आवश्यकता नहीं हैं। पोप लोगों का राज्यनैतिक इतिहास और उनके जीवन चरित्रों की जांच करने से यह विचार विनष्ट हो जाता है। प्रथमोक्त अर्थात् पोपों का राजनैतिक इतिहास वे सब भूलें और भ्रम प्रगट करता है जो मानवी बिधानों से हो सकती हैं, और अन्तोक्त अर्थात् जीवन चरित्र अधिक तर उनके पापों और लज्जास्पद करतूतों की कथाएं हैं।

ऐसा सम्भव नहीं था कि पोप की अव्यर्थता के सिद्धान्त का राजसी प्रचार विद्वान कैथोलिक लोग भी सर्वथा मान लेते। सब जगह गम्भीर विरोध पैदा हो गया, एक सामान्य बुद्धि के विरोधी सिद्धान्त का और फल ही क्या हो सकता है। बहुत से ऐसे मनुष्य हैं जो कहते हैं कि यदि अव्यर्थता कहीं है तो वह धार्मिक सभाओं ही में है,

और तब भी ऐसी सभाएं हमेशा परस्पर सहमत नहीं हुई हैं। ऐसे भी बहुत मनुष्य हैं जिन्हें यह बात स्मरण है कि सभाओं ने पोपों को पदच्युत किया है ओर उनके झगड़ों पर अपनी न्याय युक्त सम्मति दी है। प्राटेस्टेण्ट लोग मूर्खता से यह प्रश्न नहीं करते थे कि "इसका क्या प्रमाण है कि सम्प्रदाय में अव्यर्थता अवश्य ही है; क्या प्रमाण है कि किसी सभा में धार्मिक सम्प्रदाय पूर्ण और न्याय युक्त रीति से सम्मिलित हुई है? और क्यों कम सम्मतियों की अपेक्षा अधिक सम्मतियों से सत्य बात का निश्चय किया जाय? कितनी ही बार ऐसा हुआ है कि किसी मनुष्य ने ठीक बिचारारूढ़ होकर सत्य को पहचान लिया है और लोगों ने उसे बदनाम करने और कष्ट देने के अनन्तर अन्त में उसके कथनों को स्वीकार किया है! बहुत सी बड़ी २ खोजों का क्या ऐसा ही इतिहास नहीं है?

विज्ञान का यह काम नहीं है कि वह इन झगड़ों को शान्त किया करे। यह उसका काम नहीं है कि वह यह बात निश्चय करे कि धार्मिक लोगों के लिये सत्य का लक्षण बाइबिल में पाया जायगा, वा सभाओं में, वा पोप में। वह अपने लिये केवल वह अधिकार मांगता है जो वह खुशी से औरों को देता है, अर्थात् अपने लिये सत्य का निज अनुमोदित लक्षण स्वीकार करने का अधिकार। यदि वह अनैतिहासिक कथाओं को घृणा से देखता है, यदि वह अधिक सम्मति से सत्य के निश्चय करने को उदासीन भाव से देखता है, यदि वह किसी मनुष्य के सत्यता के दावे को आगम घटनाओं के कठिन न्याय से प्रतिपादन होने के लिये छोड़ देता है, और यदि इन सब बातों में वह कष्ट उठाना नहीं चाहता तो यही बात वह अपने सिद्धान्तों के साथ भी प्रगट करता है। यदि उसे प्रगट होजाय कि उसके गुरुत्वाकर्षण वा तरंग सिद्धान्त घटनाओं से नहीं मिलते तो वह बिना आगा पीछा किये उन्हें छोड़ देगा। उसके लिये प्रकृत की पुस्तक ही ईश्वर प्रेरित ग्रंथ है जिसके खुले पत्रे प्रत्येक मनुष्य के देखने के लिये सदैव खुले रहते हैं। सब का सामना करते हुये भी वह निज प्रचार के लिये समाजों की आवश्यकता नहीं रखता, अनन्त और

प्राकृतिक घटनाओं को देख कर कुछ डिग गया हो, और वे समझे हैं कि प्राकृतिक घटनाओं की साधारण धारा भी एकाएक गुप्त रीति से टूट जाती है, परन्तु वह विश्वास दस गुना अधिक हो गया होगा जब यह बात ज्ञात हुई होगी कि ग्रहण स्वयं बार २ होते हैं और पहले से बतलाये जा सकते हैं।

सब प्रकार के ज्योतिष सम्बन्धी आगम कथन इस बात के मान लेने पर निर्भर हैं कि प्राकृतिक नियमों के काम में न कभी कुछ बल पड़ा है न पड़ेगा। वैज्ञानिक तत्वज्ञानी कहता है कि किसी विशेष समय की जगत की दशा उससे पहले समय की दशा का मुख्य कारण होगी। 'नियम' और 'दैव संयोग' केवल यंत्रिक आवश्यकता के अन्य नाम मात्र हैं।

कोपरनिकस की मृत्यु के लग भग ५० वर्ष बाद वरटेम्बर्ग निवासी जान केपलर, (जिसने सूर्यकेन्द्री सिद्धान्त को स्वीकार कर लिया था और पूर्ण विश्वास रखता था कि सूर्य के गिर्द घूमने वाले सितारों के घुमावों में परस्पर सम्बन्ध है और यदि इनकी ठीक २ जांच की जाय तो ग्रहचार के नियम ज्ञात हो सकते हैं) सितारों की दूरियां, समय, और गतियां और उनकी कक्षाओं की शकलें निरूपण करने में लग गया। उसका ढंग यह था कि वह जो निरीक्षण करता था उसे टाईकोब्रेही की भांति गणित विद्या से जांचता था। कभी कोई कल्पना लगाता था कभी कोई, और जो कल्पना उसके हिसाबों और निरीक्षणों से मीलान न खाती थी उसे छोड़ देता था। उसने अपने इस बड़े परिश्रम का (वह कहता है कि मैं बिचारते २ और हिसाब लगाते २ पागल हो गया था) अन्त में फल पाया, और सन १६०९ ई० में उसने निज कृत "आन दी मोशन्स आफ दी प्लैनेट मार्स" नामक पुस्तक प्रकाशित की। इस पुस्तक में उसने उद्योग किया था कि वह उस ग्रह की चालों को उत्केन्द्री और नीचोच्चवृत सम्बन्धी कल्पना से मीलान करदे, परन्तु अन्त में उसे ज्ञात हुआ कि किसी ग्रह की कक्षा वृताकार नहीं होती वरन् अण्डाकार होती है, और सूर्य उसकी एक नाभि में रहता है, और यह भी ज्ञात

हुआ कि किसी ग्रह से सूर्य तक खिँची हुई रेखा जिस धरातल पर हो रही है वह धरातल उस ग्रह के संचालन समयों से एक ठीक सम्बन्ध रखता है । येही बातें अब कपलरकृत पहला और दूसरा नियम कहलाती हैं । आठ वर्ष बाद उसे एक तीसरा नियम ज्ञात हुआ, जिससे ग्रहों की परिक्रमा के समयों और सूर्य से ग्रहों की औसत दूरियों का सम्बन्ध ठीक २ निश्चित हो गया अर्थात परिक्रमा समयों के वर्ग दूरियों के घनों से ठीक सम्बन्ध रखते हैं । सन १६१८ ई० में प्रकाशित "ऐन एपीटोम आफ दी कोपरनिकन सिस्टेम" नामक पुस्तक में उसने इस नियम को प्रकाशित किया था और दिखलाया था कि यह नियम प्रथमावस्था में वृहस्पति के उपग्रहों के लिये भी सत्य है । इस से यह सिद्धान्त निकाला गया कि जो नियम सूर्य सम्प्रदाय के बड़े २ संचालनों को शासित करते हैं, वे ही नियम उस के भागों के छोटे २ संचालनों पर भी शासन करते हैं ।

केपलर की खोजों से निकले हुये नियम का बोध, और उन खोजों की यह साक्षी कि सूर्य सम्प्रदाय का केन्द्र पृथ्वी नहीं वरन् सूर्यही है, रोमन हाकिमों के निन्दा भाजन हो गये । इस हेतु इंडेक्स की सभा ने जब कोपरनिकस की विचार शैली को धर्म ग्रंथो के बिरुद्ध कह कर बदनाम किया था उस समय उसी शैली की केपलर कृत "एपीटोम" पुस्तक का पढ़ना भी मना कर दिया था । इसी समय की बात है कि केपलर ने अपना प्रसिद्ध प्रतिवाद सभा में भेजा था । प्रतिवाद में उसने कहा था कि "८० वर्ष का समय व्यतीत हुआ कि इस समय में कोपरनिकस के पृथ्वी के चल और सूर्य के अचल होने के सिद्धान्त बेरोक प्रकाशित होते रहे हैं, क्योंकि ऐसा ख्याल कर लिया गया था कि प्राकृतिक वस्तुओं के विषय में और ईश्वर कृत कार्यों को प्रकाशित करने के विषय में बादविवाद करने की आज्ञा है, और जब उन सिद्धान्तों की सचाई का नया प्रमाण खोज निकाला गया है (ऐसा प्रमाण जो अध्यात्मिक न्यायाधीशों को ज्ञात ही नहीं था) तब आप लोग संसार की बनावट की सच्ची शैली के प्रकाशन को मना करना चाहते हैं" ।

केपलर के समसामयिक विद्वानों में से किसी ने भी धरातल के नियम पर विश्वास नहीं किया और न न्यूटन कृत 'प्रिंसिपिया' नामक पुस्तक के प्रकाशित हो जाने के समय तक उस नियम को किसी ने स्वीकार किया। सत्य बात तो यह थी कि उस समय में केपलर के नियमों के वैज्ञानिक अर्थ को कोई समझता ही न था। वह स्वयं नहीं समझ सकता था कि वे नियम किस प्रति फल का अनिवार्य्य कारण होंगे। उसकी भूलें प्रगट करती थीं कि वह उन नियमों के समझने से कितनी दूर था। उसका अनुमान था कि प्रत्येक ग्रह एक सु चतुर मूल-तत्व का स्थान है, और यह अनुमान था कि पांच मुख्य ग्रहों के कक्षाओं के परिमाणों और रेखागणित सम्बन्धी पांच समघनों के बीच एक निश्चित सम्बंध है। पहिले वह ऐसा बिश्वास करना चाहता था कि मंगल की कक्षा अण्डाकृति है, परन्तु बहुत परिश्रम के साथ छान बीन करने पर उससे यह बड़ी सत्यता ज्ञात हुई कि वास्तव में वह अण्डाकृति ही है। आकाशस्थित पिण्डों की अक्षयता का बिचार इस बात का कारण हुआ कि गोलाई में चलने की पूर्णता वाला अरस्तू का सिद्धान्त स्वीकार कर लिया जावे और इस विश्वास का भी कारण हुआ कि आकाशस्थित पिण्डों में सिवाय गोल चाल के और कोई चाल हो नहीं है। वह बड़ी शिकायत करता है कि इस बात की खोज ने मेरा बहुत समय बरबाद किया। उसका तत्व ज्ञानिक साहस इस बात से प्रगट होता है कि उसने प्राचीन पौराणिक कथा का खण्डन कर डाला।

कतिपय बहुत सी आवश्यक बातों में केपलर ने न्यूटन कथित नियमों को पहिले ही कह डाला है। उसी ने पहिले पहल गुरुत्वाकर्षण के विषय में स्पष्ट बिचार प्रगट किये हैं। वह कहता है कि पदार्थ का प्रत्येक कण जब तक कोई दूसरा कण उसे विचलित न करेगा अचल रहेगा, अर्थात् पृथ्वी किसी एक पत्थर को उससे अधिक आकर्षित करती है जितना कि वह पत्थर पृथ्वी को खींचता है, और पिण्ड एक दूसरे की ओर अपने परिमाणों के अनुसार आकर्षित होते हैं, और यह भी कहता है कि पृथ्वी चन्द्रमा को ओर $\frac{1}{54}$ खिँचेगी और

चन्द्रमा पृथ्वी की ओर ५३/५४ खिँचेगा । उसका कथन है कि चन्द्रमा के आकर्षण के कारण ज्वार भाटा होते हैं और चन्द्रमा की चाल में अन्य ग्रह गण अवश्य गड़बड़ डालते हैं ।

ज्योतिष विद्या की उन्नति तीन विभागों में बांटी जा सकती है। अर्थात:-(१) आकाशस्थित पिण्डों के प्रत्यक्ष संचालन के निरीक्षणों का समय, (२) उनकी असली चालों की खोज का समय, और विशेष कर ग्रह सम्बन्धी परिक्रमणों के नियमों की खोज का समय । इस समय में कोपरनिकस और केपलर बहुत प्रख्यात हुये । और (३) उन नियमों के कारणों के निश्चित होने का समय । यह न्यूटन का समय था ।

दूसरे समय से तीसरे समय तक पहुँच जाना यंत्रिक विद्या सम्बन्धी गति विद्या शाखा की उन्नति पर निर्भर था, जो आरकैमेडीज़ अथवा सिकन्दरिया के विद्वानों के समय से एक स्थिर अवस्था ही में रह गई थी ।

ईसाई योरोप में लियोनारडो डा विन्सी के समय तक जो सन् १४५२ में पैदा हुआ था, यंत्रिक विज्ञान का कोई उन्नति दाता न रहा था । लार्ड बेकन को नहीं, वरन् इसी लियोनारडो को विज्ञान का पुनर्जन्म दाता कहना चाहिये । बेकन केवल गणित विद्या ही से अनभिज्ञ नहीं था, वरन् वह पदार्थ विद्या सम्बन्धी खोजों में गणित विद्या के प्रयोग को मानता ही न था । उसने व्यर्थ प्रतिवाद करके कोपरनिकस की शैली को हँसी के साथ अस्वीकार किया । जिस समय गैलीलियो अपनी दूरबीन सम्बंधी भारी२ खोजों तक पहुँचने ही को था, उस समय बेकन वैज्ञानिक खोज में यंत्रों के प्रयोग के विषय में सन्देह प्रकाशित कर रहा था । यह कहना कि अनुमान-वादी ढंग बेकन का निकला हुआ है मानो इतिहास की हत्या करना है । उसके काल्पनिक वैज्ञानिक प्रस्ताव कभी किसी तुच्छ काम में भी न आये । किसी ने कभी उनके प्रयोग करने का विचार तक भी न किया । सिवाय अँगरेज़ी पढ़ने वालों के उसका कोई नाम तक नहीं जानता ।

आगे के पत्रों में मुझे डाविन्सी की ओर विशेष कर इंगित करना पड़ेगा । उसके ग्रंथों में से जो अब तक हस्त लिखित ही हैं, दो ग्रंथ

'मिलन' में हैं और एक 'पेरिस' में है जिसे नेपोलियन ले गया था। लगभग सत्तर बर्ष के अन्तर के बाद डाविन्सी का अनुयायी एक डच इन्जिनियर 'स्टिवीनस' हुआ जिसका साम्यता सिद्धान्तों पर लिखा हुआ ग्रंथ सन् १५८६ ई० में प्रकाशित हुआ। उसके छः बर्ष बाद यंत्र विद्या पर गैलीलियो का ग्रन्थ निकला। गति विद्या के तीन मूल नियमों की स्थापना का कारण यही इटली निवासी बड़ा पुरुष था। येही नियम अब गति-नियमों के नाम से प्रसिद्ध हैं। इन नियमों की स्थापना के फल बहुत बड़े२ हुये।

ऐसा अनुमान किया गया कि ऐसी अनन्तर चालें जैसी कि आकाशस्थित पिण्डों की है केवल अनन्तर शक्ति प्रयोग और शक्ति क्षय ही से स्थिर रह सकती हैं, परन्तु गैलीलियो के पहले नियम से जान पड़ा कि प्रत्येक पिण्ड तब तक कि विचलित करने वाली शक्तियों से दशा परिवर्तन हेतु विवश न किया जायगा, अपनी उसी अचल दशा में वा एक सीधी रेखा में एक सम चाल में रहेगा। प्राकृतिक ज्योतिष की प्रारम्भिक बातों को समझाने के लिये इस मूल सिद्धान्त का स्पष्ट अनुभव बहुत आवश्यक है। इस हेतु से कि सब प्रकार के संचालन जो हम इस पृथ्वी के धरातल पर होते हुए देखते हैं शीघ्रही अन्त हो जाते हैं। हम यह अनुमान करते हैं कि वस्तुओं की प्राकृतिक दशा स्थिरता ही है। तब हमने मानो यह जान कर बड़ी उन्नति करली कि कोई पिण्ड स्थिरता और संचालन से बराबर ही उदासीनता रखता है और जब तक विचलित करने वाली शक्तियां प्रयोग न की जायें वह दोनों दशाओं में ऐक सा स्थित रहता है। साधारण संचालनों की दशा में ऐसी बिचलित कारक शक्तियां बायुमंडल की रगड़ और रोक हैं। जब ऐसी रोकें नहीं होतीं तब संचालन निरन्तरित होना चाहिये जैसा कि उन आकाशस्थित पिण्डों का है जो शून्यस्थान में चल रहे हैं।

ऐसी शक्तियां पिंडो पर अपना२ पूरा प्रभाव एक साथ भी डालेंगी। प्रत्येक शक्ति इस भांति से कि मानो दूसरी है ही नहीं, चाहे पिण्डों के परिमाण कितने ही विभिन्न क्यों न हों। इस भांति जब एक तोप के मुख से एक गोला गिराया जाता है तब वह पृथ्वी की

आकर्षण शक्ति के प्रभाव से कुछ निश्चित समय में पृथ्वी तक गिरता है। तदनन्तर यदि वह गोला तोप से दाग़ा जाय तो यद्यपि इस बार वह कई हज़ार फीट प्रति सेकण्ड के हिसाब से फेंका जाय तब भी पृथ्वी के आकर्षण का प्रभाव उस पर ठीक उतनाही रहेगा जितना कि पहले था। इस प्रकार भिन्न शक्तियों के मेल जोल से उनका क्षय नहीं होता। अर्थात प्रत्येक शक्ति अपना विशेष प्रभाव पैदा ही करती है।

सत्रहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध भाग में बोरेली, हुक और हाई-गेन्स के ग्रथों द्वारा यह बात स्पष्ट होगई की गैलीलियो के नियमों द्वारा गोलाकार भ्रमणों की व्याख्या की जा सकती है। बोरेली बृहस्पति के उपग्रहों की चालों के विषय में लिखता हुआ यह बात प्रगट करता है कि केन्द्रस्थित शक्ति के प्रभाव द्वारा किस भांति एक गोलाकार संचालन पैदा हो सकता है। हूक ने भी प्रगट किया है कि एक केन्द्रस्थ आकर्षण के प्रभाव द्वारा एक सीधी चाल गोलाकार चाल में बदल सकती है।

सन् १७८७ का वर्ष केवल यूरोपीय विज्ञान का समय ही नहीं प्रगट करता वरन् वह यह भी प्रगट करता है कि यूरोप के मनुष्यों ने मानसिक उन्नति में भी कुछ आगे क़दम बढ़ाया था। इसी साल में न्यूटन कृत अद्वितीय और अमर "प्रिंसीपिया" नामक ग्रन्थ प्रकाशित हुआ था।

इस सिद्धान्त पर कि सब पिण्ड एक दूसरे को अपने २ परिमाण और अपनी दूरिओं के बर्गों के उत्क्रमानुसार आकर्षित करते हैं, न्यूटन ने प्रमाणित कर दिया कि आकाशस्थित पिण्डों की सब प्रकारों की चालों की व्याख्या की जा सकती है, और यह भी प्रमाणित किया कि केपलर के नियम अर्थात अण्डाकृति कक्षाओं की चालें, उनसे बने हुए धरातल, और समय और दूरियों के सम्बन्ध सब पहले से बतलाये जा सकते हैं। जैसा कि हम देख चुके हैं न्यूटन के सम समायिक विद्वानों ने जान लिया था कि गोलाकार चालों की व्याख्या कैसे की जा सकती है। वह एक विशेष दशा थी, परन्तु

न्यूटन ने एक सर्वव्यापी सिद्धान्त का साधन प्रस्तुत कर दिया जिसके अन्तरगत गोलाकार, अण्डाकार, परवलयाकार और अति परवलयाकार संचाललों की सब ही विशेष दशायें आ सकती हैं, अर्थात् शंकुच्छिन्न की सब ही दशाओं में वे नियम लग सकते हैं।

सिकन्दरिया के गणित विद्या विशारदों ने प्रमाणित करदिखाया था कि गिरते हुये पिण्डों की चाल की दशा पृथ्वी के केन्द्र की ओर को होती है। न्यूटन ने प्रमाणित कर दिया कि यह अवश्य होना ही चाहिए क्योंकि एक गोल पिण्ड के सब कणिकाओं के आकर्षण का सर्वव्यापी प्रभाव वैसा ही होता है कि मानो वे सब उसी के केन्द्र में एकत्रित हैं।

इसी केन्द्रीय शक्ति को जो इस प्रकार पिण्डों के गिरने को निश्चित करती है आकर्षण शक्ति नाम दिया गया है। सिवाय केपलर के आज तक किसी ने यह विचार न किया था कि उसका प्रभाव कहां तक पहुँचता है। न्यूटन को यह सम्भव जान पड़ा कि उसका विस्तार चन्द्रमा तक होना चाहिये और वह वही शक्ति होना चाहिये जो उसे सीधे मार्ग से फेरती है और उसे पृथ्वी के इर्द गिर्द उसकी कक्षा में घुमाती है। विपरीति वर्गों के नियमों के सिद्धान्तों पर इस बात का हिसाब लगा लेना बहुत सहज था कि पृथ्वी का आकर्षण दृग्गोचर फलों को पैदा करने के लिये काफी है वा नहीं। उस समय तक ज्ञात पृथ्वी के परिमाण के नापों को काम में लाकर न्यूटन ने जान लिया था कि चन्द्रमा का विक्षेप एक मिनट में केवल १३ फीट होता है, और यदि मेरी गुरुत्वाकर्षण विषयिक कल्पना ठीक हो तो १५ फीट होगा। परन्तु सन् १६६९ ई० में, जैसा कि हम कह आये हैं, पिकार्ड ने पहिले की अपेक्षा एक अंश की माप अधिकतर होशियारी से की और इस घटना ने पृथ्वी के परिमाण के अन्दाज़ को अदल बदल दिया और इसी कारण चन्द्रमा की दूरी में भी फेर हो गया। उन वादविवादों के कारण जो सन् १६७९ ई० में रायल सुसायटी में हुये, न्यूटन का ध्यान उस ओर गया और वह पिकार्ड के निकाले हुए फलों को लेकर घर गया, अपने पुराने कागज़ात

निकाले और गणना करने बैठा। गणना का फल अन्त को पहुँचने ही को था कि वह इतना क्षुब्ध हुआ कि उसने विवश होकर उन्हें पूरा करने के लिये अपने एक मित्र को दे दिया। आशा किया हुआ मीलान ठीक हो गया। यह प्रमाणित हो गया कि चन्द्रमा का अपनी कक्षा में रहना और पृथ्वी के इर्द गिर्द परिक्रमा करना पारथिव आकर्षण शक्ति द्वारा होता है। केपलर की कल्पनाएं हट कर डिसकारटीज़ की आवृत्तियां प्रचलित हुईं, और ये आवृत्तियां भी हटकर अब न्यूटन की केन्द्रस्थ शक्ति स्थापित हुई।

इस भांति पृथ्वी और प्रत्येक ग्रह सूर्य की आकर्षण शक्ति द्वारा सूर्य के इर्द गिर्द अपने २ अण्डाकार कक्षाओं में घुमाये जाते हैं और ग्रहों के न्यूनाधिक परिमाणों के प्रभाव से स्थानच्युति घटनाएं भी हुआ करती हैं। सब ग्रहों के परिमाण और सब की दूरियां जान कर इन गड़बड़ियों का हिसाब लगाया जा सकता है। इसके अनन्तर वाले ज्योतिषी लोग विपरीति सिद्धान्त से भी सफल मनोरथ हुये थे, अर्थात् इन स्थानच्युतियों को जान कर उस गड़बड़ करने वाले पिण्ड के स्थान और परिमाण को जान लेते थे। इसी तरह यूरेनस के सिद्धांतिक स्थान से स्थानच्युतियों द्वारा निप्चून ग्रह की खोज पूर्ण की गई थी।

न्यूटन की योग्यता इस बात में है कि उसने गतिविद्या के नियमों को आकाशस्थित पिण्डों की चालों में लगाया और आग्रह किया कि वैज्ञानिक सिद्धान्त निरीक्षणों के मिलान द्वारा गणित के साथ प्रमाणित किये जायें।

जब केपलर ने अपने तीन नियमों को प्रकाशित किया था, तब पादरियों ने दोषारोपण सहित उनका स्वागत किया था। यह बात इस कारण से नहीं थी कि वे नियम अशुद्ध थे या उनमें अशुद्धता का अनुमान किया गया था, वरन् कुछ तो इस कारण से कि वे कोपरनिकस की शैली को पुष्ट करते थे और कुछ इस कारण से कि इस भांति के नियम का प्रचार होने देना अनुचित समझा गया था जो ईश्वरीय मध्यस्थता का विरोधी हो। यह जगत एक ऐसा

नाट्यशाला माना जाता था जिसमें ईश्वर की पवित्र इच्छा के नाटक नित्यही प्रदर्शित किये जाते हैं । यह ईश्वर की महिमा को घटा देने वाली बात मानी जाती थी कि वह महिमा किसी भांति नियम बद्ध करदी जाय । पादरियों की शक्ति विशेष कर उस प्रभाव से प्रगट होती थी कि लोग कहते थे कि पादरियों में वह शक्ति है कि वे ईश्वर की निश्चित इच्छाओं को भी बदल सकते हैं । इसी कारण वे धूमकेतुओं के बुरे फल को घटा सकते थे, अच्छी ऋतु वा बर्षा करा सकते थे, ग्रहण हटा सकते थे, और प्रकृति की धारा को रोक कर सब ही भांति के अप्राकृतिक चमत्कार कर सकते थे । यही बात थी कि छाया घटिकाचक्र तक लौटा दी गई थी, और सूर्य और चन्द्रमा बीच मार्ग ही में रोक दिये गये थे ।

न्यूटन के समय से पहले वाली शताब्दी में एक बड़ी भारी धार्मिक और राजनैतिक हलचल हो चुकी थी, अर्थात् रिफारमेशन वा धार्मिक सुधार । यद्यपि उसका ऐसा प्रभाव नहीं हुआ था कि लोगों को विचार की पूर्ण स्वतंत्रता मिल गई हो, तो भी उसने बहुत से प्राचीन धार्मिक बंधनों को तोड़ डाला था । सुधार किये गये देशों में न्यूटन के ग्रंथो पर आक्षेप प्रगट करने की कोई शक्ति न थी और पादरियों को इस बात की इच्छा न थी कि वे इस विषय में अपने को चिन्ता में डालें । पहले तो प्राटेस्टेंट लोगों का ध्यान अपने बड़े शत्रुओं अर्थात कैथोलिक लोगों के कामों में बझा हुआ था और जब वह अशान्ति का कारण मिट गया और रिफारमेशन का अटल बिच्छेद होने लगा, तब वह ध्यान प्रतिस्पर्धी और बिरोधी सम्प्रदायों की ओर जा लगा । ल्यूथर पन्थियों, कालविन पन्थियों, ऐपिसकोपल पन्थियों और प्रज़बिटीरियन लोगों के हाथ में न्यूटन के गणित बिद्या सम्बन्धी प्रमाणों की अपेक्षा कुछ अधिक आवश्यक बातें थीं, जिससे वे उस ओर ध्यान न दे सके ।

इस भांति, इन कलहकारी सम्प्रदायों के गुल गपाड़े में अन-देखी और अनाक्षेपित रीति से, न्यूटन के बड़े सिद्धान्त ने दृढ़ता से अपनी स्थापना करली । जिन सिद्धान्तों पर ये लोग झगड़ते थे

उनसे कई गुणा महत्वपूर्ण न्यूटन के वैज्ञानिक सिद्धान्त का तात्पर्य्य था। उसने केवल सूर्यकेन्द्री सिद्धान्त और केपलर के निकाले हुये नियमों को ही स्वीकार नहीं कर लिया था, वरन् उसने यह भी प्रमाणित कर दिया था कि चाहे पादरियों के विरोध का कितना ही प्रभाव क्यों न हो, पर सूर्य्य अवश्य ही हमारे सूर्य्य सम्प्रदाय का केन्द्र होगा और केपलर के नियम गणित विद्या सम्बन्धी आवश्यकता का फल है। यह असम्भव है कि इससे भिन्न वे नियम कुछ और वस्तु हो सकें।

पर इन सब बातों का अर्थ क्या हुआ? स्पष्ट यही न, कि सूर्य्य सम्प्रदाय में ईश्वरीय मध्यस्थता का कुछ हस्ताक्षेप नहीं है, वरन् वह सम्प्रदाय ऐसे अटल नियम से शासित है कि वह नियम स्वयं गणितसम्बन्धी आवश्यकता का फल है।

प्रथम हरशल के दूरवीन द्वारा किये हुये निरीक्षणों ने उसे निश्चय करा दिया कि आकाश में बहुत से दुहरे सितारे हैं (दुहरे यों नहीं कि वे केवल संयोग से देखने में एक ही रेखा में आजाते हैं, वरन् इस हेतु से कि वे प्राकृतिक रीति से जुड़े हुये हैं और एक दूसरे के गिर्द घूमते हैं)। वे निरीक्षण होते ही रहे और द्वतीय हरशल ने उन्हें खूब विस्तार किया, सप्तर्षि समूह के वशिष्ठ अरुंधती नामक दुहरे सितारे की अण्डाकृति कक्षा सम्बन्धी सब बातें 'सेवरी' ने निश्चित की थीं। वह अपनी कक्षा में ५८$\frac{3}{4}$ वर्ष में घूमता है। और 'कुरोना' नामक एक दूसरे डबल सितारे के विषय की सब बातें 'हिंड' ने निश्चित की थीं। उसकी परिक्रमा का समय ७३६ वर्ष है। दीर्घवृतों में इन दुहरे सूर्य्यों की कक्षा सम्बन्धी चाल हमें विवश करती है कि हम मान लें कि गुरुत्वाकर्षण का नियम सूर्य सम्प्रदाय की सीमाओं से बहुत बाहर भी सत्य प्रमाणित होता है। वास्तव में जहां तक दूरबीन पहुँच सकती है, यह प्रमाणित होता है कि वहां उसी नियम क राज्य है। एनसिकालोपीडिया की भूमिका में डीअलेमबर्ट कहता है कि "यह विश्व केवल एक वस्तु है, यह केवल एक बड़ी भारी सत्यता है"।

तब क्या हम यह प्रतिफल निकाल लें कि सूर्य और सितारों के सम्प्रदाय ईश्वर ने पैदा किये हैं और तदनन्तर उन पर ऐसे नियम लगा दिये हैं जिन नियमों के बश में उसे उन्हें रखना मंजूर था ? वा कोई ऐसे कारण हैं कि हम बिश्वास करें कि यह भिन्न२ सम्प्रदाय स्वेच्छित आदेश से नहीं पैदा किये गये, वरन् किसी नियम द्वारा बने हैं ? ।

निम्न लिखित कुछ विशेष बातें हैं जो सूर्य सम्प्रदाय से प्रगट होती हैं जैसी कि लेपलेस ने गिनाई हैं। सब ग्रह और उनके उपग्रह ऐसी थोड़ी उत्केन्द्रता वाले दीर्घवृतों में घूमते हैं कि वे लगभग वृत्त ही हैं। सब ग्रह एक ही ओर को घूमते हैं और लगभग एक ही धरातल में हैं । उपग्रहों की भी चालें उसी ओर को हैं जिस ओर को ग्रहों की हैं । सूर्य, ग्रहों और उपग्रहों की अक्ष सम्बन्धी चालें उसी ओर को हैं जिस ओर को उनकी कक्षा सम्बन्धी चालें हैं, और ऐसे धरातलों में हैं जिनमें अति तुच्छ विभिन्नता है । ऐसा सम्भव नहीं है कि इतनी बहुत सी बातों की एकता संयोग का फल हो सकती हो ! क्या यह स्पष्ट नहीं प्रगट होता कि इन सब पिण्डों में एक एकवर्गीय सम्बन्ध रहा होगा और ये सब केवल उस वस्तु के विभाग मात्र हैं जो किसी समय केवल एक ही रही होगी ?

परन्तु यदि हम यह मान लें कि वह पदार्थ जिससे सूर्य सम्प्रदाय बना हुआ है किसी समय नीहारिका दशा में था और अपनी अक्ष पर घूमता था, तो ये उपरोक्त सब ही विशेष२ बातें आवश्यकीय यंत्रिक फलों की भांति निकल आती हैं । केवल इतना ही नहीं वरन् इससे कुछ और अधिक भी, अर्थात् ग्रहों उपग्रहों और अवान्तर ग्रहों, की बनावटों की व्याख्या हो सकती है । हमको ज्ञात हो जाता है कि बाहरी ओर के ग्रह और उपग्रह भीतरी ओर वालों की अपेक्षा क्यों बड़ी शीघ्रता से घूमते हैं, और छोटे ग्रह क्यों मंदगामी हैं, और बाहरी ग्रहों के उपग्रह क्यों कम हैं । हमको ग्रहों और उपग्रहों के अपनी २ कक्षाओं में घूमने के समय के चिन्ह भी मिल जाते हैं,

गौर शनिश्चर के वलयों की बनावट का ढंग भी अनुमान में आ जाता है। हमें सूर्य की प्राकृतिक दशा की व्याख्या भी मिल जाती है और पृथ्वी और चन्द्रमा की दशाओं के परिवर्तनों की (जैसा कि उनकी भूगर्भ विद्या से प्रगट होता है) भी व्याख्या मिल जाती है। परन्तु उपरोक्त विशेष बातों में केवल दो छूटें ध्यान देने योग्य हैं। वे यूरेनस और नेपचून की दशायें हैं।

ऐसे नीहारिक पदार्थ समूह का अस्तित्व एक बार मान लेने से शेष सब बातें आवश्यकीय फलों की भांति निकल आती हैं। परन्तु इस ढंग में क्या एक बड़ा भारी एतराज़ नहीं है? क्या यह बात इन जगतों से उस सर्व शक्तिमान जगदीश्वर को निकाल बाहर नहीं करती जिसने उन्हें बनाया है?

पहले तो हमें इस विषय में निश्चित होना चाहिये कि ऐसे नीहारिक पदार्थ समूह का अस्तित्व मान लेने के लिये कोई दृढ़ प्रमाण है वा नहीं।

यह नीहारिक कल्पना प्रथम हरशल कृत उस दूर दर्शक यंत्र संबंधी खोज पर निर्भर है, कि आकाश में जहां तहां प्रकाश के पीले चमकीले टुकड़े छितरे हुये हैं जिनमें से कुछ इतने बड़े हैं कि वे बिना किसी यंत्र के सहारे साधारण आंख से भी देखे जा सकते हैं। इनमें से बहुत से तो बड़ी शक्तिमान् दूरबीन द्वारा देखे जाने पर, नक्षत्र समूह ही प्रमाणित हो सकते हैं, परन्तु उनमें से कुछ (जैसे कि ओरायन का बड़ा निब्यूला) अब तक के बने हुए अच्छे से अच्छे यंत्रों से भी ठीक नहीं जांचे गये।

जो लोग इस नीहारिका कल्पना को नहीं मानना चाहते थे वे कहते थे कि काम में लाई गई दूरबीनों की अपूर्णता के कारण उनकी ठीक जांच नहीं हो सकी। इन यंत्रो में दो स्पष्ट बातें देख पड़ती हैं। एक तो यह कि उनकी प्रकाश ग्राही शक्ति उनके लेन्स के व्यास पर निर्भर है, और दूसरी यह कि उनकी विवेचक शक्ति उनके दृष्टि सम्बंधी धरातलों की ठीक शुद्धता पर निर्भर है। बड़े यंत्रो में उनकी बड़ाई के कारण पहला गुण तो पूर्ण रीति से हो सकता है, परन्तु दूसरा गुण

या तो असली आकार की कमी द्वारा या उनके बोझ द्वारा झुकाव से पैदा हुई वक्रता के कारण बहुत अपूर्ण रहेगा । परन्तु जब तक कोई यंत्र पहले गुण पूर्ण और दूसरे में अति ठीक न हो तब तक वह नीहारिका के बिंदुओं को ठीक २ दिखलाने में विफल हो सकता है ।

परन्तु सौभाग्य वश इस प्रश्न को निर्णीत करने के लिये अन्य द्वारा भी हैं । १८४६ ई० में इस ग्रंथके कर्त्ता ने यह बात खोज निकाली थी कि एक जलते हुये सघन पिण्ड का स्पेकट्रम अनन्तरित होता है, अर्थात् न उसमें काली रेखायें होती हैं न चमकीली रेखायें । फ्रानहोफर ने इससे पहले ही प्रकाशित किया था कि जलती हुई गैसों का स्पेक्ट्रम एक भाव का नहीं होता । तब यही वह द्वारा है जिससे निश्चित होता है कि किसी विशेष निब्यूला से निकला हुआ प्रकाश तापप्रदीप्त गैस से आता है वा जलते हुये घन समूहों, सितारों वा सूर्यों के समूहों से आता है । सन् १८६४ ई० में मि० हगिन्स ने अजगर नक्षत्र समूह के निब्यूला में इह बात की जांच की, तो वह नक्षत्र समूह गैस ही प्रमाणित हुआ । उसके बाद किये हुए निरीक्षणों ने प्रगट किया है कि ६० निब्यूलों की जांच में १९ तो गैसीय स्पेकट्रम देते हैं, और शेष अनन्तरित स्पेकट्रम देते हैं ।

इसलिये यह बात मानी जा सकती है कि अन्ततः ऐसे प्राकृतिक प्रमाण हस्तगत हो गये हैं, जो प्रमाणित करते हैं कि बड़े२ पदार्थ समूह ऐसे हैं जो गैसीय दशा में हैं और बहुत अधिक गरम और जलते हुए हैं । इस भांति लैपलेस की कल्पना दृढ़ मूल हो गई है । ऐसे नीहारिका सम्बंधी पदार्थ समूह में गरमी निकाल२ कर ठण्ढा होना आवश्यक घटना है, और घनीभूत होना, और अक्षपरिभ्रमण उसके अटल फल हैं । एकही धरातल में बहुत से वलयों का अलग२ होना, ग्रहों और उपग्रहों का पैदा होना जो सब एक ही भांति घूमते हों, एक केन्द्रस्थ सूर्य और घेरने वाले गोलों का होना तो आवश्यक ही बात है । अस्त व्यस्तिक पदार्थ समूह से प्राकृतिक नियमों के कार्य्यों द्वारा एक नियम बद्ध सम्प्रदाय पैदा हो गई है । गरमी के घटने से वह पदार्थ समूह टूट२ कर बहुत से जगतों में विभाजित हो गया है ।

यदि सूर्य सम्प्रदाय का उत्पत्ति क्रम इस प्रकार का है, और ग्रह जगतों का जन्म इस भांति का है, तो हम नियम के राज्य के विचारों को बढ़ाने और इस बात के मानने के लिये विवश हैं कि जगत की उत्पत्ति और विश्व भर में पड़े हुये अगणित कक्षाओं की रक्षा उसी नियम द्वारा होती है।

परन्तु फिर भी यह प्रश्न होता है कि क्या इस बात में कुछ बहुत ही गंभीर अधर्म की बात नहीं है? ऐसा कहने में क्या हम सर्व शक्तिमान् ईश्वर को उसके बनाये हुये जगत से निकाले नहीं देते?

हमने बहुधा शान्त आकाश में एक बादल की बनावट देखी है। एक धूमिला बिन्दु, कठिनता से देखने योग्य, एक थोड़ा सा कुहिर बहुत बढ़ जाता है, और अधिक काला और घना हो जाता है, यहां तक कि आकाश के बहुत बड़े हिस्से को काला कर देता है। वही बादल विविध प्रकार के भारी आकार धारण करता है, धूप के कारण सुन्दरता ग्रहण करता है, बायु से आगे की ओर उड़ाया जाता है, और कदाचित् जिस भांति वह धीरे२ एकत्र हुआ था, उसी भांति धीरे २ शान्त वायु मंडल में पिघल कर विलीन हो जाता है।

अच्छा अब हम कहते हैं कि वे छोटे२ कण जिनसे यह बादल बना हुआ था, बायुमंडल में पहले से ही एकत्र हुई जल वाष्प की गरमी घटने के कारण जम कर पैदा हुये थे; हम दिखलाते हैं कि कैसे उन्हों ने वह रूप धारण किया था, हम बादल के काले पन वा चमकीले पन के बताने के लिये दृष्टिविद्या सम्बंधी कारण लगाते हैं, उसके बायु के साथ बहने को यंत्रिक सिद्धान्तों से समझते हैं, और उसके बिलीन हो जाने की व्याख्या रासायनिक सिद्धान्तों से करते हैं। तब इस भगेडू रूप (बादल) पैदा करने और बनाने में सर्व शक्तिमान ईश्वर की मध्यस्थता को मानने की बात हमारे चित्त में कभी नहीं आती। हम उसकी सब बातों की व्याख्या प्राकृतिक नियमों से कर देते हैं और कदाचित बड़े आदर के साथ इस काम में ईश्वर के हाथ को कष्ट देने से आगा पीछा करते हैं।

परन्तु यह बिश्व संसार ऐसे बादल से कुछ बढ़ कर वस्तु नहीं है।

अर्थात् जगतों और सूर्यों से बना हुआ बादल है । चाहे यह संसार हमको बहुत ही बड़ा ज्ञात हो, पर अनन्त और अनादि बुद्धि के लिये वह एक क्षण भंगुर कुहिरे की अपेक्षा कुछ बड़ी वस्तु नहीं है। यदि अनन्त शून्य स्थान में जगतों की बहुतायत हो तो अनन्त समय में भी जगतों का क्रमागत आगमन होता है। जिस भांति आकाश में एक बादल के बाद दूसरा बादल आता है इसी भांति यह सितारों का सम्प्रदाय अर्थात् संसार अगणित अन्य सम्प्रदायों के बाद आया है जो इससे पहले हो चुके हैं और उन अगणित संसारों का अग्रगामी होगा जो इसके बाद आवेंगे। लगातार रूप बिकार और घटनाओं का क्रमागम अनादि और अनन्त रूप से हुआ ही करता है।

यदि छोटी २ बायुमंडल सम्बंधी घटनाओं अर्थात् कुहिरा और बादलों की व्यख्या हम लोग प्राकृतिक सिद्धान्तों पर करते हैं तो क्या यह नहीं हो सकता कि हम संसारों वा जगत सम्प्रदायों की उत्पत्ति में भी उसी सिद्धान्त को काम में लावें ? ये जगत सम्प्रदाय शून्याकाश में केवल बड़े २ बादल हैं और समयाकाश में कुछ ही स्थायी कुहिरे हैं। क्या कोई आदमी प्राकृतिक और अप्राकृतिक वस्तुओं को भिन्न करने वाली रेखा खींच सकता है? क्या वस्तुओं के विस्तार और आयु के अन्दाज़ पूर्णतः हमारे विचारों पर ही निर्भर नहीं हैं ? यदि हम ओरियान के निब्यूला में होते तो कैसा भारी दृश्य देखते! भारी २ रूप विकृतियां, अग्नि मय कुहिर का जम कर जगत हो जाना, ईश्वर की त्वरित मौजूदगी और निरीक्षण ही योग्य बातें जान पड़ती हैं। पर यहां हमारे दूरवर्ती स्थल में जहां लाखों मील की दूरी हमारी नजरों में कुछ भी नहीं जचती और सूर्य बायुमंडल के चमकदार अणुओं से कुछ भी बड़े नहीं जान पड़ते, ऐसा बड़ा ओरियान निब्यूला भी एक अति ही हलके बादल से भी बहुत ही कम है। गैलीलियो ने ओरियान के नक्षत्र समूह के एनिजकृत वर्णन में उसे इस योग्य भी नहीं समझा कि उसका नाम भी लिखे। उन दिनों का बड़ा कट्टर ईश्वर वादी भी उसकी उत्पत्ति दूसरे कारणों से कहे जाने में कोई दोष की बात न समझता, और उसके रूपान्तर होने में ईश्वर की कुछ करतूत न समझने में कोई

अधार्मिक काम न मानता। यदि उसके विषय में हम यह प्रतिफल निकालते हैं तो वह प्रतिफल क्या होगा जो उस निब्यूला में बैठी हुई बुद्धि हमारे विषय में निकालेगी। वह निब्यूला हमारे सूर्य सम्प्रदाय की अपेक्षा लाखों गुना बड़ा है। वहां से हम लोग देखे ही नहीं जा सकते। इसलिये अत्यन्त ही तुच्छ हैं। क्या कोई ऐसी बुद्धि इस बात को आवश्यक समझेगी कि हमारी उत्पत्ति और हमारे पालन पोषण के लिये ईश्वर की करतूत की आवश्यकता है?

सूर्य सम्प्रदाय से अब हम एक और छोटी चीज़ तक उतरते हैं, अर्थात उसका एक छोटा भाग। अच्छा, मान लो कि पृथ्वी ही तक उतर आये। समय के प्रभाव से उसमें बहुत बड़े २ परिवर्तन हुये हैं। क्या वे परिवर्तन ईश्वरीय हस्ताक्षेप के कारण हुये हैं वा अव्यर्थ नियम के अटूट कर्तव्य से हुये हैं? प्रकृति का रूप हमारी दृष्टि के सामने सदैव बदला करता है, और भूगर्भविद्या के समयों में और भी अधिक आश्चर्य प्रद रीति से बदला है। परन्तु वे नियम जिनके कारण वे परिवर्तन हुए कभी तनक भी नहीं बदले। इन बड़े परिवर्तनों में भी वे अब अपरिवर्तनीय हैं। वस्तुओं का वर्तमान क्रम एक बड़ी भारी श्रृंखला की केवल एक कड़ी है जो अज्ञात भूतकाल तक पहुँचती है और अनन्त भाविष्य तक चली जाती है।

भूगर्भ विद्या वा ज्योतिष विद्या सम्बन्धी प्रमाण हैं कि पृथ्वी और उसके उपग्रह का मिज़ाज वर्तमान काल की अपेक्षा बहुत प्रचीन काल में बहुत गर्म था। धीरे २ ठंढा होने लगा। यह काम ऐसे धीरे २ हुआ कि थोड़े दिनों तक कोई उसे जान ही नहीं सका, पर युगान्तर में वह प्रत्यक्ष प्रगट हुआ और गरमी निकल २ कर शून्य स्थान में चली गई।

किसी भांति के पदार्थ समूह का ठंढा होना चाहे वह छोटा हो या बड़ा निरन्तरित रीति से होता है, रुक २ कर वा ठहर २ कर नहीं होता। यह बात एक गणित विद्या सम्बन्धी नियम के अनुसार होती है। यद्यपि ऐसे बड़े परिवर्तनों के लिये जैसों का यहां पर विचार किया गयो है, न तो न्यूटन का और न डुलांग और पेटिट के गणितीय मियम काम में लाये जा सकते हैं। क्रमागत कमी के समय, हिमानी समय, या अन्य थोड़े दिन रहने वाले गर्म समय कभी २ बीच में आ जाते रहे, पर ये सब कुछ बात नहीं हैं। ये परिवर्तन चाहे स्थानान्तरों के कारण हुये हों। चाहे समय २ पर सूर्य की गरमी के घटने के कारण से हुये हों, बहुत ही तुच्छ बातें हैं। एक समय बद्ध सूर्य गरमी के धीरे २ घटाव में केवल एक गड़बड़ डाल

देने का काम करेगा (पर उस काम को रोक नहीं सकेगा)। ग्रह सम्बन्धी चालों की गड़बड़ियां गुरुत्वाकर्षण के पुष्ट प्रमाण हैं न कि खण्डन।

अच्छा, गरमी के इस भांति घटने के साथ ही साथ हमारी इस पृथ्वी में प्राकृतिक भांति के अनेक परिवर्तन अवश्य हुए होंगे। संकोचन से उसका डील डौल अवश्य घटा होगा। उसके दिन की लम्बाई भी कुछ छोटी हुई होगी, उसका धरातल भी सिकुड़ा होगा, और कमजोर स्थानों में अवश्य टूट फूट हुई होगी। समुद्र का घनत्व अवश्य बढ़ गया होगा, उसका परिमाण अवश्य कम हो गया होगा, वायु मंडल के बनाव में अवश्य ही परिवर्तन हुआ होगा, और विशेष कर उसमें मिले हुये जल वाष्प और कारबोनिकएसिड के परिमाण में अवश्य कमी हुई होगी और बैरोमीटर का दबाव अवश्य ही कम हुआ होगा।

ये परिवर्तन जिनका वर्णन किया जा सकता है, रुक २ कर नहीं वरन् क्रम से हुये होंगे, क्योंकि वह बड़ी घटना (अर्थात गरमी का कम होना) जो इन सब का कारण थी स्वयं ही एक गणित विद्या सम्बन्धी नियम के अनुसार हो रही थी। इन अटल अपरिवर्तनीय नियमों का प्रभाव केवल जड़ प्रकृति ही पर नहीं पड़ा, वरन् उसके साथ ही साथ चैतन्य प्रकृति पर भी पड़ा है।

किसी प्रकार के जीवधारी पदार्थ जैसे बनस्पति वा जन्तु केवल उतने ही दिनों तब अपरिवर्तित रह सकते हैं जितने दिनों तक उनसे सम्बन्ध रखने वाली इर्द गिर्द की वस्तुएं अपरिवर्तित रहैं। यदि इर्द गिर्द की वस्तुओं में कुछ परिवर्तन होगा तो सजीव वस्तुओं में या तो कुछ हेर फेर करना होगा या वे विनष्ट हो जायेंगी।

इर्द गिर्द की वस्तुओं में जितना ही अधिक आकस्मिक परिवर्तन होगा, सम्भवतः उतनी ही अधिक चैतन्य प्रकृति विनाश होगी। और परिवर्तन जितना ही धीरे २ होगा सम्भवतः उतना ही अधिक सुधार और रूपान्तर होगा।

चूंकि यह बात सप्रमाण निश्चित है कि जड़ पदार्थों में समय प्रवाहानुसार बड़े २ हेर फेर हुये हैं और पृथ्वी, समुद्र और वायुमंडल

की ऊपरी तहें वैसी ही नहीं हैं जैसी कि वे किसी समय थीं, और पृथ्वी और समुद्र की खुश्की वा तरी का सम्बन्ध और सब प्रकार की प्राकृतिक दशायें बदल गई हैं और हमारी इस पृथ्वी के धरातल पर की सजीव वस्तुओं में ऐसे बड़े २ परिवर्तन हुये हैं, इस हेतु आवश्यक फल यह निकलता है कि उन्हीं परिवर्तनों के अनुसार ही विनाश और रूपान्तर द्वारा जीवाधरियों में भी परिवर्तन हुये होंगे। इस बात के बहुत से और अति प्रबल प्रमाण हैं कि ऐसे विनाश और ऐसे हेर फेर हुये हैं।

यहां हम फिर कहते हैं कि चूंकि यह गड़बड़ करने वाली शक्ति स्वयं एक गणितविद्या सम्बन्धी नियम की अनुगामिनी थी, इस हेतु उसके फल भी उसी नियम के अनुगामी समझे जाना चाहिए।

तब तो ऐसे विचार स्पष्ट हमको यह प्रतिफल निकालने को विवश करते हैं कि जगत के जीवधारियों की उत्पत्ति एक अपरिवर्तनीय नियम की करतूत द्वारा होती रही है, न कि ईश्वर की अवान्तरित असम्बंधित और स्वेच्छित कर्तव्य से निश्चित हुई है। वे विचार हमको इस ओर झुकाते हैं कि हम आकस्मिक उत्पत्ति के विचार की अपेक्षा रूपान्तरित होकर उत्पत्ति होने के विचार को अधिक अच्छा समझें। उत्पत्ति का अर्थ आकस्मिक प्रकाश है और रूपान्तर का अर्थ क्रमागत परिवर्तन है।

इस प्रकार विकाश का बड़ा भारी सिद्धान्त हमारे विचार के सामने आता है। प्रत्येक जीवधारी घटनाओं की शृंखला में एक विशेष स्थान रखता है। वह एक असंगत और क्षणिक घटना नहीं है, वरन एक अनिवार्य्य प्रकृत घटना है। उसका स्थान उस बड़े क्रमागत समूह में है, जो गत समय में क्रमशः पैदा हुआ, वर्तमान समय में प्रचारित है और भवतव्य भविष्य के लिये अपना रास्ता बना रहा है। इस भारी उन्नति में एक स्थान से दूसरे स्थान तक एक क्रमागत निश्चित और अनन्तरित विकाश हुआ है, अर्थात् बेरोक क्रमागत विकाश। परन्तु इन बड़े परिवर्तनों में वे अपरिवर्तनीय नियम पाये जाते हैं जो सब पर शासन करते हैं।

पशुओं की शृंखलाओं में यदि हम किसी प्रकार के पशुओं के प्रचार को जांचते हैं तो हम पाते हैं कि वह प्रचार आकस्मिक उत्पत्ति से नहीं, वरन् नियमानुसार रूपान्तर होता है । वह एक अपूर्ण रूप मे प्रारम्भ होता है जो ऐसे रूपों के मध्य में होता है जिनका समय हो गया है और वे विनष्ट होने वाले हैं। धीरे२ क्रमर से एक प्रकार के पशुओं के बाद दूसरे प्रकार के पशु अधिक पूर्णांग पैदा होते जाते हैं, यहां तक कि बहुत युगों के बाद वे अपनी पूर्णोन्नति को पहुँच जाते हैं। तदनन्तर उसी भांति क्रमशः उनका पतन होता है। इस भांति, यद्यपि दूध पिलाने वाले जन्तु भूगर्भ विद्या सम्बंधी तृतीय वा तृतीयान्तर समयों में विशेष रूप से पाये जाते थे, तथापि वे बिना पहिले से सूचना दिये हुये उन समयों में अकस्मात नहीं प्रगट हो गये थे। और उसके बहुत दिन पहिले द्वितीय समय में हम उनको अपूर्ण रूपों में पाते हैं और अपना पैर जमाने के लिये झगड़ा करते हुये पाते हैं। अन्त में अधिक उन्नति और अधिक अच्छे नमूनों में दूध पिलाने वाले जन्तु सर्वोपर हो गये।

यही हाल रेंगने वाले जन्तुओं का है जो कि भूगर्भ विद्य सम्बंधी द्वितीय समय के विशेष जन्तु थे । जैसे हम एक विलीन होते हुए दृश्य में उसकी विलीन होती हुई रेखाओं में से नवीन दृश्य के अस्पष्ट रूप को निकलते हुये देखते हैं, जो क्रमशः बढ़ता जाता है, बढ़ कर पूर्ण होता है और तदनन्तर दूसरे दृश्य के लिये स्थान देता हुआ विलीन हो जाता है। इसी भांति निःसन्देह रेंगने वाले जन्तु प्रगट हुये, पूर्णोन्नति को पहुंचे और क्रमशः विलीन होगये। न इन सब बातों में कोई बात आकस्मिक नहीं है। एक के बाद दूसरे परिवर्तन की छाया इस भांति पड़ती है कि उनका क्रमागत बढ़ाव स्पष्ट ज्ञात नहीं होता।

यह बात अन्यथा होही कैसे सकती थी? गर्म खून वाले जीव-ऐसे वायुमण्डल में रही नहीं सकते थे जो कि प्राचीन काल की भांति कारबोनिक एसिड से भरा हुआ हो। परन्तु सूर्यताप के प्रभाव द्वारा वृक्षों के पत्तों ने वायु से यह हानि कारक वस्तु हटा ली। कोयले के

रूप में पृथ्वी का कारबन पृथ्वी के चारों ओर लिपट गया और आक्सीजिन प्रथक् हो गया, इस कारण वे जीवित रहे । जब वायु-मण्डल इस प्रकार सुधर गया तब समुद्र में भी परिवर्तन होने लगा। उसने अपने कारबोनिक एसिड का बहुत बड़ा भाग छोड़ दिया और वह चूना जो अब तक पानी में घुला हुआ था कठोर रूप धारण कर के तह में बैठ गया । जितना कारबन कोयला रूप से पृथ्वी में गड़ गया उतना ही चूना समुद्र जल से भी प्रथक होगया । पर यह बात आकार हीन रूप से नहीं हुई, वरन् बहुधा साकार जीवधारियों के रूप में हुई (अर्थात उस चूने से अनेक सामुद्रिक जीव शंख, घोंघे इत्यादिक रूप से पैदा हुये) । सूर्यताप ने बहुत दिनों तक अपना काम जारी रक्खा, परन्तु उस काम को पूरा करने के लिये करोड़ों दिन की आवश्यकता थी । हानि कारी वायुमंडल बहुत धीरे २ स्वच्छ वायु मण्डल होगया, और वैसे ही धीरे२ सर्द खून वाले जीव बदल कर गर्म खून वाले जीव हो गये । परन्तु ये प्राकृतिक परिवर्तन एक नियम के अनुसार हो रहे थे और जीवधारियों के रूप परिवर्तन न तो आ-कस्मिक थे और न स्वेच्छाचारी ईश्वरीय कर्तव्यों से हुये थे। वे प्राकृतिक परिवर्तनों के उचित अनुगामी और अटल प्रतिफल थे, और इस लिये उन्हीं परिवर्तनों की भांति नियम के आवश्यक फल थे।

तब क्या यह जगत नियम से शासित किया जाता है वा ईश्वरीय कर्तव्यों से जो अकस्मात् घटनाओं का उचित क्रम तोड़ देते हैं ?

इस प्रश्न के विषय के निज विचार पूर्ण करने के लिये हम अब अन्त में उस ओर झुकते हैं, जो एक प्रकार से बहुत ही तुच्छ और दूसरे प्रकार से बहुत ही आवश्यक दशा है जो बिचार करने योग्य है। क्या एतिहासिक रीति से मानव जातियां कुछ ऐसे चिन्ह प्रदर्शित करती हैं जिनसे ज्ञात हो कि वे एक अनिवार्य मार्ग में बढ़ रही हैं ? क्या कोई ऐसा प्रमाण है कि जातीय जीवन किसी अपरिवर्तनीय नियम के अधीन है ?

क्या हम यह प्रतिफल निकाल सकते हैं कि समाज में व्यक्तिक मनुष्य की भांति कोई अंग विभाग नास्ति से नहीं पैदा हो सकते,

वरन् उन भागों से बिकाशित वा उन्नत हुये हैं जिनका अस्तित्व पहले से था ? यदि कोई मनुष्य तर्क करे वा उस बिकाश सिद्धान्त की हँसी उड़ावे जो जीवधारियों की एक ऐसी अटूट श्रृंखला है जो पृथ्वी के जीवों के प्रारम्भ से आज तक चली आती है, तो उससे कह दो कि वह बिचार करे कि वह स्वयं ऐसे हेर फेरों होकर गुज़र चुका है जिनके बराबर वाले हेरफेरों के बिषय में आज वह तर्क करने बैठा है। नौ महीने तक उसका शरीर एक जल जन्तु था, और उतने समय में उसने क्रमशः अनेक स्पष्ट रूप धारण किये, पर वे रूप ऐसे थे जो परस्पर सम्बन्ध रखते थे । पैदा होने के समय उसका शरीर वायु सम्बंधी जन्तु हुआ। वह वायु मंडल में सांस लेने लगा; खाने के लिये नये२ तत्व मिले, पालन पोषण का ढंग बदल गया, पर तब तक वह कुछ देख सुन वा समझ नहीं सकता था। धीरे२ समझदार हुआ, उसे ज्ञात हुआ कि उसके सिवाय कोई बाहरी जगत भी है। ठीक समय में उसके अंग भोजन के दूसरे परिवर्तन के अनुसार ठीक हुये। दांत निकले और भोजन का ढंग बदला । तब उसका बचपन गुज़रा और किशोर अवस्था व्यतीत हुई, उसके अंग प्रत्यंग बिकाशित होते गये और साथ ही साथ मानसिक शक्ति भी बढ़ती गई। लगभग १५ वर्ष की अवस्था में बिशेष अंगो के बिकाश के कारण उसके नैतिक आचरण में परिवर्तन हुआ। नये२ बिचारों और नई२ इच्छाओं ने उस पर अपना प्रभाव डाला । और यह बात कि वह प्रथमावस्था कारण थी और यह बर्तमान अवस्था उसका कार्य है प्रमाणित हो जाती है जब किसी सर्जन की चतुराई द्वारा उन अंगों में कुछ छेड़ छाड़ की जाय। यह बिकाश, यह रूपान्तर यहीं तक नहीं खतम हो जाता, वरन् शरीर को अपनी पूरी पूर्णता के लिये बहुत से बर्ष दर-कार होते हैं और मानसिक उन्नति के लिये भी बहुत से बर्ष चाहिये। अन्त में पूर्णोन्नति प्राप्त होती है और तदनन्तर क्षय का प्रारम्भ होता है। इस बात की आवश्यकता नहीं है कि मैं शारीरिक और मानसिक निर्बलताओं की खेद जनक घटनाओं का चित्र खीचूं। कदाचित् ऐसा कहने में कोई अत्युक्ति नहीं है कि एक शताब्दी से

क्रम ही में, यदि अकाल मृत्यु न हुई, पृथ्वी पर का प्रत्येक मनुष्य इन सब परिवर्तनों होकर गुज़र जाता है।

जब हम इस भांति जीवन की एक अवस्था से दूसरी अवस्था में जाते हैं तब क्या प्रत्येक मनुष्य के लिये कोई ईश्वरीय कर्तव्य काम करता है? या क्या हम ऐसा विश्वास नहीं कर सकते कि पृथ्वी में बसने वाले अगणित मानव व्यक्ति एक सर्वव्यापी अपरिवर्तनीय नियम के नीरीक्षण में रहे हैं?

परन्तु एक २ व्यक्ति तो समूहों वा जातियों का विभाग मात्र हैं। वे एक २ व्यक्ति समूहों वा जातियों से वैसा ही सम्बन्ध रखते हैं जैसा शरीर के कण शरीर के साथ रखते हैं। येही व्यक्ति समाज में मिल कर अपना काम प्रारम्भ करते हैं और पूरा करते हैं। तदनन्तर वे मर जाते हैं और विलीन हो जाते हैं।

इन्हीं व्यक्तियों की भांति कोई जाति अज्ञात भाव से पैदा हो जाती है और बिना अपनी इच्छा के मर भी जाती है। जातीय जीवन व्यक्तिक जीवन से सिवाय इस बात के और किसी विशेष बात में भिन्न नहीं है कि वह बहुत धरातल में फैली होती है, परन्तु कोई जाति अपने अटल अन्तिम परिणाम से बच नहीं सकती। प्रत्येक जाति, (यदि उसका इतिहास विचार से देखा जाय) अपने बचपन का समय; अपने किशोरावस्था का समय, अपने युवापन का समय, और अपने क्षय का समय (यदि जीवन की ये सब अवस्थायें पूर्ण होने पावें) प्रगट करती है।

सब ही वस्तुओं की जीवन की दशाओं में, यदि वे दशायें पूर्ण होने पावें, कुछ एक ही से चिन्ह मिलते हैं, और चूंकि व्यक्तियों की एक सी दशाएं प्रगट करती हैं कि सब ही व्यक्ति एक नियम के आधीन जीवित हैं, हमें यह फल निकालने का अधिकार है कि जातियों की धारा, और वास्तव में मनुष्य जाति की उन्नति की धारा संयोग बश वा अनिश्चित पथ से नहीं चलती, और यह भी फल निकाल सकते हैं कि दैवी हस्तक्षेप कभी एतिहासिक कार्य्यों की शृंखला को नहीं तोड़ते, और यह भी कि प्रत्येक एतिहासिक घटना किसी प्रथम

घटित घटना का प्रमाण है, और कुछ भविष्यत घटनाओं का कारण होने का प्रमाण दे रही है।

परन्तु यह प्रतिफल स्टोइक धर्मका आवश्यक सिद्धान्त है, वही स्टोइक धर्म जो यूनानी तत्वज्ञानियों का सम्प्रदाय था, जो जैसा कि मैं कह आया हूं बिपति के समय सहारा देता था और जीवन के परिवर्तनों में धीर्यवान पथदर्शक होता था। यह बात केवल बहुत से प्रख्यात यूनानियोंही के लिये न थी, वरन् कई एक रोम के बड़े तत्वज्ञानियों, राज्यनीतिज्ञों, सेनानायकों, और सम्राटों के लिये भी थी। यह एक ऐसा पंथ था जो दैवसंयोग को किसी बात में मानता ही न था और यह मानता था कि बेरोक आवश्यकता वश सब घटनायें पूर्ण भलाई की ओर बढ़ती चाली जाती हैं। यह ऐसा पंथ था कि जिसमें एकाग्र उत्साह, निठुर कठोरता, उग्र तप और वास्तविक पुण्य शीलता थी और जो सर्व साधारण जन समूह का पक्ष करता था। और कदाचित हम मानटेस्क के कथन का बिरोध न करेंगे जो यह कहता था कि स्टोइक धर्मावलम्बियों का विनाश मनुष्य जाति के लिये ऐक बड़ी भारी विपत्ति हुई, क्योंकि केवल वेही लोग अच्छे नागरिक और बड़े मनुष्य थे।

रोम का ईसाई धर्म जैसा कि पोप लोगों ने उसे बना रक्खा है इस नियम बद्ध शासन सिद्धांत का पूर्ण बिरोधी है। इस ईसाई सम्प्रदाय की शाखा का इतिहास अलौकिक चमत्कारों और ईश्वरीय मध्यस्थताओं की दिन चर्य्या है इन से प्रगट होता है कि सन्त महात्माओं की प्रार्थनाओं ने बहुधा प्राकृतिक धारा को (यदि ऐसी कोई धारा वास्तव में हो) रोक दिया है, और देवमूर्तियों और देव-चित्रों ने आश्चर्य्यप्रद काम किये हैं और हड्डियों, बालों और अन्य पवित्र स्मारकों ने अलौकिक चमत्कार कर दिखाये हैं। इन वस्तुओं में से बहुतों की सत्यता का प्रमाण केवल यही नहीं है कि उनकी पैदायश और उनका इतिहास अबिरोधनीय ग्रंथ में लिखा हुआ है, वरन् उनकी अलौकिक चमत्कार करने वाली शक्तियां प्रगट की जाती हैं।

क्या वह बिलक्षण न्याय-युक्ति नहीं है जो एक कथित घटना

का प्रमाण किसी दूसरे अविवेचनीय उदाहरण में दिखलावे ?

बहुत अज्ञानता के युगों में चतुर ईसाई लोग अवश्य इन माने गये इश्वरीय और चमत्कारिक हस्तक्षेपों के विषय में संदेह रखते रहे होंगे। प्रकृति की क्रमागत उन्नति में एक ऐसा सम्भावित बड़प्पन है जिसका पूर्ण प्रभाव हमारे ऊपर पड़ता है, और हमारे व्यक्तिक जीवन की घटनाओं में निरन्तरता का ऐसा स्वभाव है कि अपने पड़ोसी के जीवन में अलौकिक घटना के घटित होने पर हमें स्वाभाविक सन्देह होता है। एक समझदार मनुष्य भलीभांति जानता है कि उसके व्यक्तिक लाभ के हेतु प्रकृति की धारा कभी नहीं रोकी गई, उसके लिये अलौकिक चमत्कार नहीं हुये, वह अपने जीवन की प्रत्येक घटना को न्याय युक्त किसी विगत घटना का प्रतिफल बताता है जिसको वह कारण रूप मानता है और उस घटना को कार्य रूप समझता है। जब यह बात कही जाती है कि उसके पड़ोसी के हेतु ऐसे बड़े बड़े ईश्वरीय हस्तक्षेप सत्य कहे गये हैं तब उसे ऐसा ही विश्वास होता है कि उसका पड़ोसी या तो स्वयं ठगाया गया है या औरों को ठगना चाहता है।

तब जैसा कि पहिले से विचार लिया जा सकता है रिफारमेशन के समय में जब भाग्य और निर्वाचन के सिद्धान्त कतिपय बड़े २ ईश्वर वादी लोग मानते थे और कतिपय बड़े २ प्राटेस्टेंट सम्प्रदाय भी उन्हें स्वीकार करते थे, कैथोलिक लोगों के अलौकिक चमत्कारिक हस्तक्षेप वाले सिद्धान्त को बड़ा कठिन धक्का लगा। स्टोइक लोगों की कठोरता सहित कालविन कहता है कि "हम लोग आदि ही से चुन लिये गये थे, जब संसार की नीव तक भी न पड़ी थी और यह चुनाव हमारे गुणों के कारण नहीं हुआ था वरन् ईश्वरेच्छा के तात्पर्य के अनुसार"। इस बात के कथन में कालविन इस विश्वास को प्रगट करता है कि ईश्वर ने अनादि काल से होने वाली घटनाओं के विषय में आज्ञा दे रक्खी है। इस भांति बहुत समय व्यतीत हो जाने के अनन्तर दूसरी शताब्दी की 'बैसीलीडियन' और वैलिंटीनियन नामक ईसाई सम्प्रदायों के विचार फिर प्रकाशित होते

जाते थे, जिनके नास्तिक विचारों के कारण ईसाई धर्म पर त्रिदेव विषयक बड़े सिद्धान्त की क़लम लगाई गई थी। वे कहते थे कि मनुष्य के सबही काम आवश्यक हैं, यहां तक कि धर्म भी एक प्राकृतिक बरदान है, जो मनुष्य को ज़बरदस्ती दिया गया है। और इसलिये चाहे उनके जीवन कैसे ही अनियम रहे हों पर वे अपने धर्म द्वारा बच जायेंगे। इसी भांति वे विचार भी प्रगट हुये जिनको आगस्टाइन ने निज कृत "डि डोनो परसिवरेंटी" नामक ग्रंथ में प्रचारित किया था। वे विचार ये थे कि ईश्वर ने अपनी निज इच्छा से बिना किसी बिचार के विशेष २ व्यक्तियों को चुन लिया है जो धार्मिक और अच्छे काम करने वाले होंगे, और उन्हीं को सदैव-कालीन सुख शान्ति देने की अव्यर्थ प्रतिज्ञा की है, और इसी भांति कुछ और व्यक्तियों को सदैव काल के लिये अंगीकार किया है। सबलैप्सैरियन लोग बिश्वास करते थे कि "ईश्वर ही ने आदम के पतन की आज्ञा दी थी"। और सुप्रालैपसैरियन लोग बिश्वास करते थे कि अनादि काल ही से ईश्वर ने बुरे फलों सहित आदम का पतन निश्चित कर दिया था और हमारे प्रथम पुरुषा आदम और हौवा आदि ही से स्वच्छन्द न थे"। इस बात में इन सम्प्रदायों ने सेंट आगस्टाइन के इस कहने को नहीं माना कि "ऐसा कहना अधर्म है कि ईश्वर सिवाय भलाई के और कुछ भी पहले ही से भाग्य में लिख देता है"।

तब क्या यह बात सत्य है कि "सदैवकालीन सुख शान्ति का नियत भाग ही ईश्वर का अनादि अनन्त तात्पर्य्य है जिसके द्वारा संसार की उत्पत्ति से पहिले ही उसने, हमसे गुप्त, अपनी कौंसिल द्वारा उन लोगो को दुःख और अभिशाप से बचाने की आज्ञा करदी थी जिन्हें उसने मनुष्य जाति में से चुन लिया था? क्या यह सत्य है कि मनुष्य जाति में से कुछ ऐसे व्यक्ति हैं जिन्हें बिना स्वयं उनके दोष के ही सर्व शक्तिमान ईश्वर ने अनन्त कष्ट और अनादि विपत्ति का भागी कर दिया है?

सन् १५९५ ई० में लैम्बेथ के नियमों ने यह प्रतिपादन किया कि ईश्वर ने आदि काल ही से कुछ विशेष मनुष्यों के जीवन नियत कर

दिये हैं और कुछ को अस्वीकार किया है"। सन् १६१८ ई० में डोर्ट की सभा ने इस विचार को पुष्ट किया। उस सभा ने इस विचार के प्रतिवादकों को दोषी ठहराया और उनके साथ ऐसी कठोरता से वर्ताव किया कि उनमें से बहुत से लोगों को अन्य देशों को भाग जाना पड़ा। यहां तक कि इंगलैण्ड की धर्म सम्प्रदाय ने भी, जैसा कि उसके सत्रहवें धार्मिक नियम से प्रगट है, इन सिद्धान्तों को स्वीकार कर लिया था।

सम्भवतः अन्य कोई ऐसी बात न थी जिस विषय में कैथोलिक लोग प्राटेस्टेंट लोगों पर इससे अधिक कठिन अभिशाप लगाते हैं, कि उन्होंने नियम बद्ध जगत शासन को कुछ २ स्वीकार कर लिया है। सर्व संशोधित यूरोप में अलौकिक चमत्कारों का होना बंद हो गया। परन्तु पवित्र स्थानों पर और स्मारक चिन्हों द्वारा रोग मुक्ति प्रथा के बंद होने के साथ ही साथ पादरियों के बड़े २ धन लाभों का भी अंत हो गया।

वास्तव में तो, जैसा सब ही जानते हैं, मुक्ति पत्रों की बिक्री ही वह बात थी जिसने रिफारमेशन कराया। वे मुक्ति पत्र पाप करने के लिये ईश्वर की ओर से दिये गये परवाने हैं जो पादरी को कुछ निश्चित्त धन देने पर मिल सकते थे। तत्व विचार से, रिफारमेशन का अर्थ केवल कैथोलिक सम्प्रदाय के उस सिद्धान्त का प्रतिवाद करना ही है, जिसके अनुसार वे मानते थे कि पादरियों के कर्तव्य द्वारा उत्तेजित होकर ईश्वर सदैव मनुष्य सम्बन्धी विषयों में हस्तक्षेप किया करता है। परन्तु यह प्रतिवाद सब संशोधन चाहने वाली सम्प्रदायें पूर्ण रीति से कर न सकती थीं। नियम बद्ध जगत शासन के पुष्टकारक प्रमाणों को, जो अभी हाल ही में विज्ञान ने दिए हैं, उनमें से बहुतों ने सन्देह और घृणा से देखा है। परन्तु यह संदेह और घृणा ऐसे मनोविकार हैं जो अन्त में प्रमाणों के नित प्रति बढ़ते हुये गौरव के सामने अवश्य नतमस्तक होंगे।

तब क्या सिसरो के वाक्य ही के अनुसार हमें इस अध्याय का अंत न कर देना चाहिये, जो लैकटेंटियस के कथनानुसार यों कहता

है कि "एक ही अनादि अनन्त और अपरिवर्तनीय नियम है जो सब वस्तुओं पर और सब समयों में चलता है"।

——:o:——

दशवां अध्याय।

वर्तमान सभ्यता के साथ रोमन ईसाई धर्म का सम्बंध।

एक हजार वर्ष से अधिक तक रोमन ईसाई धर्म ने यूरोप की बुद्धि पर अपना अधिकार रक्खा और वही उसके फल के लिये उत्तर दाता है।

रिफारमेशन के समय रोम नगर की अवस्था से, और यूरोप महाद्वीप के घरू और जातीय जीवन की दशा से वह फल प्रगट है। दो प्रकार के शासनों-लौकिक और अध्यात्मिक-के समासमयिक अस्तित्व से यूरोप की जातियों ने बड़ा कष्ट उठाया। वे अज्ञान, व्यर्थ विश्वास और पीड़नाचार में डूबे रहे। कैथोलिक सम्प्रदाय के विफल होने की व्याख्या। पोपशासन का राजनैतिक इतिहास, वह पोपशासन अध्यात्मिक संयुक्त शासन से बदल कर स्वतंत्र साम्राज्य हो गया। कार्डीनल्स कालेज और क्यूरिया (Curia) का काम। वह आचार भ्रष्टता जो बहुत रुपया कमाने की आवश्यकता से पैदा हुई।

वे लाभ जो यूरोप को कैथोलिक राज्य काल में हुए, निश्चित इच्छाओं से नहीं हुये वरन् प्रसंग बश हुये।

मुख्य फल यह है कि कैथोलिक धर्म का राजनैतिक प्रभाव वर्तमान सभ्यता के लिये हानिकारी था)

———
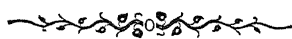
चौथी शताब्दी से सोलहवीं शताब्दी तक यूरोप की अवस्था और उन्नति के लिये रोमन ईसाई धर्म उत्तर दाता है। अब हमें इसकी जांच करना है कि उसने अपना कर्तव्य किस भांति किया। जो कुछ यहां पर वर्णन करना है उसे यूरोप ही की दशा तक सीमा बद्ध कर देना अच्छा होगा। यद्यपि पोप के राज्याधिकार से लेकर अमानुषीय उत्पत्ति तक ही के दावा का और उसके सर्वमान्य होने की आवश्यकता ही का वर्णन करना है, तथापि वह दावा सर्व मनुष्य

जाति की दशा के लिये उत्तर दाता समझा जा सकता है। दक्षिणीय और पूर्वीय एशिया के बड़े और माननीय धर्मों के सामने ईसाई धर्म की शक्तिहीनता एक ऐसा आवश्यक और शिक्षाप्रद विषय उपस्थित करेगी जो विचारणीय होगा, और हमें इस प्रतिफल तक पहुँचा देगा कि ईसाई धर्म ने अपना प्रभाव केवल वहीं डाला है जहां रोमन राज्य का प्रभाव फैला हुआ था। परन्तु यह एक राज्यनैतिक प्रतिफल है, जिसको ईसाई धर्म तुच्छ समझ कर अस्वीकार करता है।

निःसन्देह रिफारमेशन के प्रारम्भ में यूरोप में बहुत से ऐसे मनुष्य थे जो उस समय की जातीय दशा का, प्राचीन समय की जातीय दशा से मीलान करते थे। सदाचरण नहीं बदले थे, बुद्धि में उन्नति नहीं हुई थी, और जातीयता में भी कुछ उन्नति नहीं हुई थी। स्वयं सनातन नगर (रोम) से उसकी विभूतियां विलीन हो गई थीं। वे संगमरमर से पटी हुई गलियां, जिनका आगस्टस ने किसी समय अहंकार किया था, गायब हो गई थीं। मन्दिर, टूटे फूटे स्तम्भ, और वे बड़े३ जलपथों के लम्बे गुप्त मार्ग जो ऊजड़ कैम्पैगना पर से जाते थे, एक शोक प्रद दृश्य दिखाते थे। जिन कामों में वे लगा दिये गये थे, उसी के अनुसार रोम के किले का नाम "बकरों की पहाड़ी" और रोम के न्यायालय का नाम (जहां से दुनिया भर के लिये कानून निकला करते थे) "गायों का खेत" हो गया था। सीज़र नामधारी राजाओं का महल मिट्टी के ढेर से ढक गया था जिसके ऊपर पुष्प प्रद झाड़ियां उगी हुई थीं। कराकल्ला के हम्माम-खाने अपने बरामदों, बगीचों और कुण्डों सहित जल नलों के विनिष्ट हो जाने के कारण बहुत दिनों से बे काम हो चुके थे। उस बड़े भारी महल के खंडहर पर "सुगंधित वृक्षों के कुंज और पुष्पमय कुंज फैले हुये थे जो बड़े २ चबूतरों पर पेंचदार भूलभुलैयां बनाते थे और बड़ी ऊंची मेहराबें आकाश में लटकती थीं"। कालीसियम नामक नाच घर में से, जो कि रोमन खंडहरों में से सर्वाधिक बड़ा खंडहर था, केवल एक तिहाई के लगभग रह गया था। जिस नाट्यशाला में किसी समय लगभग ९०००० दर्शक आराम से बैठ सकते थे, वही मध्य

युग में पहले क़िला बनाया गया, तदनन्तर वह पत्थर की खानि हो गया जहां से नीच प्रकृति रोमन अपने महलों के लिये मसाला लेने लगे। कई एक पोपों ने उसे ऊन के कार्य्यालय की भांति अपने अधिकार में लिया, और कई एक ने शोरा के कार्य्यालय की भांति, और कई एक ने उसके बड़े २ तहखानों को अदल बदल कर दुकान्दारों के लिये दुकानें बना दीं। वे लोहे की कीलें जो उसके पत्थरों को जकड़े हुई थीं चुरा ली गईं थी, और उसकी दीवारें फट गईं थीं और गिर रहीं थीं, यहां तक कि हमारे समय में उन पौधों पर जो उस बड़े खंडहर में थे कई एक बनस्पति विद्या सम्बंधी ग्रन्थ लिखे गये हैं। "फ़्लोरा आफ दी कालीसियम" नामक ग्रन्थ में ४२० ज़ातियों के पौधों का वर्णन है। इन प्रचीन इमारतों के खंडहरों के बीच में टूटे फूटे स्तंभ, सरो के पेड़ और मलीन मंडोदक चित्र दीवारों से गिरते हुये देखे जा सकते हैं। यहां तक कि वहां की बनस्पतियां भी इस शोकप्रद परिवर्तन में सम्मिलित हुई हैं। मर्टिल नामक सदाबहार पौधा जो किसी समय अवेंटाइन पर बहुतायत से होता था अब लगभग ना पैद हो गया है। लारिल (जिसकी पतियां किसी समय सम्राटों के शीश भूषण का काम देती थीं) के स्थान में अब रोहिणी नामक लता विशेष (मृतको की संगिनी) फैली हुई है।

परन्तु कदाचित यह बात कही जा सकती है कि इस सब बरबादी के लिये पोप लोग उत्तर दाता नहीं थे। यह बात स्मरण रखिये कि एक सौ चालीस वर्ष से कम ही समय में वह नगर क्रमशः अलेरिक, जेंनसिरिक, रिसीमर, विटीजीज़ और टोटिला के अधिकार में पड़ चुका था; और उसकी बहुत सी बड़ी२ इमारतें अदल बदल कर सेना रक्षक स्थान बना लिये गये थे। पानी के नलों को विटीजीज़ ने नष्ट कर डाला था और उसी ने कैम्पैगना को विनष्ट किया था। सीज़र राजाओं का महल टोटीला ने उजाड़ दिया था। तदनन्तर लाम्बर्ड लोगों के आक्रमण हुये। और तदनन्तर राबर्ट गिसकार्ड और उसके नारमन सिपाहियों ने उस नगर को एन्टोनाइन स्तंभ से लेकर फ़्लैमीनियन फाटक तक, और लैटरन से लेकर कैपीटाल तक जला

दिया था ! तदनन्तर कान्स्टेबिल बोरबन ने उस पर आक्रमण किया और उसे नष्ट भ्रष्ट किया । कई बार टाईबर नदी के जलप्लाव से डूब गया और कई बार भूकम्पों से टूट फूट गया । परन्तु हमें अवश्य मैकीविली का दोषारोपण स्मरण रखना चाहिये जिसने निजकृत फ्लारेन्स के इतिहास में कहा है कि इटैली पर किये गये लगभग सब ही असभ्य आक्रमण पोदरियों के निमंत्रणों द्वारा हुए थे जिन्हों ने उन सेनाओं को बुला भेजा था । गाथ, वैण्डल, नारमन, और मुसलमानों ने इटैली देश को नहीं सत्यानाश किया, वरन् पोपों और उनके भतीजों ने रोम नगर को उजाड़ डाला । उन खंडहरों से चूने के भट्टों का पेट भरता था और पुरानी इमारतें इटली नरेशों के महलों के लिये पत्थर की खानें हो गई थीं; और पुराने मंदिरों के सामान से गिरजाघर सजाये गये थे ।

गिरजाघर मंदिरों के सामान से सजाये गये ? इसी कारण तो पोप लोग उसके उत्तर दाता समझे जाना चाहिये । अति उत्तम कारिन-थियन स्तंभों से महात्माओं की प्रतिमाएं बनाई गई थीं । मिश्र देश के भव्य सूच्याकार स्तंभ पोप लोगों के लेखों से अनादरित किये गये थे । सिवरस का सिप्टीज़ोनियम, सेंन्टपीटर के भवन के हेतु मसाला के लिये उजाड़ दिया गया था । पैंथियन की कांता की छत गला कर देवदूत के समाधिस्थान को सजाने के लिये स्तंभ बनाये गये थे ।

विटर्बो के बड़े घंटे ने जो कैपीटाल के बुर्ज में लगा हुआ था बहुत से पोपों की मृत्यु की सूचना दी थी, और भवनों का अपवित्री-करण और लोगों का भ्रष्टाचारी-करण चला ही जाता था । पोपों के समय का रोम नगर पुराने रोम नगर के लिये कोई आदर न प्रगट करता था, वरन घृणा प्रगट करता था । पांटीफ लोग रोमन सम्राटों के अधीनस्थ कार्य्य कर्ता रहे थे, तदनन्तर फ्रैंकिश राजाओं के सहायक रह चुके थे और तदनन्तर यूरोप के स्वछन्द न्यायाधीश रह चुके थे । उनका यह शासन बिधान अब अन्य जातियों की भांति परिवर्तित हो चुका था, और उसके सिद्धान्तों, विषयों और अधि-

करों में पूर्ण परिवर्तन हो चुका था । केवल एक ही बात अर्थात् असहनशीलता में कुछ परिवर्तन न हुआ था। यूरोप के धार्मिक जीवन का केन्द्र होने का दावा करके पोप का शासन सदैव बड़े हठ के साथ किसी अन्य धर्म के अस्तित्व को सहन नहीं करता था तब भी दोनों अर्थात् राज्यनैतिक और अध्यात्मिक दशाओं में वह नस२ से बिगड़ा हुआ था। इरैसमिस और ल्यूथर ने पोपों कृत देव-निन्दायें सुन कर बड़ा आश्चर्य्य किया था और उस नगर की नास्तिकता देख कर कांप उठे थे।

रैंन्के नामक इतिहासकार ने, जिसका मैं इन घटनाओँ के लिये बहुत ऋणी हूं, उस बड़े राज्यनगर के भ्रष्टाचरण का बहुत अच्छा वर्णन किया है। अधिकतर पोप लोग अपने चुनाव के समय तक बूढ़े हो जाते थे, इसलिये उनके अधिकार सदैव दूसरों के हाथों में चले जाते थे। प्रत्येक चुनाव, आशा और प्रतीक्षाओं के कारण, एक बिद्रोह सा हो जाता था। जिस समूह में प्रत्येक जन उन्नति करना चाहता है और सब ही जन सब ही पदों के अभिलाषी होते हैं उसका आवश्यक फल यह होता है कि प्रत्येक मनुष्य दूसरे को पीछे हटाने में लग जाता है। यद्यपि उस नगर की आबादी रिफारमेशन के प्रारम्भ में घट कर ८०००० रह गई थी, तब भी बहुत से पदाधिकारी लोग थे और उनसे भी अधिक उन पदों के अभिलाषी लोग थे। पान्टिफ का पद पाने में सफल मनोरथ मनुष्य के हाथ में हज़ारों पद देने का अधिकार रहता था। उनमें से बहुत से पद ऐसे होते थे जिनमें से पदाधिकारी लोग अखेदित रीति से निकाले हुये होते थे और बहुत से पद बेचने के लिये नये बना लिये जाते थे। पदाभिलाषी की योग्यता और ईमानदारी की कभी जांच नहीं की जाती थी, जिन बातों पर बिचार किया जाता था वे ये थीं कि उसने समाज की क्या सेवा की है वा कैान २ सी सैवायें करने योग्य है? अपने चुनाव के लिये कितना रुपया दे सकता है? एक अमेरिका निवासी पाठक इन सब बातों को भलीभांति जानता है, क्योंकि प्रत्येक प्रेसीडेंट के चुनाव में वह इसी प्रकार की बातें देखता है।

सभा की ओर से पोप का चुनाव उसी भांति होता था जैसे जातीय सभा की ओर से अमेरिका के प्रेसीडेंट का नाम निर्वाचन होता है। दोनों दशाओं में देने के लिये बहुत से पद होते हैं।

"विलियम आफ माम्सबरी कहता है कि मेरे समय में रोमन लोग धन के बदले ही सत्य और पवित्र वस्तुएं बेचते थे। उसके समय के अनन्तर कुछ उन्नति नहीं हुई। धार्मिक सम्प्रदाय भ्रष्टाचारी हो कर रुपया कमाने का द्वारा हो गई। इटली में बहुत रुपया इकट्ठा किया गया, इर्दगिर्द वाले और अनिच्छुक देशों से भी अनेक प्रकार के बहानों से बहुत धन खींचा गया। इन ढंगों में से सब से अधिक हानिकारी ढंग पाप हेतु मुक्तिपत्रों की बिक्री ही थी। रोमन धर्म लोगों को लूटने का एक हुनर हो गया था।

एक सहस्र वर्ष से अधिक तक मुख्य धर्माध्यक्ष लोग उस नगर के शासक रहे थे। वास्तव में उस नगर में बहुत से ऐसे भी बिनाश काण्ड हुये थे जिनके लिये वे धर्माध्यक्ष उत्तरदाता न थे, परन्तु इस बात के उत्तर दाता वे अवश्य थे कि उन्होंने उस नगर की साम्पत्तिक और सदाचार सम्बन्धी उन्नति करने के लिये कभी कोई बलवान और लगातार उद्योग नहीं किया। इस विषय में संसार के लिये उत्तम उदाहरण होने के स्थान में वह एक घृणास्पद दशा का उदाहरण हो गया। धीरे २ खराबी बढ़ती ही गई, यहां तक कि रिफारमेशन के समय में ऐसी दशा थी कि कोई पवित्रात्मा विदेशी ऐसा न था जो उसे देख कर कांप न जाय।

पोप शासन ने, बिज्ञान को अपने झूठे दावों के बिलकुल बिरुद्ध कहते हुये भी, पिछले दिनों में कला कौशल को उत्तेजना देने की ओर अपना ध्यान लगाया था। परन्तु गान बिद्या और चित्र बिद्या, मनुष्य जीवन के उत्तम शृंगारिक पदार्थ होने पर भी, कोई ऐसी बलवान शक्ति नहीं रखतीं जो एक शक्तिहीन जाति को शक्ति सम्पन्न जाति बनादें, और न वे कोई ऐसी बिद्याएं हैं जो सदैव काल के लिये जातियों की साम्पत्तिक भलाई वा सुख शान्ति को निश्चित कर सकें। इसलिये रिफारमेशन के समय में एक विचारवान मनुष्य के

बिचारों के अनुसार रोम नगर ने अपनी सब जीवन शक्ति खो दी थी। अब वह संसार की पदार्थिक वा धार्मिक उन्नति का स्वच्छन्द न्यायकर्ता नहीं रह गया था। साम्राज और संयुक्त राज्य के उन्नति प्रद सिद्धान्तों के स्थान में उसने पोपशासन के अवर्द्धिष्णु सिद्धान्त स्थापित किये थे। वह दिखाव में पवित्र और कलाकुशल देख पड़ता था। इस दशा में वह उन्हीं सुन्दर मृत शरीरों के समान था जो अब भी हम कैपस्सिनी के तहखानों में घूंघट काढे हुये स्तोत्रग्रंथ वा मुरझाये हुये फूल हाथ में लिये देखते हैं।

इस सनातन नगर के इस दृश्य को छोड़ कर (अर्थात् जो कुछ रोमन ईसाई धर्म ने स्वयं रोम नगर में किया था उसका बिचार छोड़ कर) अब हम सर्व यूरोप महाद्वीप की ओर झुकते हैं। अब हम उस प्रथा का सच्चा मूल्य निश्चित करने का उद्योग करते हैं जो समाज की मुख्य पथदर्शक थी। अब हम उसके फलों से उसकी जांच करते हैं।

जातियों की सुख सम्पत्ति विषयिक दशा उनके मनुष्य गणना सम्बन्धी परिवर्तनों से भली भांति प्रगट होती है। शासन बिधानों का प्रभाव प्रजा पर बहुत कम पड़ता है, परन्तु शासन नीति उनपर पूर्ण अधिकार कर सकती है।

जिन ग्रंथकारों ने इस विषय की ओर ध्यान दिया है उन्होंने भलीभांति दर्शाया है कि मनुष्य गणना के परिवर्तन जाति की उत्पादक शक्ति की समता और जीवन निर्वाह की कठिनाइयों पर निर्भर हैं।

"जाति की उत्पादक शक्ति" से वह शक्ति समझी जाती है जो जाति की गणना बढ़ाने में प्रगट होती है। यह शक्ति कुछ २ देश की जलवायु पर भी निर्भर है, परन्तु यूरोप की जलवायु में चौथी और सोलहवीं शताब्दियों के बीच में अधिक परिवर्तन न होने के कारण हम मान सकते हैं कि उस द्वीप की यह उत्पादक शक्ति (उस समय में जिसका हम विचार कर रहे हैं) परिवर्तित नहीं हुई।

"जीवन निर्वाह की कठिनाइयों से वे कठिनाइयां समझी जाती हैं जो व्यक्तिक अस्तित्व का सार सँभार अधिक कठिन बना देती हैं। भोज्य पदार्थों, कपड़ों, और निवासस्थानों की कमी, अनुपयोग्यता और अपूर्णता उन कठिनाइयों में परिगणित हो सकती हैं।

यह भी ज्ञात है कि यदि ये कठिनाइयां बहुत कम हो जायें तो उत्पादक शक्ति २५ वर्ष मे द्विगुणित हो सकती है।

ये कठिनाइयां दो प्रकार से अपना काम करती हैं। (१) शारीरिक रीति से, क्योंकि वे उत्पत्ति की गणना कम कर देती हैं और सब की आयु को घटा देती हैं। (२) मानसिक रीति से, क्योंकि सदाचरणी और विशेष कर धार्मिक जाति में, वे विवाहों को रोकती हैं, अर्थात जब तक लोग यह नहीं समझ लेते कि हम अपने बाल बच्चों का पूर्ण भार उठा सकेंगे तब तक वे लोग उस भार के लेने से इन्कार करते हैं। इसी से उस बहुमान्य घटना की व्याख्या होजाती है कि किसी विशेष समय की विवाह गणना भोज्य पदार्थों के मूल्य से एक घनिष्ट सम्बन्ध रखती है।

भोज्य पदार्थों की बढ़ती के साथ ही साथ मनुष्य गणना की भी बढ़ती चलती है, और वास्तव में उत्पादक शक्ति में ऐसी शक्ति होने के कारण ही वह (लोगों पर निरन्तर दबाव डाल कर) भोजन मिलने के उपायों को दबा लेती है। ऐसी अवस्थाओं में अवश्य ऐसा होता है कि कुछ धन हीनता हो जाती है। ऐसे व्यक्ति पैदा हो जाते हैं जिन्हें अवश्य भूखों मरना पड़ेगा।

भिन्न२ देशों की जन संख्या में जो परिवर्तन हुये हैं उनके उदाहरणों की भांति जस्टीनियन के युद्धों के फल से इटली देश की जनसंख्या की महान कमी, ईश्वर वादियों के झगड़ों द्वारा उत्तरीय एफ्रिका का उजड़ना, मुसलमानी मत की स्थापना से उसका फिर आबाद होना, और फ्यूडल प्रथा द्वारा सर्व यूरोप की जन संख्या की बढ़ती, वर्णन की जा सकती है। क्रूसेडों (धर्म युद्धों) द्वारा बहुत कमी हुई; केवल इस हेतु नहीं कि अगणित सैनिक मारे गये, वरन् इस हेतु से भी कि बहुत से विवाह योग्य पुरुषों ने भी युद्ध के कारण

बिवाह न किया । ऐसे ही परिवर्तन अमेरिका महाद्वीप में भी हुये हैं। जिन स्पेन वालों ने सभ्य इंडियन्स (अमेरिका के आदिम निवासी) को निराश कर दिया, उन्हीं की मारकाट और अत्याचारी निर्दयता से मेक्सीको की जन संख्या बहुत शीघ्र बीस लाख घट गई । यही बात पेरू में भी हुई ।

नार्मन बिजय के समय इँग्लैंड की जन संख्या लगभग बीस लाख के थी । पांच सौ वर्ष में वह कठिनता सहित दूनी हुई थी । ऐसा अनुमान किया जा सकता है कि यह अबर्द्धक दशा कुछ२ पोपों की उस गूढ़ नीति के कारण हुई थी, जिसके अनुसार पादरियों में अबिवाहित रहने की प्रथा थी । उस नीति से "उचित उत्पादक शक्ति" पर अवश्य प्रभाव पड़ा, परन्तु "वास्तिक उत्पादक शक्ति" पर नहीं । जिन लोगों ने इस विषय की अच्छी भांति छान बीन की है उन्हें अब से बहुत पहिले पूर्णतः ज्ञात हो चुका था कि प्रगट रूप से अबिवाहित रहना मानों गुप्त रूप से दुराचारी होना ही है । विशेष कर इसी बात ने ग्रहस्थों को और इंग्लैंड की सरकार को इस बात पर दृढ़ सम्मत कर दिया कि बैखानस विहाराश्रम मिटा दिये जायें । यह बात खुल्लम-खुल्ला कही जाती थी कि इँग्लैंड में एक लाख स्त्रियां ऐसी थीं जिनको धर्मगुरुओं ने दुराचारिणी कर डाला था ।

मैंने निज कृत "अमेरिकन सिविल वार" नामक ग्रंथ में इस बिषय में अपने कुछ विचार प्रगट किये हैं जिनको मैं यहां भी उद्धृत करने का साहस करता हूं । "तब इस जन संख्या की अबर्द्धनीय दशा का क्या अर्थ है ? इसका अर्थ यह है कि, भोजन कठिनता से मिलता है, पहरने के कपड़े काफ़ी नहीं हैं, लोग मैले कुचैले रहते हैं, निवास-स्थान ऐसे हैं जो ऋतुओं के अनुकूल नहीं हैं, सरदी और गरमी के प्रभाव से और विषैली भाफ से बहुत आदमी मरते हैं, स्वच्छता के नियम नहीं हैं, बैद हकीम नहीं हैं, देव मन्दिर कृत नीरोगता व्यर्थ है, और अलौकिक चमत्कार जिन पर समाज का बड़ा भरोसा है केवल छल हैं; या संक्षेप में यों कहिये कि इन सब दुःखों, आवश्य-

कताओं और कष्टों की लम्बी सूची का खुलासा अर्थ थोड़े में "अधिक मृत्यु" है।

"परन्तु केवल इतना ही नहीं, वरन् उसका कुछ और भी अधिक अर्थ है, अर्थात् सन्तानों की उत्पत्ति की कमी। और यह कमी क्या प्रगट करती है? यही न कि लोग विवाह नहीं करते, व्यभिचारी जीवन बिताते हैं, गुप्त पाप करते हैं, और समाज का आचरण भ्रष्ट है।

एक अमेरिका निवासी को, जो एक ऐसे देश में रहता है जो अभी थोड़े दिन हुये एक अनन्त और अगम्य जंगल था, परन्तु जो अब हाल में इतनी जन संख्या से भर गया है कि प्रत्येक २५ वर्ष में दुगुनी संख्या हो जाती है, यह वास्तिक और अनिश्चित जीवन का भयंकर अपव्यय अवश्य ही ऐक महाम आश्चर्य प्रद घटना ज्ञात होगी। वह उत्सुकता से यह पूछने लगेगा कि वह प्रथा कैसी रही होगी जो समाज को सुमार्ग दर्शाने और उन्नति करने का छल तो करती थी, परन्तु जो इस बड़े विनाश की उत्तर दाता कही जा सकती है। अपने प्रतिफलों की वढ़ती द्वारा युद्ध, महामारी और अकालों की भी उत्तर दाता समझी जा सकती है। छली इस लिये कहा क्योंकि लोग वास्तव में विश्वास करते थे कि वह प्रथा उनके सर्वोच्च लौकिक स्वार्थ साधन करा देती थी। उस समय से इस समय में अब कितना भेद है! इँगलैंड में अब उतनी ही भूमि उस समय की जन संख्या से दश गुणी जन संख्या का पालन पोषण करती है और अगणित मनुष्य बिदेशों को भेजती है। जो मनुष्य प्राचीन समय पर आदर की दृष्टि डालता हो उसे स्वयं अपने चित्त में निश्चय करना चाहिये कि ऐसी प्रथा किस योग्यता की रही होगी"।

यूरोप की जन संख्या में इस भांति के परिवर्तनों के साथ ही साथ निवासस्थानों में भी परिवर्तन हुये हैं। रोमन राज्य में ईसाई धर्म की स्थापना होने के समय से जन संख्या के केन्द्र उत्तर की ओर हो गये थे। उस समय से अब कला कौशल सम्बन्धी उद्योग के बढ़ जाने के कारण वे केन्द्र पश्चिम की ओर हो गये हैं।

अब हम कुछ अधिक सूक्ष्म दृष्टि से उन कठिनाइयों की प्रकृति की जांच करेंगे जिन्हों ने इस भांति एक हज़ार वर्ष तक यूरोप की जन संख्या को बढ़ने न दिया । इस महाद्वीप की भूमि अधिकतर पथहीन जंगलों से ढकी हुई थी । बैखानस निवासाश्रम और बड़े नगर केवल कहीं २ थे । तराइयों और सरिता तलों में छोटी २ झाड़ियां थीं जो कभी २ सैकड़ों मील तक हुआ करती थीं और जहां से रोग-कारक विषैली भाफ निकला करती थी और दूर २ तक दुष्ट ज्वर फैलाती थी । पेरिस और लन्दन में लकड़ी के ऐसे मकान थे जो मिट्टी से छपे रहा करते थे और तृण वा गुँदलों से छाये जाते थे । उनमें खिड़कियां नहीं होती थीं और आरा-कल के अन्वेषण समय तक बहुत ही कम घरों में लकड़ी के फर्श थे । दरी क़ालीन का ऐश तो कोई जानता ही न था । उनकी जगह कमरे में पयाल बिछा कर काम निकाला जाता था । धुँआरा भी न थे । कम ईंधन वाले और अमनो-रंजक अलाओं का धुआं छत के एक सूराख द्वारा निकला करता था । ऐसे घरों में ऋतु की सरदी गरमी से कोई बचाव न होता था । पानी निकालने का कोई उद्योग न किया गया था, वरन् मैला पानी और कूड़ा करकट केवल घर के बाहर फेंक देते थे । पुरुष, स्त्री, बच्चे एक ही दालान में सोते थे । बहुधा पालतू पशु भी उनके सहवासी होते थे । घर भर की ऐसी गड़बड़ में यह बात असम्भव थी कि लज्जा वा सदाचरण रीति ठीक रीति से स्थापित रक्खी जा सकें । पयाल से भरे हुये गद्दे बिछौना होते थे और एक लकड़ी का कुंदा तकिया का काम देता था । शारीरिक स्वच्छता बिल्कुल कोई जानता ही न था । राज्य के बड़े २ पदाधिकारी, यहां तक कि कैंटरबरी के धर्माध्यक्ष सरीखे बड़े २ अधिकारी भी चीलरों और जुओं के घर बने रहते थे । ऐसा कहा गया है कि यही दशा 'टामस ए बेकेट' की थी जो कि इँगलैंड नरेश का बड़ा भारी प्रति द्वन्दी था । शारीरिक अ-स्वच्छता छिपाने के लिये सुगंधित पदार्थ आवश्यकीय रीति और बहुतायत से काम में लाये जाते थे । नागरिक लोग चमड़े के कपड़े पहिनते थे, जो सदैव मैले कुचैले होते हुये भी बहुत वर्षों तक ठहर

सकें । जो मनुष्य सप्ताह में एक बार भी मांस भोजन प्राप्त कर सकता था वह अच्छी दशा वाला गिना जाता था । गलियों में पानी बहाने की नालियां न थीं । वे न खरंजेदार थीं न दीपक ही थे । संध्या होने के बाद लोग अपनी २ कोठरियों के किवाड़ खोलते और शिष्टाचार रहित होकर गृहस्थी का मैला पानी बाहर फेंकते, जिस से उन राहगीरों को बड़ा कष्ट होता जिनको उन तंग रास्तों से धुँधली लालटेंन लिये हुये आना जाना पड़ता था ।

एनीससिलवियस, जो कुछ दिन बाद द्वितीय पियस के नाम से पोप हुआ और इसी कारण वह एक बड़ा योग्य और अपक्षपाती लेखक हुआ, अपनी एक यात्रा का एक बहुत स्पष्ट वर्णन छोड़ गया है, जो उसने १४३० ई० के लगभग इँगलेण्ड तक की थी । वह वर्णन करता है कि किसानों के घर चूना रहित पत्थरों पर पत्थर रख कर बने हुये थे । छतें घास फूस की थीं और सुखाकर कठोर किया हुआ बैल का एक चमड़ा द्वारकपाट का काम देता था । भोजनों के लिये मोटे अनाज, जैसे मटर इत्यादि ओर पेड़ों की छाल तक काम में लाई जाती थी । कहीं २ तो लोग रोटी जानते ही न थे ।

गुँदले से बनी हुई और मिट्टी से छपी हुई कोठरियां थीं । घर टट्टियों से बनाये जाते थे, धुंआरा रहित कच्चे कोयले के अलाव थे जिनसे धुंआ निकल ही नहीं सकता था । शारीरिक और सदाचरण सम्बन्धी अपवित्रता से, तथा खटमल, चीलर इत्यादिकों से भरी हुई तंग कोठरियां थीं । सरदी से बचने लिये किसान लोग अपने अंगों पर घास तथा पयाल के पूले लपेट लेते थे, और भयंकर ज्वर पीड़ित किसानों के लिये सिवाय देवस्थान कृत इलाज के और कोई सहायता का प्रबन्ध न था ! तब भला कैसे सम्भव था कि जन संख्या बढ़ सके ?

तब क्या हमें इस बात पर आश्चर्य करना चाहिये कि सन १०३० ई० वाले अकाल में मनुष्य का मांस पकाकर बेंचा जाता था । वा इस बात पर कि सन् १२५८ ई० वाले अकाल में लन्दन में भूख से १५००० मनुष्य मर गये कोई बिस्मय प्रगट करना चाहिए ? क्याहमें

इस बात पर आश्चर्य करना चाहिए कि प्लेग के कतिपय आक्रमणों में इतनी अधिक मृत्यु हुई कि जीवित मनुष्य मृतकों को दफ़ना नहीं सकते थे? उस प्लेग से जो सन् १३४८ ई० में पूर्वीय देशों से व्यापारी मर्गों द्वारा आया था, और सर्व यूरोप में फैल गया था फ्रांस देश की एक तिहाई जन संख्या विनष्ट हो गई थी।

किसानों की और नगर निवासी जन साधारण की ऐसी दशा थी। भले मनुष्यों की भी इससे कुछ अच्छी दशा न थी "विलियम आफ माम्सबरी" ऐंग्लोसैक्सन लोगों के नीच पन का वर्णन करते हुये कहता है कि "उनके भले मनुष्य लोग, जो बड़े पेटू और व्यभिचारी हुआ करते थे, कभी गिरजाघरों में नहीं जाते थे, वरन् प्रातः कालिक बंदनाएं और सार्वजनिक बंदनायें एक जल्दीबाज़ पुरोहित उनकी कोठरियों ही में उनके उठने से पहले और बिना उनके सुने हुये ही उन्हें पढ़ कर सुना जाता था। जन साधारण अधिक शक्ति-वान मनुष्यों के शिकार थे। उनकी सम्पत्ति छीन ली जाती थी, उनके शरीर दूर देशों में ले जाये जाते थे और उनकी अविवाहिता कुमारियां या तो वेश्यालयों में पहुँचाई जाती थीं या दासियों की भांति बेंच डाली जाती थीं। रातदिन मद्य पान करना ही सब का काम था। इस हेतु वे बुराइयां जो मद्यपान की संगिनी हैं पैदा हुई और उन्होंने पुरुषों को ज़नाना बना डाला। बैरन लोगों के क़िले लुटेरों के लिये गुफायें हो रही थीं। एक सैक्सनइतिहास कर्त्ता वह हाल लिखता है जिस भांति पुरुष और स्त्रियां पकड़े जाते थे और उन क़िलों में लाये जाते थे। अँगूठों वा पैरों के बल लटकाये जाते थे। उनके शरीर से आग छुवाई जाती थी, गांठदार रस्सियां उनके शिरों में लपेटी जाती थीं और धन आकर्षण के लिये बहुत से अन्य भांति के कष्ट दिये जाते थे।

यूरोप भर में बड़े२ और लाभकारी राजनैतिक पदों पर पादरी ही भरे थे। प्रत्येक देश में दो प्रकार का शासन था अर्थात्, (१) देशी रीति का जो लौकिक राज्य करते थे और (२) विदेशी रीति का जिसमें पोप का अधिकार माना जाता था। यह रोमन प्रभाव

स्वभावतः स्थानिक प्रभाव से बढ़ कर था । और एक मनुष्य की सर्वोपर इच्छा सर्व महाद्वीप की जातियों पर एक साथ प्रगट करता था, और अपनी मज़बूती और ऐक्य के कारण बहुत शक्तिवान हो गया था । स्थानिक शासन अर्थात् देशीय राजाओं का प्रभाव अवश्य ही बलहीन था, क्योंकि वह साधारणतः पड़ोसी राज्यों की प्रति-स्पर्द्धाओं और राज्य सिंहासनाभिलाषियों के चातुर्य्ययुक्त विरोधों से बलहीन कर दिया गया था । किसी एक मौके पर भी यूरोप के भिन्न २ राज्य अपने एक शत्रु के विरुद्ध मिल कर काम नहीं कर सके । जब कभी इस भांति का काम पड़ा तब वे चातुर्य्यता से एक २ करके आक्रमित किये गये और अधिक तर पराजित ही किये गये । दिखाने के लिये तो पोप के हस्तक्षेप का तात्पर्य सर्व लोगों की आचरण सम्बंधी भलाई को पुष्ट करना था, परन्तु वास्तविक तात्पर्य्य बहुत सा धन वसूल करने और बहुत से पादरियों की परवरिश करने का था । इस भांति जो धन खींचा जाता था वह बहुधा उस धन से कई गुना होता था जो देशीय राजा के ख़ज़ाने में जाता था । इस भांति, उस समय पर जब चौथे इनोसेंट ने इँगलेंड की धर्म सम्प्रदाय से इटली निवासी ३०० अधिक पादरियों के पालन पोषण के लिये धन मांगा था और यह कहा था कि मेरे एक भतीजे को (जो केवल एक बालक था) लिंकन के बड़े गिरजाघर में आदरणीय पद मिलना चाहिए, यह बात जानी गई थी कि जो धन परदेशी पादरी इँगलेंड से प्रति वर्ष खींच लेजाया करते थे उस धन से तिगुना था जो स्थानीय राजा के कोश में जाता था ।

इस भांति जब ऊंचे दरजे के पादरी लोग तो प्रत्येक पाने योग्य राज पद को ले लेते थे, और छोटे दरजे के पादरी अपने दास दासियों की गणना से ही बढ़ जाने का उद्योग करते थे, (लोग कहते हैं कि किसी २ पादरी के अधीन २०००० से कम गुलाम न थे), तब भिखमंगे फ़क़ीर चारो ओर घूमते फिरते थे और निर्धन मनुष्यों के पास जो कुछ बच रहता था उसमें से भी हिस्सा लेते थे । अनुत्पादकों का समूह बहुत बढ़ गया था और वे विदेशीय शक्ति की अधीनता मानते

हुए और बिना काम किये ही जीवन व्यतीत करते हुये, मेहनत करने वालों की मेहनत के फलों को खाते उड़ाते थे। इस हेतु इसके अतिरिक्त और कुछ होही नहीं सकता था कि छोटे छोटे कृषि-क्षेत्र बड़े२ राज्यों में सदैव के लिये विलीन हो जायें और धनहीन मनुष्य धीरे२ अधिक धन हीन होते जायें, और जाति उन्नति से दूर रह कर लगातार बढ़ता हुआ भ्रष्टाचरण प्रगट करने लगे। सन्यासियों के आश्रमों के बाहर मानसिक उन्नति का कोई प्रबन्ध नहीं किया गया था और वास्तव में धार्मिक सम्प्रदाय का प्रभाव गृहस्थों को इसके विरुद्ध रखना चाहता था, क्योंकि इस सिद्धान्त को सब लोगों ने मान लिया था कि "अज्ञानावस्था ही भक्ति की जननी है"।

रोम के जन साधरण और सम्राट की यह रीति थी कि सब ही बाहरी प्रान्तों से पक्के पुलों और सड़कों द्वारा शीघ्र आवागमन हुआ करे। सेनाओं का यह एक मुख्य धर्म था कि वे पुल और सड़कें बनाया करें और उनकी मरम्मत किया करें। इस काम से रोम का सैनिक अधिकार सुरक्षित था। परन्तु रोम निवासी पोपों का राज्य भिन्न सिद्धान्त मूलक होने के कारण ऐसी बस्तुओं की कुछ आवश्यकता न रखता था। इस हेतु यह काम स्थानीय राज्यों के लिये छोड़ दिया गया था और वे भी उसे न करते थे। इस लिये चारों ओर की सड़कें अधिकतर लगभग अगम्य रहा करती थीं। चीज़ों के लाने और लेजाने का साधारण द्वारा बैलों से आकर्षित भद्दे छकड़े थे जो अधिक से अधिक तीन या चार मील प्रति घंटे चलते थे, और जहां कहीं नदियों के किनारे२ नावों की सवारी नहीं मिलती थी वहां व्यापारी सामान ले जाने के लिये डांक के घोड़े या खच्चरों ही से काम लिया जाता था जो कि उस समय के छोटे से व्यापार के लिये उचित द्वारा था। परन्तु जब कभी बड़ी२ फौजों को कहीं जाना पड़ता था तब ये कठिनाइयां अनुल्लंघनीय हो जाती थीं। कदाचित् इस बात का एक अति उत्तम उदाहरण पहले धर्म-योद्धाओं की यात्रा की कथा में पाया जा सकता है। इन आवागमन की रुकावटों ने सर्व साधारण की अज्ञानावस्था के बढ़ाने में बड़ा प्रभाव डाला था। एकाकी मनुष्यों

की यात्रायें बिना बहुत हानि उठाये हो ही नहीं सकती थीं, क्योंकि कोई ऐसा जंगल वा दलदल न था जहां लुटेरे डाकू न रहते हों।

हर ओर अपढ़ अवस्था के फैलने से मिथ्या विश्वास की उन्नति को सुअवसर मिल गया और तमाम यूरोप महाद्वीप लज्जास्पद अलौकिक चमत्कारों से भर गया। सब ही रास्तों पर यात्री लोग उन सन्त महात्माओं की समाधियों तक यात्रा करते फिरते थे जो निज कृत रोग निवारण कामों के हेतु प्रसिद्ध हो गये थे। सदैव से धार्मिक सम्प्रदाय की यह नीति रही है कि वह वैद्यों और वैद्यक विद्या को हतोत्साह करती रही है, क्योंकि वैद्य लोग समाधियों के लाभों और चढ़ौनियों में बहुत कुछ अवरोध करते थे। समय ने इस प्राचीन लाभकारी छल को अब उसके ठीक मूल्य तक पहुँचा दिया है। अब इन पवित्र स्थानों में से कितने स्थान यूरोप में सफलता सहित काम कर रहे हैं?

जो रोगी इतने बीमार होते थे कि चल न सकते थे वा हटाये न जा सकते थे उनके लिये सिवाय उन प्रेत स्थानों के और कोई इलाज ही न था, अर्थात् 'पेटरनास्टर' या 'एव' के प्रेतस्थानों ही तक उनकी दौड़ थी। रोगों के रोकने के लिये गिरजाघरों में प्रार्थनायें सन्निवेशित की जाती थीं, परन्तु स्वच्छता के कोई उपाय नहीं किये जाते थे। ऐसा ख्याल किया जाता था कि पादरियों की प्रार्थनाओं द्वारा सड़े कूड़ा करकट से भरे हुये शहरों में प्लेग न आने पावेगा, और उन्हीं के द्वारा वर्षा और सूखी ऋतु भी बुलाई जा सकती है, और ग्रहणों वा धूमकेतुओं के बुरे प्रभावों से रक्षा मिल सकेगी। परन्तु १४५६ ई० में जब हैली का धूमकेतु निकला तब उसका रूप ऐसा बड़ा था कि यह आवश्यकता पड़ी कि स्वयं पोप महाशय उसका अवरोध करें। पोप ने उसको मंत्रों से झाड़ा और वह आकाश से निकाल बाहर किया गया। वह धूमकेतु तृतीय कैलिफसटस के मंत्रों से डर कर शून्याकाश के वितल में जा छिपा और फिर ७५ वर्ष तक लौटने का साहस नहीं कर सका।

इन समाधियों कृत रोग निवारण और प्रेत कृत इलाजों का

प्राकृतिक मूल्य मृत्यु संख्या द्वारा निश्चित किया गया है। उन दिनों में मृत्यु संख्या सम्भवतः तेईस में एक थी, और अब वर्तमान समय की प्रभावशाली रीति के समय में चालीस में एक है।

यूरोप की सदाचारी दशा का उदाहरण भली भांति उस समय मिला जब कोलम्बस के साथियों द्वारा वेस्ट इंडीज़ का फिरंग नामक रोग यूरोप में प्रचारित हुआ। वह रोग बड़ी शीघ्रता के साथ फैल गया। सब श्रेणियों के लोग अर्थात् पवित्र पिता दशम लियो से लेकर गलियों के भिखमंगों तक उस लज्जास्पद रोग से ग्रसित हुये। बहुतों ने अपनी इस मुसीबत के लिये यह बहाना बताया कि यह रोग सर्वत्र व्यापी है जो हवा की बनावट में कुछ खराबी आजाने से पैदा हुआ है, परन्तु वास्तव में उसका प्रचार मनुष्य की बनावट में उस कमजोरी के कारण था जो उन धर्म गुरुओं से भी न हटाई जा सकी थी जिनकी शिक्षा में वे रहते थे।

पवित्र स्थानों के औषधेय गुणों में विशेष स्मारकों के औषधेय गुणों को भी मिला देना चाहिये। ये स्मारक कभी२ बहुतही विलक्षण प्रकार के होते थे। कई एक मठ ऐसे थे जहां हज़रत ईसा का कांटों वाला मुकुट था। ग्यारह मठों में वह भाला था जिसने हज़रत ईसा की बगल को छेद डाला था। यदि कोई मनुष्य इस बात के कहने का साहस करता कि वे सब वही सच्चा भाला नहीं हो सकते तो वह नास्तिक कहा जाता। धर्म युद्धों के समय में नाईट टेम्पलर लोगों ने जिरोसेलम से कुमारी मरियम की दूध की बोतलें युद्धकारी फौजों में ले जा कर बड़ा लाभदायक व्यापार किया था। वे उन बोतलों को बड़े २ दामों पर बेंचते थे। ये बोतलें बड़े पवित्र भाव से बहुत से बड़े २ धार्मिक स्थानों में रक्खी गई थीं। परन्तु कदाचित इन सब छलों में से कोई भी भ्रष्टता में उस छल से बढ़कर न होगा, जो जिरोसेलम में एक मठवालों ने किया था, जो देखने वालों को पवित्र आत्मा की एक अँगुली दिखाते थे। वर्तमान समाज ने चुपके २ इन अपवादक वस्तुओं पर अपनी दण्डाज्ञा प्रचारित कर दी। यद्यपि उन्होंने किसी समय हज़ारों सत्यनिष्ट लोगों की पवित्र आत्मिकता को पोषण

अधिकार बहुत बढ़ा दिया। उसने सम्प्रदायिक शासन की प्राचीन प्रथा को हटा दिया और उसके सार्वजनिक गुणों को छुड़ाकर उसे स्वतंत्र साम्राज्य बना दिया। ऐसा होने से बिशप लोग रोम के अधीन हो गये, और पांटीफ सब ईसाई संसार के पादरियों का सर्वोच्च न्यायाधीश बन गया। इसने उस बड़े उद्योग का मार्ग तय्यार कर दिया जो उसके अनन्तर हिल्डीब्रैंड ने यूरोप के राज्यों को बदल कर पोप की अधीनता में ईश्वरेर प्रभुत्व सूचक पुरोहितराज्य बना देने के लिये किया।

सप्तम ग्रेगरी ने, जो इस बड़े उद्योग का कर्त्ता था, जान लिया था कि उसकी युक्तियां धार्मिक सभाओं की सहायता द्वारा बहुत उत्तम रीति से काम में लाई जाती हैं, इस लिये उसने ऐसी सभाओं के करने का अधिकार पोपों और उनके वकीलों ही के लिये सीमा बद्ध कर दिया। इसमें सहायता देने के लिये ल्यूका के ऐन्सेल्म ने धार्मिक नियमों की एक नई प्रथा निकाली, जिसमें से कुछ नियम उसी प्राचीन आईसीडोरियन जाली संहिता से लिये गये थे और कुछ नवीन मनगढंत थे। रोम का सर्वोच्चाधिकार स्थापित करने के लिये केवल सर्व जन सम्बंधी और धर्म सम्बंधी एक नवीन नियमावली के प्रचलित करने ही की आवश्यकता न थी, वरन एक नवीन इतिहास भी गढ़ना पड़ा। यह इतिहास राजाओं के सिंहासनाच्युत और समाज बहिष्कृत किये जाने के आवश्यक उदाहरण देता था और प्रमाणित करता था कि राजा लोग सदैव से पोपों के अधीनस्थ रहे हैं। पोपों के व्यवस्था पत्र इन्जील की आयतों के बराबर समझे जाते थे। अन्ततः पश्चिमीय संसार भर में यह बात मान ली गई कि पोप लोग ईसाई धर्म के आदि प्रचार के समय से सर्व सम्प्रदाय के लिये नियमकार रहे हैं। जिस भांति स्वच्छन्द राजा गण उसके बाद के समय में प्रतिनिधीय समाजों को नहीं सहन कर सकते थे, इसी भांति पोप राज्य ने भी (जब वह स्वतंत्र साम्राज्य होना चाहता था) यह बात ज्ञात की कि विशेष २ जातीय गिरजाओं की धार्मिक सभायें तोड़ देना चाहिये और केवल उन सभाओं के होने की आज्ञा

की यात्रायें बिना बहुत हानि उठाये हो ही नहीं सकती थीं, क्योंकि कोई ऐसा जंगल वा दलदल न था जहां लुटेरे डाकू न रहते हों।

हर ओर अपढ़ अवस्था के फैलने से मिथ्या विश्वास की उन्नति को सुअवसर मिल गया और तमाम यूरोप महाद्वीप लज्जास्पद अलौकिक चमत्कारों से भर गया। सब ही रास्तों पर यात्री लोग उन सन्त महात्माओं की समाधियों तक यात्रा करते फिरते थे जो निज कृत रोग निवारण कामों के हेतु प्रसिद्ध हो गये थे। सदैव से धार्मिक सम्प्रदाय की यह नीति रही है कि वह वैद्यों और वैद्यक विद्या को हतोत्साह करती रही है, क्योंकि वैद्य लोग समाधियों के लाभों और चढ़ौनियों में बहुत कुछ अवरोध करते थे। समय ने इस प्राचीन लाभकारी छल को अब उसके ठीक मूल्य तक पहुँचा दिया है। अब इन पवित्र स्थानों में से कितने स्थान यूरोप में सफलता सहित काम कर रहे हैं?

जो रोगी इतने बीमार होते थे कि चल न सकते थे वा हटाये न जा सकते थे उनके लिये सिवाय उन प्रेत स्थानों के और कोई इलाज ही न था, अर्थात् 'पेटरनास्टर' या 'एव' के प्रेतस्थानों ही तक उनकी दौड़ थी। रोगों के रोकने के लिये गिरजाघरों में प्रार्थनायें सन्निवेशित की जाती थीं, परन्तु स्वच्छता के कोई उपाय नहीं किये जाते थे। ऐसा ख्याल किया जाता था कि पादरियों की प्रार्थनाओं द्वारा सड़े कूड़ा करकट से भरे हुये शहरों में प्लेग न आने पावेगा, और उन्हीं के द्वारा वर्षा और सूखी ऋतु भी बुलाई जा सकती है, और ग्रहणों वा धूमकेतुओं के बुरे प्रभावों से रक्षा मिल सकेगी। परन्तु १४५६ ई० में जब हैली का धूमकेतु निकला तब उसका रूप ऐसा बड़ा था कि यह आवश्यकता पड़ी कि स्वयं पोप महाशय उसका अवरोध करें। पोप ने उसको मंत्रों से झाड़ा और वह आकाश से निकाल बाहर किया गया। वह धूमकेतु तृतीय कैलिक्सटस के मंत्रों से डर कर शून्याकाश के वितल में जा छिपा और फिर ७५ वर्ष तक लौटने का साहस नहीं कर सका।

इन समाधियों कृत रोग निवारण और प्रेत कृत इलाजों का

किया था, पर अब वे इतनी तुच्छ समझी जाती हैं कि किसी अजा-यब घर में रक्खे जाने के लिये जगह नहीं मिलती।

यूरोप भर में धार्मिक सम्प्रदाय की संरक्षा में जो इस भांति की बड़ी विफलता देख पड़ती है उसकी क्या व्याख्या की जाय? यदि रोम में यूरोप महाद्वीप भर की अध्यात्मिक और पदार्थिक सम्पत्ति के संरक्षण के लिये निरन्तर उद्योग किया जाता तो यह फल न होता जो कि हुआ, और यदि पीटर का उत्तराधिकारी जो संसार भर का आचार्य्य समझा जाता था अपनी प्रजा की पवित्रता और सुख शान्ति के लिये दत्तचित्त होकर काम करता तो ऐसा न होता जैसा कि हुआ।

इसकी व्याख्या मिलना कठिन बात नहीं है। वह व्याख्या पाप और लज्जा की कथाओं में भरी है। इस लिये निम्नलिखित वाक्य खण्डों में कैथोलिक ग्रंथकारों द्वारा प्राप्त विवेचक घटनाओं का देना ही मैं अधिक पसन्द करता हूं, और वास्तव में जहां तक सम्भव होगा मैं उन घटनाओं का वर्णन उन्हीं ग्रंथकारों के शब्दों में रक्खूंगा।

जो कथा मैं वर्णन करना चाहता हूं वह एक संयुक्त राज्य का बदल कर एक स्वच्छन्द साम्राज्य हो जाने की कथा है।

प्राचीन काल में प्रत्येक गिरजा के कार्य कर्त्ता विना इन विचारों के कि सार्वजनिक सम्प्रदाय से उनकी सम्मति सब आवश्यक बातों में मिलती है वा नहीं, पूर्ण स्वच्छन्दता और स्वाधीनता के साथ निज सम्बंधी विषयों का प्रबंध करते थे, अपनी पुरानी रीतियों और सिद्धान्तों को सुरक्षित रखते थे और सब प्रकार के झगड़े जो सर्व सम्प्रदाय से असम्बंधित होते और बहुत आवश्यक होते, तुरन्त अपने यहां तै कर लेते थे।

नवीं शताब्दी के आरम्भ तक रोमन सम्प्रदाय की बनावट में कोई परिवर्तन न हुआ था। परन्तु ८४५ ई० के लगभग फ्रान्स के पश्चिम में आईसीडोरियन जाली स्मृत संहिता बनाया गया। इस जाली संहिता में लगभग एक सौ झूंठे हुक्म प्राचीन पोपों के थे, और कुछ अन्य गिरजाघरों के बड़े पदाधिकारियों के मिथ्या वाक्य और कुछ धर्म सभाओं के नियम थे। उस जालसाज़ी ने पोप का

अधिकार बहुत बढ़ा दिया। उसने सम्प्रदायिक शासन की प्राचीन प्रथा को हटा दिया और उसके सार्वजनिक गुणों को छुड़ाकर उसे स्वतंत्र साम्राज्य बना दिया। ऐसा होने से बिशप लोग रोम के अधीन हो गये, और पांटीफ सब ईसाई संसार के पादरियों का सर्वोच्च न्यायाधीश बन गया। इसने उस बड़े उद्योग का मार्ग तय्यार कर दिया जो उसके अनन्तर हिल्डीब्रैंड ने यूरोप के राज्यों को बदल कर पोप की अधीनता में ईश्वर प्रभुत्व सूचक पुरोहितराज्य बना देने के लिये किया।

सप्तम ग्रेगरी ने, जो इस बड़े उद्योग का कर्त्ता था, जान लिया था कि उसकी युक्तियां धार्मिक सभाओं की सहायता द्वारा बहुत उत्तम रीति से काम में लाई जाती हैं, इस लिये उसने ऐसी सभाओं के करने का अधिकार पोपों और उनके वकीलों ही के लिये सीमा बद्ध कर दिया। इसमें सहायता देने के लिये ल्यूका के ऐनूसैल्म ने धार्मिक नियमों की एक नई प्रथा निकाली, जिसमें से कुछ नियम उसी प्राचीन आईसीडोरियन जाली संहिता से लिये गये थे और कुछ नवीन मनगढंत थे। रोम का सर्वोच्चाधिकार स्थापित करने के लिये केवल सर्व जन सम्बंधी और धर्म सम्बंधी एक नवीन नियमावली के प्रचलित करने ही की आवश्यकता न थी, वरन एक नवीन इतिहास भी गढ़ना पड़ा। यह इतिहास राजाओं के सिंहासनाच्युत और समाज बहिष्कृत किये जाने के आवश्यक उदाहरण देता था और प्रमाणित करता था कि राजा लोग सदैव से पोपों के अधीनस्थ रहे हैं। पोपों के व्यवस्था पत्र इन्जील की आयतों के बराबर समझे जाते थे। अन्ततः पश्चिमीय संसार भर में यह बात मान ली गई कि पोप लोग ईसाई धर्म के आदि प्रचार के समय से सर्व सम्प्रदाय के लिये नियमकार रहे हैं। जिस भांति स्वच्छन्द राजा गण उसके बाद के समय में प्रतिनिधीय समाजों को नहीं सहन कर सकते थे, इसी भांति पोप राज्य ने भी (जब वह स्वतंत्र साम्राज्य होना चाहता था) यह बात ज्ञात की कि विशेष २ जातीय गिरजाओं की धार्मिक सभायें तोड़ देना चाहिये और केवल उन सभाओं के होने की आज्ञा

देनी चाहिये जो पांटीफ लोगों की ठीक अधीनता में होती हैं । इस बात ने स्वयंही एक बड़ा भारी राज्य परिवर्तन पैदा कर दिया ।

आठवीं शताब्दी में रोम सम्बंधी एक दूसरी कल्पित कथा ने बहुत आवश्यक फल पैदा किये । वह कल्पित कथा यों थी कि राजा कांसटेंनटाइन ने, कुष्ट रोग से अच्छा किये जाने के शुकराने में और सिल्वेस्टर नामक पोप से दीक्षित किये जाने की गुरुदक्षिणा में इटली और पश्चिमीय प्रान्त पोप को प्रदान कर दिये थे, और अपनी अधीनता के चिन्ह की भांति उसने पोप की साईसी की थी और पोप के घोड़े को कुछ दूर तक टहलाया था। यह जालसाज़ी फ्रैंकिश राजाओं पर प्रभाव डालने के लिये की गई थी, जिससे उनको अपनी लघुता का ठीक ज्ञान हो जाय और उन पर प्रगट हो जाय कि धार्मिक सम्प्रदाय को राज्यकीय अधिकार देने में वे अपनी ओर से कुछ नहीं दे रहे हैं, वरन् केवल वही वस्तु फेर रहे हैं जो वास्तव में उसी की थी।

पोप की इस नवीन संस्था का सर्वाधिक शक्तिमान यंत्र ग्रेशियन कृत धार्मिक स्मृति (नियमावली) थी, जो बारहवीं शताब्दी के मध्य समय के लगभग प्रकाशित हुई थी । वह स्मृति जाली नियमों का संग्रह थी । उसके अनुसार सर्व ईसाई संसार, पोप शासन द्वारा, इटली निवासी पादरियों का राज्य था । वह स्मृति प्रतिपादन करती थी कि मनुष्यों को दबाकर भलाई कराना धार्मिक नियमानुकूल बात है, और नास्तिकों को कष्ट देना और मारना और उनकी सम्पत्ति अपहरण कर लेना उचित है, और समाजच्युत मनुष्य को मार डालना हत्या नहीं है, और पोप सब नियमों के ऊपर अनन्त अधिकार रखने के कारण ईश्वर पुत्र के बराबर है ।

इस अधिकार निमज्जन की नवीन प्रथा ज्यों २ उन्नति पाती गई त्यों २ ऐसे सिद्धान्त, जो प्राचीनकाल में भयंकर मालूम होते, साहस सहित प्रतिपादित होने लगे, अर्थात सर्व सम्प्रदाय पोप की सम्पत्ति है, वह जैसा चाहै वैसा करे, धर्म पद का बेंचना वा मोल लेना जो औरों के लिये पाप है पोप के लिये वैसा नहीं है, वह किसी नियम के अधीन नहीं है, और न कोई मनुष्य उससे जवाब

तलब कर सकता है। जो मनुष्य उसकी आज्ञा न माने उसे मार डालना चाहिये, प्रत्येक क्रिश्चियन-धर्म-दीक्षित मनुष्य उसकी प्रजा है, और चाहे उसकी इच्छा हो वा न हो उसे जीवन पर्य्यन्त प्रजाही रहना पड़ेगा। बारहवीं शताब्दी के अन्त तक पोप लोग पीटर के प्रतिनिधि समझे जाते थे। तृतीय इनोसेंट के बाद वे लोग ईसा के प्रतिनिधि समझे जाने लगे।

परन्तु प्रत्येक स्वतंत्र राजा को राज्यकर की आवश्यकता होती है, और पोप लोग भी इस नियम के बाहर नहीं थे। हिल्डीब्रेंड के समय से पोप-प्रतिनिधियों की प्रथा प्रचलित हो गई थी। कभी२ उनका काम यह होता था कि वे गिरजाघरों का निरीक्षण करें, कभी २ विशेष कामों पर भेजे जाते थे, परन्तु इस बात की असीम शक्ति उन्हें सदैव के लिये प्रदान की गई थी कि वे दूसरे देशों से धन खींच कर ऐल्प्स पहाड़ के इस ओर इलटी देश में लावें। और चूंकि पोप केवल कानून ही नहीं बना सकता था, वरन उन क़ानूनों के कार्य को रोक भी सकता था, इस लिये कानूनों को भंग कराने के हेतु धन देने के नियम का भी प्रचार किया गया। रोम को कुछ कर देने पर सन्यासियों के मठ धर्माध्यक्षीय अधिकार से छोड़ दिये जाते थे। इस समय पोप जगत पूज्य बिशप हो गया था। वह एक ही साथ अपने सब राज्यों पर अपना अधिकार रखता था, और प्रत्येक अभियोग अपने न्यायालय में ले सकता था। बिशप लोगों के साथ उसका सम्बंध वैसा ही था जैसा कि एक स्वतंत्र राजा का अपने अधीनस्थ कर्मचारियों के साथ होता है। कोई बिशप केवल उसकी आज्ञा से पद त्याग कर सकता था, और इस भांति पद त्यागने से उस बिशप की जागीर पोप की सम्पत्ति हो जाती थी। नियमभंगानुशासनों के हेतु, पोप के पास अपील करने को लोग हर प्रकार उत्तेजित किये जाते थे। क्यूरिया के सामने ऐसे हज़ारों कार्य्य आये और उनसे रोम को बहुत धन लाभ हुआ। बहुधा जब पुरोहितवृत्ति के झगड़ालू दावेदार उसके पास आते तब पोप उन सब को हटा कर अपने किसी प्रिय आश्रित को उस स्थान पर स्थापित करता। बहुधा पदाभिलाषियों को

रोम नगर में कई वर्ष विताना पड़ते थे, और या तो वे वहीं मर जाते थे या सर्वव्यापी आचार भ्रष्टता का स्पष्ट विचार अपने साथ लेकर अपने देश को लौट जाते थे। इन अपीलों और इन कार्य्यों से अन्य देशों की अपेक्षा जरमनी देश ने अधिक कष्ट उठाया, और यही कारण है कि वह देश अन्य सब देशों की अपेक्षा धार्मिक सुधार के लिये सर्वाधिक तय्यार था। तेरहवीं और चौदहवीं शताब्दी में पोप लोगों ने शक्ति संग्रह में बहुत बड़े कदम बढ़ाये। पुरोहिती वृत्तियों के लिये अपने प्यारे आश्रितों की सिफारिश करने के बजाय अब वे आज्ञापत्र निकालने लगे। उनके इटली निवासी साथियों को अवश्य पुरस्कार मिलना ही चाहिए। सिवाय इसके कि उनको अन्य देशों में अच्छे २ पद दिलाये जायें और कोई बात उनकी इच्छायें पूर्ण करने के लिये की नहीं जा सकती थीं। रोम में बहुत से झगड़ालू दावेदार मर गये और जब उनकी मृत्यु उस नगर में हुई तब पोप उन वृत्तियों के दे डालने के अधिकार का दावा करने लगे। अन्ततः यह मान लिया गया कि उसे बिना किसी प्रकार के भेद के धर्म सम्प्रदाय सम्बन्धी सब ही पदों के देने का अधिकार है। और यह भी मानलिया गया कि बिशप लोग उसकी अधीनता की जो शपथ करते थे उस शपथ का तात्पर्य्य राजनैतिक और धार्मिक अधीनता थी। ऐसे देशों में जहां दो भांति के शासन प्रचलित थे इस बात ने अध्यात्मिक पक्षवाले शासन की शक्ति को बहुत बढ़ा दिया।

इस अधिकार निमज्जन को पूर्ण करने के हेतु प्रत्येक प्रकार के अधिकार अखेदित रीति से विनष्ट कर डाले जाते थे। इस विषय में भिखमंगी श्रेणी के लोग अति योग्य सहायक थे। पोप और ये भिखमंगे एक ओर थे और बिशप और पुरोहित कर्म कारी पादरी लोग दूसरी ओर थे। रोम के राज्य दरबार ने धार्मिक सभाओं, प्रधान धर्माध्यक्षों, बिशपों और जातीय गिरजाघरों के अधिकार छीन लिये थे। पोप के प्रतिनिधियों से सदैव सताये जाने के कारण बिशप लोगों ने अपनी धर्माध्यक्षीय जागीरों को ठीक रखने की सब इच्छाएं छोड़ दी थीं, और भिखमंगे योगियों से सदैव सताये जाने के

कारण ग्राम पुरोहित गण अपने २ ग्रामों में शक्ति विहीन हो गये थे। उनका पुरोहितीय प्रभाव पोप के मुक्ति पत्रों और पापानुशासनों की बिक्री से पूर्णतः नष्ट हो गया था। सब धन रोम को चला जाता था।

धन सम्बन्धी आवश्यकताओं ने बहुत से पोपों को ऐसी छोटी २ युक्तियों की ओर झुका दिया था जैसे कि किसी राजा के यहां से किसी ऐसे बिशप वा ग्रांडमास्टर को अपने यहां बुला लेना जिसका कोई मुक़द्मा कचहरी में चल रहा हो और अशर्फियों से भरा हुआ सोने का पियाला नज़राने में स्वीकार करना इत्यादि। ऐसी ही आवश्यकताओं के कारण ज्यूबिली के जलसों की नीव डाली गई। चौथे सिक्सटस ने बहुत सी धार्मिक समाजें स्थापित कीं और तीन वा चार सौ रुपये पर पद बेंचा करता था। आठवां इनोसेंट पोप का मुकुट रिहन कर देता था। दशवें लियो के विषय में कहा जाता था कि उसने तीन पोपों की आमदनी फ़ुजूल खर्च कर डाली, अर्थात उसने भूतपूर्व पोप का बचाया हुआ धन व्यय कर डाला, और अपने समय की आमदनी खर्च कर डाली और अपने उत्तराधिकारी को ऋणी बना गया। उसने २१५० नये पद बनाये और उन्हें बेंच डाला। वे पद अच्छी जायदाद समझे जाते थे, क्योंकि उनसे बारह रुपया प्रति सैकड़ा सूद पैदा होता था। वह सूद कैथोलिक देशों से ज़बरदस्ती वसूल किया जाता था। यूरोप में किसी जगह ऐसी अच्छी तरह से व्यापार में रुपया नहीं लगाया जा सकता था जैसा कि रोम में। रिहन की हुई वस्तुएं वादा से पहिले उठा देने के ढंग से बहुत धन कमाया गया, और इसी भांति केवल पदों को बेंच २ कर ही नहीं, वरन दुबारा तिबारा बेंच २ कर भी बहुत धन पैदा किया गया। अपने २ पद बेचने के लिये लोगों को लालच दिलाया जाता था।

यद्यपि व्याज लेना पोपों के सिद्धान्त के विरुद्ध था, तो भी पोप की ओर से क्यूरिया नामक सभा द्वारा लेन देन करने की प्रथा पैदा हो गई थी और बहुत बड़े व्याज पर मुख्य पादरियों को, पदाभिलाषियों को, और मुकद्मा लड़ने वालों को रुपया उधार दिया जाता था। पोप की ओर से लेन देन करने के लिये विशेष २ मनुष्यों को

अधिकार था, और अन्य सब मनुष्यों के लिये मनाही थी। क्यूरिया सभा को ज्ञात हो गया था कि सब यूरोप भर के धर्माध्यक्षों को ऋणी बनाये रखना उसके लिये लाभ कारी है। क्यूरिया सभा उनको दबा सकती थी। सन् १३२७ ई० में यह गणना की गई थी कि आधा ईसाई संसार जातिच्युत था। बिशप लोग जातिच्युत थे क्योंकि वे पोप के प्रतिनिधियों की मांग पूरी न कर सके थे, और जन साधारण भिन्न२ बहानों से जाति बाहर कर दिये गये थे जिससे वे बिवश होकर बड़े २ मूल्यों पर मुक्ति-पत्र खरीदें। तमाम यूरोप भर की धर्म विषय सम्बन्धी आमदनी रोम को चली जाती थी जो कि भ्रष्टाचरण, पदविक्री, सूद खोरी, और घूस खोरी और ज़बरदस्ती रुपया वसूल करने का स्थान हो रहा था। सन् १०६६ ई० से जब से यह अधिकार निमज्जन वाली बड़ी हलचल प्रारम्भ हुई थी, पोप लोगों को समय ही न मिलता था कि वे रोम निवासी अपने विशेष यजमानों के भीतरी मामलों की ओर ध्यान दें। हजारों विदेशी मामले ऐसे थे कि उनसे खूब धन मिलता था। बिशप अलवैरो पिलेयो कहता है कि जब कभी मैं रोम के दरबारी पादरियों के कमरों में जाता था, तब मैं उनको अशर्फियां ही गिनते हुये पाता था जो उनके कमरों में ढेर की ढेर इधर उधर पड़ी रहा करती थीं। क्यूरिया के अधिकार बढ़ाने का प्रत्येक सुअवसर अच्छा समझा जाता था। क्षमा प्रदान इस भांति किये जाते थे कि नवीन नज़रानों की बार २ आवश्यकता पड़ती ही रहै। धार्मिक समाजों के विरुद्ध बिशप लोगों को कुछ अधिकार मिल जाते थे। बिशपों, मठों और अन्य जनों को भी पोप प्रतिनिधियों के कष्टप्रद मांगों के विरुद्ध भी अधिकार मिल जाते थे।

वे दो स्तंभ जिन पर यह पोपीय प्रथा अवलम्बित थी कार्डिनल लोगों की धार्मिक सभा और क्यूरिया नामक सभा थे। सन् १०५९ ई० में कार्डिनल लोग पोपों के निर्वाचक हो गये थे। उस समय तक ये निर्वाचन सर्व रोमन पादरी मिल कर करते थे और न्यायाधीशों और नागरिक जनों की भी सहमति आवश्यक थी, परन्तु द्वितीय निकोलस

ने ये निर्वाचन कार्डिनल सभा की दे। तिहाई सम्मतियें। तक ही सीमाबद्ध कर दिए थे, और उनको पुष्ट करने का अधिकार जरमन नरेश को प्रदान किया था। लगभग दे। शताब्दियें। तक कार्डिनल लोगों के कुलीन-बर्गीय राज्य और पोपीय स्वच्छन्द राज्य के बीच में आधिपत्य के लिये झगड़ा होता रहा था। कार्डिनल लोग पूर्ण रीति से चाहते थे कि पोप को अपने विदेशीय राज्य में स्वच्छन्द होना चाहिये, परन्तु वे इस उद्योग में कभी न चूकते थे कि अपनी सम्मतियां देने के पहिले उससे प्रतिज्ञा करा लें कि वह उनको शासन विधान में एक बड़ा भाग प्रदान करेगा। पोप का निर्वाचन हो जाने के अनन्तर और प्रतिष्ठित हो जाने के पहले उसे विशेष२ ऐसी शर्तें मानने की शपथ करना पड़ती थी जैसे कि आय को कार्डिनलस लोगों में बांट देना, और ऐसी प्रतिज्ञा करना कि वह उन्हें कभी नहीं निकालेगा, वरन् इस बात की आज्ञा देगा कि वे लोग वर्ष में दे। बार सभा करके विवेचना करें कि उसने अपनी शपथ पूर्ण की वा नहीं। परन्तु पोप लोग बार२ अपनी शपथें तोड़ते थे। एक ओर तो कार्डिनल लोग धार्मिक प्रबन्ध और धन लाभों में बहुत बड़ा भाग लेना चाहते थे और दूसरी ओर पोप लोग धन वा अधिकार देने में नाहीं करते थे। कार्डिनल लोग विभव और अपव्यय में प्रख्यात होना चाहते थे, और इसके लिये धन की आवश्यकता थी। एक उदाहरण तो ऐसा मिलता है कि एक कार्डिनल के पास पांच सै। से कम जागीरें न थी। उनके मित्रों और सेवकों को भी कुछ मिलना चाहिये। और उनके वंश वालों को भी धनवान होना चाहिए। ऐसा कहा जाता था कि फ्रांस देश की कुल आमदनी उनके खर्चों को पूरा करने के लिये काफी न थी। कभी२ ऐसा होता था कि उनके लड़ाई झगड़ों के कारण वर्षों तक पोप का निर्वाचन ही न होता था। ऐसा ज्ञात होता था मानो वे यह प्रगट करना चाहते थे कि बिना पोप के भी धार्मिक सम्प्रदाय बहुत सरलता से चलाई जा सकती है।

ग्यारहवीं शताब्दी के अन्तिम भाग में रोमन धर्म सम्प्रदाय, रोमन राज्य दर्बार होगया। उन ईसाई भेड़ों के बजाय जे। चुप चाप

अपने चरवाहे के पीछे२ शहर की पवित्र सीमाओं भर में घूमा करती थीं, अब लेखकों, निरीक्षकों और कर ग्रहणकारियों का एक बड़ा न्यायालय पैदा हो गया, जहां अधिकारों, नियमभंगादेशों और करमुक्ति विषयक काम काज हुआ करते थे, और नालिशी लोग विनयपत्र लिये हुये द्वार२ फिरा करते थे। प्रत्येक जाति के पदाभिलाषियों के लिये रोम नगर एक अड्डा होगया था। उन कार्य्यवाहियों, दया प्रदानों, पापादेशों, मुक्तिपत्रों, आज्ञाओं और न्यायों की अधिकता के कारण जो यूरोप और एशिया के सब भागों को वितरित किये जाते थे, स्थानीय धार्मिक काम तुच्छ हो गये। क्यूरिया सभा को अपना घर बना लेने के लिये कई सौ मनुष्यों की आवश्यकता थी। उसका तात्पर्य्य यह होता था कि वे पोप के ख़ज़ाने की आमदनी बढ़ा कर स्वयं अपनी उन्नति करें। सर्व ईसाई संसार उस सभा का दाता हो चुका था। क्यूरिया सभा में प्रत्येक धार्मिक चिन्ह मिट चुका था, और उसके सभासद लोग राजनैतिक बातों, अभियोगों और न्यायनिर्णयों में लगे रहा करते थे, और अध्यात्मिक विषयों सम्बन्धी एक शब्द भी नहीं सुना जाता था। लेखनी की प्रत्येक चाल पर धन लगता था। पादारखें, नियम-भंगानुशासन, अनुज्ञायें, मुक्तिपत्र, पापादेश पत्र, सौदा की भांति खरीदे और बेचे जाते थे। मामले दार लोगों को दरबान से लेकर पोप तक प्रत्येक मनुष्य को घूस देनी पड़ती थी, नहीं तो मुकद्मा हार जाता था। गरीब लोग न तो कभी मुकद्मा जीतते थे और न उसकी आशा ही रखते थे, और फल यह था कि प्रत्येक पादरी समझता था कि उसे वैसा ही कार्य्य करने का अधिकार है जैसा कि वह रोम में देख आया था, और यह भी समझता था कि वह अपने अध्यात्मिक कार्य्यों और संस्कारों द्वारा लाभ उठा सकता है, क्योंकि ऐसा करने का अधिकार मैं रोम से खरीद लाया हूं और ऋण पटाने का दूसरा द्वार नहीं है। क्यूरिया को अविग्नान स्थान तक हटा देने के कारण इटली निवासियों की शक्ति फ्रांस निवासियों में चले जाने से कुछ परिवर्तन नहीं हुआ केवल इटली निवासियों ने यह समझा कि इटली निवासी घरानों के धनवान

होने का सुअवसर उनके हाथ से जाता रहा। वे लोग पोप राज्य को अपने वंशजों के लिये रोज़ी का द्वारा समझते थे, और यह समझते थे कि हम लोग ईसाई होने के कारण ईश्वर की प्यारी प्रजा हैं, जैसे कि मूसा के समय में युहूदी लोग थे।

तेरहवीं शताब्दी के अन्त में एक नया राज्य ढूंढ निकाला गया, जिससे बहुत बड़ी आमदनी हो सकती थी। यह परगेटरी नामक स्थान था (अर्थात् पाप शोधक स्थान)। ऐसा प्रगट किया गया कि पोप महाशय अपने मुक्तिपत्रों द्वारा इस स्थान को खाली कर सकते थे। इस बात में किसी प्रकार के छलकपट करने की आवश्यकता न पड़ी। ये बातें खुल्लम खुल्ला होती थीं। ईश्वर प्रतिनिधि होने का छोटा सा असली अंकुर अब बढ़ कर बहुत बड़ा स्वतंत्र साम्राज्य बन गया।

धर्म परीक्षक सभा ने पोप की प्रथा को बेरोक कर दिया था। सब प्रकार के विरोधियों को आग में जला कर मृत्यु दण्ड देना चाहिये। केवल विरोध का विचार मात्र जो बाहरी चिन्हों द्वारा प्रगट भी न किया गया हो पाप समझा जाता था। ज्यों२ समय बीतता गया त्यों ही त्यों यह धर्म परीक्षा की रीति अधिकाधिक अत्याचारी होती गई। सन्देह मात्र होने पर शारीरिक पीड़न किया जाता था। दोषी को दोष लगाने वाले का नाम नहीं बतलाया जाता था। उसको कोई वकील मुख़ार करने की भी आज्ञा नहीं मिलती थी, और अभियोग की अपील भी नहीं होती थी। धर्म परीक्षक सभा को दया की ओर झुकने की आज्ञा न थी। पूर्वोक्त कथन का खण्डन करने से भी कुछ लाभ न था। दोषी का निर्दोष घराना सम्पत्ति अपहरण द्वारा धन हीन बना दिया जाता था, और सम्पत्ति का आधा भाग पोप के ख़ज़ाने में जाता था और आधा धर्म परीक्षकों को मिलता था। तृतीय इनोसेंट ने कहा है कि अविश्वासी जनों के लड़के बालों के लिये केवल उसके प्राण छोड़ दिये जाते थे और वह भी बड़ा दया का काम समझा जाता था। फल यह हुआ कि तृतीय निकोलस सरीखे पोपों ने इस न्यायालय द्वारा लूटे हुये धन से अपने घराने को धनी बना लिया था। धर्म परीक्षकों ने भी स्वभावतः ऐसा ही किया था।

पोप होने के लिये फ्रांस निवासी और इटली निवासियों के बीच वाला झगड़ा चौदहवीं शताब्दी वाले अमिट मतभेद का कारण हुआ। चालीस वर्ष से अधिक समय तक दो प्रतिस्पर्द्धी पोप इस समय एक दूसरे पर अभिशाप लगा रहे थे, और दो प्रतिस्पर्द्धी क्यूरिया नामक सभायें जातियों का धन चूसे लेती थीं। अन्त में तीन प्रकार की अधीनतायें हो गईं और तिगुने कर लिये जाने लगे। इस समय संस्कारों की सत्यता का कोई विश्वास नहीं दिला सकता था, क्योंकि कोई निश्चय नहीं कर सकता था कि सच्चा पोप कौन है। इस प्रकार सब मनुष्य अपने लिये सोच विचार करने को विवश हुये। वे न जान सके कि उनके लिये नियमानुकूल विचारक कौन था। उन्हें ज्ञात होने लगा कि धर्म सम्प्रदाय को क्यूरिया सभा के बन्धनों से अवश्य छुटकारा प्राप्त करना चाहिये, और सार्वजनिक सभा का आश्रय लेना चाहिये। बार२ वह उद्योग किया गया क्योंकि उसका तात्पर्य यह था कि उस सार्वजनिक सभा को उन्नति देकर ईसाई धार्मिक राज्य को पार्लीमेन्ट बनादें और पोप को उसका मुख्य कार्य कर्त्ता अफसर नियत कर दें। परन्तु मुद्दतों के बिगाड़ से जो बड़े२ स्वार्थ बढ़ गये थे वे ऐसी सरलता से नहीं दबाये जा सकते थे। क्यूरिया सभा ने अपना बड़प्पन फिर प्राप्त किया और पुरोहितीय व्यापार फिर प्रचलित हुआ। जरमन निवासी लोग जिनको इस क्यूरिया सभा में भाग लेने की कभी आज्ञा तक न मिली थी, इन सुधार करने वाले उद्योगों में अग्रगामी बने; बात दिनों दिन बिगड़ती ही गई, यहां तक कि अन्त में उन्हें ज्ञात हो गया कि सभाओं द्वारा सम्प्रदाय के सुधार की आशा करना एक धोखा मात्र है। इरैस्मस ने कहा था कि "यदि ईसामसीह इस बिबिध प्रकार के पुरोहितीय अत्याचार से अपनी प्रजा को नहीं बचावेगा तो तुर्कों का अत्याचार इससे कम असह्य समझा जायगा"। इस समय कार्डिनल लोगों की टोपियां बेची जाती थीं और दशम लियो के राज्य में पुरोहितीय और धार्मिक पद वास्तव में नीलाम किये जाते थे। जीवन का सिद्धान्त यह हो गया था कि पहले स्वार्थ और फिर परमार्थ। राज्यकर्मचारियों में कोई भी ऐसा नहीं था जो अँधेरे में

सच्चरित्र रह सकता और एकान्त स्थान में भी पवित्रात्मा हो सकता। नीले रंग के मखमली लबादे और कार्डिनलोगों की श्वेत ऊनी टोपियां वास्तव में दुष्टता का ढकना हो गई थीं।

सम्प्रदाय का ऐक्य और उसकी शक्ति पवित्र भाषा की भांति लैटिन भाषा का प्रयोग चाहती थी। इस भाषा द्वारा रोम नगर ठीक यूरोपियन बना रहा, और इस योग्य बना रहा कि सब जातियों से अपना सम्बन्ध बनाये रहे। इस भाषा ने रोम नगर को उससे अधिक शक्ति प्रदान की जितने ईश्वरीय अधिकार दा वह दावा करता था, और चूंकि वह बहुत कुछ करने का दावा करता है उस पर यह अभिशाप लगाया जा सकता है कि इतना अधिक अधिकार पाकर भी जितना कि उसके अनन्तर किसी नगर को नहीं मिला उसने बहुत अधिक काम नहीं किया। यदि मुख्य पान्टीफ लोग पूर्णतः अपने लाभों और लोकाचारों ही के स्थिति रखने में न लगे रहते तो वे सर्व यूरोप महाद्वीप को एक मनुष्य की भांति उन्नति कर सकते। उनके कर्मचारीगण बिना कठिनता प्रत्येक देशमें चले जाते थे और आयरलैंड से बुहेमिया तक और इटली से स्काटलैंड तक बिना हैरानी के परस्पर बातचीत कर सकते थे। एक भाषा होने के कारण वे भिन्न जातीय मामलों का प्रबन्ध सब कहीं बुद्धिमान मित्रों के साथ कर लेते थे जो कि वही भाषा बोलते थे।

यूनानी भाषा के पुनरागमन और इब्रानी भाषा के प्रचार से रोम जो घृणा प्रगट करता था वह अकारण न थी, और वह भय भी अकारण न था जिस से वह गँवारू भाषाओं से हाल की भाषाएं निकलती हुई देखता था। पेरिस नगर में अध्यात्म विद्या विशारद जनों ने ज़िमनीज़ के समय वाला विचार जो पुनः प्रगट किया था वह अकारण न था। वह विचार यह था कि यदि यूनानी और इब्रानी भाषाओं के पढ़ने की आज्ञा दे दी जायगी तो धर्म की क्या गति होगी। लैटिन भाषा का प्रचार ही धर्म की शक्ति की दृढ़ प्रतिज्ञा थी। उस भाषा का प्रचार कम हो जाना मानों उस के पतन का उपाय था और उस भाषा का अप्रयोग मानो इटली ही देश की छोटी राजधानी

राजधानी तक धर्म को सीमाबद्ध कर देने का चिन्ह था। वास्तव में यूरोपीय भाषाओं का प्रस्तार उसके विनाश का द्वारा था : वे भाषायें भिखमंगे योगियों और अपढ़ मनुष्यों में एक प्रभाव जनक सम्बन्ध थीं, और उनमें से कोई भी ऐसी भाषा न थी जिसने अपनी प्राथमिक पुस्तकों में धर्म की ओर भारी घृणा न प्रगट की हो।

इसलिये बहुभाषी यूरोपियन साहित्य की उन्नति होना कैथोलिक राज्य में असम्भव था। एक बड़े गौरवान्वित और भव्य धार्मिक ऐक्य ने उस साहित्य सम्बन्धी ऐक्य को प्रचलित किया था जो एक भाषा के प्रयोग से समझा जाता है।

जब इस भांति एक सार्वजनिक भाषा के होने से धर्म की शक्ति बहुत बढ़ गई थी तब सम्प्रदाय के प्रभाव का बहुत कुछ वास्तविक रहस्य उस अधिकार पर निर्भर था। ज्यों २ घरू जीवन विधान में परिवर्तन हुये त्यों २ धर्म का प्रभाव घटता गया। इसी के साथ ही साथ उस को कूटनीति द्वारा भिन्न जातीय सम्बन्धों की मुख्यता से भी निकाल दिया गया।

रोमन राज्य के प्राचीन समय में सर्व प्रान्तों के सेना निवास-स्थान सदैव से सभ्यता के केन्द्र प्रमाणित होते आये थे। उद्योग और क्रम जो उनसे प्रगट होते थे उनसे एक ऐसा उदाहरण मिलता था जो इर्द गिर्द वासी इंगलैंड, फ्रान्स और जरमनी के असभ्य निवासियों पर प्रभाव डालता था। और यद्यपि यह उनका काम न था कि वे विजित जातियों की दशा सुधारने में दत्तचित हो जायें, वरन् उनका यह काम था कि उन्हें बुरी दशा में रक्खें जिसमें उन्हें अधीन रखने में सहायता मिले, तथापि व्यक्तीय और जातीय दशा की उन्नति धीरे २ होती ही रही।

रोम के पुरोहितीय राज्य समय में भी ऐसे ही फल हुये। देहात के खुले मैदानों में बैखानस आश्रमों ने सैनिक छावनियों को हटा दिया और गांव वा बड़े नगर में गिरजाघर ज्ञान का केन्द्रस्थान था। बैखानस आश्रमों का मनोहर विभव बड़ा प्रभाव डालता था और गिरजाघरों के पवित्र और उच्च उपदेश अच्छा फल पैदा करते थे।

पोपीय प्रथा के उन कर्तव्यों की प्रशंसा करने में, जो उसने गृहस्थों के घरों को नियम बद्ध करने, राजनीति को सीमा बद्ध करने, और यूरोप के राज्यों की बनावट में प्रगट किये थे हमारी प्रशंसा इस स्मरण से सीमाबद्ध होना चाहिए कि पुरोहितीय कूटनीति का वास्तविक तात्पर्य्य धार्मिक सम्प्रदाय का गौरव बढ़ाना था न कि सभ्यता की उन्नति करना। परन्तु सर्व साधारण को सभ्यता बढ़ाने में जो लाभ हुए वे पोपीय प्रथा की विशेष इच्छाओं से नहीं हुए वरन प्रसंग वश वा शाखानुरीति भाव से हुए।

जातियों की प्राकृतिक दशा सुधारने के हेतु कोई गम्भीर-मूल वा अनन्तर उपाय नहीं किया गया। उनके मानसिक विकाश को सहायता पहुँचाने के लिये कुछ नहीं किया गया। वरन् वास्तव में इसके विरुद्ध उनकी यह नीति थी कि उन जातियों को केवल निरक्षर ही न रक्खा जाय, वरन् पूर्ण अज्ञानावस्था में। शताब्दियों पर शताब्दियां बीतती गईं और किसान लोग वही पशुओं से कुछ ही अधिक अच्छी दशा में बने रहे। भिन्न जातियों से सम्मिलन और यात्रा जो बिचार उन्नत करने के बड़े प्रभाव शाली ढंग हैं, उत्तेजित न किये गये। बहुत से मनुष्य बिना इतना साहस किये हुये ही मर गये कि तनक अपनी जन्मभूमि छोड़ कर कहीं घूम तो आते. लोगों के लिये व्यक्तीय उन्नति की आशा न थी, अपना भाग्य कोई सुधार न सकता था, छोटी छोटी आवश्यकताओं से बचने के लिये कोई सर्वव्यापी उपाय न थे, और अकालों को रोकने के लिये तो कोई युक्ति ही न थी। महामारियां बे रोक बढ़ने दी जाती थीं या अधिक से अधिक केवल कपट युक्तियों से उनका सामना किया जाता था। बुरा भोजन, निकृष्ट कपड़े और अपूर्ण छाया अपने फल पैदा करने के लिये अरोक छोड़ दिये जाते थे, और एक हजार वर्ष के अन्त में भी यूरोप की जन संख्या द्विगुणित न हुई। यदि राजनीति ही इस बात के लिये उत्तर दाता समझी जाय कि सन्तानोत्पत्ति को रुकावट और मृत्युओं की अधिकता इसी से होती है तो इस उपरोक्त वर्णन से पोप राज्य पर कितना बड़ा उत्तर दायित्व आ पड़ता है।

कैथोलिक धर्म के प्रभाव की इस जांच में हमें होशियारी के साथ उन वस्तुओं को प्रथक २ कर लेना चाहिये जो उस धर्म ने प्रजा के लिये कीं और जो स्वयं अपने लिये कीं। जब हम शानदार वैखानस आश्रमों का विचार करते हैं जो विषयी भोग बिलासों का स्वरूप ही थे, और जब हम उनके भलीभांति कटे हुए हरित तृण क्षेत्रों, उनके उद्यानों और कुंजों, उनके फौवारों और बहुत सी सुस्वरित सरिताओं का ध्यान करते हैं, उस समय हमें उनके उस सम्बन्ध की ओर ध्यान न देना चाहिए जो वे दलदली भूमि में असहाय और ज्वर-पीड़ित मरते हुए किसानों से रखते थे, वरन महन्तों, उनके सुसज्जित घोड़ों, उनके बाजों और कुत्तों, उनके सामग्री पूर्ण कोठों और भण्डारों की ओर ध्यान देना चाहिये। वे महन्त उस शासन का एक भाग हुआ करते थे जिसके अधिकार का केन्द्र इटली में था। उसी के वे अधीन रहते थे और उसी की ओर से सब काम करते थे। जब हम उस समय के बड़े २ गिरजाघरों और प्रार्थना स्थानों को देखते हैं (जो शिल्प चातुर्य्य के चमत्कार हैं, और कैथोलिक धर्म के वास्तविक चमत्कार केवल यही हैं) और जब हम उन के बड़े और सभ्य कामों की ओर ध्यान करते हैं जो किसी समय वहां हुये हैं, और जब उस धुँधले धार्मिक प्रकाश की ओर ध्यान लगाते हैं जो उनकी बहुरंगी खिड़कियों द्वारा निकला करता था, और उन स्वरों को मानसिक रीति से सुनते हैं जो वहां गाये जाते थे और राग में बैकुण्ठीय गान से कम न थे, और पुरोहितों को पवित्र पोशाकों में और सर्वोपर भक्तों को साष्टांग पड़े हुये अज्ञात और विदेशी भाषा में प्रार्थनायें सुनते हुये बिचारते हैं, तब क्या हमारे चित्त में यह प्रश्न नहीं उठता कि क्या ये सब बातें उन भक्तों के लिये की जाती थीं वा रोम निवासी बड़े और सर्वोपर अधिकारी का महात्म स्थिर रखने के लिये?

परन्तु कदाचित् कोई मनुष्य यह भी कह सकता है कि क्या मानवी उद्योगों की सीमा नहीं है? क्या कुछ ऐसी बातें नहीं हैं जो किसी राज्यनैतिक प्रथा, किसी मानवी शक्ति, और किसी अति उत्तम

पदार्थ से भी न की जा सकती हों? मनुष्य असभ्य दशा से उन्नत नहीं किये जा सकते, और एक महाद्वीप एक दिवस में सुसभ्य नहीं बनाया जा सकता!

परन्तु कैथोलिक शक्ति की जांच ऐसे अनुमान से नहीं होना चाहिये। उसने बड़ी घृणा के साथ इस बात को अमान्य किया है, और अब भी अमान्य करती है, कि वह शक्ति मानवी नहीं है। वह ईश्वरीय शक्ति माने जाने का दावा करती है। मुख्य पांटिफ पृथ्वी निवासी ईश्वर प्रतिनिधि है। उसका निश्चित न्याय सर्वथा सत्य मान कर उसमें यह शक्ति मानी जाती है कि यदि आवश्यकता हो तो वह पांटिफ अलौकिक चमत्कारों द्वारा सब काम कर सकता है। उसने एक हज़ार वर्ष से अधिक तक यूरोप की बुद्धि पर एकाधिपत्तिक अत्याचार किये थे, और यद्यपि कभी२ कोई अनाज्ञाकारी राजा लोग उसका सामना करते थे, तथापि ये सब मिल कर ऐसे तुच्छ थे कि यह कहा जा सकता है कि महाद्वीप की प्राकृतिक और राज्यनैतिक शक्ति उसी के अधिकार में रही थी।

ऐसी घटनाओं पर जैसा कि इस अध्याय में वर्णन की गई हैं, सोलहवीं शताब्दी के प्रोटेस्टैंट सुधारकों ने निःसन्देह भली भांति विचार किया और यह फल निकला कि कैथोलिक धर्म अपने कार्य में सर्वथा अकृतकार्य्य हुआ है, और वह धोखा और छल की एक भारी प्रथा हो गया था, और ईसाई धर्म का उद्धार केवल प्राचीन-कालिक विश्वास और कामों तक लौट जाने ही से हो सकेगा। यह निश्चय अकस्मात नहीं कर लिया गया था। ऐसी ही सम्मति बहुत से धार्मिक और विद्वान पुरुषों की बहुत दिन से थी। मध्य युग में पवित्रात्मा फ्रैट्रीसीलस लोगों ने ज़ोर के साथ अपना यह विश्वास प्रगट किया था कि एक रोमन सम्राट के घातक दान ने सत्य धर्म को विनष्ट कर डाला। यूरोप के उत्तरीय भाग निवासी मनुष्यों को यह निश्चय दिला कर कि कुमारी मरियम की पूजा, महात्माओं से प्रार्थना करना, अलौकिक चमत्कारों का होना, रोगियों का ईश्वरीय शक्ति द्वारा निरोग्य होना, पाप करने के लिये आज्ञापत्रों की खरीद और

अन्य सब बुरे काम जो पादरियों को लाभकारी हैं और ईसाई धर्मानुकूल बताये जाते हैं, परन्तु जो उस धर्म का कोई भी भाग नहीं है, उनके मिटवाने के लिये केवल ल्यूथर की वाक्यशक्ति ही की आवश्यकता थी। कैथोलिक धर्म, मनुष्य जाति की भलाई को उन्नति देने वाली प्रथा की भांति, अपनी असलियत प्रमाणित करने में स्पष्ट निर्फल हुआ और उसके काम उसके बड़े दावों के अनुकूल नहीं थे, और एक हज़ार बर्ष का समय पाकर भी उसने मनुष्य समूहों को (जहां तक प्राकृतिक भलाई और मानसिक विद्या का सम्बन्ध है) एक ऐसी दशा में छोड़ा जो उस दशा से बहुत नीची थी जैसी कि होनी चाहिए थी।
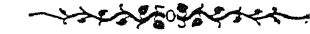
ग्यारहवां अध्याय।

वर्तमान सभ्यता के साथ विज्ञान का सम्बन्ध।

(अमेरिका के इतिहास से विज्ञान के बड़े प्रभावों का उदाहरण। यूरोप में विज्ञान का प्रचार। वह प्रभाव मूरिश स्पेन से उत्तरीय इटैली तक गया और ऐविगनान में पोपों के न रहने के कारण लोगों ने उसको स्वीकार किया। छापे के प्रभाव, और समुद्रीय यात्राओं के प्रभाव और धार्मिक सुधार का प्रभाव। इटली में वैज्ञानिक समाजों की स्थापना। विज्ञान का मानसिक प्रभाव। उस प्रभाव ने यूरोप में विचार की दशा और ढंग बदल दिया। लन्दन की रायल सुसायटी और अन्य वैज्ञानिक समाजों के काम इसका उदाहरण देते हैं।

विज्ञान के अर्थ सम्बंधी प्रभाव का उदाहरण उन बहुत से यंत्रिक और पदार्थिक अन्वेषणों से मिलता है जो चौदहवीं शताब्दी से इधर किये गये। उन अन्वेषणों का प्रभाव स्वास्थ और घरू जीवन पर और शान्ति प्रद और युद्ध सम्बन्धी कलाओं पर।

"विज्ञान ने मनुष्य जाति के लिये क्या किया है?" इस प्रश्न का उत्तर)।

धार्मिक सुधार के समय में यूरोप हमको रोमन ईसाई धर्म के प्रभावों का वह फल बतलाता है जो उसने सभ्यता की उन्नति में

दिखलाये। उसी भांति जांच करने से इस समय अमेरिका भी विज्ञान के प्रभावों का उदाहरण देता है।

सत्रहवीं शताब्दी में यूरोप के थोड़े से निवासी पश्चिमीय ऐटलांटिक समुद्र के किनारे पर जा बसे थे। न्यूफाउन्डलैंड की "काड" नामक मछली के शिकार के लालच से फरासीसियों ने सेंटलारेंस नदी की उत्तर ओर एक छोटी सी बस्ती बसाई थी। अँगरेजों, डच लोगों और स्वीडिन निवासी लोगों ने न्यूइंगलैंड और मिडिल स्टेट्स के किनारे पर अधिकार कर लिया और थोड़े से ह्यूजेनाट लोग कैरोलीनाज़ में रहा करते थे। एक सदैव युवा अवस्था बनाये रखने वाले चश्मे की खबर ने कतिपय स्पेन निवासियों को फ्लारीडा तक पहुँचाया था। इन साहसी परदेशियों से बसाये हुए ग्रामों के पीछे वाले मैदान की ओर एक बहुत बड़ा अज्ञात देश था, जिसमें जंगली इण्डियन लोग रहते थे जिनकी गणना मैक्सिको की खाड़ी से लेकर सेंटलारेंस तक १८०००० से अधिक न थी। उन्हीं लोगों से यूरोपियन विदेशियों ने सुना था कि उन जन रहित प्रदेशों में मीठे पानी के समुद्र (झीलें) और एक बड़ी नदी जिसको वे लोग मिसीसिपी कहते थे, थे। कोई २ कहते थे कि वह नदी वरजीनिया होकर बहती हुई ऐटलांटिक समुद्र में गिरती है, कोई फ्लारीडा होकर बहती हुई कहते थे, कोई पैसिफ़िक में गिरती हुई बताते थे और किसी का कथन था कि मैक्सिको की खाड़ी तक पहुँचती है। तूफानी एटलांटिक समुद्र द्वारा (जिसके पार करने में महीनों लगते थे) अपनी जन्म भूमि से पृथक होकर ये भगेड़ू परदेशी संसार से विमुख ही हो चुके थे।

परन्तु उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त से पहिले इन लोगों की सन्तान पृथ्वी की एक बड़ी शक्तिवान् जाति हो रही थी। उन्हों ने एक प्रजापालित राज्य स्थापित कर लिया था जिसका विस्तार ऐटलांटिक समुद्र से पैसीफ़िक समुद्र तक था। दश लाख से अधिक सेना के साथ, जिनके नाम केवल कागज़ पर ही लिखने के लिये न थे, वरन वास्तव में रणक्षेत्र में काम कर सकते थे, उन्हों ने एक घरू

आक्रमणकारी के पराजित किया था । वे लगभग ७०० जहाज़ों का जंगी बेड़ा समुद्र पर रखते थे, जिसमें ५००० तोपें थीं, और उनमें से कतिपय तोपें संसार भर में सर्वाधिक बड़ी थीं । यह बेड़ा पांच लाख टन वज़न का था । अपने जातीय जीवन की रक्षा में पांच वर्ष से कम समय में उन्हीं ने चालीस-अरब डालर से अधिक व्यय किये थे । उनकी जन संख्या जिसकी गणना नियत समय पर हुआ करती थी, प्रगट करती थी कि वे प्रत्येक २५ वर्ष के समय में दुगुने हो जाते हैं । इससे वह आशा पूर्ण होती हुई जान पड़ी कि उस शताब्दी के अन्त तक उनकी गणना लगभग एक अरब मनुष्य के हो जायगी ।

एक सुनसान महाद्वीप एक औद्योगिक दृश्य में बदल गया था । वह यंत्रों के शोर और मनुष्यों की शीघ्र गामी चाल के शोर से भर गया था । जहां बड़ा घना जंगल था वहां सैकड़ों नगर और ग्राम बस गये थे । कतिपय अति आवश्यक वस्तुओं, जैसे रुई, तमाखू और भोज्य पदार्थों का बड़ा व्यापार होने लगा था । खानों से बहुत सा सोना, लोहा और कोयला निकलने लगा था । बहुत से गिरजाघर, कालेज और सार्वजनिक पाठशाला इस बात की साक्षी देने लगे थे कि इस प्राकृतिक उत्साह के नैतिक प्रभाव भी शक्ति प्रदान कर रहा है । यात्रा करने का बहुत अच्छा प्रबन्ध कर दिया गया । रेल की सड़कें लम्बाई के हिसाब से सर्व यूरोप भर की सड़कों से अधिक थीं । सन् १८९३ ई० में यूरोप की रेल की सड़कों की लम्बाई ६३३६० मील थी और अमेरिका की १०६५० मील थी । उनमें से एक सड़क जो महाद्वीप को पार करती हुई बनाई गई थी ऐटलांटिक समुद्र और पैसीफ़िक समुद्र को मिलाती थी ।

परन्तु केवल ये पदार्थिक उन्नतियां ही ध्यान देने योग्य नहीं हैं । इनके अतिरिक्त नैतिक और जातीय उन्नतियां बिबश हमारे ध्यान में आही जाती हैं । चालीस लाख हबशी गुलाम स्वच्छन्द कर दिये गये थे । कानून, यदि किसी पक्ष के लाभ की ओर झुकता था तो ग़रीबों की ओर झुकता था । उसका तात्पर्य्य गरीबों को उन्नति देना और उनके भाग्य को सुधारना था । बुद्धिमानों के लिये

भी वे रोक रास्ता खुला था। बुद्धिमान और औद्योगिक पुरुष सब कुछ कर सकते थे। बहुत से अति उच्च राजपद उन मनुष्यों से भरे हुये थे जो अति नीच कुलों से उन्नति कर गये थे। यदि जातीय समता न थी (जैसा कि धनवान और समृद्धशाली जातियों में कभी हो नहीं सकती) तो राजनैतिक समता अवश्य थी, और बड़े ज़ोर के साथ स्थिर रक्खी जाती थी।

कदाचित ऐसा कहा जा सकता है कि इस प्राकृतिक उन्नति में से बहुत कुछ उन्नति विशेष दशाओं के कारण हुई थी, जैसी कि प्राचीन काल में किसी जाति की नहीं हुई। काम करने के लिये एक बहुत बड़ा लम्बा चौड़ा नाट्यशाला खुला था, अर्थात् एक पूरा महाद्वीप उस मनुष्य के हस्तगत होने को तय्यार था जो उसे लेना चाहे। प्रकृति को जीतने के लिये और उसके दिये हुये अनन्त सुअवसरों से लाभ उठाने के लिये केवल साहस और उद्योग की आवश्यकता थी।

परन्तु क्या वे मनुष्य एक बड़े सिद्धान्त से न उत्साहित किये गये होंगे जिन्होंने सफलता सहित प्राचीन जंगलों को सभ्यता का निवासस्थान बना डाला, जो अंधेरे जंगलों वा नदी पहाड़ों वा भयंकर मरुस्थलों से न डरे और जिन्होंने एक शताब्दी में महाद्वीप की एक ओर से दूसरे छोर तक अपना विजय रास्ता बना लिया और उसको अब तक अपनी अधीनता में रक्खे हुये हैं ? अच्छा अब इन प्रतिफलों के साथ हम उन प्रतिफलों का मीलान करते हैं जो स्पेन निवासियों कृत मैक्सिको और पेरू के आक्रमण से हुये। इन स्पेन निवासियों ने उन देशों में एक ऐसी आश्चर्य्यप्रद सभ्यता का विनाश कर डाला जो कई एक बातों में स्वयं उनकी सभ्यता से बढ़ कर थी और जो बिना लोहा और बारूद के पूर्णता को पहुँच चुकी थी, और जिसका मूलाधार ऐसी कृषी पर था जिसमें घोड़े, बैल वा हल कुछ भी न लगते थे। स्पेन निवासियों के कार्यारम्भ का एक स्पष्ट मूलाधार था और उनके बढ़ाव में किसी प्रकार की रुकावट नहीं थी। उन्होंने अमेरिका के आदिम निवासियों के सब ही कृत्यों को बिनष्ट

कर डाला। लाखों अभागों को निर्दयता से मार डाला। वे जातियां जो बहुत शताब्दियों तक सन्तोष और समृद्ध में रही थीं और ऐसी रीतियों और कानूनों को मानती थीं जो उनके इतिहास से उनके लिये बहुत ही उचित ज्ञात होते हैं, अराजकता में डालदी गई। वे लोग मिथ्या विश्वास में पड़ गये और उनकी बहुत सी भूमि और अन्य सम्पत्ति रोमन धार्मिक सम्प्रदाय के अधिकार में चली गई।

मैंने यह उपरोक्त उदाहरण यूरोप में हस्तगत हो सकने वाले उदाहरणों को छोड़ अमेरिका के इतिहास से इस कारण लिया है कि यह उदाहरण एक ऐसे काम करने वाले सिद्धान्त का उदाहरण है जिसमें बाहरी दशाओं ने कुछ हस्तक्षेप नहीं किया। यूरोप की राज-नैतिक उन्नति ऐसी सरल नहीं है जैसी कि अमेरिका की।

काम के ढंग और उसके फलों पर विचार करने से पहले मैं संक्षेपतः यह वर्णन करूंगा कि वैज्ञानिक सिद्धान्त यूरोप में कैसे प्रचलित हुआ।

(यूरोप में विज्ञान का प्रचार)

बहुत वर्षों तक धर्म युद्ध (क्रूसेड्स) प्रत्येक ईसाई जाति की पवित्रा-त्मिकता और भयों द्वारा खींचा हुआ केवल बहुत सा धन ही नहीं लाते रहे थे, वरन् उन्होंने पोप की शक्ति को बहुत भयंकरता तक बढ़ा दिया था। उन दुहरे शासन विधानों में से जो यूरोप में सब कहीं फैले हुये थे, आत्मिक शासन ने प्रबलता प्राप्त करली और लौकिक शासन केवल उसका दास था। सब ओर से और सब प्रकार के बहानों से धन की नदियां लगातार इटली में बहती आती थीं। लौकिक राजाओं ने जान लिया था कि हमारे लिये थोड़ी आमदनी बच रही है। सन् १३०० ई० में फ्रांस के राजा फ़िलिप फ़ेयर ने इस प्रकार अपने राज्य के धन बहाव को, (बिना अपनी आज्ञा के सोना चांदी बाहर भेजने की मुमानियत करके) केवल रोकने ही का निश्चय नहीं किया वरन् उसने यह भी दृढ़ निश्चय करलिया कि पादरियों और पुरोहितों की जागीरों से भी कुछ राज्य-कर लेना चाहिये। इस बात से पोप के साथ बड़ा घातक झगड़ा हुआ। राजा जाति से निकाल

दिया गया, और इसके बदले में उसने पोप आठवें बोनीफेस को नास्तिकता का दोष लगाया और चाहा कि उसकी जांच सार्वजनिक सभा में हो। उसने कुछ विश्वास पात्र मनुष्य इटली को भेजे जिन्होंने बोनीफेस को उसके अनागनी वाले महल में जाकर पकड़ लिया और उसके साथ ऐसी कठोरता की कि वह थोड़े ही दिनों में मरगया। उसका उत्तराधिकारी पोप ग्यारहवां बेनिडिक् ज़हर देकर मार डाला गया।

फ्रांस नरेश ने दृढ़ निश्चय कर लिया था कि पोप शासन पवित्र और सुसंस्कृत होना चाहिये और उसे केवल कतिपय इटली निवासी ऐसे खानदानों की मौरूसी जायदाद न होना चाहिये जो यूरोप के सरल विश्वास के कारण चालाकी से रुपया कमाते हैं, अर्थात् यह निश्चय किया था कि फ्रांस निवासियों का प्रभाव उस में मुख्य होना चाहिये। इसलिये उसने कार्डिनल लोगों से सलाह की और एक फरासीसी मुख्य बिशप को पोप बना दिया और उसने अपना नाम क्लीमेंट रक्खा। पोप का न्यायालय फ्रांस देशस्थित अविग्नान स्थान को हटा दिया गया और रोमनगर ईसाई धर्म के मुख्य नगर की भांति छोड़ दिया गया।

सत्तर बर्ष बाद रोम नगर फिर पोप का निवासस्थान हुआ (सन् १३७६ ई०) इटली प्रायद्वीप में इस भांति रोम नगर के प्रभाव की कमी ने उस स्मरणीय मानसिक उन्नति का सुअवसर दिया जो उत्तरीय इटली के बड़े २ व्यापारी नगरों में शीघ्र ही प्रगट हुई; उसी समय में और भी अनुकूल घटनायें हो रहीं थीं। धर्म युद्धों के फल ने ईसाई धर्म संसार का विश्वास डिगा दिया था। ऐसे समय में कि जब युद्ध से ही सचाई की पहिचान सर्वसाधारण जन मानते थे, उन लड़ाइयों का अन्त यों हुआ कि पवित्र भूमि (जैरूसैलिम) पूर्व निवासी मुसलमानों ही के हाथ रही। कई हज़ार ईसाई सिपाही जो धर्म युद्धों से लौट कर आये थे इस बात के कहने में कुछ भी संकोच न करते थे कि उन्होंने अपने शत्रुओं (मुसलमानों) को वैसा नहीं पाया था जैसा कि उनका धर्म बतलाता था, वरन् वे बहादुर, सभ्य और न्यायशील थे।

दक्षिणीय फ्रांस के रसिक नगरों में काल्पनिक साहित्य की रुचि बढ़ रही थी। घूमने वाले गवैये घूम २ कर अपने गीत गाया करते थे जो ऐसे गीत होते थे कि उनमें केवल प्रेम और युद्धों का वर्णन ही नहीं होता था, वरन बहुधा उनकी मुख्य स्याई वे भयंकर अत्याचार प्रगट करने वाली हुआ करती थी जो पोप के अनुशासन से हुये थे; (अर्थात लैंगे-डाक के धार्मिक बध) और कभी वह स्याई किसी पादरी का अशुचि प्रेम प्रगट करती थी। मूरिश स्पेन से बहादुरों के सभ्य और बीर बिचार लाये गए थे, और उसी के साथ २ "व्यक्तिक मान" का उत्तम विचार भी लाया गया था जिसके भाग्य में यह बदा था कि धीरे २ वह यूरोप भर में स्वयं अपना एक क़ानून जारी करे।

रोम में पोप शासन फिर से प्रचलित तो हुआ पर इटली प्राय-द्वीप में पोपों का प्रभाव फिर न जमा। उनके चले जाने के समय तक दो पीढ़ी से अधिक गुज़र चुकी थीं और चाहे वे अपनी असली शक्ति सहित लौट आते, तब भी वे उस मानसिक उन्नति को न रोक सकते जो उनकी अनुपस्थिति में हुई थी, परन्तु पोप शासन राज करने के लिये नहीं लौट आया था, वरन बड़े मतभेद का मुक़ाबला करने के लिये और अपने ही दो टुकड़े करने को लौटा था। उसके मतभेदों से दो प्रतिस्पर्द्धी पोप प्रगट हुये। अन्त में तीन पोप हो गये और प्रत्येक पोप धार्मिक जनों पर अपना २ दावा करता था और प्रत्येक अपने प्रतिस्पर्द्धी को बुरा कहता था। शीघ्र ही सर्व यूरोप भर में एक क्रोध का भाव फैल गया, अर्थात यह निश्चित विचार (फैल गया) कि वे लज्जास्पद दृश्य जो उस समय हो रहे थे मिटा देना चाहिये। यह सिद्धान्त कि पोप पृथ्वी निवासी ईश्वर-प्रतिनिधि है, और यह सिद्धान्त कि पोप की सम्मति अचूक होती है, ऐसे दुराचरणों के होते हुये कैसे स्थिर रक्खे जा सकते थे? उस समय के उत्तमोत्तम पादरियों के उस निश्चित बिचार का यही कारण था। पर यूरोप के भाग्य पर खेद है कि वह पूर्ण न हो सका। वह विचार यह था कि एक सार्वजनिक कौंसिल सब महाद्वीप भर की पक्की धार्मिक सभा बनाली जाय और पोप महाशय उसके मुख्य कार्य्यकर्त्ता बनाये जायें। यदि यह बिचार

पूरा हो गया होता तो आज दिन विज्ञान और धर्म में कुछ झगड़ा न रहता; और रिफ़ारमेशन की खैंचातानी बच गई होती, और झगड़ा करने वाली प्राटेस्टेंट सम्प्रदायें न होती, परन्तु कांसटैंस और बेसिल की सभायें इटली की गुलामी न हटा सकीं, और वह उत्तम फल प्राप्त न हुआ।

इस भांति कैथोलिक धर्म बल हीन हो रहा था। ज्योंही उसका कठिन दबाव उठगया मनुष्यों की बुद्धि फैलने लगी। मुसलमानों ने कपड़े के लत्तों और रूई से कागज़ बनाने का ढंग निकाल लिया था। वेनिस निवासी लोग छापने की कला चीन से यूरोप में लाये थे। पहला अन्वेषण दूसरे के लिये आवश्यकता था। तब से सब जाति के मनुष्यों में मानसिक सम्बंध होने लगा जिसके रोकने की कोई सम्भावना न थी।

छापे के अन्वेषण से कैथोलिक धर्म को एक कठिन धक्का लगा, क्योंकि पहले यही धर्म भिन्न देशों से लिखा पढ़ी करने के ठीके का बहुत बड़ा लाभ उठाता था। उसी के केन्द्रस्थान में सब पादरियों के नाम आज्ञाएं वितरित होती थीं और उपदेशपीठ से लोगों को सुनाई जाती थीं। यह ठेका और उसकी दी हुई बड़ी भारी शक्ति छापाखानों के कारण विनष्ट हो गई! हाल के समय में उपदेशपीठ का प्रभाव सर्वथा तुच्छ ही होगया है। उपदेशपीठ का स्थान सर्वथा समाचार पत्रों ने ले लिया है।

तब भी कैथोलिक धर्म ने अपना पुराना बड़प्पन बिना झगड़े के नहीं छोड़ा। ज्योंहीं इस नई कला की अटल इच्छा देखी गई, निन्दा के रूप से उसके रोकने का उद्योग किया गया। किसी पुस्तक के छापने के हेतु पोप की आज्ञा लेने की आवश्यकता पड़ती थी। इस काम के लिये यह आवश्यक था कि पादरी लोग उस पुस्तक को पढ़ें, जाचें, और उसके विषय में अपनी सम्मति प्रकाश करें। उसके लिए एक ऐसा प्रशंसा पत्र होना चाहिये कि वह पुस्तक धार्मिक और शास्त्रविहित है। पोप षष्टम अलेगज़ेंडर ने सन् १५०१ ई० में उन छापेखानेवालों के विरुद्ध जो हानि कारक सिद्धान्त छापें, एक

समाजच्युत करने की आज्ञा निकाली थी । सन् १५१५ ई० में लेटरन कौंसिल ने आज्ञा निकाली कि ऐसी कोई किताब न छपना चाहिये जो पुरोहितीय सम्मतियों से जांची न गई हो, नहीं तो छापने वाला पुरुष समाजच्युत किया जायगा और अर्थ दण्ड भी होगा, और जांचने वालों को हिदायत की गई कि वे बड़ी सावधानी रक्खें कि कोई धर्म विरुद्ध पुस्तक न छपने पावे । इस भांति धार्मिक बाद-बिबाद का रोब फैल गया । यह रोब इसलिये था कि कहीं सत्य बात प्रगट न हो जाय ।

परन्तु इस अज्ञान की शक्तियों के धार्मिक मदोन्मत्त झगड़ों से कुछ लाभ न हुआ । मनुष्यों में मानसिक सम्बंध दृढ़ हो ही गया । उसका सर्वोच्च फल वर्तमान काल के समाचार पत्र हैं, जो अब प्रति दिन जगत के सब भागों से समसामयिक खबरें प्रकाशित करते हैं । पढ़ना जन साधारण का काम ही होगया । प्राचीन समाज में यह काम बहुत थोड़े मनुष्यों का था । हाल के समाज के कतिपय बहुत अच्छे चिन्ह इसी परिवर्तन के कारण हैं ।

यूरोप में कागज़ बनाने और छापेखाने के प्रचार से ऐसा फल हुआ । इसी भांति जहाज़ी कम्पास (दिग्दर्शक यंत्र) के प्रचार से बड़े२ आर्थिक और नैतिक प्रभाव प्रगट हुये । हिन्दुस्तान से व्यापार करने के बिषय में वेनिस और जिनोवा निवासियों की प्रतिस्पर्द्धा के कारण अमेरिका का ज्ञात होना, डीगामा का आफ्रिका महाद्वीप का परिक्रमा करना और मजिल्लां का पृथ्वी परिक्रमा करना इसी कम्पास के प्रभाव थे । पृथ्वी परिक्रमा के सम्बंध में (जो कि मनुष्य कृत कामों में से सब से बड़ा काम है) यह बात स्मरण रखना चाहिये कि कैथो-लिक धर्म निश्चित रूप से यह सिद्धान्त मानता था कि पृथ्वी सम-चौरस है, आकाश बैकुण्ठ का फर्श है, और नर्क संसार के नीचे है । कतिपय पादरियों ने, जिनका अनुशासन सर्वोत्तम माना जाता था, पृथ्वी के गोलाकार स्वरूप के बिरुद्ध वैज्ञानिक और धार्मिक प्रमाण दिये थे, जैसा कि हम पहले कह आए हैं । अब यह बादबिबाद

अकस्मात मिट गया था, और धार्मिक सम्प्रदाय का भ्रम लोगों पर प्रगट हो गया था।

तीन बड़ी समुद्र यात्राओं का जो बड़ा फल हुआ वह केवल यही नहीं था कि यह भौगोलिक भूल संशोधित हो गई, वरन् कोलम्बस, डीगामा, और मजिल्लां का उत्साह पश्चिमीय यूरोप के सब उत्साही मनुष्यों में फैल गया। समाज अब तक इस सिद्धान्तानुसार जीवन व्यतीत करती थी कि "राजा की भक्ति करना चाहिये और धर्म की आज्ञा मानना चाहिये", इस कारण समाज अब तक दूसरों के लिये जीवन धारण किये हुये थी न कि अपने लिये। उस सिद्धान्त का राज्यनैतिक प्रभाव बढ़ कर धर्म युद्धों की पराकाष्ठा को पहुँच गया। उन युद्धों में लाखों आदमी बिनष्ट हुये, पर कुछ अच्छा फल न हुआ, बरन बड़ी भारी बिफलता ही उसका फल हुआ। अनुभव से यह बात प्रगट हो गई कि उन युद्धों से केवल पोपों, कार्डिनलों, रोम के अन्य पादरियों तथा वेनिस नगर निवासी जहाज़ी व्यापारियों को ही लाभ हुआ। परन्तु जब यह बात प्रगट हुई कि मैक्सिको, पेरू और हिन्दोस्तान के धन में से प्रत्येक व्यापारी और उत्साही मनुष्य भाग ले सकता है तब वे बिचार जिन्हों ने यूरोप के बेचैन निवासियों को उत्साहित किया था अकस्मात् बदल गये। कार्टीज़ और पिज़ैरी की कथा ने प्रत्येक स्थान में उत्साहित श्रोतागण पाये। समुद्र यात्रा के उत्साह ने धार्मिक उत्साह का स्थान ले लिया।

यदि हम उस सिद्धान्त को छाटकार निकालने का उद्योग करें जो इस समय घटित आश्चर्य प्रद सामाजिक परिवर्तनों का मूलाधार था, तो हम उसे बिना कठिनता के पहिचान सकते हैं। इस समय तक प्रत्येक मनुष्य अपने से बड़े मनुष्य की सेवा में लगा रहा करता था, चाहे वह मनुष्य राज्य सम्बंधी हो चाहे धर्म सम्बंधी; परन्तु अब प्रत्येक मनुष्य ने अपने उद्योगों के फल अपने लिये एकत्र करने का निश्चय किया। स्वस्वार्थपरता का बिचार इस समय सर्वोपर हो रहा था और राज्य-भक्ति घट कर केवल बिचार मात्र हो रही थी।

अच्छा अब हमें यह देखना चाहिये कि इस बिषय में धर्म सम्प्रदाय में क्या हो रहा था ।

स्वस्वार्थपरता का मूलाधार इस सिद्धान्त पर है कि प्रत्येक मनुष्य को स्वयं अपना मालिक होना चाहिये । उसे स्वतंत्रता होनी चाहिये कि वह स्वयं अपनी सम्मतियां स्थिर करे, और स्वच्छन्दता से अपने निश्चित बिचारों को कार्य्य में परिणत करै । इसलिये प्रत्येक मनुष्य सदैव ही अपने सहबर्गी मनुष्यों के साथ हिसका करने लगता है और उसका जीवन एक पौरुष का दृश्य हो जाता है ।

यूरोप निवासियों के जीवन से शताब्दियों की निश्चलता हटाना, अकस्मात सुस्त लोगों को चुस्त चालाक बनाना, और उनमें स्वस्वार्थपरता का विचार भरना मानों उनके जीवन को उन प्रभावों से लड़ा देना था जो अब तक उस जीवन को सताते रहे थे । चौदहवीं और पन्द्रहवीं शताब्दियों भर के बिकल करने वाले झगड़े भविष्य आगम की सूचना देते थे । सोलहवीं शताब्दी के प्रारम्भक भाग में यह युद्ध मिल कर होने लगा । एक बलवान जरमन सन्यासी ने स्वस्वार्थपरता का रूप धारण किया और इस हेतु अवश्य ही उसने अध्यात्मिक रूप से अपने अधिकारों का प्रतिपादन किया । पापानुशासनों और अन्य छोटे २ विषयों के हेतुकतिपय प्रारम्भिक छोटी २ लड़ाइयां हुईं, परन्तु शीघ्र ही झगड़े का बास्तविक कारण स्पष्ट दृष्टिगोचर हुआ । मारटिन ल्यूथर ने अपने बिचारों को अपने रोम निवासी धार्मिक गुरुओं की आज्ञानुकूल रखने से इन्कार किया । वह कहता था कि मुझे स्वयं पूर्ण अधिकार है कि मैं अपने लिये बाईबिल का जैसा अर्थ चाहूं वैसा करूं ।

पहली दृष्टि में रोम ने मारटिन ल्यूथर को सिवाय एक गँवार, अनाज्ञाकारी और झगड़ालू सन्यासी के अन्य कुछ नहीं समझा । यदि धर्म परीक्षक सभा ने उसे पकड़ लिया होता तो उसका मामला शीघ्रही तै होगया होता । परन्तु ज्यों २ झगड़ा बढ़ता गया त्यों २ यह बात खुलती गई कि मारटिन ल्यूथर अकेला नहीं है । उसी के समान दृढ़प्रतिज्ञ कई हजार मनुष्य उसकी सहायता को प्रगट हो

रहे हैं, और जिस समय वह लेखों और शब्दों द्वारा इस झगड़े को बढ़ा रहा था, वे तलवार द्वारा उसके प्रस्तावों को स्थापित कर रहे थे।

ल्यूथर की और उसके कामों की जो अवज्ञा की गई थी वह ऐसी कटु थी कि हास्यास्पद हो गई थी । ऐसा कहा गया था कि उसका बाप उसकी माता का पति न था, वरन् एक नाटा भूत था, जिसने उसे छला था । और दश बर्ष तक अपनी बुद्धि के साथ झगड़ा करते रहने से वह नास्तिक होगया था, और आत्मा की अमरता नहीं मानता था और मद्यपान की प्रशंसा में कुछ भजन बनाये थे, क्योंकि वह स्वयं नित्य शराब पीता था, और पवित्र धर्म ग्रन्थों की निन्दा करता था बिशेष कर मूसाकृत ग्रंथों की, और जो कुछ वह उपदेश करता था उसके एक शब्द पर भी स्वयं बिश्वास नही रखता था और सेंटजेम्स की पत्री को तुच्छ बस्तु कहता था, और सर्बोपर यह कहा गया था कि रिफारमेशन उसका काम नहीं था, बरन् बास्तव में ग्रहों की एक बिशेष स्थिति के कारण हुआ था । परन्तु रोमन पुरोहितों में यह एक गँवारू मसल थी कि इरैसमस ने रिफारमेशन का अण्डा दिया और ल्यूथर ने उसका सेवन किया ।

रोम ने पहिले इस अनुमान में भूल की कि वह झगड़ा सिवाय एक आकस्मिक बिद्रोह के और कुछ नहीं है । उसने यह भी न देखा कि वह बिद्रोह बास्तव में उस भीतरी हलचल की पराकाष्ठा है जो यूरोप में दो शताब्दियों से होता रहा था, और जो दिनोंदिन शक्तिवान होता जाता था और यदि इसके सिवाय अन्य कुछ न भी होता तो भी तीन पोपों के होने से मनुष्यों को बिवश होना पड़ता कि वे अपने लिये सोच बिचार करें और प्रतिफल निकालें । कांस-टेंस और बेसिल की सभाओं ने लोगों को सिखा दिया था कि पोपों की शक्ति से भी बढ़ कर एक कोई शक्ति है । वे लम्बी और रक्तपा-तक लड़ाइयां जो हुई थीं वेस्टफैलिया की संधि से बंद हो गईं, और तब यह बात ज्ञात हुई कि यूरोप के मध्य और उत्तरीय भाग ने रोम के मानसिक अत्याचार का भार फेंक दिया है, और स्वस्वार्थपरता

ने विजय पाई है और यह अधिकार स्थापित कर दिया है कि प्रत्येक मनुष्य अपनी अलग सम्मति रख सकता है।

परन्तु यह बात असम्भव थी कि कैथोलिक धर्म की अस्वीकृति के साथ ही साथ यह निज सम्मति के अधिकार की स्थापना भी मिट जाय। इस हलचल के आरम्भ में इरेसमस सरीखे कई एक प्रख्यात मनुष्यों ने, जो पहले उसके उन्नति दाता रहे थे, कैथोलिक धर्म को छोड़ दिया। उन्होंने देख लिया था कि बहुत से सुधारक लोग विद्या से बड़ी घृणा रखते थे और उन्हें यह भय था कि कहीं ऐसा न हो कि हम धर्माग्रही हलचल में पड़ जायें। प्राटेस्टेंट समूह को भी, अपनी बारी से, असम्मति और प्रथकता द्वारा अपना अस्तित्व स्थिर कर लेने पर भी उन्हीं सिद्धान्तों के कार्य्य को मानना पड़ा। इस हेतु बहुत सी अन्तरगत सम्प्रदायों में विभक्त हो जाना अटल हो गया था। इन सम्प्रदायों ने, अब यह देख कर कि बड़े इटैलियन शत्रु से अब कुछ डर रहा ही नहीं, परस्पर प्रथक होने की लड़ाइयां लड़ने लगे। भिन्न २ देशों में जैसे २ पहले एक समूह और तदनन्तर दूसरा समूह शक्तिवान होता गया, उसने अपने प्रतिस्पर्द्धियों पर निर्दयता करने का कलंक अपने ऊपर लिया। जब समय पाकर सताया हुआ समूह सताने वाले समूह पर बिजय पाता, और उनसे बदला लेता था, तब उन घातक बदलों ने ही उन भिन्न समूहों को विश्वास दिला दिया कि उन्हें अपने प्रतिस्पर्द्धियों को वह बस्तु अवश्य देना चाहिये जो वे स्वयं अपने लिये मांगते हैं, और इस भांति उनके झगड़ों और दुराचारों से सहनशीलता का बड़ा सिद्धान्त स्वयं प्रथक हो गया। प्ररन्तु सहनशीलता केवल एक मध्यावस्था है और ज्यों२ प्राटेस्टेंट धर्म की मानसिक प्रथकता प्रवाहित होगी, वह क्षणिक दशा को (जिसके लिए तत्व ज्ञान बहुत प्राचीन काल से आशा कर रहा है) एक अधिक ऊंची और अधिक सभ्य अवस्था तक पहुँचा देगी, अर्थात् वह जातीय अवस्था जिसमें सब लोगों के लिए विचार की पूर्ण स्वतंत्रा होगी। सहनशीलता (यदि भय के कारण न हो) केवल वेही मनुष्य दिखा सकते हैं जो अपनी सम्मतियों की अपेक्षा

दूसरे की सम्मतियों का आदर करते हैं और उन्हें मानने की योग्यता रखते हैं। इस लिए वह सहनशीलता केवल विज्ञान से आ सकती है। इतिहास इस बात को अति स्पष्ट रीति से सिखाता है कि धर्म से धार्मिक मदोन्मत्तता उत्तेजित की जाती है और विज्ञान से वह उन्मत्तता मध्यम वा समूल बिनष्ट करदी जाती है।

रिफारमेशन का अंगीकृत तात्पर्य ईसाई धर्म से उन मूर्तिपूजक बिचारों और रीतियों का दूर करना था जो कान्सटैनटाइन, और उसके उत्तराधिकारियों ने उसमें उस समय मिला दी थीं, जब वे रोम राज्य को उस धर्म के अनुकूल बनाने का उद्योग करते थे। प्राटेस्टेंट लोग युक्ति करते थे कि उसे फिर उसकी प्राथमिक पवित्रता तक पहुँचादें और इस हेतु प्राचीन सिद्धान्तों को पुनः प्रस्थापित करने में उन लोगों ने ऐसी रीतियां उसमें से निकाल डालीं जैसी कि कुमारी मरियम की पूजा और महात्माओं से प्रार्थना करना। कुमारी मरियम ने, (इनूजील विशारद लोगों के कथनानुसार), बिवाह किया था और उसके कई सन्ताने भी हुई थीं। उस फैलती हुई मूर्तिपूजा के समय में वह एक बढ़ई की स्त्री नहीं मानी जाती थी, वरन् बैकुण्ठ की रानी और ईश्वर की माता होगई थी।

अरब निवासियों के बिज्ञान ने, उनके साहित्य के आक्रमणकारी पंथ ही में अनुगमन किया, जो ईसाई जगत में दो मारगों से आया था, अर्थात फ्रान्स के दक्षिण और सिसली में पोप लोगों के अविगनान चले जाने से, और बड़े मतभेद के कारण सुअवसर पाकर उसने अपना पांव उत्तरीय इटली में जमालिया। अरस्तू कृत वा अनुमानिक तत्व–ज्ञान ने वह मुसलमानी बस्त्र धारण किए हुए जो अवरोज़ ने उसे पहिनाया था, बहुत से गुप्त मित्र बना लिये थे और खुल्लम खुल्ला मित्र भी कम न थे। उसने बहुत से आदमी ऐसे भी पाए जो उसे ग्रहण करने की रुचि रखते थे और उसका मूल्य जानने योग्य थे। ऐसे मनुष्यों में से एक लियोनार्डो डाविन्सी था जो इन मूल सिद्धान्तों को प्रख्यात करता फिरता था कि प्रयोग और निरीक्षण ही वैज्ञानिक बिबेचना की विश्वासनीय जड़ हैं और केवल प्रयोग ही प्रकृत का एक

सच्चा व्याख्यायिक है और नियमों के निश्चित करने के लिये आवश्यक है। उसने प्रमाणित किया था कि एक बिन्दु पर दो लम्बसम्बन्धी शक्तियों का कार्य्य वैसा ही होता है जैसा कि उस आयतक्षेत्र के कर्ण से प्रगट किया जाता है जिसकी भुजायें उन्हीं दोनों शक्तियों से प्रदर्शित की जाती हैं। इसी प्रमाण से तिरछी शक्तियों के सिद्धान्त तक पहुँच जाना बहुत सरल था। एक शताब्दी बाद यह सिद्धान्त स्टीवीनस ने खोज निकाला था और उसी ने इसको यंत्रिक शक्तियों की व्याख्या में लगाया था। डाविन्सी ने उन शक्तियों के सिद्धान्त की स्पष्ट बिवेचना की थी जो तराजू पर तिरछी लगती हैं और घर्षण के नियमों को खोज निकाला था जिनको कुछ समय बाद अमान्टन्स ने प्रमाणित किया और वास्तविक बेगों के सिद्धान्त को समझ लिया। उसने ढालू तलों और गोल चापों पर पिण्डों के उतरने की दशाओं के विषय में बिबेचना की थी, और छायाचित्र कैमेरा का अन्वेषण किया था, और कई एक शरीर-धर्म-बिद्या सम्बन्धी प्रश्नों का ठीक २ बिवेचन किया था, और वर्तमान भूगर्भ-बिद्या के कतिपय बड़े प्रतिफलों का पहले से अनुमान कर लिया था जैसे कि फ़ासिल अवशेषों की प्रकृति और महाद्वीपों की ऊंचाई। उसीने चन्द्रमा से प्रतिबिम्बित पार्थिव प्रकाश की व्याख्या की थी। बुद्धि की बिलक्षण तीक्ष्णता से वह संगतराश, कारीगर और इनूजिनियर भी बहुत बढ़कर था, और ज्योतिष, शारीरिक और अपने समय की रसायन बिद्या में भी पूर्णतः निपुण था। चित्रकारी में वह माईकेलऐनजेलो का प्रतिद्वंदी था। एक बिजिगीषा में उसने अपना बड़प्पन स्थापित ही कर दिया था। उसकी बनाई हुई 'लास्ट सपर' नामक पुस्तक, जिसमें उसने स्टासैरिया डेलीग्रेज़ी' के डामीनीकन सन्ताश्रम के आहारशाला की दीवारों का वर्णन किया है, बहुत प्रसिद्ध है, क्योंकि उसकी बहुत सी प्रतियां ली गई हैं, और उसी के अनुसार बहुत से चित्र खोदे गये हैं।

एकबार जब उत्तरीय इटली में दृढ़ता से स्थापित हो चुका तब विज्ञान ने शीघ्र ही अपना अधिकार पूर्ण प्रायद्वीप में फैला दिया। उसके भक्तों की बढ़ती हुई गणना की सूचना बिद्वान सभाओं के

स्थापित होने और शीघ्रता से बढ़ने से होती है। ये सभाएं उन मूरिश सभाओं की पुनर्भूत रूप थीं जो पहिले समय में ग्रनेडा और कारडोआ में थीं। मानो उस रस्ते को स्मारक चिन्ह से चिन्हत करने के लिये जिस रास्ते से सभ्यता फैलानेवाले प्रभाव आये थे, टौलो का विद्यालय जो १३४५ ई० में स्थापित किया गया था, अब हमारे समय तक बच रहा है। परन्तु वह विद्यालय फ्रान्स के दक्षिणी भाग के रसिक साहित्य को प्रगट करता था और एक बड़े विचित्र नाम (फूलों के खेल का विद्यालय) से प्रसिद्ध था। प्राकृतिक विज्ञान की उन्नति के लिये "अकैडेमिया सैक्रेटोरम नेचरी" नामक पहली सभा 'बैप्टिस्टापोरटा' ने नेपिल्स में स्थापित की थी। टीरावोशी के कथनानुसार, वह सभा धर्माधिकारियों ने तोड़दी थी। 'लिन्सीन' नामक सभा रोम नगर में 'फ्रैडिरिक सिसी' ने स्थापित की थी। उसका विशेष चिन्ह स्पष्ट रीति से उसके तात्पर्य्य को प्रगट करता था अर्थात एक बनबिलाव अपनी आखें आकाश की ओर किये हुये अपने पंजो से एक त्रिशिरा कुत्ते को फाड़ता हुआ। 'अकैडीमिया डेल सिमेन्टो' नामक सभा जो सन् १६५७ में फलारेन्स नगर में स्थापित हुई थी अपने अधिवेशन ड्यूक के महल में किया करती थी। वह दश बर्ष तक चली और तदनन्तर पोप गवर्नमेंट की आज्ञानुसार तोड़ दी गई। इसके बदले में ग्रैंड ड्यूक का भाई कार्डिनल बना दिया गया था। टारीसैली और कैस्टेली सरीखे बहुत से बड़े २ मनुष्य उस सभा के सभासद थे। उस सभा में सम्मिलित होने के लिये सब प्रकार का बिश्वास शपथ खाकर छोड़ देने और सत्यता की जांच करने की दृढ़ प्रतिज्ञा करने का नियम था। इन सभाओं ने विज्ञान के उन्नति दाताओं को उस उजाड़ स्थान से बाहर निकाल लिया जहां वे अब तक रहा करते थे। और उनसे मेल मिलाप और ऐक्य भाव बढ़ा कर उन सब सभाओं को सजीवता और शक्ति प्रदान की।

विज्ञान का बुद्धि सम्बंधी प्रभाव।

इस अप्रासंगिक अर्थात इस एतिहासिक बर्णन से घूम कर कि

विज्ञान किन २ दशाओं में यूरोप में प्रचारित हुआ, अब उसके कार्य्य के ढंग और उसके फलों की ओर चलता हूं।

वर्तमान सभ्यता पर विज्ञान का प्रभाव दो भांति से पड़ा है। (१) बुद्धि विषयक (२) अर्थ सम्बन्धी। इन्ही शीर्षकों से हम उसका भली भांति विचार कर सकते हैं।

बुद्धि विषयक रीति से उसने मौखिक शास्त्र का प्रमाण बिनष्ट कर दिया। उसने बिना प्रमाण किसी विद्वान के सिद्धान्तों को मानने से इन्कार कर दिया चाहे वह बिद्वान कितनाहीं बड़ा वा उसका नाम कितना ही आदरणीय क्यों न हो। इटली देश के अकैडेमिया डेल सिमेन्टो' नामक बिद्यालय में भरती होने के नियम और लन्दन की रायल सुसायटी का मान्य आदर्शवाक्य इस बात का उदाहरण देते हैं कि उसने इस विषय में कैसा मार्ग ग्रहण किया था।

पदार्थिक बिबेचनाओं में उसने अप्राकृतिक और अलौकिक चमत्कार सम्बन्धी प्रमाण को अमान्य किया था। उसने उस लक्षण-प्रमाण को भी छोड़ दिया था जिसे प्राचीन काल में यहूदी लोग मानते थे, और इस बात को नहीं मानता था कि किसी दूसरी वस्तु के उदाहरण द्वारा किसी बात का प्रमाण दिया जा सकता है और इस भांति उस तर्कशास्त्र को निकाल बाहर किया था जो कई शताब्दियों तक प्रचलित रह चुका था।

पदार्थिक खोजों में उसकी कार्य्यप्रणाली यह थी कि वह किसी प्रस्तावित कल्पना के मूल्य की जांच करता था। उस कल्पना के सिद्धान्त पर किसी बिशेष दशा को लेकर गणित द्वारा जांच करता था, और तदनन्तर प्रयोग वा निरीक्षण करके निश्चित करता था कि इन निरीक्षणों वा प्रयोगों का फल उस हिसाब के फल से मिलता है वा नहीं। यदि न मिलता होता तो वह कल्पना असत्य मानी जाती थी।

यहां पर हम इस कार्य्यबाही के ढंग के दो एक उदाहरण दे सकते हैं। न्यूटन ने, इस अनुमान से कि पृथ्वी की आकर्षण शक्ति चन्द्रमा तक फैल सकती है, और वही शक्ति हो सकती है जो उसे उसके कक्षा पर पृथ्वी के चौगिर्द घुमाती है, हिसाब लगाया था कि

अपनी कक्षा पर अपनी चाल से चन्द्रमा प्रत्येक मिनट में स्पर्शरेखा से १३ फीट विचलित होता था; परन्तु पृथ्वीतल पर एक मिनट में पिण्डों के गिरने की दूरी निश्चित करके, और यह अनुमान करके कि वह दूरी विपरीत वर्ग के निष्पत्ति में घटती है, ऐसा प्रगट हुआ कि चन्द्रमा की कक्षा पर का आकर्षण किसी पिण्ड को १५ फीट से अधिक खींचेगा। इस लिये उसने उस समय अपनी कल्पना को अनस्थिर समझा, परन्तु ऐसा हुआ कि थोड़े ही दिनों बाद पिकार्ड ने एक अंश की नई नाप अधिक शुद्धता से करली। इस बात से पृथ्वी के डील डौल का अन्दाज़ और चन्द्रमा की दूरी बदल गई जो कि पृथ्वी के अर्द्धव्यासिक पैमाने से नापी गई थी। तब न्यूटन ने अपना हिसाब लगाना फिर आरम्भ किया, और जैसा मैं पहले कह आया हूं जब वह हिसाब अन्त पर आगया तब यह अनुमान करके कि हिसाब का मीलान ठीक होना चाहता है न्यूटन इतना अधीर हो गया कि उसने बिबश होकर अपने एक मित्र से उसे पूरा करने के लिये कहा। वह कल्पना स्थिर हो गई।

एक दूसरा उदाहरण इस बिचाराधीन ढंग की अलम् रीति से व्याख्या कर देगा। यह उदाहरण फ्लाजिस्टन के रासायनिक सिद्धान्त का है। स्टाल, जो कि इस सिद्धान्त का मूल कर्ता था, कहता था कि दहनशीलता का एक नियम है जिसका नाम उसने फ्लाजिस्टन रखाया है, क्योंकि उसमें पदार्थों से मिल जाने का गुण था। इस भांति जब उसमें कोई धातव जीर्णकुश्ता मिल जाता था तब एक धातु पैदा हो जाती थी। और इस धातु में से फ्लाजिस्टन निकाल लिया जाय तो वह धातु फिर मिट्टी के रूप में बदल जाती थी। तब इस सिद्धान्त पर तो सब धातुएं सम्मिलित पदार्थ थीं, अर्थात मिट्टी और फलाजिस्टन मिला हुआ।

परन्तु अठारहवीं शताब्दी में रासायनिक खोजों के औज़ारों में तराज़ू का प्रचार हुआ। अच्छा, यदि फलाजिस्टन वाली कल्पना सत्य है तो प्रतिफल यह होना चाहिये कि किसी धातु को अपने कुश्ता से तौल में भारी होना चाहिये, क्योंकि धातु में कुछ और चीज़ अर्थात

फ्लाजिस्टन मिला रहता है जो कि धातु में मिला दिया गया है । परन्तु किसी धातु का एक टुकड़ा और उससे बना हुआ कुश्ता तौलने पर कुश्ता अधिक भारी होता है और बस यहां पर फ्लाजिस्टन वाली कल्पना व्यर्थ प्रमाणित होती है । और आगे चल कर खोज करते हुये यह प्रमाणित किया जा सकता है कि कुश्ता जो उस समय 'औगज़ाइड' कहलाता था वायु के किसी एक भाग से मिल कर और भी अधिक भारी हो गया है ।

साधारणतः लोग कहते हैं कि इस परीक्षक प्रयोग को लैवायज़ियर ने किया था, परन्तु यह बात कि किसी धातु का वज़न भस्मीकरण से बढ़ता है प्राचीन यूरोप निवासी प्रयोगकों ने प्रमाणित की थी, और वास्तव में अरब निवासी रसायनवेत्ता इसे भली भांति जानते थे । परन्तु लैवायज़ियर पहला मनुष्य था जिसने इस बात के बड़े महत्व को पहिचाना । उसके हाथों पड़ कर इस बात ने रसायन विद्या में एक हलचल पैदा करदी ।

इस फ्लाजिस्टी सिद्धान्त का अस्वीकार उस इच्छा का एक उदाहरण है जिससे वैज्ञानिक कल्पनाएं वास्तविक घटनाओं से अनमिल पाये जाने पर छोड़ दी जाती हैं। प्रमाण और मौखिक गाथा कुछ काम नहीं देती, वरन प्रत्येक बात प्रकृति की आज्ञानुसार निश्चित की जाती है । यह मान लिया गया है कि चलतू प्रश्न के उत्तर जो प्रकृति देगी वे सदैव सत्य होंगे ।

जिन दार्शनिक सिद्धान्तों पर विज्ञान चल रहा था उनको उन सिद्धान्तों से मीलान करके जिन पर धर्म निर्भर था हम देखते हैं कि जहां विज्ञान मौखिक गाथा का खण्डन करता था वहां धर्म उसका विशेष सहायक था, और जहां विज्ञान आग्रह करता था कि गणित और निरीक्षण का मेल होना चाहिये वा विवेचना और घटना का तारतम्य मिलना चाहिए वहां धर्म अलौकिक गुप्त भेदों की ओर झुकता था, और जहां विज्ञान संक्षेपतः स्वयं अपनी कल्पनाओं को प्रकृति के अनुकूल न पाये जाने पर अस्वीकृत करता था, वहां धर्म उस विश्वास में योग्यता पाता था जो मूढ़वत अविवेचनीय सिद्धान्त को स्वीकार

कर लेता था कि वह बुद्धिबाह्य वस्तुओं का सन्तोष प्रद विचार है। दोनों का विरोध लगातार बढ़ता ही गया। एक ओर अर्थात विज्ञान की ओर तिरस्कार का भाव था, और दूसरी ओर अर्थात धर्म की ओर घृणा का भाव था। अपक्षपाती साक्षी चारों ओर देख रहे थे कि विज्ञान शीघ्रता से धर्म की जड़ खोद रहा है।

इस भांति गणित विद्या वैज्ञानिक खोज का बड़ा साधन हो गई थी और वैज्ञानिक विवेचना की भी साधन हो गई थी। एक रीति से यह कहा जा सकता है कि उसने मस्तिष्क सम्बन्धी कामों को घटा कर यंत्रिक कार्य्य कर दिया था, क्योंकि उसके चिन्ह बहुधा सोचने की मेहनत बचा लेते थे। मानसिक शुद्धता का स्वभाव जिसको गणित विद्या उत्तेजित करती थी विचार की अन्य शाखाओं तक फैल गया और एक मानसिक हलचल पैदा करदी। अब अलौकिक चमत्कार सम्बन्धी प्रमाणों से वा उस तर्क शास्त्र से जो मध्य युग भर विश्वास-नीय रह चुका था सन्तोषित होना असम्भव था। इस भांति उसने केवल सोचने के ढंग ही पर प्रभाव नहीं डाला, वरन् उसने विचार का पथ ही बदल दिया। इस बात के विषय में, भिन्न २ विद्वान समाजों के कामों में विचारित विषयों का मीलान करके, हम उन विवेचनाओं से संतुष्ट हो सकते हैं जिनमें मध्य युग निवासी मनुष्यों का ध्यान लगा रहा था।

परन्तु गणित-विद्या का प्रयोग केवल कल्पनाओं की जांच तक ही सीमाबद्ध न था, वरन् जैसा कि हम ऊपर प्रगट कर आये हैं, वह विद्या ऐसे उपाय भी बताती है जिससे अब तक अनदेखी बातों की आगम सूचना दी जाती है। इस बात में यह विद्या धर्म की भविष्य-वाणियों की जोड़ीदार हो गई। निप्चून ग्रह की खोज उसी भांति का उदाहरण है जो ज्योतिष विद्या ने दिया; और सूच्याकार वर्तन की खोज भी एक उदाहरण है जो चक्षुविद्या सम्बन्धी तरंगिक सिद्धान्त ने दिया।

परन्तु जब यह बड़ा साधन प्राकृतिक विज्ञान में ऐसी आश्चर्य्य-प्रद उन्नति का कारण हुआ तब वह स्वयं भी उन्नति कर रहा था।

अच्छा अब हम उसकी उन्नति का हाल कुछ थोड़ी सी पंक्तियों में वर्णन करते हैं ।

बीज गणित का बीज सिकन्दरिया निवासी डायोफेन्टस के ग्रन्थों में देखा जा सकता है, जिसके विषय में यह अनुमान है कि वह सन् ईस्वी की दूसरी शताब्दी में हुआ है । उसी मिश्र देशीय पाठशाला में उकलैदिस ने पहले रेखागणित की बड़ी २ सत्यताएं एकत्र की थीं और उनको नैयायिक क्रम से रक्खा था । सिरैक्यूस में आरकीमैडीज़ ने निःशेषीकृत ढंग द्वारा अधिक ऊंचे प्रश्नों का साधन खोजने का उद्योग किया था । उस समय का घटना प्रवाह ऐसा था कि यदि लोग विज्ञान को आश्रय देते जाते तो बीज गणित का अन्वेषण अवश्य ही हो जाता ।

बीजगणित के मूल सिद्धान्तों के ज्ञान के लिये हम अरब निवासियों के ऋणी हैं । हम उस नाम के लिये भी उनके ऋणी हैं जिस नाम से गणितविद्या की यह शाखा प्रसिद्ध है । उन्होंने सिकन्दरिया के विद्यालय की बची बचाई वस्तुओं में होशियारी से वे उन्नतियां और मिला दीं जो हिन्दुस्तान से प्राप्त हुई थीं और इस विषय को निश्चित स्थिरता और रूप प्रदान किया । यह बीज गणितविद्या जैसी कि उनके पास थी, पहले पहल इटली देश में तेरहवीं शताब्दी के आरम्भ के लगभग लाई गई । उसकी ओर लोगों का इतना अधिक ध्यान गया कि लगभग ३०० वर्ष बीत गये तब कोई यूरोपियन ग्रन्थ इस विषय का निकला । सन् १४९६ ई० में पैशीओली ने निजकृत "आरटी मैजीओरी" वा'अ लगैबरा' नामक ग्रन्थ प्रकाशित किया । सन् १५०१ ई० में मिलन निवासी कार्डन नामक व्यक्ति ने घनमूलीय समीकरणों के साधन हेतु एक कायदा और बढ़ाया । सीपियोफिरो (१५०८), टारटेलिया और वाईटा ने और उन्नतियां कीं । तदनन्तर जर्मनी निवासियों ने इस विषय को अपने हाथों में लिया । इस समय गणितसंकेत अपूर्ण दशा में थे ।

डिसकारटीज़ कृत रेखागणित का प्रकाशन गणितविद्याओं का एतिहासिक समय है (१६३७) । दो वर्ष पहले अविभाजित अंकों

पर 'कैवेलियरी' का ग्रन्थ प्रकाशित हुआ । इस क़ायदे की टारीशैली और अन्य लोगों ने उन्नति की । अब अत्यल्पकलन न्यूटन कृत शून्य-वृद्धि के क़ायदे, और चलनकलन और लीबनिट्ज़ कृत चलराशिकलन की उन्नति का मार्ग खुला हुआ था । यद्यपि बहुत वर्ष पहले से जानता था, तथापि न्यूटन ने १७०४ ई० तक शून्यवृद्धि के नियमों पर कोई ग्रन्थ प्रकाशित नहीं किया । जो अपूर्ण गणित संकेत वह काम में लाता था उन्होंने उसके क़ायदे के प्रयोग को बहुत कुछ रोक रक्खा । इसी समय में महाद्वीप में बरनोइलिस द्वारा पूर्ण किये गये ऊंचे प्रश्नों के स्वच्छ साधनों द्वारा, लीबनिट्ज़ कृत चलराशिकलन सब ने मानलिया और बहुत से गणित विद्या विशारदों ने उस पर और उन्नति की । इस समय विज्ञान की बड़ी आश्चर्यप्रद उन्नति हुई और शताब्दी भर होती ही रही । द्विपद सिद्धान्त में, जिसे न्यूटन ने पहले ही से खोज निकाला था, टेलर ने अब निजकृत 'माडेल आफ इनक्रीमेंन्टस' नामक ग्रन्थ में वह प्रख्यात सिद्धान्त और बढ़ादिया जो अब तक उसके नाम से प्रसिद्ध है । यह बात १७१५ ई० में हुई । यूलर ने सन् १७३४ ई० में परिच्छिन्नान्तरकलन प्रचलित किया । उसको डी अलेम्बर्ट ने और बढ़ाया और उसके बाद यूलर और लैगरेंज ने वैशेषिक कलन प्रचारित किया और सन् १७७२ में लैगरेंज ने व्युत्पन्नफलों का कायदा भी प्रचारित किया ।

परन्तु केवल इटली, जर्मनी; इँगलैण्ड और फ्रांस ही में यह गणितविद्या सम्बन्धी हलचल नहीं देखी जाती थी, वरन् स्काट-लैण्ड ने इस बुद्धि सम्बन्धी मुकट में जो उसके शिर पर है नेपियर आफ मरचेस्टन' द्वारा निकाले हुये घातांकगणन का प्रचार करके एक नवीन रत्न और जड़ दिया था । इस अनूपम अन्वेषण के वैज्ञानिक महत्व का कोई ठीक अनुभव कराना असम्भव बात है । वर्तमान समय के भौतिक विज्ञानी और ज्योतिषी ग्रेशम कालेज के गणिता-चार्य्य ब्रिग्ज़ के कथन में बड़े आनन्द से सम्मिलित होंगे कि "मैंने कोई ऐसी पुस्तक नहीं देखी जिसने मुझे अधिक प्रसन्न किया हो और अधिक आश्चर्य्य में डाला हो"। अमर केपलर अकारणही नेपियर

को, अपने समय का उस बिभाग में सर्वोच्च मनुष्य जिसमें वह अपनी योग्यता लगाता रहा, नहीं मानता रहा। नेपियर सन् १६१७ में मर गया। यह कहना अत्युक्ति न होगा कि इस अन्वेषण ने परिश्रम को कम करके ज्योतिषियों के जीवन को द्विगुणित कर दिया।

परन्तु यहां मुझे रुक जाना चाहिये। मुझे अवश्य याद रखना चाहिये कि मेरा वर्तमान तात्पर्य्य यह नहीं है कि मैं गणित बिद्या का इतिहास वर्णन करूं वरन् यह बिचार करने का तात्पर्य्य है कि बिज्ञान ने मानवी सभ्यता की उन्नति के लिये क्या २ किया है और अब फौरन वही प्रश्न फिर आता है कि यह क्या बात है कि धर्म सम्प्रदाय ने अपने बारह सौ वर्ष के राज्य में कोई रेखागणित बिशारद नहीं पैदा किया ?

स्वच्छ गणितबिद्या के विषय में ऐसा कहा जा सकता है कि उसके प्रचार में ऐसे उपायों की आवश्यकता न थी जो अधिक मनुष्यों की पहुँच से बाहर हों। ज्योतिषबिद्या के लिये बेधशाला की आवश्यकता थी, रसायनबिद्या के लिये प्रयोगशाला चाहिए, परन्तु गणितबिद्या केवल व्यक्तिगत रुचि और थोड़ी पुस्तकें चाहती है। उसमें न बहुत बड़ा खर्च लगता है न सहायकों की सहायता की आवश्यकता है। एक मनुष्य समझ सकता है कि गणितबिद्या से बढ़कर, यहां तक कि एकान्त निवासी सन्यास जीवन में भी, कोई वस्तु अधिक हितकर और सुखकर नहीं हो सकती।

क्या हम यूसीबीएस के साथ यही उत्तर दें कि ऐसे निष्प्रयोजन परिश्रम की तुच्छता के कारण ही यह बात है कि हम इन बातों का इतना थोड़ा बिचार करते हैं? क्या हम अपना चित्त अधिक अच्छी चीजों के करने की ओर लगाते हैं? अधिक अच्छी चीजें! पूर्ण सत्य से बढ़कर अधिक अच्छी चीज़ क्या हो सकती है? क्या गुप्त भेद, अलौकिक चमत्कार और झूठे छल अधिक अच्छी चीजें हैं? और यही वे चीजें थीं जो बिद्या की उन्नति को रोकती थीं।

इस वैज्ञानिक आक्रमण के प्रारम्भ काल ही से धर्माधिकारियों ने जान लिया था कि बिज्ञान जिन सिद्धान्तों का प्रचार कर रहा है,

वे प्रचलित ईश्वर विद्या से बिलकुल अनमिल हैं। प्रगट वा अप्रगट किसी न किसी भांति वे सिद्धान्त ईश्वर विद्या के विरुद्ध हैं। वे धर्म्माध्यक्ष लोग प्रयोगिक विज्ञान से इतनी बड़ी घृणा रखते थे कि उन्होंने जान लिया था कि 'अकैडेमिया डेल सीमेन्टो' नामक सभा तोड़ कर हमें बहुत बड़ा लाभ हुआ है। यह भाव केवल कैथोलिक धर्म ही का नहीं था। जब लन्दन की रायल सुसायटी स्थापित हुई थी तब ईश्वर विद्या वादियों के उस पर ऐसे कड़े कटाक्ष हुये थे कि निःसन्देह यदि राजा द्वितीय चार्ल्स खुल्लम खुल्ला और सशपथ सहायता न देता तो वह टूट जाती। उस सभा पर यह दोष लगाया गया था कि वह स्थापित धर्म को बिनाश करना चाहती है, महाविद्यालयों को हानि पहुंचाना चाहती है और प्राचीन तथा दृढ़ बिद्या को उलट देना चाहती है।

इस बात को देखने के लिए कि इस सभा ने मानवी उन्नति के हेतु कितना काम किया है, केवल हमें उसके कार्यवाहियों के पत्रे उलटना पड़ेंगे। वह सभा १६६२ में स्थापित की गई और उस समय से आज तक जितनी बड़ी२ वैज्ञानिक उन्नतियां और खोजें की गई हैं उन सब में वह स्वार्थ लेती रती है। उसी ने न्यूटनकृत प्रिन्सीपिया नामक पुस्तक प्रकाशित की, उसी ने हैली की समुद्रीय यात्रा में बहुत सहायता दी जो कि किसी राज्य की ओर से पहला वैज्ञानिक बड़ा काम था। उसी ने रक्त के संक्रामिक सिद्धान्त पर प्रयोगिक परीक्षाएं कीं और हारवी की रक्तभ्रमण वाली खोज को स्वीकार कर लिया। टीका लगाने के कार्य्य में उसने उत्साह दिलाया था, इस कारण कैरोलाइन रानी ने प्रयोग परीक्षा के लिये छः दंडित दोषी मांगे थे, और तदनन्तर उस काम के लिये स्वयं अपने लड़के दिये थे। उसी सभा के उत्साह दिलाने से ब्रैडले ने अपनी बड़ी खोज, (अर्थात् अचल सितारों की अचलता और पृथ्वी की धुरी का अक्ष विचलन) पूर्ण की थी। डिलैम्बर कहता है कि वर्तमान ज्योतिष की शुद्धता इन्हीं दोनों खोजों के कारण है। इसी सभा ने थर्मामिटर की उन्नति को, सरदी गर्मी की नाप को और हरीमन की जेब घड़ी,

क्रानोमीटर और समय मापन को उन्नति दी। इसी सभा द्वारा ग्रेगरी का पत्रा इँगलेन्ड में सन् १८५२ में प्रचलित हुआ, यद्यपि धार्मिक लोगों ने बड़ा कड़ा विरोध किया था। उस सभा के कतिपय मेम्बरों का, अज्ञानी और क्रोधी जनों ने, गलियों२ पीछा किया। वे विश्वास करते थे कि उनके जीवन के ग्यारह दिन छीन लिये गये। ऐसा आवश्यक समझा गया था कि पादरी वाल्मैसिली का नाम जो कि एक विद्वान जैज़्यूइट था और जिसने इस विषय में बहुत स्वार्थ लिया था, छिपा रक्खा जाय, और जब इसी हलचल में ब्रैडले मर गया; तब यह प्रसिद्ध किया गया था कि उसने ईश्वर की ओर से अपने दोष का दण्ड पाया।

यदि मैं इस बड़ी सभा के गुणों का ठीक वर्णन करना चाहूं तो मुझे इस पुस्तक के बहुत सेप त्रे ऐसे बिषयों के वर्णन में लगा देने पड़ेंगे जैसे कि डोलाण्ड कृत रंगहीनकारी दूरबीन; राम्सडेन कृत विभाजक कल जिसने पहले पहल ज्योतिष सम्बंधी निरीक्षणों को शुद्धता प्रदान की, मेसन और डिक्सन कृत पृथ्वी तल पर एक अंश की नाप; शुक्र-रवियुति सम्बंधी 'कुक' का महान कार्य्य, उसकी पृथ्वी परिक्रमा, उसका यह प्रमाण कि समुद्री बीमारी जो बहुत दिनों से समुद्रीय यात्राओं को हानि पहुंचा रही है वानस्पतिक चीज़ें खाने से रोकी जा सकती है; ध्रुवीय महा यात्रायें; मैस्केलीन और कैवेन्डिश कृत प्रयोगों द्वारा पृथ्वी के घनत्व गुण का निश्चित होना; हर्शेल कृत यूरे-नस ग्रह की खोज; कैवेन्डिश और वाट कृत पानी की बनावट; लन्दन और पेरिस के बीच देशान्तर रेखाओं के अन्तर का निश्चय, वोल्टीय राशि का अन्वेषण; हर्शेल कृत आकाश की नापें; 'यंग' कृत व्यति-करण सिद्धान्त की उन्नति और प्रकाश के तरंग सिद्धान्त की स्थापना; जेलखानों और अन्य बड़े भवनों में वायु के आवागमन का प्रबन्ध; गैस द्वारा नगरों में रोशनी करने का प्रचार; सेकेंड सूचक लंगर की लम्बाई का निश्चय, भिन्न२ अक्षाशों में आकर्षण कारक परिवर्तनों की नाप; पृथ्वी की गोलाई नापने के कार्य्य; रास कृत ध्रुवीय यात्रा; डैवी कृत सेफ्टी लैम्प का अन्वेषण और मिट्टियों और खारों का प्रथक्करण;

उर्स्टेड और फाराडे कृत विद्यु चुम्बकीय खोजें; बैबेज कृत गणित करने वाली कलें; हमबोल्ट के कथनानुसार बहुत सी चुम्बकीय बेध शालाओं की स्थापना के लिये किये गये उपाय; और पृथ्वी तल पर एक साथ होने वाली चुम्बकीय हलचलों की सत्यता की जांच। परन्तु इन थोड़े से पत्रों में उस सभा के कामों की छोटी सी सूची ही दे देना असम्भव है। उसका उत्साह उसी प्रकार का था, जिसने 'अकैडेमिया डेलसीमेन्टो, को उत्साहित किया था, और तदनुकूल उस सभा का आदर्श वाक्य यह था कि "किसी के कथन पर विश्वास न करो"। उसने मिथ्या विश्वास का निषेध किया और केवल गणना, निरीक्षण और प्रयोग स्वीकार किया।

ऐसा अनुमान कर लेना क्षण मात्र के लिये भी उचित नहीं है कि इन बड़े उद्योगों और इन बड़ी सफलताओं में यह रायलसुसायटी अकेली थी। यूरोप की सब राज धानियों में सभा समाजें और सुसाइटियां थीं जो एक ही सी प्रसिद्ध थीं और मानवी ज्ञान और वर्तमान सभ्यता की उन्नति करने में समान कृतकार्य्य थीं।

(विज्ञान का अर्थ शास्त्र सम्बन्धी प्रभाव।)

प्रकृति का वैज्ञानिक अध्ययन केवल मनुष्य के बुद्धि विचार को ही शुद्ध और महान नहीं करता वरन् वह मनुष्य की प्राकृतिक अवस्था को भी उत्तम बना देता है। वह सदैव मनुष्य को उस बात की जांच सुझाया करता है कि किस तरह से मनुष्य उन विचारों के आर्थिक प्रयोग से निश्चित घटनाओं को अपने काम में अपना सेवक बना सकता है।

सिद्धान्तों की खोज के बाद शीघ्र ही प्रयोगिक अन्वेषण होने लगते हैं। वास्तव में हमारे समय की यही विशेष पहिचान है। उसने जातीय नीति में बड़ी हलचल पैदा करदी है।

प्राचीन काल में गुलाम प्राप्त करने के लिये युद्ध किये जाते थे। कोई बिजेता बिजित देश के सब निवासियों को पकड़ ले जाता था और उनसे ज़बरदस्ती अपना काम कराता था, क्योंकि केवल मनुष्य ही

के परिश्रम से मनुष्य का परिश्रम–दुःख टाला जा सकता है। परन्तु जब यह ज्ञात हो गया कि प्राकृतिक सेवक और यंत्र समूहों के प्रयोग से अधिक लाभ हो सकता है तब सर्व साधारण की नीति में एक परिवर्तन हो गया। और जब यह मान लिया गया कि एक नवीन सिद्धान्त का प्रयोग वा एक नवीन यंत्र का अन्वेषण एक अधिक गुलाम पाने से कहीं बढ़कर है, तब लोग शान्ति को युद्ध से अधिक अच्छा समझने लगे। और ऐसा ही नहीं, वरन् उन जातियों ने, (जिनके पास बहुत अधिक गुलाम थे, जैसे कि अमेरिका निवासी और रूसी) जानलिया कि मनुष्यत्व के विचारों को स्वार्थ के विचारों से बड़ी सहायता मिलती है, और अपने गुलामों को छोड़ दिया।

इस भांति अब हम एक ऐसे समय में रहते हैं, जिसकी विशेष पहिचान यह है कि मनुष्य और पशुओं के परिश्रम का स्थान यंत्रों ने ले लिया है। इस समय के यंत्रिक अन्वेषणों ने एक जातीय हलचल मचा दी है। अपनी आवश्यकताएं पूर्ण करने के लिये अब हम प्रकृति से निवेदन करते हैं, ईश्वर से नहीं। इस भांति बढ़ते हुये" वर्तमान कालिक सभ्यता" के साथ कैथोलिक धर्म की पटती नहीं। पोप लोग इन कामों का चिल्ला २ कर खण्डन करते हैं और प्राचीन अवस्था को पुनः स्थापन करने के हेतु आग्रह करते हैं।

यह बात कि रगड़े जाने पर अम्बर का एक टुकड़ा हलके पदार्थों को खींचेगा और तदनन्तर हटावेगा, ईसा के छः सौ वर्ष पहिले सब को ज्ञात थी। यह प्राकृतिक घटना त्यक्त, अप्रचारित और एक तुच्छ घटना की भांति ईसा के १६०० वर्ष बाद तक पड़ी रही। तदनन्तर गणित सम्बन्धी विवेचना और प्रयोग के वैज्ञानिक ढंग द्वारा जांचे जाने और उसके प्रतिफल को काम में लाने पर उसने मनुष्यों को भिन्न महाद्वीपों और भिन्न सागरपारों पर रहते हुये भी परस्पर एक ही समय में बात चीत करने के योग्य कर दिया है। राजाओं को इस योग्य बना कर कि वे अपनी आज्ञाएं बिना दूरी और समय के विचार के भेजसकें, उसने प्रबन्ध नीति में उलट पलट कर दिया है और राज्यनैतिक शक्ति को मजबूत कर दिया है।

सिकन्दरिया के अजायबघर में ईसा के समय से १०० वर्ष से कुछ ही पहिले हीरो नामक गणित विशारद की निकाली हुई एक कल थी। वह धुएं के जोर से घूमती थी और इस रूप की थी जिसे अब हम 'प्रत्याघातकल' कह सकते हैं। इस कल को, जो कि अत्यावश्यक अन्वेषणों का बीज थी, १७०० वर्ष तक लोग केवल एक आश्चर्य्यप्रद वस्तु की भांति स्मरण करते रहे।

वर्तमान कालिक धूमकल के अन्वेषण के साथ दैवयोग का कुछ सम्बन्ध नहीं है, यह कल मनन शक्ति और प्रयोग का फल है। सत्रहवीं शताब्दी के मध्य में कई एक यंत्रिक कारीगरों ने धुएं के गुणों को काम में लाने का उद्योग किया। उनके परिश्रम वाट नामक मनुष्य ने अट्ठारहवीं शताब्दी के मध्य में पूर्णतः को पहुंचा दिये।

वह धूमकल शीघ्र ही सभ्यता का कुली बन गई। वह कई लाख मनुष्यों का काम करने लगी। उसने, उन लोगों को जिनको जन्म भर पशुओं की भांति परिश्रम करना पड़ता था, अधिक अच्छे कामों में लग जाने का सुअवसर दिया। जिन लोगों को प्राचीन काल में परिश्रम करना पड़ता था वे उसके फल को समझ सकते हैं।

उसका सर्वप्रथम प्रयोग ऐसे कामो में हुआ जैसे कि पानी उलीचना, जिसमें केवल बल ही की आवश्यकता है। परन्तु शीघ्र ही उसने अपनी स्पर्श शक्ति की मृदुता को भी कातने और बुनने की औद्योगिक कलाओं में प्रमाणित करदिया। उसने बहुत बड़े २ कारीगरी के कारखाने पैदा कर दिये और संसार भर को कपड़ा पहनाने लगा। उसने सब जातियों के उद्योग को बदल दिया।

पहिले नदियों और तदनन्तर समुद्र में नौका चलाने के काम में उसने उस समय तक प्राप्त हुई चाल को चौगुने से भी अधिक कर दिया। अटलान्टिक समुद्र को पार करने के लिये ४० दिन की आवश्यकता के बजाय अब वह आठ दिन में पार किया जा सकता है। परन्तु खुश्की के आवागमन में उसकी शक्ति अत्यंत आश्चर्य्यप्रद प्रकाशित हुई। रेलवे इंजिन के प्रशंसनीय अन्वेषण ने मनुष्यों को एक घंटे से कम में उससे कहीं अधिक यात्रा करने के

योग्य बना दिया जितनी कि अगले समय में लोग एक दिन से अधिक समय में कर सकते थे।

रेलवे इंजिन ने केवल मानवी सजीवता का मैदान ही नहीं बड़ा कर दिया, वरन् दूरी को संकुचित करके उसने मानव जीवन की योग्यताओं को भी बढ़ा दिया है। कारीगरी की वस्तुएं और कृषी की पैदावारें शीघ्रता से लाने लेजाने में वह मानवी उद्योग के लिये अति पूर्ण उत्तेजक हो गया।

समुद्र पर धूमपोत चलाने की पूर्णता में क्रानोमीटर के अन्वेषण द्वारा बहुत उन्नति हुई, क्योंकि उसने यह सम्भव कर दिखाया कि कोई जहाज समुद्र में अपना ठीक स्थान जान सकता है। सिकन्दरिया के विद्यालय में वैज्ञानिक उन्नति में बड़ा भारी ऐब यह था कि समय नापने का कोई यंत्र न था और सरदी गर्मी नापने का कोई यंत्र न था अर्थात् क्रानोमीटर और थर्मामिटर न थे। वास्तव में क्रानोमीटर के अन्वेषण के लिये थर्मामीटर का अन्वेषण आवश्यक ही है। जल-घड़ियों से काम लिया गया था पर वे शुद्धता में ठीक न निकलीं। उनमें से एक के विषय में, जिस पर राशिचक्र बना हुआ था और जिसको कतिपय प्राचीन ईसाई लोगों ने विनष्ट कर दिया था, सेन्ट पालीकार्प ने बड़ी सार्थक युक्त से कहा था कि "इन सब बड़े राक्षसों में एक ऐसा कला कौशल देखा जाता है जो ईश्वर के बिरुद्ध है"। सन् १६८० ई० के लगभग तक क्रानोमीटर शुद्धता तक नहीं पहुँचा था। 'हूक' नामक व्यक्ति ने, जो कि न्यूटन का समसमायिक था, उसमें चक्राकार कमानी सहित समता-चक्र लगाया और बहुत प्रकार के घटीयंत्र क्रमशः निकाले गये, जैसे कि लंगरयंत्र डेडबीट यंत्र, डूप्ले यंत्र, और रिमान ट्वायर यंत्र। सरदी गरमी के परिवर्तन के लिये प्रबन्ध किया गया। 'हैरीसन' और आरनोल्ड ने अन्त में उनकी सूइयों को समयगमन का शुद्ध मापक बना कर अन्ततः उसे पूर्ण ही कर दिया। क्रानोमीटर के अन्वेषण में गाडफ्रे कृत परावर्तनीय षष्ठांश यंत्र का भी अन्वेषण मिला देना चाहिये। इसके कारण जहाज़ हिलते रहने पर भी ज्योतिष सम्बंधी निरीक्षण करना सम्भव हो गया।

समुद्र में नाविक यात्रा की उन्नतियां मनुष्य जाति के वितरण पर एक शक्तिशाली प्रभाव डाल रही हैं । वे नवीन बस्तियों की मात्रा बढ़ा रही हैं और उनके विशेष स्वभाव के बदल रही हैं ।

परन्तु केवल इन्हीं बड़ी खोजों और अन्वेषणों ने, जो वैज्ञानिक खोज की सन्तान हैं, मानव जाति के भाग्य को नहीं पलट दिया, वरन और बहुत सी छोटी छोटी खोजों और अन्वेषणों ने, जो व्यक्तिक भाव से कदाचित बहुत तुच्छ हैं, मिल कर एकत्र भाव से आश्चर्य्य-प्रद प्रभाव प्रगट किये हैं । चौदहवीं शताब्दी में विज्ञान के प्रारम्भिक प्रचार ने अन्वेषण शक्ति को लाभकारी प्रयोगिक फलों की ओर उन्मुख करके एक आश्चर्य्यप्रद उत्तेजना दी, और तदनन्तर इस बात के स्वत्व रक्षण प्रथा से बहुत उत्साह मिला जिसने अन्वेषण कर्ता के लिये अपनी चतुरता के लभों का बड़ा भारी भाग सुरक्षित कर दिया । बहुत साधारण रीति से इनमें से कतिपय उन्नतियों की ओर इंगित कर देना अलम है । जितना काम उन्हों ने किया है उसका हम गुण मानते हैं । आरा की कल के प्रचार ने दूधी मिट्टी, खपरों और पत्थरों के फर्शों के हटा कर घरों में लकड़ी के तख़्तों के फर्श बनवा दिये । शीशे की बनावट के सस्ता करने वाली उन्नतियों ने खिड़कियां बनवा दीं, और कमरों का गर्म रखना सम्भव कर दिखाया । परन्तु सोलहवीं शताब्दी तक शीशा जड़ाने का काम अच्छा नहीं होता था । तब शीशे को हीरा से काटने का काम प्रचलित किया गया । चिमनियों के बढ़ जाने से घरों की हवा साफ होगई जो पहले जंगलियों के झोपड़ों की भांति काले कलोंचे थे । इसी युक्ति ने उत्तर निवासी गृहस्थों के वह अवर्णनीय सुख भोग दिया जो "आनन्दकारी अलाव" कहलाता है । इस समय तक धुआं निकलने के लिये छत में एक सूराख होता था, लकड़ियां लगाने के लिये फर्श के बीच में एक गड्ढा होता था जो दीप शान्तिकारी अनुशाशनप्रद घंटे के बजने पर वा रात हो जाने पर ढकने से मूंद दिया जाता था । बस ऐसा ही आनन्द रहित और अपूर्ण प्रबन्ध तापने के लिये हुआ करते थे ।

यद्यपि पादरियों की ओर से कठिन विरोध हुआ, तथापि लोग ख्याल करने लगे कि महामारी आदि ईश्वर की ओर से वे दण्ड नहीं हैं जो किसी समाज पर उसके धार्मिक दोषों के कारण आ पड़ते हैं, वरन वे मलीनता और दरिद्रता के प्राकृतिक फल हैं। और लोग यह भी सोचने लगे कि उनके वारण करने का उचित ढंग महात्माओं से प्रार्थना करना नहीं है, वरन शारीरिक और ग्राम सम्बन्धी स्वच्छता रखना है। बारहवीं शताब्दी में यह आवश्यक समझा गया कि पेरिस की गलियां पाट दी जांय, क्योंकि उनकी गंदगी बड़ी भयंकर थी। अतिसार और दागदार ज्वर तुरंत घट गये और एक स्वास्थ कर दशा प्राप्त हुई जो स्पेन के मूरिश नगरों की सी थी जो कई शताब्दियों से पटी हुई गलियां रखते थे। उस सुन्दर राजधानी (अर्थात् पेरिस) में सुअर पालना मना कर दिया गया। इस आज्ञा का सेन्ट एनथनी के मठ के सन्यासियों ने विरोध किया जिन्हों ने यह इच्छा प्रगट की थी कि उस महात्मा के सुअरों को इच्छानुसार विचरने देना चाहिये। राज्य को विवश होकर इस विषय में राजी होना पड़ा और केवल इतना चाहा कि उन पशुओं के गलों में घंटियां बांध देना चाहिये। लुई दी फैट का पुत्र राजा फ़िलिप घोड़े के बर्फ पर फिसल कर गिरने के कारण मर चुका था। खिड़कियों से मैला पानी फेंकने की मुमानियत हो गई थी। सन् १८७० ई० में एक स्वदृग्दर्शक साक्षी अर्थात् स्वयं ग्रंथ कर्ता ने पोपीय राज्य के अन्त में देखा था कि उस नगर की विष्टा-पूर्ण गलियों से चलने में शारीरिक पवित्रता रखने के हेतु पृथ्वी को देखते हुये चलना ईश्वर ध्यान की अपेक्षा अधिक आवश्यक था। सत्रहवीं शताब्दी के आरम्भ तक बर्लिन नगर की गलियां झाड़ी नहीं जाती थीं। वहां एक ऐसा नियम था कि प्रत्येक दिहाती जो छकड़ा लेकर बाजार करने को शहर में आवे, थोड़ी धूल उठाये लेते जाया करे।

गलियों के पटने के बाद नाली और नाबदानों के बनाने के उद्योग किये गये जो बहुधा अपूर्ण रहे। सब समझदार मनुष्यों को यह विदित होगया था कि ये बातें स्वास्थ रक्षा हेतु केवल बड़े नगरों

के ही लिए आवश्यक न थीं वरन एकाकी घरों के लिये भी । तदनन्तर सड़कों पर रोशनी करने का ढंग निकला । पहले पहल गलियों की ओर द्वार रखने वाले मकानों के निवासियों को दबाया गया कि वे अपनी खिड़कियों पर मोमबत्तियां वा दीपक रक्खा करें, और तदन्तर वह ढंग जो कारडोआ और ग्रनाडा में बड़े लाभ के साथ प्रचलित रहा था अर्थात् सार्वजनिक दीपकों का ढंग काम में लाया गया, परन्तु यह ढंग वर्तमान शताब्दी तक (जब गैस द्वारा रोशनी करने का ढंग निकाल दिया गया) पूर्ण न हो पाया था । सड़कों पर दीपक जलाने के ढंग के साथ ही साथ चौकीदारों और पुलिस के प्रबंधों को भी उन्नति दी गई ।

सोलहवीं शताब्दी तक यंत्रिक अन्वेषण और दस्तकारी की उन्नतियां घरू और सामाजिक जीवन पर बड़ा प्रभाव डाल रही थीं । शीशे और घड़ियां दीवारों पर दिखलाई देने लगे और अलवों पर पिहाने बनने लगे । यद्यपि कई प्रांतों में बावरचीखानों में अब तक घास फूस जलाई जाती रही, तथापि कोयला का प्रयोग बढ़ने लगा । भोजनागार में मेज़ पर नवीन सुस्वादु भोजन सामग्रियां दिखाई पड़ने लगीं । व्यापार के कारण परदेशी वस्तुएं आने लगीं । उत्तरीय देश के भद्दे पेय पदार्थ हट कर दक्षिणीय देश की उत्तम मदिराएं प्रचलित हुईं । बर्फखाने बनवाये गये । वायु चक्कियों में प्रचलित आटा चालने की रीति अधिक सफेद और अधिक अच्छी रोटियां देती थी । धीरे २ अलभ्य वस्तुएं भी साधारण सी होगईं अर्थात हिन्दुस्तानी अन्न, आलू, टर्की, और सबसे बढ़ कर तमाखू भी मिलने लगी । इटली देश में अन्वेषित (भोजन करने के) कांटों ने अंगुलियों का गंदा प्रयोग छोड़ा दिया । ऐसा कहा जा सकता है कि सभ्य मनुष्यों के भोजन में इस समय वास्तविक परिवर्तन हो गया था। चीन से चाय और अरब से कहवा आ गये थे । हिन्दोस्तान से शक्कर का प्रचार हुआ था, और इन वस्तुओं ने बहुत कुछ मदिराओं का प्रयोग हटा दिया । फर्शी क़ालीनों ने पयाल की तहें हटवादीं । कोठों में अच्छे पलंग देख पड़ने लगे और वस्त्रागारों में अधिक स्वच्छ

और बहुधा परिवर्तनीय वस्त्र दिखाई पड़ने लगे। बहुत से नगरों में जलकुण्डों और मार्ग-पम्पों के बजाय जल-नल प्रचलित हो गये। छतें जो पुराने समय में धूम धूसरित हुआ करती थीं अब शृंगारिक रंगीन चित्रों से सुशोभित होने लगीं। स्नानागारों में सब लोग जाने लगे, और शारीरिक दुर्गन्ध को छिपाने के लिये इत्र इत्यादि सुगंधित पदार्थों की आवश्यकता कम हो गई। उद्यान विद्या के निर्दोष सुख भोगों की बढ़ती हुई जो बागों में अनेक प्रकार के विदेशी फूलों (जैसे नीलाकृति गुलाब, गोशख़िर्स, क्राउन इम्पीरियल, फ़ारसी कमोदिनी, काकुंवकी, और अफरीकन गेंदा) के प्रचार से प्रगट होती थी। गलियों में पालकियां दिखलाई पड़ने लगीं, तदनन्तर बंद गाड़ियां, और तदनन्तर किराये की गाड़ियां चलने लगीं।

यंत्रिक उन्नतियों ने सुस्त देहातियों तक भी अपना आवागमन करलिया और धीरे २ हमारे समय की जोतने, बोने, घास काटने अनाज काटने और कूटने के औज़ारों तक उन्नति कर गई।

भिक्षुक समूह के उपदेश देने पर भी यह बात मानी जाने लगी कि निर्धनता पाप और अज्ञान का द्वारा है और व्यापार द्वारा धन कमाना युद्ध द्वारा शक्ति प्राप्त करने की अपेक्षा कहीं अच्छा है। क्योंकि यद्यपि मानटेस्की का यह कथन सत्य हो सकता है कि "व्यापार भिन्न जातियों को मिलाता तो है, पर भिन्न व्यक्तियों को विरोधी बना देता है और सदाचरण को व्यापारिक वस्तु बना देता है," तथापि केवल व्यापार ही जगत में ऐक्य फैला सकता है और उसके विचार और उसकी आशा सर्वव्यापी शान्ति ही है।

यद्यपि थोड़े पत्रों के बजाय उस उन्नति के ठीक वर्णन के लिये कई एक ग्रंथ चाहिये जो घरू और जातीय जीवन में उस समय हुई जब विज्ञान अपने उत्तम प्रभाव डालने लगा और अन्वेषण शक्ति उद्योग की सहायता करने लगी, तथापि कुछ ऐसी बातें हैं जो बिना वर्णन किये छोड़ी नहीं जा सकती। बारसीलोना के बन्दर से स्पेन के खलीफा बहुत बड़ा व्यापार किया करते थे, और उन्हों ने अपने यहूदी साझियों के साथ बहुत से ऐसे व्यापारिक अन्वेषण किये थे जिन्हें,

स्वच्छ विज्ञान की भांति, वे यूरोप के व्यापारियों को दे गये थे। इस भांति हिसाब किताब में एक रकम को दो खातों में लिखने का ढंग उत्तरीय इटली में प्रचलित हुआ। भिन्न प्रकार के बीमा स्वीकार किये गये, यद्यपि पादरी लोग कठिन विरोध करते ही रहे। उन्होंने अग्नि और समुद्रीय बीमों का विरोध किया और यह कहा कि ऐसा करना मानो ईश्वरीय शक्ति को छलना है। जीवन बीमा की प्रथा ईश्वरेच्छा के विरुद्ध हस्तक्षेप का काम समझा जाता था। व्याज पर रुपया उधार देने वाले और बंधक रखने वाले घरों (अर्थात् कोठियों) की बड़ी निन्दा की गई और विशेष कर अधिक व्याज लेने के विरुद्ध क्रोध उभाड़ा गया। यह व्याज प्रथा अधिक व्याजखोरी कहलाती थी। अबतक कई एक पीछे पड़ी हुई जातियों में यह भाव वर्तमान है। वर्तमान कालिक हुंडियों का ढंग स्वीकार किया गया और एक सर्व-साधारण सम्बंधी रजिस्ट्री का दफ़्र स्थापित किया गया और मिती चाल का प्रतिबाद होने लगा। यह निःसन्देह कहा जा सकता है, जिसमें थोड़ी ही अत्युक्ति है कि वह व्यापारिक यंत्र जो अब प्रचलित है इस भांति प्रचलित किया गया। मैं पहिले ही यह कह आया हूं कि अमेरिका ज्ञात हो जाने से यूरोप का रुख बदल गया था। बहुत से धनवान इटली निवासी व्यापारी और बहुत से उत्साही यहूदी हालेण्ड, इंगलेण्ड और फ्रांस में बस गये थे और बहुत सी व्यापारिक युक्तियां उन देशों में लाये थे। यहूदी लोग जो पोप के अभिशापों की कुछ परवाह न करते थे पान्टीफ प्रचारित अधिक सूद पर रुपया देने के ढंग से धनवान हो गये थे, परन्तु द्वितीय पियस ने भूल को देख कर अपना विरोध हटा लिया। बंधक रखने के कारखाने अन्त में दशम लियो द्वारा साधिकार कर दिये गये। उसने उन लोगों को जाति से बाहर कर देने की धमकी दी थी जो उस रीति के विरुद्ध कोई लेख लिखें। अपनी बारी से प्राटेस्टेंट लोगों ने भी अब रोम द्वारा अधिकार प्राप्त ऐसे कारखानों के विरुद्ध अपनी घृणा प्रगट की। जब ईश्वर वादियों का यह सिद्धान्त कि भूकम्प के समान माहामारी भी पापी मनुष्यों के लिये ईश्वरीय अटल दण्ड है संदिग्ध होने लगा तब

ये उद्योग किये गये कि उसका बढ़ाव क्वारन्टाइन प्रथा स्थापित करके रोका जाय। जब टीका लगाने की मुसल्मानी खोज 'लेडी मैरी वार्टलो मान्टेग' द्वारा सन् १७२१ में कुस्तुनतुनिया से लाई गई तब पादरियों ने उसका इतना कड़ा विरोध किया कि यदि इंगलैंड का राजवंश उसे ग्रहण न करता तो उसका प्रचार न होता। ऐसा ही विरोध उस समय हुआ था, जब डाक्टर जेनर ने निजकृत चेचक टीका प्रचारित किया था। एक शताब्दी पहले चेचक दाग रहित चिहरा देखना एक अनोखी बात थी, अब ऐसा सदाग चिहरा देखना अनोखी बात हो रही है। इसी भांति जब वेदनारोधक विद्या की बड़ी अमेरिकन खोज गर्भ-मोचक दशाओं में काम में लाई जाने लगी तब उसे दबाने का उद्योग किया गया। यह बात मानव शरीर विद्या सम्बंधी कारणों से नहीं की गई थी, बरन इस दावा से की गई थी कि स्त्रियों को ऐसे कष्ट से बचा लेने का उद्योग करना अधर्म है क्योंकि धर्म पुस्तक के तीसरे अध्याय के सोलहवें श्लोक में सब स्त्रियों को ऐसा शाप दिया गया है।

आविष्कारिक बुद्धि केवल लाभदायक यंत्रों की उत्पत्ति ही तक सीमा बद्ध नहीं रही, वरन उसने हँसी खेल की कलों को भी बढ़ा दिया। इटली में विज्ञान के प्रचार के थोड़े ही दिन बाद शिल्प-शालायें आश्चर्यप्रद यंत्रिक खिलैानों से भरने लगीं, और उन्हीं का नाम जादू के खिलौने पड़ा। तदनन्तर मैजिक लालटेन के आविष्कार ने बड़ी सहायता की। धर्माचार्य्य लोग प्रयोगिक विज्ञान से अकारण ही घृणा नहीं रखते थे, क्योंकि उस विज्ञान से एक बड़ा भारी फल निकला, अर्थात् बाज़ीगर लोग अलौकिक चमत्कार कर्त्ता लोगों के कृत-कार्य्य प्रतिस्पर्द्धी हो गये। जब बाज़ार में बाज़ीगर की कपट विद्या से काम पड़ा तब गिरजाघरों में किये जाने वाले पवित्र छलों का आश्चर्य्य प्रद प्रभाव जाता रहा। बाज़ीगर नाक से अग्निज्वाला निकालने पैठालने लगे, जलते कोयले पर चलने लगे, अति प्रतप्त लोहे को दांतों में दबा लेने लगे, अपने मुंह से टोकरे भर अंडे निकालने लगे, और कमानीदार कठपुतलों द्वारा अलौकिक चमत्कार करने लगे। तब भी अलैाकिक शक्ति का प्राचीन विचार कठिनता से विनाश हुआ। एक

घोड़े पर, जिसे उसके मालिक ने बहुत से कपट खेल सिखाये थे, सन् १६०१ ई० में लिस्बन नगर में अभियोग चलाया गया, और जांच से पाया गया कि उस पर भूत सवार है, और वह जला दिया गया। उसके और कुछ दिन बाद बहुत सी जादूगरिनियां जिन्दा जलादी गईं।

खोज और अन्वेषण, एक बार प्रचार पाकर शीघ्रता के साथ अनिवार्य्य भाव से बढ़ते ही चले गये। उन्हों ने परस्पर एक दूसरे पर लगातार प्रभाव डाला और सदैव ही अलौकिक शक्तिवाद का शोषण करते रहे। इन्द्रधनुष की विवेचना को डी डामिनिस ने प्रारम्भ और न्यूटन ने पूरा किया। उन्हों ने प्रमाणित कर दियो कि वह ईश्वर का लड़ाई का हथियार नहीं था, वरन पानी के बुन्दो पर प्रकाश की किरणों के पड़ने का प्रतिफल था। डी डामिनिस मुख्य विशपवृत्ति और कार्डिनल के मुकुट की आशा के लालच से रोम में बुलाया गया। एक सुन्दर भवन में ठहराया गया, परन्तु बड़ी साव-धानी से ताका गया। रोम और इंगलैंड में एकता सुझाने का दोषी ठहरा कर वह सेंट एनजेलो के किले में कैद कर दिया गया और वहीं मरा। वह ठठरी में रख कर धर्माध्यक्षों के न्यायालय में लाया गया, उस पर नास्तिकता का दोष लगाया गया, और उसका मृतक शरीर नास्तिकवादिनी पुस्तकों के एक ढेर के साथ आग में जला दिया गया। फ्रैंकलिन ने बिजली और वैद्युति शक्ति को एक ही वस्तु प्रमाणित कर के जूपिटर को निरस्त्र कर दिया। मिथ्या विश्वास के आश्चर्य्यों को सत्यता के आश्चर्य्यों ने हटा दिया। दोनों प्रकार की दूरबीनों ने, अर्थात् परावर्तक दूरबीन और तथ्यवर्णदर्शक दूर-बीन जो अन्तिम शताब्दी में आविष्कृत हुई, मनुष्यों को विश्व के अनन्त बड़े पदार्थों के भीतर प्रवेश करने, यथा शक्ति उस को भली भांति पहिचानने, और उसका अनन्त प्रस्तार और उसका अमाप्य समय जानने के योग्य कर दिया। और थोड़े दिन बाद तथ्यवर्ण प्रदर्शक खुर्दबीन ने मनुष्य की आंखों के सामने अत्यंत छोटी सांसारिक वस्तुओं को भी रख दिया। गुब्बारे मनुष्य को बादलों के ऊपर ले जाने लगे और डाईविंग बेल मनुष्य को समुद्र की तह तक पहुँचाने लगा।

थर्मोमिटर गर्मी के परिवर्तनों की ठीक मात्रा बतलाने लगा और बैरोमीटर वायु का बोझ प्रगट करने लगा। तुलायंत्र के प्रचार ने रसायन विद्या को यथार्थता प्रदान की और पदार्थ का अविनाशी गुण प्रमाणित कर दिया। आक्सीजिन, हाईड्रोजिन और अन्य अनेक गैसों की खोज ने, और अलूमीनम, कैलसीयम और अन्य धातुओं की प्रथकता ने प्रमाणित कर दिया कि पृथ्वी, वायु और जल तत्व नहीं हैं। एक ऐसे साहस के साथ जिसकी प्रशंसा करना अनुचित नहीं है, शुक्र-रवियुत घटना से लाभ उठाया गया और भिन्न देशों में महान् कार्य्य कर्त्ताओं को भेज कर सूर्य्य से पृथ्वी का अन्तर निश्चित कर लिया गया। सन् १४५६ और १७५९ ई० के बीच में जितनी उन्नति यूरोपियन बुद्धि ने की थी वह हैली के पुच्छल तारे से प्रमाणित हो गई। जब वह अगले समय में निकला था तब लोगों ने उसे ईश्वरीय कोप का आगम सूचक माना था (अर्थात् अति भयंकर क्रोध, युद्ध, महामारी और अकाल का फैलाने वाला)। पोप की आज्ञा से यूरोप भर में सब गिरजाघरों के घंटे उसको डरवाकर भगा देने के लिये बजाये गये थे, और धार्मिक पुरुषों को आज्ञा दी गई थी कि अपनी नैत्यक प्रार्थना में एक प्रार्थना और बढ़ादें। और चूंकि ग्रहणों और अवर्षणों और वर्षाओं के हेतु की गई प्रार्थनाओं का बहुधा बड़ा प्रभाव होता था, इसी हेतु इस समय पर ऐसा प्रसिद्ध किया गया था कि पोप की प्रार्थना ने पुच्छल तारे पर विजय प्राप्त की है। परन्तु इसी बीच में हैली ने कैपलर और न्यूटन के वैज्ञानिक अनुभवानुसार यह बात जानली थी कि उसकी चालें ईसाइयों की प्रार्थनाओं से नहीं पराजित हुईं वरन् अपने निज घनत्व द्वारा दीर्घवृतिक कक्षा में नियमानुसार हुई हैं। यह जान कर कि प्रकृति ने उसकी निडर भविष्य बाणी को पूरा होते हुये देखने का सुअवसर उसे नहीं दिया, उसने भविष्य ज्योतिषियों से प्रार्थना की थी कि सन् १७५९ ई० में उस पुच्छल तारा के पुनरागमन को ताकते रहें, और उस वर्ष में वह पुच्छल तारा अवश्य ही प्रगट हुआ।

जो कोई पक्षपात रहित होकर इस बात को जांचेगा कि अपने लम्बे राज्य समय भर में कैथोलिक धर्म ने यूरोप की मानसिक और पदार्थिक उन्नति के विषय में क्या किया, और विज्ञान ने अपने थोड़े समय में उसी विषय में क्या किया, वह, मुझे निश्चय है, अवश्य यह प्रतिफल निकालेगा कि समानता निकालने में उसने विषमता प्रमाणित करदी। और तब भी कार्य्यों की सूची जो मैं पहिले दे आया हूं कितनी अपूर्ण और कितनी अपर्य्याप्त है। साधारण पाठशालाओं द्वारा पढ़ने लिखने के हुनर के फैलाव से कैसी शिक्षा का प्रचार हुआ, और तदनन्तर कैसे पाठकों का समूह पैदा होगया इस विषय में मैंने कुछ नहीं कहा। समाचार पत्रों और समालोचनाओं द्वारा सार्वजनिक सम्मति के बनाने, समाचार पत्रों की शक्ति, सर्कारी और घरू सूचनाओं के (डाकखाना और सस्ती डाक द्वारा) प्रस्तार और समाचार पत्रों में विज्ञापन देने के व्यक्तिक और सामाजिक लाभों के विषय में भी कुछ नहीं कहा, औषधालयों की स्थापना के विषय में भी कुछ नहीं कहा जिसका पहिला उदाहरण "इन्वैलिड्स आफ पेरिस" था, और न जेलखानों, रिफारमेटरियों, दत्तक ग्रहों, धर्मशालों और पागलों, भिखमंगों और दोषियों के साथ बर्ताव करने के विषय में कुछ कहा। नहरों के बनाने, स्वास्थ्यकर कलाओं, वा मनुष्य गणना सम्बंधी रिपोर्टों के विषय में भी कुछ नहीं कहा। निश्चल मुद्राक्षरों के आविष्कार, क्लोरिन द्वारा श्वेत करण, काटन-जिन वा वे आश्चर्य्य प्रद कलें जिनसे रूई के कार्य्यालय भरे पड़े हैं और जिन कलों ने हमें सस्ते कपड़े दिये हैं और इस सेतु स्वच्छता, सुख और स्वास्थ्य को बढ़ा दिया है इनके विषय में भी कुछ नहीं कहा, और वैद्यक, और सर्जरी विद्याओं की बड़ी उन्नति, वा मानव शरीर विद्या की खोजों, कला कुशलताओं का प्रचार, कृषी और देहाती प्रबंध की उन्नतियों, रसायनिक खादों और कृषी की कलों के प्रचार के विषय में भी कुछ नहीं कहा। मैंने लोहे की कारीगरी और उससे सम्बंध रखने वाले उद्योगों की ओर इंगित भी नहीं किया। कपड़ा बुनने के कारखानों और प्राकृतिक इतिहास, प्राचीन वस्तुओं और अनोखी वस्तुओं के

अजायबघरों के विषय में भी कुछ चरचा नहीं की । मैंने स्वयं कलों की बनावट के बड़े विषय को अकथित ही छोड़ दिया है । अर्थात् स्लाईड रेस्ट, और रन्द्राकल और उन बहुतसी कलों के आविष्कार का विषय अवर्णित ही छोड़ दिया गया है जो अधिक तर गणित सम्बंधी शुद्धता के साथ बनाई जा सकती हैं । मैंने उचित रीति से रेलवे प्रवन्ध के विषय में कुछ नहीं कहा, वा बिजली के तार के विषय में, न कलन, लिथोग्रेफी, एअर पम्प, वा वाल्टाइक बैटरी के विषय में कुछ कहा । यूरेनस और नेपचून की, और अन्य सैकड़ों नक्षत्र समूहों की खोज के विषय में, पुच्छल तारों के साथ उल्का तारा समूह के सम्बंध के विषय में भी कुछ नहीं कहा । उन बड़ी२ यात्राओं के विषय में भी कुछ नहीं कहा गया जो खुश्की में वा समुद्र द्वारा भिन्न२ राज्यों की ओर से ज्योतिष सम्बंधी वा भूगोल सम्बंधी आवश्यक प्रश्नों को निश्चित करने के लिये की गईं थीं । उन बहुमूल्य और ठीक प्रयोगों के विषय में भी कुछ नहीं कहा गया जो उन्हों ने प्राकृतिक मूल-सिद्धान्त के निश्चित करने के हेतु करवाये । मैंने स्वयं अपनी निज शताब्दी के साथ बड़ा अन्याय किया है अर्थात् मैंने उसकी बड़ी बड़ी वैज्ञानिक सफलताओं की ओर इंगित तक नहीं किया, जैसे प्राकृतिक इतिहास सम्बंधी बड़े२ विचार, चुम्बक विज्ञान और विद्युत शक्ति की खोजें, फोटोग्रेफी की मनोहर कला का अन्वेषण, सूर्यकिरण प्रथ-क्करण के प्रयोग, रसायनिक विद्या को अवोगार्डो, बायल, और मैरियट और चार्ल्स के तीन नियमों के अधीन करने के उद्योग, जड़ पदार्थों से चैतन्य पदार्थों की बनावटी पैदाइश जिसके विषय के दार्शनिक फल अति महत्वपूर्ण हैं; रसायन विद्या पर नीव जमा कर देहधर्म-विद्या की पुनरावृत्ति; मानचित्र सम्बधी पैमाइश की उन्नतियां और बढ़तियां, और धरातल के शुद्ध प्रदर्शन का ढंग; इन सब बातों का कुछ बर्णन नहीं किया । मैंने राईफिलगन और सुदृढ़ जहाज़ों के विषय में कुछ नहीं कहा, न उस बड़े परिवर्तन के विषय में ही कुछ कहा जो युद्ध विद्या में हुआ है । और न स्त्रियों की उस बड़ी न्यामत अर्थात् सीने की कल के विषय में कुछ कहा; और न शान्ति सम्बंधी

कलाओं की बड़ी भारी सफलता ही के विषय में कुछ कहा गया अर्थात् औद्योगिक प्रदर्शनियों और जगत-मेलों के विषय में ही कुछ कहा गया।

यह कैसी सूची है, और तब भी कैसी अपूर्ण है! इसमें एक सदैव बढ़ती हुई मानसिक हलचल की केवल झलक मात्र देख पड़ती है अर्थात् वस्तुओं का एक ऐसा वर्णन जैसे वे संयोगवश दृष्टिगोचर होते हैं। इस साहित्य सम्बंधी और विज्ञान सम्बंधी सजीवता और मध्य युग की स्थिरता के बीच में कितना आश्चर्य्यप्रद भेद है।

इस मानसिक प्रकाश ने जो इस सजीवता के चारों ओर फैला हुआ है मानव जाति के अगणित उपकार किये हैं। रूस में इसने अगणित गुलाम प्रजा को स्वतंत्र करा दिया, और अमेरिका में इसने चालिस लाख हबशी गुलामों को स्वतंत्रा प्रदान की है। मठ-द्वारों के छोटे प्रदेश के बजाय इसने दान का प्रबंध किया है, और राज्य नियम को धनहीनों की ओर उन्मुख किया है। इसने वैद्यक विद्या को उसका वास्तिक धर्म लखा दिया है, अर्थात रोगों को अच्छा करने की अपेक्षा उनका रोकना अधिक अच्छा है। राज्य प्रबंध में इसने वैज्ञानिक ढंगों का प्रचार किया था अर्थात् अनिश्चित और स्वतंत्र राजनियमों को निकाल कर नवीन नियमों के प्रचार से पहले बड़े परिश्रम से सामाजिक दशायें निश्चित करली जाती हैं। जिस ढंग से यह मानसिक प्रकाश मानव जाति को उच्चासीन कर रहा है वह इतना सुस्पष्ट और प्रभावोत्पादक है कि एशिया की प्राचीन जातियां भी उस अनुग्रह में भाग लेना चाहती हैं। हमें यह बात न भूलना चाहिये कि उनके साथ हमारे काम ऐसे होना चाहिये जैसे उनके प्रति-कर्म हमारे साथ हों। यदि उस समय मूर्ति पूजक धर्म का अन्त हो चुका था जब सब देवता रोम में एकत्र किये गये थे और एक दूसरे के सामने रक्खे गये थे; और यदि अब हमारी यात्रा सम्बंधी आश्चर्य्य प्रद सरलताओं द्वारा अनमिल जातियां और विरोधी धर्म (मुसलमानी, बौद्ध और ब्राह्मण धर्म) एकत्र हो गये हैं, तब उन सब का सुधार अवश्य होना ही चाहिये। इस झगड़े में केवल विज्ञान ही सुरक्षित रहेगा,

क्योंकि उसने हमें विश्व के अधिक भारी विचार दिये हैं, और ईश्वर सम्बंधी विचार अधिक महत्व पूर्ण कर दिये हैं।

वह उद्देश जिसने इस हलचल को सजीवता दी और जिसने इन खोजों और आविष्कारों में जान डाल दी, व्यक्तिवाद था। किसी के चित्त में धन लाभ की आशा थी, और अधिक सज्जन मनुष्यों के चित्त में आदर की आकांक्षा थी। तब इस बात पर आश्चर्य न करना चाहिए कि इस सिद्धान्त ने राजनैतिक रूपधारण किया, और गत शताब्दी में दो अवसरों पर सामाजिक गड़बड़ें पैदा कीं अर्थात अमेरिका और फ्रान्स के राज्य परिवर्तक विद्रोह कराये। अमेरिका के राज्य परिवर्तक विद्रोह से एक महाद्वीप ही व्यक्तिवाद को मिल गया, जहां प्रजापालित राज्यों की अधीनता में वर्तमान शताब्दी के अन्त होने से पहिले ही दश करोड़ मनुष्य (सार्वजनिक रक्षार्थ आवश्यकीय रोकों को छोड़ कर) स्वतंत्र जीवन व्यतीत करने लगेंगे। और दूसरा अर्थात् फरासीसी विद्रोह (यद्यपि उसदेश ने सब यूरोप के राज्य नैतिक रूप को दुरुस्त कर दिया है, और युद्ध सम्बन्धी सफलताओं में बहुत प्रख्यात हो चुका है) अब तक अपनी इच्छाओं को पूरा नहीं कर सका और बार बार फ्रांस पर बड़ी भयंकर बिपत्तियां डाली हैं। फ्रान्स के द्विरूपक शासन विधान ने, (अर्थात् भौतिक और अध्यात्मिक अधीनता स्वीकार करने से) उसको वर्तमान उन्नति का मुख्य अगुआ और उसी के साथ विरोधी भी बना दिया है। एक हाथ से फ्रान्स ने बुद्धि को राज्य सिंहासन दिया है और दूसरे हाथ से पोप को पुनःस्थापित किया है और स्थिर किये हुये है। उसके व्यवहार की इस नियम विरुद्धता का अन्त न होगा जब तक कि वह अपनी सर्व सन्तान को उत्तम शिक्षा न देगा चाहे वह सन्तान अति दीन हीन कृषक ही की क्यों न हो।

फ़रासीसी राज विद्रोह ने वर्तमान सम्मतियों पर जो मानसिक आक्रमण किया था वह वैज्ञानिक भाव का न था, वरन् साहित्य भाव का था। वह गुण दोष विवेचक और आक्रमणकारक था। परन्तु विज्ञान कभी आक्रमणकारी नहीं हुआ। विज्ञान सदैव अपना

बचाव करता रहा और अपने विरोधियों को अपने ऊपर निर्दय आक्रमण करने देता रहा। परन्तु साहित्य सम्बन्धी विरोध ऐसा शुभ फल प्रद नहीं होता जैसा कि वैज्ञानिक विरोध होता है क्योंकि साहित्य स्वभाव ही से एक स्थानीय होता है, और विज्ञान जगत व्यापी होता है।

अब यदि हम यह जानना चाहें कि विज्ञाग ने वर्तमान सभ्यता की उन्नति के लिये क्या किया है, और सामाजिक भलाई और सुख शान्ति के लिये क्या किया है तो हम इन प्रश्नों का उत्तर उसी ढंग से पासकेंगे जैसे कि हम ने इस प्रश्न का उत्तर पाया था कि रोमी ईसाईधर्म ने क्या किया है। उपरोक्त वाक्यखण्डों का पाठक निःसन्देह यह प्रतिफल निकालना चाहेगा कि मनुष्य जाति के भाग्य में अवश्य सुधार हुआ होगा। परन्तु जब हम उस प्रतिफल को गणना सम्बन्धी नकशों की कसौटी पर जांचते हैं तब वह ठीक उतरती है। दार्शनिक सम्प्रदायें और धार्मिक-रूप मनुष्य जाति पर अपने प्रभाव का कुछ अन्दाज़ मनुष्य गणना के नकशों में पा सकते हैं। रोमीय ईसाई धर्म हज़ार वर्ष में यूरोप की जनसंख्या द्विगुण न कर सका, और स्पष्टतः मनुष्य का व्यक्तिगत जीवनकाल न बढ़ा सका। परन्तु जैसे मेसाचुसेट्स बोर्ड आफ हेल्थ की रिपोर्ट में डाक्टर जारविस ने रिफारमेशन के समय में कहा था कि जनेवा में लोगों के जीवन की औसत लम्बाई २१.२१ वर्ष थी। सन् १८१४ और १८३३ ई० के बीच में ४०.६८ थी। ३०० वर्ष पहले जितने मनुष्य ४० वर्ष की अवस्था तक जीते थे उतने मनुष्य अब ७० वर्ष की अवस्था तक जीते हैं। सन् १६९३ ई० में अँगरेजी सरकार ने औसत जीवन के मूलाधार पर वार्षिक वृत्तियां बेंच कर रुपया उधार लिया। इस ठेकादारी में बहुत फायदा हुआ। ९७ वर्ष बाद एक दूसरा टानटिन (नियमित कालान्तर पर किसी व्यवसाय के जीते हुये साझियों में सौंपी हुई पूंजी को बराबर २ बांट लेने की प्रथा) विगत शताब्दी के जीवन काल के उसी आशा के मूलधार पर फिर जारी किया गया। परन्तु ये वार्षिक वृत्तिधारी लोग अपने अग्र-

गामियों की अपेक्षा इतने अधिक दिनों तक जीते रहे कि सरकार को यह करज़ा बहुत हानिकारी प्रमाणित हुआ। ऐसा ज्ञात हुआ कि पहली टानटिन में दश हज़ार पुरुष और दश हज़ार स्त्रियां २८वर्ष की अवस्था से कमही में मर गये थे, और १०० वर्ष बाद केवल ५७७२ पुरुष और ६४१६ स्त्रियां दूसरी टानटिन में उसी आयु में मरीं"।

हम अध्यात्मिक बातों की प्रयोगिक बातों से, और अनुमानिक बातों की वास्तविक बातों से समता खोजते रहे हैं। उन सिद्धान्तों ने जिनका अनुकरण प्राचीन काल में और नवीन काल में किया गया है, अटल फल पैदा किया है। प्राचीन समय में यह सिद्धान्त था कि "अज्ञान दशा भक्ति की जननी है" और बर्तमान समय में यह सिद्धान्त है कि "ज्ञान एक शक्ति है"।
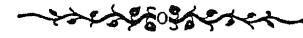
बारहवां अध्याय।

समीपस्थ संकट।

(एक धार्मिक संकट के आगम के चिन्ह—सर्वाधिकारी ईसाई सम्प्रदाय अर्थात् रोमन लोगों ने इस संकट को देखा और उसके लिये तय्यारी की। नवम पियस ने एक धार्मिक सभा एकत्र की—पोप के साथ भिन्न भिन्न यूरोपियन राज्यों के सम्बंध। विज्ञान के साथ धार्मिक सम्प्रदाय के सम्बंध जैसे कि गश्ती चिट्ठी और धार्मिक नियमावली से प्रगट होते थे। वैटिकन कौंसिल के वे काम वा कानून जो पोप की अठयर्थता और विज्ञान से सम्बंध रखते थे। निश्चित सिद्धान्तों का खुलासा।

जर्मनी राज्य और पोप के मध्य वाला विरोध—यह विरोध एक झगड़ा है जो सर्वाधिकार के लिये राज्य और धार्मिक सम्प्रदाय में हुआ है—यूरोप में दोहरे राज्य का प्रभाव—विज्ञान के सम्बंध में वैटिकन कौंसिल का अपनी स्थिति प्रगट कर देना—कैथोलिक धर्म की स्वमताभिमानी बनावट और ईश्वर, ईश्वरानुशासन, धर्म और बुद्धि की परिभाषायें—वे अभिशाप जो उसने प्रगट किए—वर्तमान सभ्यता की निन्दा।

प्राटेस्टैंट धार्मिक संधि और उसके काम ।

उपरोक्त परिभाषाओं और कामों की समालोचना--इस विरोध की वर्तमान अवस्था और भविष्य आशायें)

जो ईसाई संसार के विचार की वर्तमान दशा को जानता है वह अवश्य इस बात को जानता है कि एक बुद्धि सम्बंधी और धर्म सम्बंधी संकट सन्निकट है। चारों ओर से घटा घिरती आती हुई देखते हैं और आने वाले तूफान के शब्द सुन रहे हैं। जर्मनी में जातीय समाज विदेशी समाज के विरुद्ध तय्यारी कर रहा है। फ्रांस में उन्नत्याकांक्षी मनुष्यों से झगड़ा कर रहे हैं, और उनके झगड़े में उस बड़े देश का राज्यनैतिक बड़प्पन लगभग विनष्ट हो गया है, वा प्रभाव रहित होगया है । इटली में रोमनगर एक समाज्यच्युत राजा का राज्य हो रहा था। सर्वाधिकारी पोप इस बहाने से कि वह राजा कैदी है वैटकिन सभा से अपने अभिशाप प्रकाशित कर रहा है, और अपने बहुत से भ्रमों के पूर्ण प्रमाणों के होते हुये भी अपनी अव्यर्थता प्रगट कर रहा है । एक कैथोलिक धर्माध्यक्ष इस बात को सत्यता सहित प्रकाश करता है कि यूरोप भर की सब सभ्य समाज ईसाई धर्म से खिँच कर साधरण जीवन की ओर झुकती हुई जान पड़ती है । इँगलैंड और अमेरिका में धार्मिक लोगों ने भय सहित यह बात देखली है कि समय के भाव से धर्म की मानसिक जड़ भीतर ही भीतर पोली होगई है। आने वाली विपत्ति के लिये वे यथाशक्ति भली भांति तय्यारी कर रहे हैं।

अति कठिन जांच जो किसी समाज पर आ पड़ती है, वह उस समय होती है, जब उसको अपने धार्मिक बन्धनों से स्वतंत्र होना पड़ता है। यूनान और रोम के इतिहास भली प्रकार प्रगट करते हैं कि ऐसे समय पर कैसे भारी खतरे उठाना पड़ते हैं। परन्तु यह बात किसी धर्म के भाग्य में नहीं बदी कि वह सदैव स्थिति रहे। धर्मों में अवश्य परिवर्तन होते हैं जब मनुष्य की बुद्धि सम्बंधी उन्नति होती है।

कितने देश ऐसे हैं जो अब भी उसी धर्म को मान रहे हैं। जिसे वे हज़रत ईसा के जन्म समय में मानते थे ?

अन्दाज़ किया गया है कि यूरोप महाद्वीप की पूर्ण जन-संख्या लगभग तीन अरब एक करोड़ के है। इनमें से एक अरब पचासी करोड़ रोमन कैथोलिक हैं, और तेतीस करोड़ ग्रीक कैथोलिक हैं। प्रोटेस्टेंट लोगों की संख्या इकहत्तर करोड़ है जो बहुत सी सम्प्रायों में विभाजित है। पचास लाख यहूदी हैं और सत्तर लाख मुसलमान।

अमेरिका की सम्प्रदायों के धार्मिक अवान्तर सम्प्रदायों की गणना ठीक नहीं दी जा सकती। सब ईसाई धर्मावलम्बी दक्षिणीय अमेरिका रोमन कैथोलिक मत का है। यही बात मध्य अमेरिका और मैक्सिको के और स्पेनिश और फरासीसी राज्य निवासियों के विषय में भी कही जा सकती है। संयुक्त राज्य और कनाडा में प्रोटेस्टेंट धर्मावलम्बी अधिक-तर हैं। आस्ट्रेलिया का भी यही हाल है। हिन्दोस्तान में ईसाइयों की थोड़ी सी जन संख्या मुसलमानों और अन्य पूर्वीय जातियों के सामने कुछ है ही नहीं। सब वर्तमान समाजों में से रोमन कैथोलिक सम्प्रदाय बहुत अधिक फैली हुई है, और बहुत दृढ़ता से संगठित है। वह सम्प्रदाय धार्मिक सम्मेलन की अपेक्षा अधिकतर राज्यनैतिक सम्प्रदाय है। उसका सिद्धान्त यह है कि सब शक्ति धर्माध्यक्षों की है और दुनियादार लोगों के लिये केवल यही अधिकार है कि उनकी आज्ञा मानें। प्राचीन काल के ईसाई धर्म में सम्प्रदायों के जो रूप थे वे धीरे२ एक पूर्णाधिकारी के रूप में निमग्न हो गये हैं, और उसके एक मुखिया को ईश्वर-प्रतिनिधि मानते हैं। यह सम्प्रदाय कहती है कि वह ईश्वर आज्ञा जिसके अनुसार वह काम करती है ऐसी है जिसमें लौकिक राज्य प्रभाव भी सम्मिलित है और उसे अधिकार है कि वह लौकिक राज्यों को अपने काम में लावे, परन्तु राज्य को कोई अधिकार नहीं कि वह उसके कामों में हस्तक्षेप करे, और यह भी मानती है कि प्रोटेस्टेंट देशों में भी वह आज्ञा लौकिक राजाओं से मिल कर प्रबंध करने वाली नहीं है, वरन सर्वाधिकारी शक्ति है। वह सम्प्रदाय आग्रह करती है कि राज्य को उस वस्तु पर

कुछ अधिकार नहीं है जिस पर वह स्वयं अपना अधिकार प्रगट करती है, और यह भी कहती है कि प्रोटेस्टेंट धर्म केवल "एक विद्रोह" होने के कारण कोई अधिकार नहीं रखता और यह भी कहती है कि प्रोटेस्टेंट जातियों में भी केवल कैथोलिक बिशप ही नियमावस्थित अध्यात्मिक गुरु हैं।

इसलिये यह स्पष्ट ही है कि ईसाई धर्मावलम्बियों में अधिकतर कैथोलिक सम्प्रदाय वाले हैं, और अध्यक्षता के लिये पोप की ऐसी आवश्यकता है कि ईसाइयों की वर्तमान धार्मिक दशा की विवेचना में पोपशासन के कामों का विशेष ध्यान रखना चाहिए। पोपशासन की कारवाइयां बड़ी बुद्धिमत्ता और चतुराई से होती हैं। कैथोलिक धर्म एक मनुष्य का आज्ञाकारी है, और इसलिये उसमें एकता, घनिष्ठता और वह शक्ति है जो प्रोटेस्टेंट सम्प्रदायों में नहीं है। इसके अतिरिक्त कैथोलिक धर्म रोम के बड़े नाम के स्मारकों से अनन्त शक्ति प्राप्त करता है। कुछ भी आगा पीछा न करके पोप शासन ने भविष्य बुद्धि सम्बन्धी संकट सोच लिया था। उसने अपना निश्चित विचार प्रगट कर दिया था और एक ऐसी स्थिति ग्रहण की थी जिसे उसने अपने लिये बहुत लाभकारी समझी थी।

इस स्थिति का निश्चित वर्णन हम हाल की वैटिकिन कौंसिल के कामों में पाते हैं। नवम पियस ने २९ जून सन् १८६८ ई० की एक धर्माज्ञा द्वारा ८ दिसम्बर सन् १८६९ ई० को रोम नगर में एक धर्म सभा एकत्र होने की विज्ञप्ति दी। उसकी बैठकें जूलाई सन् १८७० ई० में पूरी हो चुकीं। उस सभा में जो विषय विचारार्थ उपस्थित किये गये थे उनमें से दो बहुत मुख्य हैं; अर्थात् रोमन धर्माध्यक्ष की अव्यर्थता का प्रतिपादन, और विज्ञान के साथ धार्मिक सम्बंधों की निश्चित् विवेचना।

परन्तु कौंसिल की बैठक को सर्वसाधारण ने पसन्द नहीं किया। पूर्वीय सम्प्रदायों के विचारों में से अधिकतर उसके प्रतिकूल थे। वे कहते थे कि हम रोमन धर्माध्यक्ष में यह इच्छा देखते हैं कि वह अपने को ईसाई धर्म का सर्वोच्च मुखिया बनाना चाहता है, और

वास्तव में केवल प्रभु ईसामसीह ही ईसाई धर्म के सर्वोच्च प्रभु हैं। उन्हें विश्वास था कि कौंसिल केवल नवीन झगड़े और अपवाद पैदा करैगी। इन माननीय धर्म सम्प्रदायों का प्रभाव इस घटना से भली भांति प्रगट होता है कि जब १८६७ ई० में कैलुडियन धर्माध्यक्ष ने, सीमियन नामक नेस्टोरियन धर्माध्यक्ष को रोमन कैथोलिक सम्प्रदाय में फिर से सम्मिलित होने के लिये निमंत्रित किया था, तब अपने उत्तर में उसने यह प्रगट किया था कि पूर्वीय और पश्चिमीय सम्प्रदायों में एकता रहने की कोई आशा नहीं है। उसने कहा था कि "तुम मुझे बुलाते हो कि मैं आकर नम्रता सहित विनीत भाव से रोम के विशप के कदम चूंमू, पर यह तो कहो कि क्या वह हर एक बात में तुम्हारे ही समान वाला एक मनुष्य नहीं है, क्या उसकी महिमा तुम्हारी महिमा से बड़ी है? हम अपने पवित्र पूजन मंदिरों में उन मूर्तियों और प्रतिमाओं का प्रचार कभी न होने देंगे, जो केवल घृणास्पद और अपवित्र मूर्तियां हैं। क्यों? क्या तुम्हारी ही भांति हम भी सर्व शक्तिमान ईश्वर की माता मानेंगे? आप हमसे दूर ही रहिये, राम! राम!! ऐसी ईश्वर निन्दा!!!"

वास्तव में मुख्य महात्मा, मुख्य धर्माध्यक्ष और विशप जिन्हों ने सब देशों से आकर इस सभा में भाग लिया था गिनती में ७०४ थे।

रोम ने स्पष्ट देख लिया था कि विज्ञान केवल शीघ्रता सहित पोपशासन के सिद्धान्तों की जड़ ही नहीं खोद रहा है, वरन एक बड़ी भारी राज्यनैतिक शक्ति भी एकत्र कर रहा है। उसने देख लिया कि तमाम यूरोप भर में पढ़े लिखे लोग शीघ्रता से उस धार्मिक प्रथा को छोड़ते जाते हैं और उत्तरीय जर्मनी इस बात का सच्चा केन्द्र हो रहा था।

इसलिये रोम नगर जर्मनी और आस्ट्रिया में होते हुये युद्ध को बड़े चाव से देखता था और यथा शक्ति आस्ट्रिया को उत्साह दिलाता था। सैडोवा की लड़ाई से उसे कठिन निराशा हुई थी।

तदनन्तर फ्रान्स और जर्मनी के युद्धारम्भ को भी उसने बड़े सन्तोष दृष्टि से देखा। उसको इसमें सन्देह न था कि इस युद्ध का फल फ्रांस के लिये अच्छा होगा, और तद्वारा उसके लिये भी अच्छा

होगा। इसमें भी उसे सीडन की लड़ाई से निराश होना ही बदा था।

अब आगे बहुत दिनों तक बिदेशी लड़ाइयों से कुछ अधिक आशा न रख कर रोम ने यह देखना चाहा कि भीतरी उपद्रव का क्या फल होता है, और जर्मन राज्य की वर्तमान हलचल उसी की करतूतों का फल है।

यदि अस्ट्रिया वा फ्रान्स बिजयी होता तो जर्मनी सहित प्रोटेस्टेंट धर्म पराजित हो जाता। परन्तु जिस समय ये सैनिक हलचलें हो रही थीं, एक भिन्न प्रकार की हलचल अर्थात बुद्धि सम्बंधी हलचल आरम्भ हुई। उसका सिद्धान्त यह था कि पुराने नियमों और कार्य्यों को फिर से प्रचलित करना चाहिये और उनको खूब बढ़ाना चाहिए, फल चाहे कुछ ही क्यों न हो।

केवल यही नहीं कहा जाता था कि पोप को लौकिक राजाओं के साथ २ सब देशों के शासन विधान में भाग लेने का ईश्वर प्रदत्त अधिकार है, वरन यह भी कहा जाता था कि इस बात में रोम का प्रभुत्व अवश्य मानना ही चाहिए, और आपुस के झगड़ों में राजाओं को रोम की आज्ञानुसार ही काम करना चाहिए।

और इस कारण से कि बिज्ञान की उन्नति ही से रोम की स्थिति बिगड़ी थी, रोम ने अपनी सीमाएं निरूपित करना चाहीं और अपने अधिकार की सीमाएं निश्चित करना चाहीं और सब से बढ़ कर उसने वर्तमान सभ्यता की निन्दा करना आरम्भ कर दिया।

सन् १८४८ ई० में गेईटा से पोप के लौट आने के थोड़े ही दिन बाद ये युक्तियां सोची गईं, और जेज्यूइट लोगों की सलाह से आरम्भ भी हो गईं। ये जेज्यूइट लोग, इस आशा से कि ईश्वर असम्भव बातें भी करदेगा, अनुमान करते थे कि बुढ़ापे में पोप शासन फिर सशक्ति हो सकता है। क्यूरिया के कार्य्य कर्ताओं ने राज्य सम्बंध में धार्मिक सम्प्रदाय की पूर्ण स्वतंत्रता प्रगट करदी, बिशप लोगों को पोप के अधीन बतलाया और बड़े पादरियों को बिशपों के अधीन बताया, प्रोटेस्टेंट लोगों को अपनी नास्तिकता छोड़ कर फिर असली धर्म की ओर लौट आना उचित धर्म कहा गया, और सब प्रकार की

उदासीनता को बहुत बुरा ठहराया। दिसम्बर सन् १८५४ ई० में विशप लोगों की एक समाज में पोप ने पापरहित गर्भाधान के सिद्धान्त का प्रकाश किया था। उसके दश वर्ष बाद उसने सुविख्यात गश्ती चिट्ठी और नियमावली का प्रचार किया।

वह गश्ती चिट्ठी ता: ८ दिसम्बर सन १८६४ ई० को लिखी गई थी। उसका मसौदा बिद्वान धर्माधिकारियों ने लिखा था और तदनन्तर होली आफिस के सभासदों ने वादबिवाद करके उसकी जांच की थी, तदनन्तर वह चिट्ठी पोप के प्रतिनिधियों के पास भेजी गई थी, और अन्त में पोप और कार्डिनल लोगों ने भी उसे पढ़ा था।

बहुत से पादरियों ने उस चिट्ठी में लिखी हुई वर्तमान सभ्यता की निन्दा पर एतराज किया था। कतिपय कार्डिनल उससे सहमत नहीं थे। कैथोलिक समाचारपत्रों ने उसे स्वीकार तो किया, पर सन्देह और खेद के साथ। प्रोटेस्टेंट राज्यों ने उसे रोका नहीं, कैथोलिक राज्य उससे भयभीत हो उठे। फ्रान्स देश में केवल उसका वह भाग प्रकाशित होने दिया जिसमें ज्युबिली करने की बिज्ञप्ति थी। आस्ट्रिया और इटली ने उसका प्रचार तो होने दिया, पर अपनी मंजूरी नहीं दी। कैथोलिक देशों के राज्यनैतिक पत्रों और कानून बनाने वाली सभाओं ने उसका अच्छा स्वागत नहीं किया। बहुत लोगों की शिकायत थी कि वह सम्भावत: धार्मिक सम्प्रदाय और वर्तमान समाज के बीच वाले भेद को और अधिक बढ़ा देगी। इटली के समाचार पत्रों ने उसे पोप शासन और वर्तमान सभ्यता के बीच में ऐसी लड़ाई करा देने वाली वस्तु समझी जिससे फिर कभी सुलह वा संधि न हो सके। यहां तक कि स्पेन में भी ऐसे समाचार पत्र थे, जिन्होंने "वर्तमान सभ्यता को कलंकित करने और अभिशाप लगाने में रोम के दरबार के इस हठ और अंधापन" पर खेद प्रगट किया था।

वह (गश्ती चिट्ठी) यों निन्दा करती है कि "यह अत्यंत हानिकारी और मूर्ख सम्मति है कि बिचार शक्ति और ईश्वर भक्ति में

प्रत्येक मनुष्य स्वतंत्र अधिकार रखता है, और प्रत्येक सुशासित राज्य में इस अधिकार को प्रख्यात कर देना चाहिये और क़ानून द्वारा प्रतिपादित कर देना चाहिए, और यह सम्मति भी वैसी ही है कि लोगों की इच्छा ही सर्वोत्तम कानून है चाहे वह किसी प्रकार प्रकाशित हुई हो। यह कानून किसी ईश्वरीय और मानवी अधिकार के अधीन नहीं है"। वह चिट्ठी इस बात को भी नहीं मानती कि माता पिता को अधिकार है कि वे अपनी सन्तान को कैथोलिक सम्प्रदायिक पाठशालाओं के बाहर भी शिक्षा दिला कसते हैं। वह उन लोगों की धृष्टता की भी निन्दा करती है जो यह बात मानते हैं कि सम्प्रदाय का और देवदूतीय पादारख का अधिकारी भी किसी के अधीन है, अर्थात हजरत ईसा के दिये हुए अधिकार को राजकीय अधिकारी के विचार के अधीन करना चाहते हैं। पोप महाशय उन आदरणीय भाइयों को जिनके नाम वह गश्ती चिट्ठी भेजी गई थी सदैव प्रार्थना करने की सलाह देते हैं, और कहते हैं कि ईश्वर को अपनी प्रार्थनाओं की ओर अधिक सरलता से आकर्षित करने के हेतु हम सब को पूर्ण विश्वास से कुमारी मरियम को अपना सिफारशी बनाना चाहिये, जो मरियम उस ईश्वर की माता है और जो रानी की भांति सुनहरे कपड़ों और बहुत से भिन्न २ प्रकार के आभूषणों को धारण किये हुये ईश्वरपुत्र ईसा की दाहनी ओर बिराजती है। ऐसी कोई वस्तु नहीं है जो वह मरियम उस ईश्वर से न पा सके।

स्पष्ट बात तो यह है कि पोप शासन का यह नियम जो इस समय प्रचारित किया गया अवश्य उन राज्यों से झगड़ा करादेगा जो अब तक उसके साथ प्रेम भाव रखते थे। रूस ने बहुत असन्तोष प्रगट किया और जो घटनायें हुईं उनके कारण पोप को नवम्बर सन १८६६ ई० में उस राज्य के ढंग की निन्दा करना पड़ी। रूस ने इस निन्दा का उत्तर सन १८६७ ई० वाले कनूकारडैट (Cancardat) का खण्डन करके दिया। जुलाई सन १८६६ ई० वाली सैडोवा की लड़ाई के फल से न रुक कर (यद्यपि यह बात स्पष्ट थी कि यूरोप की

राज्यनैतिक दशा पूर्णतः परिवर्तित हो गई है, और पोप शासन के साथ के सम्बन्ध ढीले पड़ गये हैं) पोप ने २७ जून सन १८६७ ई० में गश्ती चिट्ठी और नियमावली को पुष्ट करते हुये एक व्याख्यान दिया। उसने एक धार्मिक सभा एकत्र करने की इच्छा की विज्ञप्ति दी।

उसी के अनुसार जैसा कि हम पहिले ही कह आये हैं, अगले साल २९ जून सन् १८६८ ई० में सभा एकत्र करने के लिये एक धर्माज्ञा निकाली गई। परन्तु इस समय आस्ट्रिया के साथ कुछ बिगाड़ हो गया था। आस्ट्रिया राज्य ने ऐसे कानून जारी किये थे जिनसे राज्य के सबही निवासियों के लिये सम अधिकार का प्रचार हो और धर्मिक सम्प्रदाय का प्रभाव रुक जाय। इस बात पर पोप शासन की ओर से प्रतिवाद किया गया। रूस की भांति आस्ट्रिया राज्य को भी सन १८५५ ई० वाले कनकारडैट को मंसूख़ कर देने की आवश्यकता जान पड़ी।

जैसा कि पहले कहा गया है, फ्रान्स में पूरी धर्म नियमावली प्रकाशित न होने पाई थी, परन्तु जर्मनी ने पोप से मेल मिलाप बनाये रखने की इच्छा से उस नियमावली के प्रकाशन को नहीं रोका था। पोप शासन का कठिन स्वभाव बढ़ने लगा। खुल्लमखुल्ला यह प्रख्यात किया गया कि धर्मवान लोगों को इस समय धार्मिक सम्प्रदाय के लिये धन, प्राण और मानसिक विश्वासों को बलिदान कर देना चाहिये। प्रोटेस्टेंट लोग और यूनानी लोग अपनी अधीनता निवेदन करने के लिये बुलाये गये।

नियत दिन पर सभा खुली। उस सभा के उद्देश ये थे कि नियमावली के अनुसार कार्य्य किया जाय, पोप की अव्यर्थता का सिद्धान्त स्थापित किया जाय, और विज्ञान के साथ धर्म के सम्बंन्धों को भली भांति निरूपित कर लिया जाय। इस बात की प्रत्येक तय्यारी कर ली गई थी कि इच्छित विषयों के अनुसार ही कार्य्य होना चाहिये। विशप लोगों को जता दिया गया था कि तुम रोम में वादविवाद करने के लिये नहीं बुलाये जाते हो, वरन् उन आज्ञाओं को स्वीकृत

करने के लिये बुलाये जाते हो जो पहलेही से एक अव्यर्थ पोप द्वारा दी जा चुकी हैं। स्वच्छन्द वादविवाद करने का किसी को विचार तक न था। सभाओं की लिखित कार्य्यवाही देखने की किसी को आज्ञा न थी। विरोधी प्रतिनिधियों को कुछ कहने की अज्ञाही नहीं दी गई। २२ जनवरी सन १८७० ई० में एक अर्जी दी गई जिसमें पोप की अव्यर्थता को भली भांति निरूपण कर देने के लिये निवेदन किया गया था। थोड़ी सम्मतियों के बिरोधवाली अरज़ी भी पेश की गई थी। जिस पर थोड़ी सम्मतियों वाले विचारों के अनुसार काम करना मना कर दिया गया था और उनका प्रकाशन भी रोक दिया गया था। और यद्यपि क्यूरिया सभा ने बहुत अधिक सम्मतियों वाली शर्तें रक्खी थी, तथापि यह आज्ञा जारी करना उचित समझा गया कि प्रतिवाद करने के लिये यह आवश्यकता नहीं है कि लगभग सब ही सम्मतियां एक ओर हो जायं, वरन कुछही अधिक सम्मतियां काफी हैं। कम सम्मतियों के एतराज़ों पर बिलकुल ध्यान नहीं दिया जाता था।

ज्यों २ सभा अपने उद्देशों की ओर बढती थी त्यों २ विदेशी राजा उसके प्रमत्त निश्चय से भयभीत होते जाते थे। वायना के मुख्य धर्माध्यक्ष की लिखी हुई और बहुत से कार्डिनलों और मुख्य बिशपों की दस्तख़ती अर्जी में पोप से निवेदन किया गया कि अव्यर्थता वाला सिद्धान्त विचारार्थ उपस्थित न किया जाय, क्योंकि धार्मिक सम्प्रदाय को इस समय एक ऐसा झगड़ा करना है जिसे पहले लोग जानतेही न थे। और यह झगड़ा उन लोगों से करना है जो धर्म को मानव प्रकृति के लिये एक हानिकारी प्रथा कहते हैं। और यह एक असमय बात है कि उन कैथोलिक जातियों पर जो इतनी अधिक धूर्तताओं से ललचा लिये गये हैं, टेण्ट सभा से प्रकाशित सिद्धान्तों की अपेक्षा अधिक सिद्धान्तों का भार डाला जाय। उस निवेदन पत्र में यह भी लिखा था कि विज्ञान के साथ धर्म के सम्बंधों का निरूपण जो पूछा गया है वह धर्म के शत्रुओं को कुछ नवीन अस्त्र दे देगा जिनसे वे लोग कैथोलिक सम्प्रदाय के विरुद्ध अच्छे अच्छे आदमियों का क्रोध उभाड़ सकेंगे। आस्ट्रिया देश के प्रधान अमात्य ने पोप शासन के प्रधान अधि-

कारी के पास एक प्रतिवाद पत्र भेजा जिसमें उसने सूचित किया था कि वह कोई ऐसा काम न करे जो आस्ट्रिया के अधिकारों पर हस्त-क्षेप का कारण हो सके। फ़रासीसी सरकार ने भी एक पत्र लिखा था जिसमें यह सुझाया था कि एक फ़रासीसी विशप को आज्ञा मिलना चाहिये कि वह सभा को फ्रान्स की दशा और फ्रान्स के अधिकार समझा दे। इसका उत्तर पोप सरकार की ओर से यह था कि एक विशप ये दो काम नहीं कर सकता कि वह राज्य दूत भी हो और सभा का एक धार्मिक मेम्बर भी हो। इसके अनन्तर फ़रासीसी सर-कार ने एक बहुत बिनीत पत्र में कहा था कि सार्वजनिक सम्मतियों का सिद्धान्त होजाने से रुकजाने का कारण विशप लोगों की नरमी और पोप की दूर दर्शिता है। और अपने नागरिक और राज्यनैतिक कानूनों को धार्मिक राज्यों के हस्तक्षेपों से बचाने के लिये सार्वजनिक बुद्धि और फरासीसी कैथोलिक लोगों की स्वदेश भक्ति का भरोसा है। नार्थ जर्मन "कान्फीडरेशन" भी इन एतराजों में सम्मिलित हो कर पोपराज्य को उन पर बिचार करने के लिये बहुत दबा रही थी।

२३ अपरैल को वान आरनीम नामक जर्मन राज्यदूत ने डैरू नामक फ़रासीसी मंत्री से मिलकर क्यूरिया सभा को यह सुझाया कि मध्ययुग के विचारों का फिर से प्रचार करना अनुचित है। इस भांति उत्साहित किये जाने से थोड़े से विशप लोगों ने इस समय चाहा कि पोप की अव्यर्थता पर बादविवाद करने से पहिले लौकिक शक्ति के साथ अध्यात्मिक शक्ति के सम्बंध निश्चित हो जाना चाहि-ये। और यह भी निश्चित हो जाना चाहिये कि सेन्ट पीटर और उसके उत्तराधिकारियों को राजाओं और सम्राटों पर आज्ञा चलाने की शक्ति हजरत ईसा ने दी थी या नहीं।

इस पर कुछ ध्यान नहीं दिया गया, यहां तक कि कुछ दिन ठहरने तक की कृपा नहीं दिखाई गई। जैज्यूइट लोग जो इस हलचल का मूलाधार थे, इस सभा में अपनी युक्तियों को ज़बरदस्ती निवाह ले गये। सभा ने अपने को सार्वजनिक गुण दोष विवेचना से बचाने के लिये कोई युक्ति उठा नहीं रक्खी। उसकी कार्य्यवाही बहुत

छिपा कर होती थी, और जो लोग उसमें सम्मिलित होते थे उनसे भेद न बताने की शपथ ली जाती थी।

१३ जुलाई को सम्मतियां ली गईं। छः सौ एक (६०१) सम्मतियों में से चार सौ इक्यावन (४५१) सम्मतियां 'हां' की ओर थीं। अधिक सम्मति के नियम से वह बात सर्वमान्य मानी गई, और पांच दिन बाद पोप ने अपनी अव्यर्थता के सिद्धान्त को सर्व साधारण में प्रख्यात कर दिया। ऐसा बहुधा कहा गया है कि यह वही दिन था जिस दिन फ्रान्स देश ने जर्मनी देश से युद्ध छेड़ा था। आठ दिन बाद फरासीसी फौज रोम से हटा ली गई। कदाचित राज्य प्रबंधक जन और दार्शनिक लोग दोनों इस बात को मानेंगे कि यदि केवल साधारण बुद्धि उसको मान ले, तो एक अव्यर्थ पोप एक बड़ा समता-प्रचारक पुरुष हो सकता है।

इसके अनन्तर इटली के बादशाह ने स्वयं निज हाथों से पोप को एक चिट्ठी लिखी जिसमें बड़े विनीत भाव से यह आवश्यकता दिखलाई कि अब मेरी सेनाओं को बढ़ना चाहिये और रणस्थल पर जा डटना चाहिये, क्योंकि यह बात आप के बचाने के लिये तथा शान्ति स्थापित रखने के लिये अत्यावश्यक है, और इस बात की भी आवश्यकता दिखलाई थी कि जातीय उत्साहों को पूर्ण करते हुये कैथोलिक राज्य का प्रधान पुरुष, इटली की प्रजा की भक्ति से घिरा हुआ टाईबर नदी के किनारे पर एक प्रख्यात स्थान बचाये रख सकता है जो सब मानवी शक्तियों से स्वतंत्र होगा।

इसका उत्तर पोप ने एक संक्षेप और व्यंगपूर्ण चिट्ठी में दिया। वह लिखता है कि "मैं ईश्वर का धन्यवाद करता हूं जिसने तुमको मेरे जीवन के अंतिम दिनों को दुःखपूर्ण कर देने के योग्य बनाया है। शेष बातों के लिये यह उत्तर है कि मैं कोई २ निवेदन मंजूर नहीं कर सकता और तुम्हारी चिट्ठी में लिखे हुये किसी २ सिद्धान्त से सहमत नहीं हूं। मैं फिर ईश्वर को स्मरण करता हूं और अपना पक्ष उसी के हाथों सौंपता हूं जो उसी का पक्ष है। मैं ईश्वर से विनय करता हूं कि वह तुम पर कृपा करे जिससे तुम अपने को विपत्ति-

यों से बचा सके और तुम्हारे ऊपर वह कृपा दरशावे जिसकी तुमको बड़ी आवश्यकता है ।"

इटली की सेनाओं के थोड़ा ही लड़ना पड़ा। उन्होंने २० सितम्बर सन् १८७० ई० के रोम नगर पर अधिकार कर लिया। एक घोषणापत्र प्रकाशित किया गया, जिसमें प्लीबिसीटम (एक प्रकार का कानून), लिखित सम्मति देने, प्रश्न करने और इटली के एक करने की विद्दी लिखी हुई थी । इसके फल ने प्रगट कर दिया कि किस पूर्णता से इटली निवासी जनसाधारण का चित्त अध्यात्म विद्या से छुटकारा चाहता था। रोमन प्रान्तों में सम्मतियों की गणना १६७५४८, दर्ज रजिस्टर थी । सम्मति दाताओं की गणना १३५२९१ हुई । जिन्हों ने राज्य मिलालेने की सम्मति दी थी उनकी गणना १३३६८१ थी, और विरुद्ध सम्मति देने वालों की गणना १५०७ थी । निरर्थक सम्मतियों की गणना १०३ थी । इटली की पार्लमेन्ट ने रोमन प्रजा की राज्य-सम्मेलन-सम्मति को २० के विरुद्ध २३९ सम्मतियों के आधार पर स्थिर कर दिया । एक राजाज्ञा ने प्रगट कर दिया कि पोप का राज्य इटली राज्य में मिला लिया गया और एक प्रबंध सम्बंधी बिद्दी प्रकाशक राजाज्ञा प्रचारित की गई, जिसमें यह प्रकाशिक किया गया कि "इन रियायतों से इटली राज्य यूरोप के यह प्रमाणित कर दिखाना चाहता है कि इटली देश पोप के अधिकार का वहीं तक आदर करता है जहां तक वह एक स्वतंत्र राज्य के स्वतंत्र सम्प्रदाय के नियम के अविरुद्ध है" ।

जर्मनी-आस्ट्रिया युद्ध में पोप शासन ने ऐसी आशा की थी कि आस्ट्रिया की अधीनता में जर्मन राज्य फिर से स्थापित किया जायगा और जर्मनी के कैथोलिक जाति बना लूंगा । फ्रान्स-जर्मनी युद्ध में फ़रासीसी लोग जर्मनी के दूरस्थित प्रान्तों की सहानुभूति की आशा रखते थे। प्रोटेस्टेंट लोगों के विरुद्ध कैथोलिक लोगों के विचारों के उभाड़ने में कोई कसर न रक्खी गई थी, और सब प्रकार से निन्दा वा दुष्टता की गई थी । उन्हें नास्तिक कहा गया था, वे लोग सत्य व्यवहारी होने के अयोग्य प्रख्यात किये गये थे; उनकी भिन्न २ सम्प्र-

दायें उनके विनाश को प्रकाश करने वाली कही जाती थीं। कहा गया था कि ल्यूथर के अनुगामी लोग यूरोप भर में सर्वाधिक त्यागनीय मनुष्य हैं, यहां तक कि स्वयं पोप यह मान कर कि सब संसार भर के लोग इतिहास भूल गये हैं, इस बात के कहने में न हिचका कि "जर्मनी निवासियों को जानना चाहिये कि रोमन सम्प्रदाय के अतिरिक्त अन्य कोई धार्मिक सम्प्रदाय स्वच्छंद और उन्नतिकारी सम्प्रदाय नहीं है।"

इसी समय में जर्मनी के पादरियों में पोप की ज़बरदस्ती का प्रतिवाद करने के लिये और उसे रोकने के लिये एक समाज स्थापित हुई। उस समाज ने इस बात का प्रतिवाद किया कि ईश्वर के सिंहासन पर एक आदमी विराजे, अर्थात कोई किसी प्रकार का ईश्वर प्रतिनिधि हो नहीं सकता, । और वैज्ञानिक विश्वासों को धार्मिक अधिकारों के अधीन करने से इन्कार कर दिया। बाज़े २ मनुष्य स्वयं पोप को नास्तिकता का दोष लगाने में नहीं हिचके । इन अनाज्ञाकारियों को समाजच्युत करने का काम प्रारम्भ कर दिया गया, और अन्त में यह कहा गया कि कोई २ प्रोफेसर और शिक्षक अपनी २ जगहों से निकाल दिये जायें और पोप की अव्यर्थता माननेवाले लोग उन जगहों पर रक्खे जायें । जर्मन राज्य ने इस दरख्वास्त को पूरा करने से इन्कार कर दिया । जर्मनी राज्य पोप राज्य से प्रेमभाव बनाये रखने का बहुत इच्छुक था। वह अध्यात्मिक झगड़े में सम्मिलित नहीं होना चाहता था, परन्तु धीरे धीरे उसे विवश यह विश्वास करना पड़ा कि यह झगड़ा केवल धार्मिक नहीं है वरन राज्यनैतिक है। अर्थात् पोप यह देखना चाहता है कि मैं एक राज्य को दूसरे राज्य के विरुद्ध लड़ा सकता हूं या नहीं । एक व्यायामशाला में एक शिक्षक समाजच्युत किया गया और जब राज्य से उसको मौकूफ़ कर देने के लिये कहा गया तब राज्य ने इन्कार कर दिया। सम्प्रदायिक अधिकारियों ने धर्म पर आघात करना कहकर इस बात की निन्दा की। सम्राट ने अपने मंत्री का पक्ष किया। अव्यर्थवादी समाज ने सम्राट को धमकाया कि सब अच्छे २ कैथोलिक लोग विरोधी हो

जायेंगे, और उससे कह दिया कि पोप से झगड़ा करने में राज्यशासन विधान बदला जा सकता है और बदलनाही पड़ेगा। अब यह बात प्रत्येक मनुष्य को स्पष्ट विदित हो गई कि प्रश्न यह है कि राज्य-शासन प्रणाली में राज्य का मालिक किसको होना चाहिये, लौकिक राज्यशासन को या रोमन धार्मिक सम्प्रदाय को? यह बात स्पष्टही असम्भव है कि मनुष्य ऐसे दो राज्यों के अधीन रह सकें जिनमें से प्रत्येक एक दूसरे के कथन को व्यर्थ ठहराता है। यदि राजा रोमन धर्म सम्प्रदाय की अधीनता न स्वीकार करे तो दोनों में शत्रुता हो जाय। इस भांति रोम द्वारा यह झगड़ा जर्मनी के मत्थे मढ़ा गया। यह झगड़ा एक ऐसा झगड़ा है जिसमें वर्तमान सभ्यता से विरोध रखने के कारण रोम स्पष्टही अत्याचारी प्रमाणित होता है।

राज्य ने, अब अपने विरोधी का अस्तित्व मान कर अपना बचाव इस भांति किया कि सरकारी पूजन प्रबंध सम्बंधी विभाग से कैथोलिक लोगों का विभाग तोड़ दिया। यह बात सन १८७१ ई० के मध्य ग्रीष्म ऋतु में हुई। अगले नवम्बर मास में राजकीय पार्लीमेन्ट ने एक क़ानून बनाया कि अपने ओहदे के धर्म के विरुद्ध काम करने वाले धर्माचार्य्य गण यदि कोई ऐसा काम करें जिससे साधारण प्रजा की शांति भंग हो तो उनको साधारण दोषियों की भांति दण्ड दिया जाय। और इस सिद्धान्त को मान कर कि किसी जाति का भविष्य उसी के हाथ में रहता है जिसके हाथ में शिक्षा विभाग रहता है, एक हलचल हुई कि धार्मिक सम्प्रदाय से शिक्षा विभाग प्रथक कर लिया जाय।

जेज्यूइट समाज जर्मनी देश भर में एक ऐसी समाज को बढ़ा रहा था और शक्तिमान कर रहा था जिसका मूल आधार इस नियम पर था कि धार्मिक बातों में राज्य का क़ानून अवश्य माननीय नहीं है। बस यही काम खुल्लमखुल्ला बग़ावत का था। तब क्या राज्य को डर जाना चाहिये? अरमीलेन्ड के बिशप ने खुल्लम खुल्ला कह दिया कि मैं उन राज्यकीय क़ानूनों को नहीं मानूंगा जो धार्मिक सम्प्रदाय से सम्बंध रखते होंगे। राज्य ने उसकी तनख़ाह बंद कर दी, और यह देख कर कि जब तक जैज्यूइट लोग देश में रहेंगे तब तक शान्ति न

हो सकेगी, उनकों देश से निकाल देने का निश्चय किया गया, और वे निकाल भो दिये गये। सन् १८७२ ई० के अन्तिम भाग में पोप ने एक व्याख्यान दिया जिसमें उसने "जर्मन राज्य में धर्म सम्प्रदाय का पीड़न" विषय पर कुछ कहा और यह प्रतिपादन किया कि केवल धर्म सम्प्रदाय ही को यह अधिकार है कि वह अपने राज्य और लौकिक राजा के राज्य की सीमाएं निर्धारित करे। यह सिद्धान्त बहुत ही भयंकर और अमाननीय है, क्योंकि 'सदाचरण' शब्द के अर्थ में धार्मिक सम्प्रदाय मनुष्यों के सब ही सम्बंध सम्मलित कर लेती है, और यह कहती है कि जो काम उसका सहायक नहीं है वह उसको कष्टप्रद है। इसके अनन्तर थोड़े दिनों के बाद (९ जनवरी सन १८७३ ई० को) राज्य ने चार क़ानून जारी किये। (१) वे द्वारा जिनसे कोई मनुष्य अपने को धार्मिक सम्प्रदाय से प्रथक कर सके क़ानूनन उचित ठहराये, (२) धार्मिक सम्प्रदाय को रोकने का क़ानून जिससे वह धार्मिक दण्ड न कर सके, (३) धर्माचार्य्यों की शिक्षण शक्ति को रोकने का क़ानून जिससे वे दैहिक दण्ड न दे सकें, जुर्माना और देश निकाला न कर सकें, धार्मिक मामलों में शाही हाईकोर्ट तक अपील करने का अधिकार न देसकें जिसकी फिर अपील नहीं हो सकती, (४) प्रारम्भिक शिक्षा और पुरोहितों के नियत करने का क़ानून। उनको अवश्य संतोष जनक शिक्षा लेना चाहिये, एक सरकारी इम्तिहान पास करना चाहिये, और दर्शन शास्त्र, इतिहास, और जर्मनी का साहित्य अवश्य जानना चाहिये। जो कारखाने राज्य की निगरानी से इन्कार करेंगे वे बंद कर दिये जायेंगे।

ये कानून प्रमाणित करते हैं कि जर्मनी देश ने अब ऐसा निश्चय कर लिया था कि वह अब अधिक दिनों तक कतिपय इटली निवासी भलेमानुषों के सिखलाने से काम न करेगा, और न उनसे सताये जाने को सहन कर सकेगा और अब वह स्वयं अपने घर का मालिक बनेगा। इस झगड़े में उसको केवल धार्मिक वा बुद्धि सम्बंधी ही बात न दिखलाई पड़ती थी, वरन राजकीय कानून और धर्म सम्प्रदायिक कानून का झगड़ा जान पड़ता था। उसने पोप राज्य के

साथ धार्मिक शक्ति समझ कर वर्ताव नहीं किया, वरन राजकीय शक्ति समझ कर किया, और यह निश्चय कर लिया कि प्रुशियन कान्सटीट्यूशन का यह कथन पुष्ट किया जायगा कि "धार्मिक स्वतंत्रता के अमल को नागरिक लोगों के उन धर्मों से छेड़छाड़ न करना चाहिये जो उन्हें जाति के साथ वा राज्य के साथ निबाहना है"।

यह बात सत्य कही जाती है कि पोप शासन का काम सार्वलौकिक भांति से नहीं किया जाता, न वह सार्वलौकिक धार्मिक सम्प्रदाय की भांति सब जातियों के लिये काम करता है, वरन कतिपय इटली निवासी बंशों के लाभ के लिये काम करता है। अच्छा उसके संगठन को देखिये। उसमें पोप, मुख्य बिशप और मुख्य डीकन लोग हैं, जो इस समय सबही इटली निवासी हैं। मुख्य पुरोहित लगभग सब ही इटली निवासी हैं। रोम में सैकरेड कांग्रीगेशन के प्रबन्ध कर्ता और मंत्री आदि सब ही इटली निवासी हैं। फ्रान्स ने मध्य युग से कोई पोप नहीं बनाया। यही दशा आस्ट्रिया, पुर्तगाल और स्पेन की है। इस निवारक कार्य्यप्रथा को बदलने के लिये सब उद्योग करने पर और सब कैथोलिक देशों के निवासियों के लिये बड़े २ धार्मिक ओहदे खोल देने पर भी कोई बिदेशी उस पवित्र सिंहासन तक नहीं पहुँच सकता है। ऐसा माना जाता है कि धर्म सम्प्रदाय धनवान इटली निवासी वंशों के लिये ईश्वर प्रदत्त राज्य है। कार्डिनल कालेज के वर्तमान ५५ मेम्बरों में से ४० इटली निवासी हैं, अर्थात् ३२ मेम्बर उचित भाग से अधिक हैं।

दोहरी शासन प्रथाही यूरोप की उन्नति की बाधक हुई है। जब तक प्रत्येक जाति के दो राजा थे, अर्थात एक लौकिक राजा देश में, और एक आध्यात्मिक राजा विदेश में, तब कैसे सम्भव था कि इतिहास में सिवाय इन प्रतिस्पर्धी शक्तियों के लड़ाई झगड़ों के वर्णन के और क्या मिल सकता है, क्योंकि भिन्न २ जातियों में भिन्न २ लौकिक राजा होते थे, परन्तु सब पर विदेशी राजा एक ही था अर्थात रोम का पोप। जो कोई इस दशा पर विचार करेगा, वह

जान लेगा कि यह बात कैसे हुई कि उन्हीं जातियों ने सर्वाधिक उन्नति की है जिन्होंने दोहरी शासन प्रथा का भार अपने कंधो से फेंक दिया है। वह यह भी लख लेगा कि फ्रान्स देश पर जो फ़ालिज गिरा है उसका कारण क्या है। एक ओर तो फ्रान्स यूरोप का अगुआ होना चाहता है ओर दूसरी ओर पुरानी लकीर का फ़कीर भी बना रहना चाहता है। निज देश निवासी अपढ़ श्रेणी के लोगों को संतुष्ट करने को वह ऐसी कूटनीति पर चलता है जिसको वहां के समझदार लोगों को अवश्य दूषित समझना चाहिये। दोनों राज्य प्रणालियां जिनके अधीन वह रहता है ऐसी समतौल हैं कि कभी कोई बढ़जाती है कभी कोई, और बहुधा एक दूसरे को अपने तात्पर्य्य पूर्ण करने का द्वारा बना लेते हैं।

परन्तु इस दोहरी प्रथा का अब अन्त होने वाला है। उत्तरीय जातियों के लिये, जो कम विचारवान और कम व्यर्थविश्वासी थीं, वह प्रथा बहुत दिनोंसे असह्य हो चुकी थी। उन्होंने सरासरी तौर से उसे रिफ़ारमेशन के समय में ही, रोम की ओर से प्रतिवाद और बहाने होने पर भी अस्वीकार कर दिया था। रूस ने जो शेष सब देशों से अधिक सुख सम्पन्न था, किसी विदेशी अध्यामिक शक्ति के प्रभाव को कभी नहीं माना। वह इस बात का घमंड करता था कि मैं प्राचीन यूनानी रीति का प्रेमी बना रहा। और उसे पोप-शासन में सिवाय प्राचीन धर्म विरोध के और कुछ न देख पड़ा। अमेरिका में लौकिक और अध्यात्मिक शक्तियां पूर्णतः प्रथक २ रही हैं। अर्थात अध्यात्मिक शक्ति को कभी यह सुअवसर नहीं दिया जाता कि वह लौकिक शक्ति के कामों से कुछ सम्बंध रक्खे, यद्यपि और सब भांति से उसे पूर्ण स्वतंत्रता दी गई है! नवीन दुनिया (अमेरिका) की दशा से भी हम सन्तुष्ट हैं कि ईसाई धर्म के दोनों रूपों (कैथोलिक और प्रोटेस्टेंट) ने अपनी २ बढ़ने की शक्ति विनष्ट कर दी है, उनमें से कोई भी अपनी स्थिर सीमा से आगे नहीं जा सकता, अर्थात कैथोलिक संयुक्त-राज्य कैथोलिक ही रहते हैं, और प्रोटेस्टेंट, प्रोटेस्टेंट ही रहते हैं। और प्रोटेस्टेंट समूह में

अवान्तर भेद होने का स्वभाव कम होता जाता है। भिन्न जातियों के लोग स्वतंत्रता सहित सम्बंध करते हैं। वे लोग अपनी वर्तमान सम्मतियां समाचार पत्रों से एकत्र करते हैं, न कि धर्मसम्प्रदाय से।

नवां पियस नामक पोप इन सब हलचलों में जिनका हम वर्णन कर आये हैं, दो तात्पर्य्यों पर लक्ष दिये हुये था, (१) पोप का परिपूर्ण "अधिकार निमज्जन" जिस पर एक आध्यात्मिक शक्ति वाला स्वतंत्र व्यक्ति ईश्वराधिकारों सहित मुखिया रहे, (२) ईसाई धर्मावलम्बी सब जातियों की बुद्धि संबंधी उन्नति पर अधिकार रखना। इनमें से पहिले का न्याययुक्त फल राजकीय हस्तक्षेप है। पोप आग्रह करता है कि सब दशाओं में लौकिकराज्यशक्ति आध्यात्मिक शक्ति के अधीन रहनी चाहिये और धार्मिक सम्प्रदाय के स्वार्थों के प्रतिकूल सब राज्यनियम मंसूख कर देना चाहिये। उन नियमों के अनुसार चलना धार्मिक नहीं है। गत पत्रों में मैं संक्षेपत: कतिपय उन कठिनाइयों का वर्णन कर आया हूं जो इस कूटिनीति के पोषण करने के उद्योग में हो चुकी हैं।

अब मैं उस ढंग पर विचार करता हूं जिस ढंग से पोप शासन अपना बुद्धि सम्बंधी अधिकार स्थापित करने का प्रस्ताव करता है, और किसी भांति वह विज्ञान नामक अपने शत्रु के साथ अपना सम्बन्ध निर्णीत करता है, और मध्ययुग की दशा को फिर से लौटा लाना चाहता है, वर्तमान सभ्यता का विरोध करता है, और वर्तमान समाज की निन्दा करता है।

गश्ती चिट्ठी और धार्मिक नियमावली से वे नियम प्रगट होते हैं जिनको कार्य्य में परिणत करना वैटिकन कौन्सिल का मुख्य तात्पर्य था। नियमावली सर्वेश्वरवाद, प्रकृति वाद औरबुद्धि स्वातंत्र्य वाद को कलंकित ठहराती है, और ऐसी सम्मतियों की (जैसे कि सब संसार ही ईश्वरमय है) निन्दा करती है। प्रकृति को छोड़ कर अन्य कोई ईश्वर नहीं है, आध्यात्मिक मामले भी वैसे ही समझे जांय जैसे दार्शनिक बातें, वे ढंग और वे नियम जिनके द्वारा प्राचीन विद्वानों ने अध्यात्म-विद्या की उन्नति की थी अब समय के

अनुकूल और विज्ञान की उन्नति के अनुकूल नहीं रहे, प्रत्येक मनुष्य अपनी बुद्धयानुसार जिस मत को वह सत्य समझे ग्रहण करने वा स्वीकार करने में स्वतंत्र है, यह राजनैतिक शक्ति का काम है कि वह धार्मिक सम्प्रदाय के प्रभाव डालने के अधिकार और उसकी सीमाएं निश्चित करदे, धार्मिक सम्प्रदाय को कोई अधिकार नहीं है कि वह सीधे वा आड़पेच से किसी लौकिक राजशक्ति से लाभ उठावे, धर्म सम्प्रदाय राज्य से पृथक रहे और राज्य धर्मसम्प्रदाय से प्रथक रहे, यह अब उचित नहीं है कि कैथौलिक धर्म ही राज्य का एक मात्र धर्म समझा जावे और ईश्वर भक्ति के अन्य ढंग निकाल दिये जावें, जो लोग कैथोलिक देशों में आ बसें उन्हें स्वयं अपने ढंग से खुल्लमखुल्ला ईश्वर भक्ति करने का अधिकार है, रोमन धर्माध्यक्ष को वर्तमान सभ्यता की उन्नति के साथ अनुकूलता और सम्मेल करना चाहिये और कर सकता है। ऐसी सब सम्मतियों की वह धार्मिक नियमावली निन्दा करती थी। वह नियमावली दावा करती है कि धर्म सम्प्रदाय ही को सार्वजनिक शिक्षालयों की निगरानी करने का अधिकार है और उस विषय में राज्य के अधिकार को नहीं मानती। वह नियमावली विवाह और त्याग पर भी निगरानी रखने का दावा करती है।

इन नियमों में से ऐसे नियम जिनको कौन्सिल इसी समय सिद्धान्त बनाना उचित समझती थी कैथोलिक धर्म के सिद्धान्तिक सभा में उपस्थित किये गये। इस सभा की आवश्यक बातों की अब हमको जांच करनी चाहिये और विशेश कर इस विषय में कि विज्ञान के साथ धर्म के क्या २ सम्बंध हैं। यह समझ लेना चाहिये कि निम्न लिखित बातें पूर्ण साक्षीपत्र नही हैं, वरन केवल उन भागों का खुलासा हैं जो उसके अधिक आवश्यक भाग समझे गये हैं।

यह परिभाषा प्रोटेस्टेंट रिफारमेशन के सिद्धान्तों और फलों की कड़ी समालोचना के साथ प्रारम्भ होती है।

"धार्मिक सम्प्रदाय के शिक्षा देने के पवित्र अधिकार के अस्वीकार करने से और धर्म सम्बंधी सब वस्तुओं को प्रत्येक व्यक्ति की जांच के अधीन करने में बहुत सी अवान्तर सम्प्रदायें बन गई हैं, और

और इन सम्प्रदायों के परस्पर मत भेद और झगड़ों से बहुत से मनुष्यों का विश्वास ईसा पर से उठ गया था, और धर्म ग्रन्थ कथा कहानियों की भांति समझे जाने लगे थे। ईसाई धर्म अस्वीकृत हो गया है और बुद्धि वा प्रकृति के राज्य ने उसका स्थान ले लिया है। बहुत से लोग सर्वेश्वरवाद, पदार्थवाद, और अनीश्वरवाद के गढे में पड़ गये हैं, और मनुष्य के बुद्धिसम्बंधी स्वभाव और प्रत्येक भलाई बुराई के नियम को खण्डन करके लोग मानव जाति की नीव उलट देने का उद्योग कर रहे हैं। चूंकि यह अपवित्र नास्तिकता सर्वत्र फैल रही है और बहुत से कैथोलिक लोग उससे ठगे गये हैं, लोगों ने बिज्ञान और पवित्र धर्म में गड़बड़ी डालदी है।

"परन्तु धार्मिक सम्प्रदाय अर्थात जातियों की माता और मालकिन निर्बलों को शक्ति प्रदान करने के लिये, लौटे हुये मनुष्यों को अपनी छाती से लगाने के लिये, और उनको अधिक अच्छी वस्तुओं तक पहुँचाने के लिये, सदैव तत्पर है। और अब दुनिया भर के विशप लोगों के इस सभा में इकट्ठा होने से और उनमें पवित्र आत्मा के बिराजने से, और हमारे साथ २ सम्मति मिलाने से हम लोगों ने सेन्टपीटर के इस आसन से ईसा के बचाने का सिद्धान्त और उसके विरोधी भ्रमों की निन्दा करने और खण्डन करने का निश्चित प्रस्ताव प्रख्यात करने का निश्चय किया है।

"सर्व सृष्टि कर्ता ईश्वर के विषय में"—पवित्र कैथोलिक देव दूतीय रोमन सम्प्रदाय विश्वास करती है कि एक सच्चा और जीवित ईश्वर है, वही आकाश और पृथ्वी का बनाने वाला और मालिक है। सर्व शक्तिमान, अनादि, अनन्त, महान् बुद्धि से परे, ज्ञान और इच्छा में असीम, और सर्व प्रकार पूर्ण है। वह संसार से न्यारा है अपनी ही स्वतंत्र इच्छा से उसने अनस्तित्व से एकही रूप के दो व्यक्ति बनाये, एक आध्यात्मिक और एक लौकिक अर्थात एक दिव्य और एक पार्थिव। इसके अनन्तर उसने दोनों से मिला कर मानवी प्रकृति बनाई। इसके अतिरिक्त ईश्वर अपनी रक्षण शक्ति द्वारा सब वस्तुओं की रक्षा करता है और शासित करता है, जिसका प्रभाव बड़े ज़ोर से एकसिरे

से दूसरे सिरे तक पहुँचता है। और सब चीज़ों को समता रखने की आज्ञा देता है। वह प्रत्येक वस्तु को देखता है यहां तक कि उन वस्तुओं को देखता है जो उसके बनाये व्यक्तियों की स्वतंत्र क्रिया द्वारा प्रगट होती हैं"।

"ईश्वर वाणी के विषय में"—पवित्र माता, धार्मिक सम्प्रदाय की यह सम्मति है कि मानवी बुद्धि के प्राकृतिक प्रकाश द्वारा ईश्वर निश्चित रूप से जाना जा सकता है, परन्तु उसकी ऐसी भी मरज़ी है कि वह स्वयं अपने को और अपनी इच्छा की सदैव सत्य आज्ञाओं को अलौकिक ढंग से प्रकाशित करे। ये अलौकिक आज्ञा प्रकाशन, जैसा कि ट्रेन्ट की पवित्र सभा ने कहा है, प्राचीन और नवीन टेस्टामेंट ग्रंथों में हैं, जैसा कि वह सभा की आज्ञाओं में गिनाये गये हैं, और प्राचीन वल्गेट लैटिन प्रति में भी पाए जाते हैं। ये पवित्र वाक्य हैं क्योंकि वे पवित्र आत्मा की प्रेरणानुसार लिखे गये हैं। उनका कर्त्ता ईश्वर है और इस रूप से वे धार्मिक सम्प्रदाय को सौंपे गये हैं"।

"और अशान्त चित्तों को रोकने के हेतु, जो कदाचित अशुद्ध व्याख्या करने लगें, यह आज्ञा दी जाती है (ट्रेंट की सभा के निश्चय को नूतन करते हुये] कि कोई मनुष्य धर्म ग्रन्थों का पवित्र सम्प्रदाय कृत अर्थ से विरुद्ध कुछ अर्थ न करे, क्योंकि वैसा अर्थ करने का अधिकार सम्प्रदाय ही को है"।

"धार्मिक विश्वास के विषय में"—इस कारण से कि मनुष्य ईश्वर को अपना मालिक मानने के लिये बिवश है और उत्पत्ति की हुई बुद्धि अनुत्पादित सत्यता के पूर्णतः अधीन है, मनुष्य का धर्म है कि जब ईश्वर अपने वाक्यों को प्रकाशित करता है तो वह उस प्रकाशन को बिश्वास सहित माने। यही बिश्वास अलौकिक गुण है और उस मनुष्य के मोक्ष का प्रारम्भ है, जो ईश्वर प्रेरित वाक्यों को सत्य मानता है। और वह सत्य मानना इस कारण से न हो कि बुद्धि के प्राकृतिक प्रकाश द्वारा उनमें स्वाभाविक सत्यता देख पड़ती है, वरन इस हेतु से कि वे ईश्वर प्रकाशित हैं। परन्तु तो भी इस कारण से कि वह विश्वास बुद्धि के अनुकूल हो, ईश्वर ने दैवी

चमत्कार और भविष्य वाणियों को सम्मिलित कर देने की इच्छा की, जो उसकी सर्वशक्तिमानी और ज्ञान को प्रगट करने वाले ऐसे प्रमाण हैं, जिनको सब मनुष्य समझ सकते हैं। ऐसी ही बात हम मूसा के कथनों में, अन्य देवदूतों के कथनों में और सर्वोपर हज़रत ईसा के कथनों में पाते हैं। इस हेतु उन सब बातों पर विश्वास करना चाहिये जो ईश्वर कृत ग्रंथों में लिखी हुई हैं, वा मौखिक कथाओं की भांति प्रचलित चली आती हैं, और जिन्हें धार्मिक सम्प्रदाय ने अपने उपदेशों द्वारा विश्वासनीय कहा है"।

"बिना इस विश्वास के न तो कोई उसके योग्य हो सकता है और न अमर जीवन पावेगा, जब तक कि अन्त तक उसी में निमग्न न रहे। इस लिये ईश्वर ने अपने इकलौते पुत्र द्वारा अपने प्रकाशित शब्दों के रक्षक और उपदेशक की भांति धार्मिक सम्प्रदाय को स्थापित किया है। क्योंकि वे चिन्ह जो ईसाई धर्म के विश्वास को प्रगट करते हैं, केवल कैथेलिक सम्प्रदाय में पाये जाते हैं। नहीं वरन इससे भी कुछ अधिक, यह सम्प्रदाय स्वयं, अपने प्रचार के विचार से अपनी प्रसिद्ध पवित्रता के विचार से भली बातों में बड़ी सफलता के विचार से एकता के विचार से और स्थिरता के बिचार से विश्वास किये जाने का बहुत बड़ा और प्रगट दावा करती है, और ईश्वरीय दूत होने का अकाट्य प्रमाण देती है। इस भांति यह सम्प्रदाय अपनी सन्तानों को दिखलाती है कि जो विश्वास वह रखती है, वह अति सुदृढ़ मूलाधार पर स्थित है। और उस हेतु उन लोगों की दशा इससे बिलकुल विरुद्ध है जो ईश्वर प्रदत्त विश्वास से कैथोलिक सत्यता को मानते हैं और जो मानवी सम्मतियों से बहक कर असत्य धर्म के अनुगामी हो रहे हैं"।

"विश्वास और बुद्धि के विषय में"--इसके अतिरिक्त कैथोलिक धर्म सम्प्रदाय सदा से मानती आई है और अब भी मानती है कि ज्ञान दो प्रकार के हैं, जिनमें से प्रत्येक अपने नियम और उद्देश्य के कारण एक दूसरे से पृथक है। उनके नियम में प्रथकता है, क्योंकि एक ज्ञान में तो हम प्राकृतिक बुद्धि से जानते हैं, और दूसरे में ईश्वर

प्रदत्त विश्वास से। उनके उद्देश्य में पृथकता है, क्योंकि जहां तक हमरी स्वाभाविक बुद्धि पहुँचती है उन वस्तुओं के अतिरिक्त ईश्वर के कुछ गुप्त भेदों का भी विश्वास है जो हमारे ज्ञान में नहीं आ सकता जब तक कि वह भेद स्वयं प्रकाशित न किया जाय"।

"बुद्धि, वास्तव में विश्वास और खोज से प्रकाशित होकर, परिश्रम और पवित्र संयम का साथ पाकर ईश्वर कृपा से, (सीमाबद्ध, परन्तु प्रभावशाली होने से) कुछ भेदों को जान सकती है। इसके दो कारण हैं, एक तो यह कि जो वस्तुएं प्राकृतिक रीति से हमारी जानी हुई हैं उनमें समता है, और दूसरे यह कि स्वयं वे भेद एक दूसरे से संबंध रखते हैं, और मनुष्य के अन्तिम परिणाम से सम्बन्ध रखते हैं। परन्तु बुद्धि कभी भी इन भेदों को पूर्णतः समझने के योग्य नहीं हो सकती, जैसे वह निज सम्बंधी सत्यताओं को समझ लेती है। क्योंकि ईश्वरीय भेद स्वभाव से ही उत्पादित बुद्धि की पहुँच से इतने अधिक बड़े हैं कि ईश्वर की प्रेरणा और विश्वास से ज्ञात होजाने पर भी वे विश्वास से ढके रहते हैं और मानवी जीवन भर मानो अज्ञात ही दशा में रहते हैं"।

"परन्तु यद्यपि विश्वास बुद्धि से बढ़ कर है, तथापि उन दोनों में कोई वास्तविक विरोध नहीं हो सकता क्योंकि वही ईश्वर जो भेदों को प्रकाशित करता है और चित्त में विश्वास को भर देता है; उसी ईश्वर ने मनुष्य की आत्मा को बुद्धि का प्रकाश दिया है और ईश्वर अपने किये को अमान्य नहीं कर सकता, और न एक सत्यता दूसरी का विरोध कर सकती है। इस लिये ऐसे विरोध की छाया मात्र विशेष कर इस कारण से पैदा होती है कि या तो विश्वास के नियम, जैसा कि सम्प्रदाय वास्तविक मानती है नहीं समझे और प्रकाशित किये गये वा यह बात है कि मनुष्यों की झूठी युक्तियां और सम्मतियां भ्रम वश बुद्धि के कथन मान लिये गये हैं। इसलिये हम उस प्रत्येक कथन को झूठा प्रगट करते हैं जो विश्वास से प्रकाशित सत्य के विरुद्ध हो। इसके अतिरिक्त धार्मिक सम्प्रदाय ने जो शिक्षा के काम के साथ ही साथ विश्वास के ख़ज़ाने की रक्षा का

काम रखती है अन्य अधिकारों की भांति ईश्वर से यह अधिकार भी पाया है, और उसका धर्म है कि वह झूठे ज्ञान पर दोष लगावे नहीं तो ऐसा न हो कि कोई मनुष्य दर्शन शास्त्र और व्यर्थ छलों से छल लिया जावे। इसलिए सब ईसाई धर्मावलम्बी लोगों को केवल यही मुमानियत नहीं की जावे कि वे उन सम्मतियों का पक्ष न करें जो विश्वास के नियमों के विरुद्ध ज्ञात हुई हैं और विशेष कर जिनको सम्प्रदाय ने दूषित ठहराया है, वरन उनका यह प्रथम धर्म है कि वे उन सम्मतियों के भ्रमों को पकड़े जिनके कारण वे सम्मतियां सत्यता का कपट भेष धारण किये हैं।

"धर्म और बुद्धि के लिये परस्पर विरोध होना केवल असम्भव ही नहीं है वरन वे परस्पर एक दूसरे को सहायता दिया करते हैं, क्योंकि सत्यबुद्धि से विश्वास की जड़ जमती है और उसी के प्रकाश की सहायता से ईश्वरीय वस्तुओं के ज्ञान को बढ़ाती और विश्वास बुद्धि को भ्रमों से बचाती है, और ज्यों का त्यों स्थित रखता है, और अनेक प्रकार के ज्ञान से उसे परिपूर्ण कर देता है। तब धार्मिक सम्प्रदाय मानवी कलाओं और विज्ञानों की बढती की विरोधिनी होने से इतनी दूर है कि वह उलटा सहाय करती है, और बहुत प्रकार से उसे उन्नति देती है। क्योंकि वह न तो अनजान ही है और न उन लाभों से घृणा ही रखती है जो उनसे मानव जीवन को प्राप्त होते हैं। वरन इसके विरुद्ध वह इस बात को मानती है कि वे उसी ईश्वर से निकले हैं जो सब ज्ञानों का मालिक है। इसलिये यदि वे ठीक तौर से सीखे जायें तो वे ईश्वर कृपा से ईश्वर तक पहुँचा सकते हैं। वह धार्मिक सम्प्रदाय उन विज्ञानों में से किसी को मना नहीं करती कि वह अपने सिद्धान्तों को और अपने निज ढंगों को अपनी उचित रीति से काम में न लावें, वरन उस संयुक्ति स्वतंत्रता को मान कर वह इस बात की खबरदारी करती है कि वे ईश्वरीय विरोध का उपदेश करके भ्रमों में न पड़जायें, वा उचित सीमा को उल्लंघन करके धर्मराज्य पर आक्रमण न करें, वा उसे गड़बड़ में न डाल दें।"

क्योंकि ईश्वर प्रेरित धर्म सिद्धान्त, अन्य दार्शनिक खोजों की भांति मानवी बुद्धि द्वारा सम्पूर्ण करने के लिये नहीं उपस्थित किया गया, वरन वह ईसा के अनुगामियों को पवित्र कोष की भांति अच्छी भांति सुरक्षित रखने और सावधानी से प्रचार करने के हेतु सौंपा गया है। इस लिये पवित्र धर्म के सब ही सिद्धान्तों की व्याख्या सदैव ऐसी करनीं चाहिये जो धार्मिक सम्प्रदाय के भाव और अर्थ के अनुकूल हो। यह बात भी विधिवत नहीं है कि अधिक उत्तम व्याख्या के बहाने या आड़ से उस अर्थ से अलग जा पड़े। इस लिये ज्यों २ पीढ़ियां और शताब्दियां गुज़रती जाती है त्यों २ प्रत्येक मनुष्य की समझ, ज्ञान और बुद्धि को, एक एक करके और सम्प्रदाय भर की एकत्र करके, खूब बढ़ना चाहिये, पर केवल उसीके अनुकूल (अर्थात् एक किसी सिद्धान्त के भाव और अर्थ और विश्वास को ठीक वैसा ही) रखना चाहिये और उसे बिगाड़ना न चाहिये।"

अन्य व्यवस्थाओं में से निम्न लिखित व्यवस्था प्रकाशित की गई थी:—उस मनुष्य को समाजच्युत समझना चाहिये

(१) जो एक सच्चे ईश्वर के होने से इन्कार करता है, जो सब दृष्ट और अदृष्ट वस्तुओं का बनानेवाला और मालिक है।

(२) जो विना संकोच कहता है कि पदार्थ के अतिरिक्त अन्य कोई वस्तु है ही नहीं।

(३) जो कहता है कि ईश्वर का तत्व और अन्य सब वस्तुओं का तत्व एकही है।

(४) जो कहता है कि दोनों प्रकार की (अर्थात दैहिक और आत्मिक) सीमाबद्ध वस्तुयें, वा कम से कम आध्यात्मिक वस्तुयें ईश्वरीय तत्व से निकली हैं, वा यह कहता है कि ईश्वर तत्व अपने स्वयं प्रकाश वा उन्नति द्वारा सब कुछ हो जाता है।

(५) जो इस बात को नहीं मानता कि सर्व संसार और सर्व सांसारिक वस्तुएं जो उसमें हैं ईश्वर द्वारा नास्ति से अस्ति की गई हैं।

(६) जो यह कहे कि मनुष्य अपने उद्योग से और नित प्रति उन्नति द्वारा अन्त में सचाई और नेकी को पासकता है और उसेपाना ही चाहिये।

(७) जो धर्म पुस्तकों को ज्यों की त्यों सब भागों सहित जैसे कि वे ट्रेन्ट की पवित्र कौन्सिल द्वारा गिनाई गई थीं, पवित्र और धार्मिक नियमावली की भांति मानने से इन्कार करे, वा इस बात से इन्कार करे कि वे ग्रंथ ईश्वर प्रेरित हैं।

(८) जो यह कहे कि मानवी बुद्धि इतनी स्वतंत्र है कि ईश्वर भी उसे विश्वास करने के लिये आज्ञा नहीं दे सकता।

(९) जो यह कहे कि ईश्वर प्रेरित वाक्य बाहरी साक्षियों द्वारा विश्वासनीय नहीं बनाये जा सकते।

(१०) जो यह कहे कि अलौकिक चमत्कार नहीं किये जा सकते, वा यह कहे कि वे कभी निश्चय नहीं जाने जा सकते और ईसाई धर्म की ईश्वरीय उत्पत्ति उनसे नहीं प्रमाणित हो सकती।

(११) जो यह कहे कि ईश्वर प्रेरित वाक्य में कोई गुप्त भेद नहीं है, वरन धर्म के सबही सिद्धान्त उचित वृद्धि प्राप्त बुद्धि द्वारा समझे और प्रमाणित किये जा सकते हैं।

(१२) जो यह कहे कि मानवी विज्ञान इतनी स्वतंत्रता के साथ सीखना चाहिये कि मनुष्य को उन विज्ञानों से प्रतिपादित सिद्धान्तों को सत्यही मान लेना चाहिये, चाहे वे ईश्वर प्रेरित सिद्धान्त के विरुद्ध ही क्यों न हों।

(१३) जो यह कहे कि विज्ञान की उन्नति में यह बात किसी समय घटित हो सकती है कि वे सिद्धान्त जो धार्मिक सिद्धान्त से प्रकाशित किये गये हैं अवश्य अपने असली भाव के अतिरिक्त किसी दूसरे भाव में लेना चाहिये, जिसमें सम्प्रदाय ने उन्हें कभी नहीं लिया और न अब लेती है।

इन निश्चित सिद्धान्तों में भरी हुई असाधारण और साभिमान मनमानी युक्तियों को शिक्षित कैथेलिक लोगों ने संतोष सहित स्वीकार नहीं किया। जर्मनी के महाविद्यालयों की ओर से इनका विरोध हुआ और जब वर्ष के अन्त में वैटिकन कौन्सिल की आज्ञायें सर्व साधारण लोगों ने मान लीं, तब यह बात उन आज्ञाओं की

सत्यता के विश्वास से नहीं हुई, वरन केवल इस भाव से कि नियमों को मानना ही उचित है ।

बहुत से अति पवित्र कैथेलिक लोगों ने इस सब हलचल और उसके फलों को बड़े ही खेद के साथ देखा । पीरी ह्यिासिन्थी अपने से उच्च श्रेणी के पदाधिकारी की चिट्ठी में लिखता है कि "मैं इस अपवित्र और मूर्खता पूर्ण प्रथकता का विरोध करता हूं जो हमारी सर्व कालीन माता अर्थात् धार्मिक सम्प्रदाय और उन्नीसवीं शताब्दी के उस समाज के बीच में होने वाली है, जिसके हम भी सांसारिक पुत्र हैं, और जिसकी ओर हमारे भी कुछ धर्म हैं, और जिसका हम कुछ आदर करते हैं । मेरा यह पूर्ण विश्वास है कि यदि विशेष कर फ्रान्स देश और साधारणत: रोमन जाति, जातीय, सदाचारीय और धार्मिक अराजकता में पड़ जायं तो उसका मूल कारण स्वयं कैथेलिक धर्म नहीं कहा जायगा; वरन वह ढंग उसका कारण कहा जायगा जिस ढंग से कैथेलिक धर्म बहुत दिनों से समझा जाता रहा है और किया जाता रहा है ।"

अव्यर्थ बुद्धि होने पर भी, जिससे उसका सर्वज्ञ होना प्रगट होता है, पोप ने फ्रान्स-जर्मनी युद्ध का फल पहले से नहीं जाना था । यदि उसमें भविष्यवादी देवताओं की सी बुद्धि होती तो वह अपनी कौन्सिल के कानूनों का अनौचित्य देख ही लेता । उसने जर्मनी के राजा से अपनी सांसारिक शक्ति स्थापित रखने के लिये सैनिक सहायता मांगी थी जो उसे न मिली । इटली के समाजच्युत राजा ने, जैसा कि हम देख चुके हैं, रोम नगर पर अधिकार कर लिया । पहिली नवम्बर सन् १८७० ई० को एक खेद जनक पोपीय गश्ती आज्ञा-पत्र जारी किया गया जो वर्तमान राजपत्रों की सुशीलता के बहुत विरुद्ध था । उस पत्र में पीडमान्टीज़ के दरबार के कामों की निन्दा की गई थी । लिखा था कि उस दरबार ने धोखेबाजों की सलाह से काम किया है । इस पत्र में पोप महाशय कहते हैं कि मैं कैद हूं और मैं वेलियल से कभी सहमत न हूंगा । वह पोप अपने विरोधियों के लिये निन्दा और दण्ड सहित एक अधिक बड़े जाति-

च्युत का सिद्धान्त प्रकाशित करता है, और ईश्वर-माता पापरहित कुमारी मरियम की सिफारिश के लिये प्रार्थना करता है, और पीटर और पाल मुक्त देवदूतों के बीचबचाव के लिये भी प्रार्थना करता है।

भिन्न २ प्रोटेस्टेन्ट सम्प्रदायों में से बहुत सी सम्प्रदायें परस्पर सलाह लेने के ग़रज़ से "इवैनजेलीकल अलाईएन्स" के नाम से मिल कर एक समाज हो गये। उनकी अंतिम सभा न्यूयार्क में सन् १८७३ ई० के वसंतागमऋतु में हुई थी। यद्यपि इस सभा में संशोधित सम्प्रदायों के बहुत से सदाचारी प्रतिनिधि सम्मिलित हुये थे जो यूरोप की और अमेरिका की सम्प्रदायों से आये थे, तथापि वह उस बड़ी कौन्सिल कासा दावा और अधिकार नहीं रखती थी, जिसने अभी हाल ही में अपनी बैठकें रोमस्थित सेंटपीटर के गिरजा में करके बंद की थी। वह १००० वर्ष की अपेक्षा अपनी प्राचीनता कुछ अधिक दिनों तक की न बता सकी। वह प्रमाण सहित राजा महाराजों को अपने बराबर वाला वा अपने से कम न कह सकी। वैटिकन कौन्सिल ने जो कुछ किया था उसकी प्रत्येक वस्तु में एक गम्भीर बुद्धि और प्रबंधक सांसारिक बुद्धि झलकती थी, परन्तु इवैनजेलिक अलाईएन्स सभा अपने तात्पर्यों का स्पष्ट और उचित उद्देश बिनाही हुई, और उसकी इच्छायें भी ठीक निश्चित न थीं। उसकी इच्छा यह थी कि भिन्न २ प्रोटेस्टेन्ट सम्प्रदायों को एक में मिलादे, परन्तु उसे इस बात के पूरा करने की कुछ अच्छी आशा न थी। उसने उस सिद्धान्त के आवश्यक काम को खूब व्याख्या की जिस सिद्धान्त पर ये सब सम्प्रदायें पैदा हुई थीं। उनका मूलाधार विरोध पर था और प्रथकता द्वारा जीवित हैं।

तो भी उस एवैनजेलीकल अलाईएन्स के काम में कोई २ बहुत प्रभाव जनक घटनायें देखी जा सकती हैं, उसने अपने पुरानी विरोधी की ओर से अपनी आखें फेर ली थीं अर्थात् वही प्रतिद्वंदी जिसने अभी हाल ही में रिफारमेशन की बदनामी वा निन्दा से लाद दिया था। जैसा कि वैटिकन कौन्सिल नें किया था उसने भी उनको

विज्ञान का दोष लगाया। इस भयंकर नाम के कारण ही उनकी आंखों के सामने एक अनिश्चित रूपधारी भूत आखड़ा हुआ जान पड़ता था, जो घंटा २ में घटता बढ़ता था और डरावनी शकल रखता था। कभी २ यह एलाईएन्स उस बड़े भूत से सभ्य शब्दों में बात चीत करता था, और कभी कभी निन्दा के ढंग से।

एलाईएन्स ने यह समझने में भूल की कि वर्तमान विज्ञान रिफारमेशन का सच्चा और जुरीवां पैदा होने वाला भाई है। वे साथ ही साथ गर्भ में आये और साथ ही साथ पैदा हुये। वह एलाईएन्स यह भी न देख सका कि यद्यपि बहुत सी विरोधी संप्रदायों को एक करना असम्भव है तो भी वे सब सम्प्रदायें विज्ञान के विषय में एक दूसरे की सम्बंधिनी बन जायेंगी, और यह भी न देख सका कि उस विज्ञान के साथ अविश्वास करना नहीं, वरन उसके साथ खूब मेल रखना ही उन सम्प्रदायों की सच्ची नीति है।

अब कैथोलिक धर्म की संस्था पर जैसा कि वैटिकन कौन्सिल ने निश्चित किया है कुछ बिचार करना शेष रहा। ऐसी वस्तुओं के लिये जो भिन्न २ व्यक्तियों के साथ एक सा सम्बंध रखती हैं उन्हें एक ही विचार से देखना चाहिये। इस उदाहरण में जिस पर हम इस समय विचार कर रहे हैं, एक धार्मिक पुरुष अपनी स्वयं विशेष स्थिति रखता है और विज्ञानी पुरुष की भिन्न स्थिति है जो उससे बहुत ही विरुद्ध है। उन दोनों में से कोई भी एक दूसरे से यह नहीं कह सकता कि उसके सहयोगी को मानना पड़ेगा कि घटनाओं का दृश्य जो उन दोनों के सामने फैला हुआ है वास्तव में दोनों के लिये एक सा है।

सिद्धान्तिक संस्था इस स्वयंसिद्ध बात को मानने की हठ करती है कि रोमन सम्प्रदाय उस ईश्वर आज्ञा के अनुसार काम करती है जो विशेष भांति से केवल उसी को मिली है। उस अधिकार के बल से वह सम्प्रदाय सब आदमियों से उनके बुद्धिप्रतिपादित

विश्वास छुड़ा देना चाहती है, और सब जातियों को अपनी सभ्य शक्ति के अधीन करना चाहती है।

परन्तु इतना बड़ा दावा अवश्य ही ऐसे निश्चित और निर्दोष प्रमाणों से पुष्ट होना चाहिये जो केवल अनुमानिक और उपमानिक ही न हों, वरन स्पष्ट, जोरदार और ठीक हों। वे ऐसे प्रमाण हों जिन पर सन्देह करना पूर्णतः असम्भव हो।

परन्तु सम्प्रदाय कहती है कि मैं अपना दावा मानवी बुद्धि की पंचायत में न उपस्थित करूंगी। वह चाहती है कि वह दावा एक दम विश्वास की भांति मानलिया जाय। यदि यह मान लिया जाय तो उसकी सब आवश्यकतायें भी मानना ही पड़ेंगी चाहे वे कैसी ही बड़ी क्यों न हों।

बड़ी बिलक्षण विरुद्धता के साथ कैथोलिक धर्म की सिद्धान्तिक संस्था बुद्धि का निरादर करती है। कहती है कि बुद्धि बिचारणीय विषयों को निश्चित नहीं कर सकती, और तब भी उसी बुद्धि को व्यवस्था करने के लिये प्रमाण देती है। वास्तव में ऐसा कहा जा सकता है कि वह सर्व कृत्य बुद्धि के लिये एक क्रोधपूर्ण बहाना है जिससे वह स्वयं रोमन ईसाई धर्म के पक्ष में हो जाय।

ऐसे भिन्न बिचारों के साथ यह बात असम्भव ही है कि धर्म और विज्ञान वस्तुओं के ठीक वर्णन में एकसम्मति हों। न दोनों किसी एक फल तक पहुँच सकते हैं सिवाय इस भांति के कि वे दोनों बुद्धि को सर्वोच्च और अंतिम न्यायाधीश मानें।

वैटिकन कौन्सिल ने इसका प्रतिवाद किया। उसने धर्म को बुद्धि से बढ़कर माना। वह कहती है कि धर्म और बुद्धि दो भिन्न प्रकार के ज्ञान हैं और एक का उद्देश गुप्त भेद और दूसरे का उद्देश सत्य घटनायें हैं। धर्म तो गुप्त भेदों से काम रखता है, और बुद्धि सत्य घटनाओं से। धर्म की बड़ाई प्रतिपादन करते हुये वैटिकन कौन्सिल ने इस बात का उद्योग किया कि अनिच्छुक लोगों के चित्तों को अलौकिक चमत्कारों और भविष्य वाणियों से संतुष्ट करे।

इसके विरुद्ध विज्ञान समझ में न आने योग्य व्यक्ति (ईश्वर) से अन्य ओर फिरता है और विकलिफ के इस सिद्धान्त पर निर्भर होता है कि ईश्वर किसी मनुष्य को उस बात पर विश्वास करने के लिये विवश नहीं करता जिसे वह समझ नहीं सकता। विरोधियों की ओर से पूर्ण विश्वास के उदाहरण न होने की दशा में विज्ञान इस बात पर विचार करता है कि क्या पोप शासन के इतिहास और पोपों के जीवनचरित्रों में कोई ऐसी बात है जो इस बात को ठीक रीति से पुष्ट करती हो कि उन्हें ईश्वर की ओर से आज्ञा मिली थी और क्या कोई ऐसी बात है जो पोप की अव्यर्थता को सत्य प्रमाणित कर सके, वा लोगोँ को ऐसा त्वरित आज्ञाकारी बना सके जैसा कि एक ईश्वर प्रतिनिधि का आज्ञाकारी होना उचित है।

सिद्धान्तिक संस्था का एक बहुत बड़ा (पर पूर्वापरविरुद्ध)चिन्ह यह है कि वह मनुष्य की बुद्धि को विवश हो कर पूजनीय मानती है। वह कैथोलिक धर्म के दार्शनिक मूलाधार की परिभाषा देती है, परन्तु वह लौकिक धर्म के घृणास्पद चिन्हों को दृष्टि से छिपाती है। वह ईश्वर सर्व स्रष्टा के गुण ऐसे शब्दों में प्रकाश करती है जो वास्तव में उसके उच्च विचार के योग्य हैं, परन्तु वह इस बात के कहने में आनाकानी करती है कि यह अति भव्य और अनादि व्यक्ति (ईश्वर) एक लौकिक माता से अर्थात् एक यहूदी बढ़ई की पत्नी के गर्भ से पैदा हुआ था, जो उस समय से स्वर्ग की रानी हो गई है। जिस ईश्वर का वर्णन वह करती है वह मध्ययुग का ईश्वर नहीं है, जो अपने स्वर्ण सिंहासन पर विराजता था और देवदूतों के समूह से घिरा रहता था, वरन वह दार्शनिक ईश्वर है। वह संस्था त्रिदेव के विषय में कुछ नहीं कहती और कुमारी मरियम के पूजन के विषय में भी कुछ नहीं कहती, (वरन इसके विरुद्ध अर्थात् बड़ी कठिन व्यंग से दोष लगाती है), "ट्रैनसब्स टैनूशीएशन" वा पुरोहित द्वारा ईश्वर के मांस और रक्त के बनाये जाने के विषय में भी कुछ नहीं कहती; और महात्मा सन्तों से प्रार्थना करने के विषय में भी

कुछ नहीं कहती। वह अपने चिहरे पर समय के विचार की सेवकाई के चिन्ह धारण किये हुये है, अर्थात मनुष्य की बुद्धि सम्बंधी उन्नति का चिन्ह उसके ऊपरी ही भाग से प्रदर्शित होता है

ईश्वर के गुणों के विषय में हम को ऐसी व्याख्या देकर तदनन्तर वह हम को ईश्वर के उस ढंग की शिक्षा देती है जिस ढंग से वह संसार का शासन करता है। धर्म सम्प्रदाय कहती है कि वह सब पदार्थिक और सदाचार सम्बंधी घटनाओं पर अलौकिक अधिकार रखती है। भिन्न २ श्रेणी के पुरोहित लोग, या तो अपने आन्तरिक गुणों को काम में लाकर या दैवी शक्तियों की प्रभावशाली सहायता द्वारा, भविष्य फलों को निश्चित कर सकते हैं। सर्वोच्च पोप को यह अधिकार दिया गया है कि वह अपनी इच्छानुसार जिसे चाहे बांध रक्खे, और जिसे चाहे उसे मुक्त कर दे। यह बात नियम विरुद्ध है कि उसके किये हुए न्याय की अपील एक धर्मिक सभा में, ऐसा मान कर कि मानो उस से भी बड़ा कोई लौकिक न्यायाधीश है, की जाय। ऐसी शक्तियाँ स्वतंत्र शासन के अनुकूल हैं, परन्तु वे अपरिवर्तनीय नियम द्वारा संसार शासनविधान के प्रतिकूल हैं।

इस लिये सिद्धान्तिक संस्था इश्वरीय सहायताओं का पक्ष दृढ़ता से स्थापित करती है। वह इस बात को कभी नहीं मानेगी कि प्राकृतिक वस्तुओं में घटनाओं का एक बे रोक क्रम है, वा मनुष्यों के कार्य्यों में कर्तव्यों की एक अनिवार्य्य धारा है।

परन्तु क्या सभ्यता का क्रम दुनिया के सब भागों में एक सा नहीं रहा है? क्या समाज की वृद्धि व्यक्तिक वृद्धि के अनुसार नहीं है? क्या ये दोनों किशोरावस्था, पूर्ण युवावस्था और वृद्धावस्था की कलायें हमें नहीं दिखलातीं? क्या एक ऐसे मनुष्य के लिये, जिसने पृथ्वी के दूरस्थित भिन्न भिन्न भागों में रहनेवाले मनुष्यों के समूहों की वृद्धिंगत सभ्यता पर ध्यान देकर विचार किया है और जिसने उस वृद्धिंगत सभ्यता के प्रकाशित समतुल्य रूप देखे हैं, यह बात स्पष्ट नहीं है कि यह उन्नति की कार्य्यप्रणाली नियमानुसार निश्चित की जा सकती है? पीरू निवासी 'इनका' लोगों के और मैक्सिको

के सम्राटों के धार्मिक विचार और उनके राजसी जीवन की रीतियां वैसी ही थीं जैसी कि यूरोप और एशिया निवासी लोगों की थीं। विचार का प्रवाह भी एक ही सा था। मधुमक्खियों का एक झुंड यदि किसी दूर देश में ले जाया जाय तो वह वहां भी अपने छत्ते एक ही से बनावेगा और अपने जातीय नियम उसी क्रम के रक्खेगा जैसे अज्ञात समूह करेंगे, और बस यही हाल उन मनुष्यों का है जो प्रथक २ रहते हैं और परस्पर असंबन्धित हैं। विचार और कामों का यह क्रम ऐसा अपरिवर्तनीय है कि कुछ दार्शनिक लोग ऐसे भी हैं जो एशिया के इतिहास का प्राचीन उदाहरण यूरोप के इतिहास में लगा कर इस सिद्धान्त के पुष्ट करने में कभी न हिचकेंगे कि "यदि यूरोप को एक रोमन विशप दिया जाय और कुछ शताब्दियों का समय दिया जाय तो कुछ दिनों बाद विशप अव्यर्थ वादी पोप हो जायगा और यदि यूरोप को एक अव्यर्थ वादी पोप दिया जाय, तो यूरोप में लामा धर्म दिखलाई पड़ने लगेगा। वही लामा धर्म जो एशिया में बहुत दिनों से पाया जाता है।

दैहिक और आत्मिक वस्तुओं की उत्पत्ति के विषयमें सिद्धान्तिक संस्था ने अपने कथनों में एक और महत्व पूर्ण बात बढ़ादी है, कि वे लोग समाजच्युत किये जायें जो सब वस्तुओं की उत्पत्ति ईश्वर से मानते हैं, वा जो ऐसा मानते हैं कि दृष्टिगोचर प्रकृति केवल ईश्वर-तत्व का प्रकाशन मात्र है। ऐसा करने में उसके कर्त्ताओंको थोड़ी कठिनता नहीं पड़ी है। उनको उन भयंकर विचारों का सामना करना पड़ा है (चाहे वे नवीन हों चाहे प्राचीन) जो अब हमारे समय में बड़े जोर के साथ विचारवान मनुष्यों पर जबरदस्ती आ पड़े हैं। शक्ति के अविनाशित्व और प्रतियोग्यता का सिद्धान्त अपने न्याय युक्त फल की भांति वही पुराना पूर्वीय उत्पत्ति सिद्धान्त पेश करता है। बिकाश और वृद्धि के सिद्धान्त क्रमागत उत्पादक कार्य्यों के सिद्धान्त से भिड़ जाते हैं। प्रथमोक्त सिद्धान्त का मूलाधार इस मूल सिद्धान्त पर है कि विश्व भर की शक्ति की मात्रा अपरिवर्तनीय है। यद्यपि वह मात्रा न बढ़ती है न घटती है, तथापि जिन रूपों से

वह शक्ति प्रकाशित होती है वे रूप परस्पर परिवर्तित हो सकते हैं। अब तक इस सिद्धान्त ने पूर्ण वैज्ञानिक प्रणाम नहीं पाया, परन्तु उसके पक्ष में इतने अधिक और इतने दृढ़ प्रमाण दिये जाते हैं कि वह बहुत रोबदार और बहुत अधिकार पूर्ण अवस्था तक पहुँच गया है। अच्छा, उत्पत्ति और प्रलय का एशियाई सिद्धान्त इस बड़े विचार से मिलता जुलता सा दिखाई पड़ता है। वह यह नहीं मानता कि एक मानवी व्यक्ति के गर्भ में आते ही ईश्वर अनस्तित्व से एक आत्मा पैदा करता है और उसमें डाल देता है, वरन यह मानता है कि पहिले से वर्तमान पवित्र और सर्वव्यापी बुद्धिका एक भाग उसे दिया जाता है और जब उसका जीवनकाल व्यतीत हो जाता है वह भाग लौटता है और उसी में लय हो जाता है जहां से वह पहिले आया था। संस्था के कर्ता ऐसे विचारों को मानने से मना करते हैं और अपनी आज्ञा न मानने वालों को सदैव के लिये जाति बाहर रहने का दंड देते हैं।

इसी भांति वे विकाश और वृद्धि सिद्धान्तों को भी निपटा देते हैं। गंवारपन से हठ करते हैं कि धार्मिक सम्प्रदाय स्पष्ट उत्पादक कार्य्यों में बिश्वास रखती है। यह सिद्धान्त कि प्रत्येक जीवधारी रूप किसी प्रथमस्थित रूप से निकला है, वैज्ञानिक रीति से शक्ति सम्बन्धी सिद्धान्त की अपेक्षा अधिक उन्नतावस्था में है और कदाचित प्रमाणित सिद्धान्त मान लिया जा सकता है, [उन अधिक बातों का चाहे जो कुछ हो जो उसमें अब हाल में बढ़ा दी गई हैं]

धार्मिक सम्प्रदाय रिफारमेशन पर दोषारोपण करने में बुद्धि को विश्वास के आधीन मानने के निज विचारों को काम में लाई है। उसकी दृष्टि में रिफारमेशन एक अपबित्र नास्तिकता है जो मनुष्य को सर्वेश्वरबाद, पदार्थ बाद, और अनीश्वर बाद के गड्ढे में डाल देती है, और मानवी समाज के मूलाधार ही को तहस नहस करने का उद्योग करती है! इसलिये वह धार्मिक सम्प्रदाय उन चंचल चित्त मनुष्यों को रोकती है, जो ल्यूथर के मतानुसार यह सिद्धान्त मानते हैं कि प्रत्येक मनुष्य को धर्म पुस्तकों का अपने लिये अपने मतानु-

कूल अर्थ करने का अधिकार है। धार्मिक सम्प्रदाय कहती है कि प्रोटेस्टेन्ट लोगों को कैथोलिक लोगों के समान राजकीय अधिकार देना बहुत बुरी बात है और उनसे झगड़ा करना और उन्हें दबाना एक पवित्र काम है, और उन्हें शिक्षालय स्थापित करने देना बड़ा भयंकर काम है। सोलहवें ग्रेगरी ने बिचार स्वतंत्रता को उन्मत्त मूर्खता और समाचारपत्र स्वतंत्रता को हानिकारी भ्रम कह कर निंदा की थी और कहा था कि इन से जितनी ही घृणा की जाय उतनी ही थोड़ी है।

परन्तु जब यह बात याद आती है कि क्रमागत पोप लोगों ने बारम्बार परस्पर पूर्वापर विरुद्ध आज्ञायें प्रचलित की हैं तब यह कैसे सम्भव है कि टाईबर नदी पर होते हुये ईश्वर प्रेरित और सत्यबादी अलौकिक चमत्कार माननीय मान लिये जावें। इस बात को स्मरण करके कि पोपों ने सभाओं की निन्दा की है, और सभाओं ने पोपों की निन्दा की है, और यह स्मरण करके कि पांचवें सिक्सटस की बाईबिल में लगभग दोहजार ग़लतियां हैं और स्वयं उस ग्रंथ के कर्ताओं को उसे रद्द करना पड़ा था यह बात कैसे मानी जा सकती है कि वे अलौकिक चमत्कार सत्य थे? धार्मिक सम्प्रदाय की सन्तानों के लिये अर्थात धर्माध्यक्षों के लिये यह कैसे सम्भव है कि वे पृथ्वी के गोलरूप को, सूर्य्य सम्प्रदाय में ग्रह की भांति उसकी स्थिति को, उसके निज धुरी पर घूमने को और उसकी सूर्य परिक्रमा को छलपूर्ण भ्रम समझें। वे इस बात से कैसे इनकार कर सकते हैं कि इस पृथ्वी पर पाताल निवासी लोग भी हैं और इस हमारी पृथ्वी को छोड़ कर अन्य जगत भी हैं। वे कैसे बिश्वास कर सकते हैं कि यह संसार अनस्तित्व से बनाया गया है, और एक सप्ताह में पूर्ण बन गया था, और ठीक ऐसाही बना था जैसा कि हम उसे देखते हैं। वे कैसे बिश्वास कर सकते हैं कि उसमें कुछ परिवर्तन नहीं हुआ बरन उसके भिन्न भागों ने ऐसी उदासीनता से काम किया है जिससे लगातार ईश्वरीय हस्तक्षेप की आवश्यकता पड़ती रही है।

जब बिज्ञान को इस प्रकार अपने बुद्धि सम्बधी बिश्वास छोड़

देने की आज्ञा दी जाती है, तब क्या वह विज्ञान धर्माध्यक्षों से प्राचीन काल के स्मरण करने के लिये नहीं कह सकता? पृथ्वी के आकार के विषय का झगड़ा और स्वर्ग और नर्क के विषय का झगड़ा उनके बिरुद्ध ही फैसल हुआ। धर्म कहता है की पृथ्वी सम चौरस धरातल है और आकाश सितारों से जड़ा हुआ स्वर्ग का फर्श है जिसमें होकर बारंबार बहुत से मनुष्य स्वर्ग की ओर चढ़ते हुये देखे गये हैं। परन्तु जब ज्योतिष सम्बंधी घटनाओं द्वारा और मजिल्लों के जहाज की समुद्रीय यात्रा द्वारा पृथ्वी का गोल आकार अकाट्य रूप से प्रमाणित हो चुका तब धर्म ने यह कहा कि पृथ्वी विश्व संसार का केन्द्र है, और अन्य सब ग्रह उसके सेवक हैं। यह पृथ्वी ईश्वर कृपा की बड़ी वस्तु है। जब इस स्थिति से हटाया गया तब धर्म ने यह कहा कि यह पृथ्वी अचल है और सूर्य्य और सितारे, जैसा कि प्रत्यक्ष देख पड़ते हैं, उसके गिर्द घूमते हैं। दूरबीन के अन्वेषण ने प्रमाणित कर दिया कि इस बात में भी वह (धर्म) गलती पर था। तदनन्तर उसने यह माना कि सूर्य्य सम्प्रदाय के ग्रहों की सबही चालें ईश्वरीय कारवाई से होती हैं। न्यूटन का प्रिन्सिपिया नामक पुस्तक ने प्रमाणित कर दिया कि उन ग्रहों की चालें एक अनिवार्य्य नियम के कारण होती हैं। तब धर्म ने यह कहा कि पृथ्वी और सब आकाशस्थित पिण्ड छः हजार बर्ष हुए पैदा किये गये थे, और छः दिन में प्रकृति का क्रम ठीक कर दिया गया था और भिन्न जातियों के पेड़ और पशु पैदा कर दिये गये थे। बिरुद्ध साक्षियों के बड़े ढेर से दबकर धर्म ने दिनों को बढ़ा कर अनन्त युग कर दिये, परंतु फल केवल यह हुआ कि यह चालाकी भी पूर्ण न चली, परंतु जब यह ज्ञात हुआ कि जंतुओं की जातियां एक समय में धीरे २ पैदा हुईं, दूसरे युग में पूर्णता को पहुँची और तीसरे युग में धीरे२ बिनष्ट हो गईं तब वे छः युग और उनकी छः प्रकार की बिशेष सृष्टि ठहर न सकी। इस भांति एक समय से दूसरे समय का जोड़ केवल सृष्टियों की आवश्यकता नहीं प्रगट करता वरन पुनर्सृष्टि भी चाहता है। इसलिये धर्म ने यह कहा कि एक जल प्लावन हुआ था

जिसने पहाड़ों की ऊंची चोटियों तक सब पृथ्वी को ढक लिया था और यह कहा कि यह सब पानी हवा उड़ा ले गई थी। परंतु वायु-मण्डल के बिस्तार के विषय के, समुद्र विषय के और वाष्पीय कृत्य के विषय के शुद्ध विचारों ने प्रमाणित कर दिया कि ये कथन कैसे अस्थिर हैं। मनुष्य जाति के पुरुषाओं के विषय में धर्म ने यह कहा कि वे ईश्वर के हाथ से दैहिक और मानसिक पूर्णता सहित पैदा किये गये थे, और कुछ दिन बाद उनका पतन हुआ था अब वह धर्म इस बात पर बिचार कर रहा है कि कैसे भलीभांति उस साक्षी को निपटा दें जो प्राचीन कालिक मनुष्य के जंगली अवस्था के विषय में दिनोंदिन बढ़ती जाती है।

क्या यह कुछ आश्चर्य्य दायक बात है कि उन लोगों की गणना बहुत शीघ्रता से बढ़ती जाती है, जो सम्प्रदाय की सम्मतियों को तुच्छ समझते हैं? वह मनुष्य अदृष्ट विषय में कैसे एक विश्वासनीय पथ-दर्शक माना जा सकता है, जो दृष्ट विषय में इतनी अधिक भूलें करता है? वह मनुष्य सदाचारी और अध्यात्मिक विषय में कैसे विश्वास दिला सकता है जो पदार्थिक विषय में ही बहुत अधिक विफल मनोरथ हुआ हो? इन पूर्वापर विरोधी घटनाओं का, जैसे कि 'प्रेत छाया,' 'व्यर्थ युक्तियां,' 'झूंठी विद्या से उत्पन्न झूंठी कथायें' सत्यता का रूप धारण किये हुये कपट मय भूलें, छोड़ देना संभव नहीं है। धार्मिक सम्प्रदाय ने इनको यही दूषित नाम दिये थे। परन्तु इसके बिरुद्ध, वे धर्माधिकारियों के अव्यर्थता के दावा के विरुद्ध बड़ी कठिन साक्षियां हैं, जो बड़ा ज़ोरदार और अदूषित प्रमाण देती हैं, और उस अव्यर्थता के दावा पर अज्ञान और मूर्खता के विश्वास का दोष प्रमाणित कर देती हैं। इतनी अधिक भूलों का दोषी ठहराये जाने पर पोपों ने उसकी व्याख्या देने का उद्योग नहीं किया। वे इस पूर्ण विषय से जान बूझ कर अनजान बने हैं। नहीं, वरन इस से भी कुछ अधिक, अर्थात धृष्टता के प्रभाव पर विश्वास करके, इन घटनाओं का सामना करके भी पोप लोग अव्यर्थता का दावा करते हैं।

परन्तु पोप को सिवाय उन अधिकारों के जिनको वह बुद्धि द्वारा

प्रमाणित कर सके अन्य कोई अधिकार नहीं दिये जा सकते। पोप ऐसा नहीं कर सकता कि धार्मिक मामलों में तो अव्यर्थता का दावा करे और वैज्ञानिक मामलों में उस से इन्कार करे। अव्यर्थता में तो सबही बातें आ जाती हैं। उस से सर्वज्ञ होने का तात्पर्य्य है। यदि वह ईश्वर विद्या में सत्य है तो वह विज्ञान में भी अवश्य सत्य है। यह कैसे सम्भव है कि पोपों की अव्यर्थता उन प्रसिद्ध भूलों के अनुकूल बता सकें जो उन्होंने की हैं।

तब क्या यह आवश्यक नहीं है कि अपनी सम्मतियों को स्थिर रखने के लिये पोप लोग जो दबाव डालने का दावा करते हैं वह अमान्य किया जाय, और यह घोषणा पूर्ण रीति से खंडन की जाय कि "धर्म-निरीक्षक सभा वर्तमान समय के अविश्वास के विचार से एक आवश्यक वस्तु है' और मानवी प्रकृति के नाम पर उस सभा के ज़ोर ज़ुल्म के विरुद्ध खूब ज़ोर से प्रतिवाद किया जाय? क्या विचार शक्ति ऐसे अधिकार नहीं रख सकती जो किसी के अधीन न हों?

कैथोलिक धर्म और समय के भाव के बीच वाला भेद दिनोंदिन बढ़ता ही जाता है। कैथोलिक धर्म आग्रह करता है जि अंधविश्वास बुद्धि से बढ़ कर है और गुप्त भेद सच्ची घटनाओं से अधिक महत्वपूर्ण हैं। वह धर्म दावा करता है कि मैं ही प्रकृति और इश्वरवाक्य का एक मात्र व्याख्यापक और ज्ञान का सब से बढ़कर न्यायाधीश हूं। वह संक्षेप ही में धर्म ग्रन्थों की सब ही वर्त्तमान विवेचना अस्वीकार करता है, और आज्ञा देता है कि ट्रेन्ट के ईश्वर-विद्या वादियों के विचारानुसार ही बाइबिल को मानना चाहिये। वह खुल्लमखुल्ला स्वतंत्र सभाओं और नियमबद्ध प्रथाओं से अपनी घृणा प्रगट करता है और कहता है कि वे लोग असम्य भूल करते हैं जो ऐसा मानते हैं कि वर्त्तमान सभ्यता के साथ पोप की अनुकूलता हो सकती है वा होना चाहिये।

परन्तु समय का भाव यह प्रश्न करता है कि—क्या मानवी बुद्धि को त्रिदेवोपासक पादरियों के अधीन होना चाहिये, वा उन अपढ़ और अविचारी मनुष्यों के व्यर्थ विचार के अधीन होना चाहिये जो

सम्प्रदाय के आरम्भिक समयों में पुस्तकें लिख गये हैं ? समय का भाव अंध विश्वास में कोई गुण नहीं देखता, उस पर अविश्वास रखता है। वह सत्य घटना और व्यर्थ कथा के बीच वाला झगड़ा निबटाने के विश्वास के साधारण नियम में उन्नति की ओर बड़ी आशा दृष्ट से देखता है। वह ऐसी झूंटी कथाओं और झूंठी बातों पर विश्वास करने के लिये अपने को धर्म बद्ध नहीं समझता जो धार्मिक तात्पर्यों के लिये गढ़ ली गई हैं।

उनकी सचाई के पक्ष में उसे कोई प्रमाण नहीं मिलता कि मौखिक और पौराणिक कथायें बहुत दिनों से चली आती हैं। इस बिचार से धार्मिक सम्प्रदाय की कथायें मूर्ति पूजक धर्म की कथाओं से भी बहुत ही तुच्छ हैं। धार्मिक सम्प्रदाय की बड़ी आयु भी ईश्वरीय रक्षा वा सहायता के कारण नहीं है, वरन् उस चतुराई के कारण है, जिस चतुराई से उसने अपनी नीति को वर्तमान अवस्थाओं के अनुकूल बना लिया है। यदि प्राचीनपन ही सत्यता का लक्षण हो तो बौद्ध धर्म के दावे अवश्य मानना चाहिये। वह धर्म बहुत सी शताब्दियों का अधिक उत्तम प्रमाण रखता है। इतिहास की उन निश्चित झुठाइयों का कोई बचाव नहीं हो सकता, अर्थात एतिहासिक घटनाओं के उस छिपाव का जिससे धार्मिक सम्प्रदाय ने बहुधा लाभ उठाया है। इन बातों में अंतिम फल कार्य्य साधनों को न्याययुक्त नहीं प्रमाणित कर सकता।

तब क्या सत्य ही इसका यह फल हुआ कि रोमन ईसाई धर्म और विज्ञान दोनों के भक्त प्रथक २ एक दूसरे को बिलकुल अनमिल वस्तुएं मानते है ? वे दोनों एक साथ नहीं रह सकते। एक को दूसरे के सामने अवश्य नतमस्तक होना चाहिये। मनुष्य जाति को ही इन दोनों में से किसी एक को चुन लेना चाहिये। मनुष्य जाति दोनों को नहीं रख सकती।

जब कैथोलिक धर्म का ऐसा परिणाम है, तब रिफारमेशन और विज्ञान का मेल हो जाना केवल सम्भव ही नहीं है, वरन् सरलता से हो जायगा, यदि प्रोटेस्टेंट सम्प्रदायें ल्यूथर के उस कथनानुसार

चलें जो बहुत दिनों की लड़ाइयों से स्थिर हो चुका है। ल्यूथर का वह सिद्धान्त यह है कि धर्म ग्रंथो के अर्थ करने का प्रत्येक मनुष्य को अधिकार है। यही बात बुद्धि सम्बन्धी स्वतंत्रता की नींव थी। परन्तु यदि ईश्वर कृत पुस्तकों का निज के तौर पर अर्थ हो सकता है तब प्रकृति की पुस्तक के अर्थ करने से कैसे इन्कार किया जा सकता है ? जो भूलें हुई हैं उनके विषय में हमें स्मरण रखना चाहिये कि मनुष्य की बुद्धि भी शक्तिहीन है। रिफारमेशन के अनन्तर ही जो पीढ़ियां हुई हैं वे कदाचित अपने मुख्य नियमों का पूरा तात्पर्य्य न समझने के लिये और हर समय में उसे काम में न लाने के लिये क्षमा की जा सकती हैं। जब कालविन ने सरवीटस को जलवा दिया था तब वह रिफारमेशन के नियमों से नहीं वरन् कैथोलिक धर्म के उन नियमों से उत्तेजित किया गया था जिनसे वह अपने को पूर्णतः नहीं छुड़ा सका था। और जब प्रोटेस्टेंट प्रभाव वाले पादरी लोग प्रकृति के खोजियों पर अधर्मी और नास्तिक होने का कलंक लगाते थे तब भी यही बात कही जा सकती थी। विज्ञान से मिलाप करने के लिये कैथोलिक धर्म को कदाचित अनिवार्य्य कठिनाइयां हैं। और प्रोटेस्टेंट सम्प्रदाय के लिये इस बात में कोई कठिनाई नहीं है। कैथोलिक धर्म को बड़ी कठिन और घातक शत्रुता छोड़ना पड़ेगी, और प्रोटेस्टेंट धर्म को वह मित्रता फिर से जोड़ना पड़ेगी जो सन्देहों के कारण टूट गई है।

परन्तु ईसाई संसार में शीघ्र अवश्यम्भावी बुद्धि सम्बंधी बड़ी विपत्ति का कारण चाहे जो घटनायें हों इस विषय में हमें यह निश्चय अवश्य रखना चाहिये कि सार्वजनिक धर्म से चुपचाप खिसकाव जो वर्तमान पीढ़ी में शकुनवत हो रहा है, अन्त में राजनैतिक रीति से प्रगट होगा। यह बात तात्पर्य्य रहित नहीं है कि फ्रान्स देश, यात्राओं की रीति को बढ़ा कर, अलौकिक चमत्कार को करके और स्वर्गीय प्रेतों को दिखलाकर अपनी निम्न श्रेणी की प्रजा के सर्वोच्च स्वभावों का नवीन संस्कार कर रहा है। अपने भाग्य द्वारा ऐसा करने पर बिबश होकर वह उस काम को कुछ

स्कुत्र महित कर रहा है। यह बात तात्पर्य्य रहित नहीं है कि जर्मनी देश, इटली निवासियों को निकाल कर अपने को दुहरे शासन के भार से मुक्त करना चाहता है और उस सुधार को पूरा करना चाहता है जिसे उसने तीन शताब्दी पहिले अपूर्ण ही छोड़ दिया था। वह समय आ रहा है जब मनुष्य शान्त निश्चल धर्म और सदैव उन्नतिकारी विज्ञान में से किसी एक को चुन कर पसन्द कर-लेंगे, अर्थात वह धर्म जिसमें मध्ययुग वाली सांत्वनायें हैं, और वह विज्ञान जो सदैव मनुष्य जीवन के मार्ग में अपनी पदार्थिक बर-कतें फैला रहा है, इस संसार के मनुष्यों का भाग्य ऊंचा कर रहा है और मानव जाति को एक कर रहा है। उसकी सफलतायें सुदृढ़ और चिरस्थायी हैं। परन्तु जो शोभा वा कीर्ति कैथोलिक धर्म पदा-र्थिक विचारों से झगड़ा करके प्राप्त करेगा वह अपनी अच्छी से अच्छी दशा में भी केवल उल्कापात की सी चमक होगी अर्थात क्षणभंगुर और व्यर्थ होगी।

यद्यपि गैज़ाट का यह कथन कि "धार्मिक सम्प्रदाय सदैव स्वच्छन्द राज्य की पक्षपाती रही है" बहुत अधिक सत्य है तथापि यह अवश्य स्मरण रखना चाहिये कि जिस नीति पर वह चलती है उसमें बहुत कुछ राज्यनैतिक आवश्यकता है। उन्नीस शताब्दियों के दबाव से वह धार्मिक सम्प्रदाय उत्तेजित की गई है। परन्तु यदि उसके कामों में स्वच्छन्दता प्रगट होती है तो उसके जीवन में अवश्यम्भावी फल भी प्रगट होते हैं क्योंकि जैसे एक मनुष्य का हाल है वैसा ही पोप शासन का भी हाल है, वह बचपन की आपत्तियों को लांघ गया है, युवावस्था की चुस्तियां दिखला चुका है, और अब उसका काम पूरा हो चुका है, अब उसे अवश्य वृद्धावस्था कीअशक्तता और विलापशीलता में पड़ना पड़ेगा। उसकी जवानी अब कभी नहीं आसकती। केवल उसके स्मारकों के चिन्ह रह जायेंगे। जैसे मूर्ति पूजक रोम ने अपने चलते समय का छायाचित्र राज्य पर डाला था, और उसके सब विचारों को निज रंग से रँग दिया था, उसी भांति ईसाई रोम यूरोप पर अपनी बिदाई समय की छाया डाल रहा है।

क्या वर्तमान सभ्यता उस उन्नति की चाल को छोड़ने के लिये राज़ी होगी जिसने उसे इतनी शक्ति और इतना आनन्द दिया है क्या वह मध्ययुग के जंगली अज्ञान और व्यर्थ विश्वास तक पुनः लौट जाने के लिये राज़ी होगी ? क्या वह उस शक्ति का कथन मानेगी जो ईश्वरीय अधिकार का दावा करते हुये भी अपने कर्तव्यों के उचित प्रमाण नहीं दे सकती ? और जो ऐसी शक्ति है जिसने यूरोप को प्रत्येक उद्योग की उन्नति के लिये मार काट करके लोगों को भयंकरता से दबाते हुये शताब्दियों तकआगे नहीं बढ़ने दिया, और जो ऐसी शक्ति है जो गुप्त भेदों के बादलों पर अपना मूलाधार रखती है, जो अपने को बुद्धि और साधारण समझ से ऊपर रखती है, जो उस घृण को बड़े जोर से प्रकाश करती है जो वह विचार स्वतंत्रता और सभ्य संस्थाओं की स्वछन्दता से रखती है, जो अपनी इच्छा प्रगट करती है कि सुअवसर पाने पर बिचार स्वतंत्रता को दबा दूंगी और समाज स्वच्छन्दता को बिनष्ट कर डालूंगी, जो हानि-कारी और उन्मत्त कह कर इस सम्मति की निन्दा करती है कि बिचार स्वतंत्रता और ईश्वर भक्ति पर सब का अधिकार है, जो प्रत्येक सुशासित राज्य नियम द्वारा उस अधिकार का प्रचार करने और प्रतिपादन करने का विरोध करती है, जो घृणा दृष्टि से इस सिद्धान्त का खण्डन करती है, कि "सर्वसाधारण की इच्छा ही कानून होगी चाहे वह किसी भांति प्रगट की गई हो," जो धार्मिक बातों में सम्मति देने का अधिकार प्रत्येक मनुष्य को देने से इन्कार करती है पर यह बात मानती है कि प्रत्येक मनुष्य को धर्म सम्प्रदाय के कथन पर विश्वास करना चाहिये और उसकी आज्ञा मानना चाहिये, जो किसी लौकिक राज्य को धर्म सम्प्रदाय के अधिकार को निश्चित करने और सीमाबद्ध करने का अधिकार नहीं देना चाहती, जो इस बात को प्रगट करती है कि अनाज्ञाकारी पुरुषों को वह केवल शिक्षण ही न देगी, वरन उन पर अवश्य दबाव डालेगी, जो दोष स्वीकार के समय किसी पुरुष की स्त्री पुत्री और सेवकों को उसी के बिरुद्ध जासूस बनाकर घरू जीवन की पवित्रता पर आक्रमण

करती है, जो दोष लगानेवाले का नाम न बताकर किसी मनुष्य को दोषी ठहराती है और शारीरिक पीड़ा पहुँचा कर उससे दोष स्वीकार कराती है, जो माता पिता को अपनी सन्तानों को धार्मिक सम्प्रदाय के बाहर शिक्षा देने का अधिकार नहीं देती और हठ सहित कहती है कि घरू जीवन की निगरानी करने और विवाह और परित्याग का प्रबंध करने का अधिकार केवल उसी को है, जो उनकी धृष्टता की निन्दा करती है जो धार्मिक सम्प्रदाय के अधिकार को राज्याधिकार के अधीन समझते हैं वा जो धार्मिक सम्प्रदाय को राज्य से प्रथक कराना चाहते हैं, जो सब प्रकार की सहनशीलता को पूर्णतः खण्डन करती है और कहती है कि प्रत्येक देश में केवल कैथोलिक धर्म ही धर्म की भांति रखने योग्य है और ईश्वर भक्ति के अन्यान्य सब मार्ग निकाल देना चाहिये और जो अपने विरोधी राज्य नियमों को मंसूख करा देना चाहती है और ऐसा न होने पर लोगों को आज्ञा देती है कि वे उन राज्य नियमों को न मानें ? (क्या ऐसी धर्म शक्ति का कथन मानना चाहिये) ।

यह उपरोक्त शक्ति, ऐसा जान कर भी कि वह अपने कार्य्य साधन हेतु कोई अलौकिक चमत्कार नहीं कर सकती, शासन के विरुद्ध षड़यंत्र करके समाज की शांति भंग करने में तनक भी नहीं हिचकती, और स्वतंत्र राज्यों से मेल करके अपने कार्य्य साधन करने की इच्छुक रहती है।

इस प्रकार के दावों का तात्पर्य्य वर्तमान सभ्यता के विरुद्ध विद्रोह करना ही है, जो मानो उसको विनाश कर देने की इच्छा ही है चाहे कितनी ही जातीय हानि क्यों नहो। उन दावों को बिना रोके हुये मान लेने में मनुष्य जाति को वास्तव में गुलाम हो जाना पड़ेगा।

इस भविष्य फल के झगड़े के विषय में क्या किसी को सन्देह है ? जिन वस्तुओं का मूलाधार कल्पित कथाओं और कपट कार्य्यों पर है वे विनष्ट होंगे। ऐसी संस्थाओं को, जो झूठे दावा करने का प्रबंध करती हैं और छल कपट फैलाती हैं, कारण बताना पड़ेगा

कि वे क्यों जीवित रक्खी जायें। बुद्धि के सामने धर्म को अपना लेखा समझाना होगा। गुप्त भेदों को सच्ची घटनाओं के लिये स्थान खाली करना होगा। धर्म को वह शानदार और सर्वोपर स्थिति त्यागना पड़ेगी जो विज्ञान के विरुद्ध उसे इतने दिनों तक प्राप्त रही है। पूर्ण विचार-स्वतंत्रता अवश्य फैल जायगी, धर्माध्यक्ष को सीखना पड़ेगा कि वह अपने को उतने ही राज्य के भीतर रक्खे जितने को उसने स्वयं पसंद किया है और उस दार्शनिक पर अत्याचार करना छोड़ दे, जो अपनी शक्ति और अपने विचारों की पवित्रता को जान कर ऐसा हस्तक्षेप अब अधिक दिनों तक न सह सकेगा। जो कुछ एसेड्राज़ ने बैबिलान देश की बेतलता पूर्ण-तट नदियों के निकट तेईस शताब्दियों से अधिक पहले लिखा था वह अब भी सत्य है। "सत्य चिरस्थायी है और सदैव शक्तिमान है, वह जीवित रहता है और सदैव विजय प्राप्त करता है"।